॥ अर्हं ॥

णमो आयरियस्स धम्मदासस्स मुणिवरस्स

मद् धर्मदासजी महाराज

और

उनकी मालव-शिष्य-परम्पराएँ

लेखक—

प्रवर्तक पू. श्री सूर्यमुनिजी महाराज के शिष्य

उमेशमुनि 'अणु'

प्रकाशक—

श्री धर्मदास जैन मित्र-मण्डल

नौलाईपुरा, रतलाम (म. प्र.)

॥ अर्हं ॥

णमो आयरियस्स धम्मदासस्स मुणिदस्स

[श्री]मद् धर्मदासजी महाराज
और
उनकी मालव-शिष्य-परम्पराएँ

लेखक—

प्रवर्तक पू. श्री सूर्यमुनिजी महाराज के शिष्य

उमेशमुनि 'अणु'

प्रकाशक—

श्री धर्मदास जैन मित्र-मण्डल

नौलाईपुरा, रतलाम (म प्र)

आशीर्वाद-प्रदाता—
मालव केसरी श्री सौभाग्यमलजी म. सा.

सामग्री-प्रदाता—
प्रवर्तक कवि प. श्री सूर्यमुनिजी म. सा.

प्रेरक—
पं. श्री सुरेन्द्रमुनिजी म. सा.
पं. श्री रूपेन्द्रमुनिजी म. सा.

लेखक—
उमेशमुनि 'अणु'

अर्घ मूल्य·
(७) रुपये

आवृत्ति—
प्रथम सहस्त्र प्रति, वि स. २०३१, श्री धर्मदास-दीक्षा-जयन्ती

प्राप्ति स्थान—
श्री धर्मदास जैन मित्र-मण्डल
रतलाम (म प्र)

मुद्रक—
मणनलाल हीरालालजी रूनवाल
रूनवाल प्रिंटिंग प्रेस
चौमुखीपुल, रतलाम

॥ श्रीमद्धर्मदासजित्सूरीश्वरेभ्यो नम ॥

प्रकाशकीय

प्रिय पाठक वृन्द,

प्रस्तुत पुस्तक आपके हाथो मे देते हुए हमे परम आनन्दानुभूति हो रही है। इस मे जगम युग-प्रधान, आचार्य, श्रमण श्रेष्ठ, महान् त्यागी सन्त पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज सा. एव उनकी मालव शिष्य-परम्परा के महान् सन्तो के तपोमय जीवन को अत्यन्त सुन्दर रूप से दर्शाया गया है।

इस पुस्तक के लेखक आत्मार्थी, तपोधनी, तत्त्वमनीषी, व्याख्यानी पण्डितरत्न श्री उमेशमुनिजी म. सा 'अणु' है। इस पुस्तक को विस्तृत रूप से लिखने की हार्दिक इच्छा होते हुए भी, स्वाध्याय-ध्यानादि सयम-साधना मे व्यस्त रहने के कारण सैलाना चातुर्मास मे आपने इसे छोटे रूप मे ही लिखा था, जिसे अनेक श्रावको ने देखा और महाराज श्री से निवेदन किया कि हमारे उपकारी महापुरुषो के जीवन से भावी पीढी भी प्रेरणा प्राप्त कर सके, इसलिये इसको विस्तृत रूप से लिखने की कृपा करे। तव श्रावक वन्धुओ के इस निवेदन को सहर्ष स्वीकार कर आपने अत्यन्त परिश्रम करके इस कार्य से सम्वन्धित विषयो पर शोध प्रारम्भ कर दी तथा पूज्य गुरुदेव प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी म सा, साहित्य प्रेमी श्री सुरेन्द्रमुनिजी म सा, सेवाभावी प रत्न श्री रूपेन्द्रमुनिजी म सा, आदि के सहयोग से विषय को क्रमवद्ध करके उसे पुस्तक का रूप प्रदान कर दिया। इस शुभ कार्य के लिये हम समाज की ओर से महाराज श्री एव अन्य गुरुदेवो का अभिनन्दन करते है।

इस पुस्तक मे महाराज श्री द्वारा चित्र देने का विरोध करने पर भी हमने जो २ चित्र दिये है, वे केवल परिचय के लिये है, इसके लिये हम महाराज श्री मे बहुत ही क्षमा प्रार्थी हैं।

हम मालव केसरी, महाराष्ट्र विभूषण, प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमलजी म सा के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होने इस पुस्तक के विषय मे प्रेरणा दी एव प्रकाशन की भी व्यवस्था तत्परता से करवाई।

हम श्रीमान् मास्टर सा नानालालजी रूनवाल बी. ए के भी आभारी है, जिन्होने अपना अमूल्य समय दे कर इस पुस्तक की भूमिका लिखने की महती कृपा की है।

हम उन सभी महानुभावो को भी धन्यवाद देते है जिन्होने हमे द्रव्य सहायता दे कर हमारे कार्य को सुलभ बनाया एव अप्राप्य चित्र प्रकाशनार्थ हमे दिये। आप सभी महानुभावो का सहयोग हमारे लिये अभिनन्दनीय है।

हम श्रीमान् मगनलालजी रूनवाल का भी आभार मानते है, जिन्होने अपने अन्य मुद्रणकार्यो मे व्यस्त रहते हुए भी इस पुस्तक को सुविधानुसार समय पर मुद्रित कर दिया है।

अन्त मे हमारा पाठको से यही निवेदन है कि इस पुस्तक को पढ कर अपने महापुरुषो के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करे एव जीवन मे उतारे।

आश्विन शु १ बुधवार
स २०३१ वि
दि. १६-१०-१९७४

अध्यक्ष
श्री धर्मदास जैन मित्र मण्डल
रतलाम (म प्र.)

अध्यक्ष
श्री धर्मदास सौभाग्य सूर्य
जैन बाल मण्डल
नौलाईपुरा, रतलाम (म प्र)

पुस्तक प्रकाशन मे सहयोगी महानुभाव

२००१) पूज्य श्री धर्मदासजी म का अनुयायी श्रावक सघ रतलाम (म प्र)
२०००) प्रि व श्री विनयचन्दजी म के सदुपदेश से स्थापित
श्री नगीनचन्द्रजी म सुकृत ट्रस्ट उज्जैन (म प्र)
१०००) श्रीमान् सेठ छगनमल साहेबराम बाफना चेरिटेबलट्रस्ट
की ओर से हस्ते श्रीमान् सेठ सचालालजी सा तथा
श्री मिश्रीमलजी बाफना धूलिया (महा)
१००१) श्रीमती धनीबाई मुणत द्वारा स्व सेठ श्री जुहारमलजी
मुणत की स्मृति मे ह श्री शातिलालजी झमकलालजी
मुणत बदनावर (म प्र)
५०१) श्रीमान् सेठ मांगीलालजी, केशरीमलजी लोढा
के सुपुत्र श्री रमेशचंद्रजी के अठ्ठाईतप के उपलक्ष मे रतलाम (म प्र)
५००) श्रीमती मैनाबाई नहार द्वारा सुपुत्री श्री चदनबाला की दीक्षा के
उपलक्ष मे ह. श्रीहस्तीमलजीसमरथमलजी नहार बदनावर (म प्र)
५०१) पारख ब्रदर्स ह मोहनसिंग जी पारख नाशिक (महा)
५०१) श्रीमान् सेठ राजमलजी छोगालालजी बाफना गौतमपुरा (म प्र.)
२५१) श्रीमान् सेठ प्यारचन्दजी रांका सैलाना (म प्र)
२५१) श्रीमान् सेठ वरदीचन्दजी रखबचन्दजी बोकडिया छायन (म प्र)
२५१) श्रीमती सेठानी रभाबाई धर्मपत्नी श्री सेठ वरदीचन्दजी
बोकडिया छायन (म प्र)
२५१) श्रीमान् सेठ जीतमलजी सुजानमलजी खजान्ची मूलथान (म. प्र)
२५१) श्रीमान् सेठ नानालालजी, शान्तिलालजी बूरड की तरफ से
मातेश्वरी श्री नन्दीबाई की स्मृति मे कतवारा (गुजरात)
२०१) श्रीमान् सेठ बापूलालजी गभीरमलजी चाणोदिया बामनिया (म. प्र)
२५१) श्रीमती मेहताबबाई रूनवाल धर्मपत्नी श्री सेठ
वेणीचन्दजी रूनवाल ह श्री शातिलालजी रूनवाल झाबुआ (म प्र)
१०१) श्रीमान् सेठ सुजानमलजी मिश्रीमलजी मुणत
द्वारा सुपुत्री श्री मोहनबाई के ९ तप के उपलक्ष मे रतलाम (म प्र)

५१) श्रीमान् सेठ बाबूलालजी गुलाबचन्दजी पितलिया द्वारा
श्री मिश्रीमलजी पितलिया की स्मृति मे   सैलाना (म प्र)

२५१) श्रीमान् सेठ प्यारचन्दजी हीरालालजी काकरिया   थांदला (म प्र)

२५१) श्रीमती नानीबाई धर्मपत्नी स्व श्रीमान् सेठ
रतनचन्दजी घोड़ावत   ,,

२०१) श्रीमान् सेठ बलवन्तरायजी लालचन्दजी बोथरा   ,,

१०१) श्रीमान् सेठ शाहजी मानसिंगजी   ,,

१०१) श्रीमती केसरबाई धर्मपत्नी शाहजी श्री जोरावरसिंगजी   ,,

१०१) श्रीमती सज्जनबाई धर्मपत्नी स्व श्री प्रेमचन्दजी छाजेड   ,,

१०१) श्रीमान् चुन्नीलालजी सागीलालजी श्रीमाल   ,,

५१) श्रीमती सूरजबाई धर्म पत्नि स्व सेठ श्रीचन्दजी चोपड़ा   ,,

५१) श्रीमान् सेठ माणकलालजी पन्नालालजी तनेरा   ,,

५१) श्रीमान् सेठ हेमराजजी लखमीचन्दजी छाजेड   ,,

५१) श्रीमान् सेठ पूनमचन्दजी भागीरथजी सेठिया   ,,

५१) श्रीमान् सेठ मेघसिंहजी बाबूलालजी रुनवाल   ,,

४१) श्रीमान् सेठ डाडमचन्दजी लुणाजी गग   ,,

२५) श्रीमान् सेठ कान्तिलालजी सूरजमलजी पीचा   ,,

२५) ,, ,, ,, ,, ,,   ,,

२५) ,, ,, भागीरथजी सूरेशचन्द्रजी मालवी   ,,

२५) ,, ,, सागरमलजी गोपालजी चोरडिया   ,,

२५) ,, ,, टीकमचन्दजी केशरीमलजी श्रीमाल   ,,

२५) ,, ,, सागरमलजी जवरचन्दजी चौधरी   ,,

२५) ,, ,, लालचन्दजी राजमलजी काकरिया   ,,

२५) ,, ,, उदेचन्दजी जीवराजजी पीचा   ,,

२५) ,, ,, केशरीमलजी माणकलालजी श्रीमाल   ,,

२५) ,, ,, रूपचन्दजी खेमराजजी लोढा   ,,

२५) ,, ,, शतीसचन्द्रजी नेमचन्दजी कुवाड   ,,

२५) ,, ,, मगनलालजी कालूरामजी मालवी   ,,

२५) ,, ,, सुन्दरलालजी प्यारचन्दजी भडारी   थादला (म प्र)

२१) ,, ,, चम्पालालजी प्यारचन्दजी भडारी   ,,

२१) श्रीमान् सेठ चादमलजी पोरवाड की धर्मपत्नि
श्रीमोहनबाई थादला (म प्र)
२१) श्रीमान् सेठ बाबूलालजी सूरजमलजी छाजेड़ खाचरोद वाले ,,
२१) श्रीमान् सेठ अमृतलालजी वर्धमानजी लोढा ,,
२१) ,, ,, माणकलालजी भागीरथजी छाजेड ,,
२१) ,, ,, लखमीचन्दजी कालूलालजी कटारिया ,,
७) ,, ,, हुकमीचन्दजी डूगरसिंगजी रुनवाल ,,
३७३) श्रीमान् सेठ मागीलालजी शेतानमलजी चोपडा खवासा (म प्र)
१५१) ,, ,, झमकलालजी लालचन्दजी चोपडा ,,
५१) ,, ,, आनन्दीलालजी लूणाजी चोपडा ,,
५१) ,, ,, अनोखीलालजी लूणाजी चोपडा ,,
५१) ,, ,, बापूलालजी उदेचन्दजी चोपडा ,,
२१) ,, ,, पारसमलजी राजमलजी मोदी ,,
२१) ,, ,, वरदीचन्दजी लूणाजी चोपडा ,,
११) ,, ,, सुजानमलजी लूणाजी चोपडा ,,
११) ,, ,, धीरजमलजी वेणीचन्दजी बागरेचा ,,

पणया वीरा महावीहिं

—इस महावीथि = मोक्षमार्ग पर कई वीर पुरुष चल चुके हैं

आचारांग सूत्र १।१।३।२

पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि।
सच्चस्साणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

—हे पुरुषो! सत्य को भली प्रकार जानकर, उसे आचरण में उतारो। सत्य की आज्ञा में उपस्थित बुद्धिमान संसार को तैर जाता है।

—आचारांग सूत्र १।३।२।११६

(कवित्त)

वत्स आँख के आनन्द, मात फूल-अंक-चंद,
नन्द-शिष्य वीर-नन्द, सूर्यमुनिराज हैं।
कृश देह गुण गेह, भरपूर धर्म-स्नेह-
भरा भव्य मन शूर, भक्त सिरताज है।।

बाल-वृद्ध पर दृष्टि करे सम कृपा-वृष्टि,
प्रफुल्लित धर्म संघ सजे ज्ञान-साज है।
प्रवर्तक गुरुराज! करो दान कृपा-प्यार,
मन शान्ति हर्ष धार नमस्कार आज है।।

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

भूमिका

जिन महापुरुषों का प्राथमिक लक्ष्य अपने आपको शिव-पथ का पथिक बनाने का तथा जिनका चरम लक्ष्य साद्यनन्त, जन्म-जरा-विवर्जित, निर्मल एवं शाश्वत परमात्म-पद प्राप्त करने का होता है, उनके विमल धवल मानस में लोकैषणा का अभाव होना स्वाभाविक है। उन्हें क्या प्रयोजन आत्मश्लाघा करने मे एवं आत्म-परिचय प्रदान करने से? वे तो केवल लोकोत्तम महापुरुषों द्वारा प्रदर्शित परम-पुरुषार्थ-सिद्धि के सत्पथ के पथिक बन कर, अपने सम्पर्क में आने वाले भव्यात्माओं को भी अपने सहचारी बनाते हुए, अध्यात्म-मार्ग में सतत अग्रसर होते रहने के लिये ही सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

धर्मप्रधान पुण्य भूमि भारत मे जन्म लेने वाले मोक्षार्थी भव्यात्माओं की बात तो दूर रही, प्रत्युत काम-पुरुषार्थ की साधना को अपना लक्ष्य मानने वाले अधिकांश महाकवियों आदि ने भी भावी पीढ़ियों के लिये अपने काव्यों मे अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। यही कारण है कि आज हम अपने पूर्व-पुरुषों के जन्म-स्थान, जन्मकाल तथा उनके द्वारा किये गये सत्कार्यों से अनभिज्ञ से हैं और अनन्त अतीत के अन्धकार-पूर्ण गह्वर मे अपनी कल्पनाओं की रंग-बिरंगी किरणें फेंक कर उन महापुरुषों, उनके सहयोगियों एवं अनुगामियों द्वारा छोड़े गये चिह्नों की खोज करते हैं, तथा इस प्रकार उपलब्ध होने वाली सामग्री का सङ्कलन करके इतिवृत्त की जानकारी प्राप्त करते हैं।

महापुरुषो के जीवनचरित, तथा देश, धर्म, समाज एव जाति के इतिहास भावी पीढियो के लिये बोधप्रद एव मार्ग-दर्शक होते है, साथ ही वे समुन्नति-पथ पर अग्रसर होते रहने के लिये प्रेरणा प्रदान करने वाले एव भूतकाल की भूलो और उनके परिणामो की ओर भावी पीढियो का ध्यान आकर्षित कर उन्हे सावधान करने वाले भी होते है। अत एव अनेको विद्वान् तत्तद्विपयक इतिहास लेखन की ओर प्रवृत्त हुए है, होते है और होते रहेगे।

जैन धर्म एक अत्यन्त प्राचीन धर्म है और हमारी मान्यता के अनुसार तो यह प्राचीनतम धर्म है। अतीत काल मे यह समय २ पर आर्हत धर्म, निर्ग्रन्थ धर्म, श्रमण धर्म या श्रमण परम्परा के नामो से सम्बोधित होता रहा है। इस अवसर्पिणी काल मे *भोग युग एव कर्म युग के सन्धिकाल मे नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने, मानव समाज की सम्यग्रूपेण व्यवस्थापना के लिये असि, मसि एव कृषि आदि कर्मो का प्रारम्भ तथा राज्य-सस्था आदि की प्रतिष्ठापना करने के पश्चात् राज्यऋद्धि एव सासारिक सुखभोगो का पूर्णत परित्याग करके निवृत्ति मार्ग अगीकार किया था और एक हजार वर्ष तक अनवरत साधना द्वारा केवलज्ञान एव केवलदर्शन प्राप्त होने पर मोक्ष मार्ग रूप धर्मतीर्थ की सस्थापना की थी। उनके पश्चात् होने वाले २३ तीर्थंकरो द्वारा अपने अपने समय मे देशकालानुसार धर्म तीर्थ का प्रवर्तन होता रहा। इसी परम्परा मे अन्तिम (२४ वे) तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी हुए, जिनके द्वारा प्रवर्तित धर्मशासन अभी प्रवर्तमान है।

परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। कोई भी वस्तु सदाकाल एक ही स्थिति मे न तो रही है, न रहती है और न रहेगी। उसमे परिवर्तन होता ही रहता है। यह परिवर्तन दो प्रकार का होता है—(१) इष्ट, (२) अनिष्ट, इष्ट परिवर्तन को विकास तथा अनिष्ट को विकार कहा जा सकता है। किसी भी देश की राजनैतिक, सामाजिक एव प्राकृतिक

---

*प्रस्तुत पुस्तक मे **भोगयुग** तथा **कर्मयुग** के बजाय **भोगभूमि** तथा **कर्मभूमि** शब्दो का प्रयोग किया गया है, जो समुचित प्रतीत नही होता। आगामी सस्करण मे उसे सशोधित कर लिया जावेगा, ऐसी आशा है।

परिस्थितियाँ भी परिवर्तन मे अपना-अपना योगदान करती रहती है। तदनुसार भगवान् महावीर एव उनके गणधरो आदि के निर्वाण के पश्चात् जैन धर्म की व्यवस्था मे भी अनेको परिवर्तन हुए, परिणामस्वरूप अनेक शाखाओ, प्रशाखाओ, सम्प्रदायो, समुदायो एव पथो का प्रादुर्भाव हो गया और उन सबो की अपनी-अपनी अलग-अलग परम्पराएँ हो गई।

सौभाग्य की बात है कि हमारे पुरातनकालीन इतिहास की जानकारी के लिये **श्रीमान् हेमचन्द्राचार्य** आदि विद्वान् आचार्यो द्वारा लिखित **'त्रिशष्टि-शलाका-पुरुष-चरितम्'** आदि ग्रन्थ विद्यमान हैं, किन्तु मध्यकालीन उत्थान पतन एव स्थिति के क्रमवद्ध इतिहास का अभाव सा है, विशेष कर स्थानकवासी परम्परा मे तो ऐसे क्रमवद्ध इतिहास की कमी खटकती रही है। **श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह** द्वारा लिखित **'ऐतिहासिक नोंध'** तथा इन्दौर निवासी **श्रीमान् केशरीचन्दजी भंडारी** द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक **Sthanakwasi Jain** (स्थानकवासी जैन) वचपन मे मेरे देखने मे आई थी। वर्तमान मे स्थानकवासी जैन मुनियो एव श्रावको का इस ओर विशेष झुकाव हुआ है और कई जीवन-ग्रन्थ, अभिनन्दन ग्रन्थ आदि का लेखन तथा प्रकाशन हुआ तथा हो रहा है। पूज्यपाद आचार्यप्रवर **श्रीमान् हस्तिमलजी महाराज** ने अनवरत परिश्रम करके प्राचीनकाल से अद्यावधि के क्रमवद्ध इतिहास-लेखन का प्रशसनीय प्रयास किया है। आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ का प्रथम 'तीर्थंकर खण्ड' मेरे देखने मे आया है। अन्य खण्ड भी सभवत प्रकाशित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ **"श्रीमद् धर्मदासजी महाराज और उनकी मालव शिष्य परम्पराएँ"** स्थानकवासी परम्परा के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण कडी है। **पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज** इस परम्परा के समुज्ज्वल रत्न थे। उनका उद्भव भारतीय इतिहास के एक ऐसे काल मे हुआ था, जब कि मुगल साम्राज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था, किन्तु उसके पतन के बीज भी अकुरित हो गये थे। जैन धर्म तथा समाज मे व्याप्त आडम्बर एव शिथिलाचार का विरोध करके क्रियोद्धार करने वाले महानुभावो मे भी यह काल था। प्रस्तुत पुस्तक के अवलोकन से पाठक महोदय को इस की जानकारी समुचित रूप से प्राप्त होगी।

श्रीमान् धर्मदासजी महाराज के निम्नलिखित सुशिष्य संतों ने विहार कर मारवाड़, मेवाड़, मालवा, काठियावाड़, गुजरात, पंजाब, दक्षिण आदि क्षेत्रों में फैल गए। विद्वान् मुनियों के नेतृत्व में इनके ९९ शिष्य २२ समुदायों में विभाजित होकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में धर्मप्रचारार्थ विचरण करने लगे। ये बावीस समूह 'बावीस टोला' या 'बावीस समुदाय' के नाम से प्रख्यात हुए हैं*। इस समय पूज्य श्री लवजीऋषिजी महाराज एवं पूज्य श्री कहानजीऋषिजी महाराज की ऋषि सम्प्रदाय तथा पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज की दरियापुरी सम्प्रदाय आदि जो सम्प्रदायें विद्यमान थी, उनके मुनि भी सब की एकता को दृष्टिगत रखते हुए अपने आपको बावीस टोला के साधु ही कहलाते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के सन्तों में आज के युग में परिलक्षित होने वाली कट्टर "बाड़ाबंदी" की भावना नहीं थी। उनका प्रमुख लक्ष्य था—आत्मसाधना एवं धर्मप्रचार।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज एवं उनकी शिष्य परम्परा सम्बन्धी क्रमबद्ध इतिहास का अभाव मुनियों एवं श्रावकों को खटकता था, और अब भी खटकता है। प्रवर्तक कविवर्य श्रीमान् सूर्यमुनिजी महाराज के सुयोग्य शिष्य श्री उमेशमुनिजी 'अणु' ने काफी परिश्रम करके " श्री धर्मदासजी महाराज और उनकी मालव शिष्य परम्पराएं " नामक इतिहास ग्रन्थ लिख कर उस अभाव की अंशत पूर्ति की है।

प्रस्तुत पुस्तक दो भागो मे विभाजित की गई है—(१) मूल भाग और (२) परिशिष्ट भाग। मूल भाग मे ९ अध्याय तथा परिशिष्ट भाग मे ९ खण्ड है। परिशिष्ट भाग वस्तुत मूलभाग का अनुपूरक है।

प्रथम अध्याय मे भोगयुग की समाप्ति और कर्मयुग के प्रारम्भ मे समुद्भूत प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से प्रारम्भ कर अन्तिम

---

* सन १९२४ के चातुर्मास काल मे जब मैं जालोर, सादडी, बगडी, ब्यावर तथा जयपुर तरफ गया था, तब मुझे विदित हुआ था कि गोडवाड क्षेत्र मे लोग मूर्तिपूजको एव स्थानकवासियो को क्रमश "तपा" और "लु का" के नाम से सम्बोधित करते हैं, इसी प्रकार कही कही स्थानकवासियो को "ढू ढिया" तथा "साधुमार्गी ' भी कहा जाता था।

तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी एव उनके पट्टधर युग-प्रधान आचार्यों तक के काल का सक्षिप्त पर्यालोचन करते हुए उन आचार्यों के समय की तथा उनके पश्चात् पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के पहले तक की धार्मिक परम्पराओ की स्थिति एव व्यवस्था का विवरण सक्षेप मे दिया गया है। तत्पश्चात् दूसरे से सातवे अध्याय तक पूज्य श्री धर्मदासजी म की जीवन गाथा से प्रारम्भ करके, उनकी शिष्य-मण्डलियो की परम्पराओ का वर्णन करते हुए उनकी मालव परम्परा के आचार्यों, मुनियो एव साध्वियो का परिचय दिया गया है, और आठवे अध्याय मे पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय द्वारा प्रभावित क्षेत्र, ग्राम तथा नगरो एव प्रमुख श्रावक-श्राविकाओ का सक्षिप्त विवरण है।

इन आठ अध्यायो के अवलोकन से प्रतीत होता है कि लेखक मुनिजी ने अपने साधु जीवन की मर्यादाओ का सुचारु रूप मे पालन करते हुए, जो भी सामग्री व जानकारी वे उपलब्ध कर सके, उसके आधार पर विवेचनात्मक रूप मे क्रमबद्ध एव वस्तुपरक (Objective) विवरण प्रस्तुत किया है। अच्छा होता, यदि पण्डित मुनिजी थोडा और प्रयास तथा परिश्रम करके एव आवश्यक अतिरिक्त सामग्री जुटा कर पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय से सम्बद्ध सभी शिष्य परम्पराओ का तथा पूज्य श्री के शिष्यो एव प्रशिष्यो द्वारा सस्थापित अन्य २१ सम्प्रदायो का और स्थानकवासियो की ऋषि सम्प्रदाय, दरियापुरी सम्प्रदाय आदि का भी कुछ और अधिक इतिवृत्त दे देते। ऐसा करने मे परिश्रम तो अधिक करना पडता तथा समय भी अधिक देना पडता, किन्तु उसका सत्परिणाम यह निकलता कि स्थानकवासी जैन परम्परा का सक्षिप्त इतिहास इस ग्रन्थ मे समाविष्ट हो जाता और इसकी उपादेयता एव उपयोगिता काफी बढ जाती। आशा है पुस्तक के अगले सस्करण मे यह सब विवरण देने के लिये विद्वान् मुनिजी अवश्य प्रयत्नशील होगे।

अतीत, वर्तमान और भविष्यत् ये तीनो काल एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से जुडे हुए है। वर्तमान अतीत पर और भविष्यत् वर्तमान पर आधारित है। विचक्षण मनुष्य तथा बुद्धि-सम्पन्न समाज अतीत से बोध तथा प्रेरणा तो प्राप्त करता ही है, किन्तु साथ ही साथ वह अतीत की भूलो और स्खलनाओ से यथोचित शिक्षा ग्रहण करके

अपने वर्तमान को सुचारु रूप से समीक्षित, परिमार्जित एव सगठित भी कर लेता है, जिससे सुन्दर एव सुखद भविष्य की सुदृढ आधारशिला निर्मित की जा सके।

पुस्तक के नवे अध्याय मे मुनिजी ने समाज, सघ एव समाज के अग्रणी महानुभावो तथा कर्णधारो का ध्यान भूत-वर्तमान-भविष्य की उन महत्त्वपूर्ण बातो की ओर आकर्षित किया है। यह पुस्तक यद्यपि पूज्य "श्री धर्मदासजी म और उनकी मालव शिष्य परम्पराओ" से सम्बन्धित है, तथापि इसका यह ९ वाँ अध्याय न केवल उस परम्परा के लिए और न केवल स्थानकवासी समाज के लिये, बल्कि सम्पूर्ण जैन समाज के कर्णधार मुनियो एव श्रावको द्वारा भी ध्यान-पूर्वक पठनीय एव मननीय है, इस अध्याय मे मुनिजी ने समाज की अवनति के आधारभूत कारणो का सूक्ष्म एव वास्तविक विश्लेषण किया है, तथा उत्थान के उपायो की ओर इगित किया है। विश्वास किया जाना चाहिये कि समाज के कर्णधार मुनिवृन्द एव श्रावक महानुभाव इस ओर ध्यान देंगे, तथा समाज के उत्थान के लिये इस अध्याय मे प्रदर्शित उपायो तथा अन्य रचनात्मक उपायो के कार्यान्वियन द्वारा सघ एव समाज की सेवा का पुण्यकार्य करते हुए यशस्वी बनेंगे।

इस अध्याय के अवलोकन से पाठको को यह प्रतीति हुए बिना नही रह सकती कि समाज के श्रमण वर्ग एव श्रावक वर्ग की मध्य-कालीन तथा वर्तमान-कालीन मनोदशा एव कार्यप्रणाली के परिणामस्वरूप जिनशासन एव जैन समाज की आज जो दयनीय स्थिति हो रही है, उससे लेखक मुनिजी मार्मिक पीडा का अनुभव करते है और जिनधर्म एव समाज के अग्रणियो से अपेक्षा रखते हैं कि वे इस ओर ध्यान देकर समाज की भावी पीढियो के हितसाधन के लिये अवश्यमेव प्रयत्नशील होवेंगे।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—परिशिष्ट भाग, मूलभाग का अनुपूरक है। इसमे मुनिजी ने अन्य आवश्यक ज्ञातव्य विषयो का विवरण दिया है। परिशिष्ट क्रमाक १—सक्षिप्त-पट्टावलि मे श्रीमान् पूज्य श्री **हुकमीचदजी महाराज** की एक शाखा के आचार्य पूज्य **श्री जवाहरलालजी**

महाराज के पट्टशिष्य पूज्यपाद श्रीमान् घासीलालजी महाराज का नाम छूट गया है। इन मुनिवर्य ने जैन आगमो की सस्कृत, हिन्दी तथा गुजराती भाषाओ मे विवेचनात्मक टीकाएँ लिख कर तथा उन्हे प्रकाशित करवा कर सघ-सेवा एव जिनवाणी-सेवा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव प्रशसनीय कार्य किया है। अभी लगभग दो वर्ष पूर्व अहमदाबाद (गुजरात) मे उनका स्वर्गवास हो गया है, जहा वे कुछ वर्षों से स्थिरवास रह कर आगमोद्धार के कार्य मे सलग्न थे। आशा है आगामी सस्करण मे इस कमी की पूर्ति कर ली जावेगी।

परिशिष्ट क्रमांक ९–'थेरावलि' प्राकृत भाषा मे रचित लेखक श्री उमेशमुनिजी 'अणु' की गाथारूप कृति है, जो भाषा तथा भाव दोनो दृष्टियो से पठनीय, मननीय एव अनुमोदनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक मे पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के सन्तो द्वारा प्रदत्त प्रेरणा से सघहित मे सस्थापित महत्त्वपूर्ण सस्थाओ का कुछ भी उल्लेख नही है। रतलाम तथा खाचरौद मे स्थापित श्री धर्मदास जैन मित्र मण्डलो, श्री पूज्य नन्द साहित्य समिति थादला एव श्री कृष्ण जैन महिला कला केन्द्र रतलाम आदि का सक्षिप्त विवरण पुस्तक के परिशिष्ट भाग मे दे दिया जाता, तो उत्तम होता।

यहाँ एक तथ्य का उल्लेख कर देना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के सन्त विक्रम संवत् २००९ मे सादड़ी (मारवाड़) मे अनेक सम्प्रदायो के विलीनीकरण द्वारा सस्थापित "वर्धमान श्रमण सघ' मे सम्मिलित हो गये हैं और अभी भी उसी मे सम्मिलित हैं तथा अपने आपको उक्त श्रमण सघ के वर्तमान आचार्य श्रीमान् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज के आज्ञानुयायी मानते है, किन्तु श्रमण सघ में से कुछ सम्प्रदायो एव कतिपय मुनिसमुदायो के अलग हो जाने से सघ का संगठन शिथिल सा हो गया है, जिससे सघ के हितेच्छु मुनियो तथा श्रावको का चिन्तित होना स्वाभाविक है। आशा की जानी चाहिये कि सघ के अग्रणी मुनिवर इस ओर ध्यान देंगे।

पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल एव सुबोध है। पाण्डित्यपूर्ण शब्दों और शब्दावलियो का प्रयोग लेखक मुनिजी ने नहीं किया है, इस हिन्दी

महाराज के पट्टशिष्य पूज्यपाद श्रीमान् घासीलालजी महाराज का नाम छूट गया है। इन मुनिवर्य ने जैन आगमो की सस्कृत, हिन्दी तथा गुजराती भाषाओ मे विवेचनात्मक टीकाएँ लिख कर तथा उन्हे प्रकाशित करवा कर सघ-सेवा एव जिनवाणी-सेवा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव प्रशसनीय कार्य किया है। अभी लगभग दो वर्ष पूर्व अहमदाबाद (गुजरात) मे उनका स्वर्गवास हो गया है, जहा वे कुछ वर्षो मे स्थिरवास रह कर आगमोद्धार के कार्य मे सलग्न थे। आशा है आगामी सस्करण मे इस कमी की पूर्ति कर ली जावेगी।

परिशिष्ट क्रमाक ९-'थेरावलि' प्राकृत भाषा मे रचित लेखक श्री उमेशमुनिजी 'अणु' की गाथारूप कृति है, जो भाषा तथा भाव दोनो दृष्टियो से पठनीय, मननीय एव अनुमोदनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक मे पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के सन्तो द्वारा प्रदत्त प्रेरणा से सघहित मे सस्थापित महत्त्वपूर्ण सस्थाओ का कुछ भी उल्लेख नही है। रतलाम तथा खाचरौद मे स्थापित श्री धर्मदास जैन मित्र मण्डलो, श्री पूज्य नन्द साहित्य समिति थांदला एव श्री कृष्ण जैन महिला कला केन्द्र रतलाम आदि का सक्षिप्त विवरण पुस्तक के परिशिष्ट भाग मे दे दिया जाता, तो उत्तम होता।

यहाँ एक तथ्य का उल्लेख कर देना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के सन्त विक्रम सवत् २००९ मे सादड़ी (मारवाड) मे अनेक सम्प्रदायो के विलीनीकरण द्वारा सस्थापित "वर्धमान श्रमण सघ" मे सम्मिलित हो गये हैं और अभी भी उसी मे सम्मिलित हैं तथा अपने आपको उक्त श्रमण सघ के वर्तमान आचार्य श्रीमान् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज के आज्ञानुयायी मानते है, किन्तु श्रमण सघ मे से कुछ सम्प्रदायो एव कतिपय मुनिसमुदायो के अलग हो जाने से सघ का सगठन शिथिल सा हो गया है, जिससे सघ के हितेच्छु मुनियो तथा श्रावको का चिन्तित होना स्वाभाविक है। आशा की जानी चाहिये कि सघ के अग्रणी मुनिवर इस ओर ध्यान देगे।

पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल एव सुबोध है। पाण्डित्यपूर्ण शब्दो और शब्दावलियो का प्रयोग लेखक मुनिजी ने नही किया है, अत हिन्दी

प्राक्कथन

अक्षयवट, बहुशाखी एव विशाल

कानन मे वृक्ष खडे है। उनमे विशाल, गहरा, हरा भरा, बहुत फलो वाला और सघन शीतल छायावाला वृक्ष कौनसा होगा ? जिसकी बहुत सी शाखाएँ होगी और जो बहुत पत्तो वाला होगा, वही न! बहुशाखी और बहुत पत्तो वाला वृक्ष कौन सा होगा ? जो वृक्ष स्वस्थ होगा, जिसे भरपूर पोषण मिलता होगा और जो पूर्णत सुरक्षित होगा। एक दीर्घ आयुष्क उच्च जातीय वटवृक्ष मे बहुतसी शाखाएँ और वडवाइयाँ होना स्वाभाविक है और उसकी शाखाओ का विस्तार ही उसे विशाल बनाता है। कुछ ऐसी ही बात है— मानव-वश के विषय मे और ऐसी ही बात है—धर्म के विषय मे। एक प्राचीन धर्म विशाल वृक्षके समान ही होता है। उसकी अनेक सम्प्रदाये और अनेक परम्पराएँ ही उसे विशालता प्रदान करती है। हा, उनमे परस्पर उलझाव नही होना चाहिये।

जैन धर्म एक ऐसा ही अक्षय वटवृक्ष है। जैन धर्म भारतवर्ष का अति प्राचीन एव विश्रुत धर्म है। इसमे कई विभिन्न परम्पराएँ है और कई सम्प्रदाये-उपसम्प्रदाये है। प्राचीन धर्म मे देश-कालानुसार विकृतिया आती ही है और उन विकृतियो के परिमार्जन के हेतु से या अन्य किसी कारण से नये सम्प्रदाय का जन्म होता है। इस प्रकार प्राचीन धर्म मे अनेक सम्प्रदायो और परम्पराओ का होना आश्चर्य की बात नही है। इसकी यह अनेकविधता अभिशाप नही, परन्तु आशीर्वाद भी हो सकती है।

सम्प्रदायो के प्रति अरुचि

आज जैन धर्मानुयायियो के ही विशेष वर्ग मे सम्प्रदायो के प्रति अरुचि पैदा हो रही है। यहा तक कि वे सम्प्रदायवाद से घृणा के नाम पर धर्म से ही विमुख होते जा रहे है। इसका कारण क्या है ? सम्प्रदायो के अनुयायी परस्पर कलह करते हैं, एक-दूसरे को गिराने का प्रयत्न करते है और अपना-अपना वर्चस्व वढाने के लिए मायाजाल रचते है। इस प्रकार ऐक्य के अभाव मे करणीय कार्य रह जाते है और धर्म की उन्नति

झगडे के बहाने मात्र हैं। यदि सम्प्रदाये न रहे और परम्पराएँ विलीन हो जायँ, तो मानव-समाज मे धर्म के लिए झगडे होगे ही नही क्या ? मनुष्य फिर लडने के लिये नये बहानो की तलाश तो नही करेगा ? वास्तव मे झगडो की उत्पत्ति का कारण तो कषाय है, और जब तक मानवमे काषायिक वृत्तियो की प्रबलता रहेगी, तब तक लडाई के बहाने खोजे जाते रहेगे। इनमे न तो दोष है, सम्प्रदायो का और न दोष है, परम्पराओ का। सम्प्रदाये और परम्पराएँ तो साधना के स्थायित्व के स्थूल साधन मात्र है। ये बुरी नही है। बुरा है इनका वाद, बुरा है इनका हठाग्रह, और बुरा है जबरन किसी पर इनका थोपना।

सम्प्रदायो का कार्य

सम्प्रदायो का कार्य है — विविध आराधना-पद्धतियो या परम्पराओ को सुरक्षा प्रदान करना और आराधको को उनके सत्त्वबल के अनुरूप सहयोग देकर उनके विकास की मञ्जिल को आगे बढाने के लिये मार्ग प्रशस्त करना। इस दृष्टि से देखे, तो सम्प्रदायो ने उपकार का कार्य किया है। यदि हम आज की मनोवृत्ति से तुलना करके देखेगे, तो हमे यह बात स्पष्ट रूप से समझ मे आ जायगी कि आज जिन्हे सम्प्रदाय-वादी या परम्परावादी कहा जाता है, अधिकाशत वे ही व्यक्ति धर्म-आराधना मे प्रवृत्ति करते है और धर्मशास्त्र-गत आराधना-पद्धति को सुरक्षित रख कर, धर्ममार्ग के प्रवाह को अक्षुण्ण बनाये हुए है, परन्तु तथाकथित असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति वाले तो प्राय धर्मसाधना की पद्धति का उच्छेदन करने मे ही सलग्न हो रहे है।

सम्प्रदाय या समुदाय ?

साधना-पद्धतियो की विभिन्नता के अनुसार तो जैन धर्म मे चार-पाँच सम्प्रदाय ही बनते है। अत जो स्थानकवासी सम्प्रदाय के विभिन्न विभागो को सम्प्रदाय कहा जाता है, वह ठीक नही है। वस्तुत कुछ समय के पूर्व तक उन विभागो को 'टोला' या 'समदा' सज्ञा से पुकारा जाता था, जिसका अर्थ होता है-'समूह'। बाद मे 'टोला' और 'समदा' शब्द का 'सम्प्रदाय' शब्द के रूप मे सज्ञान्तर हो गया। पर वास्तव मे 'समदा' शब्द 'समुदाय' शब्द का अपभ्र श रूप है। अत

स्थानकवासी जैन परम्परा मे 'सम्प्रदाय' शब्द अपने वास्तविक अर्थ मे प्रयुक्त नही है। स्थानकवासी सम्प्रदाये विभिन्न साधुओ से सम्बन्धित समूह मात्र ही है।

कितने गच्छ हुए, कितने रहे?—

भगवान् महावीर देव की विद्यमानता मे ही उनके आठ गण एक ही गणधर (आर्य सुधर्मस्वामी) के नेतृत्व मे आ चुके थे और भगवान् के निर्वाण के बाद भगवान् गौतम गणधर का गण भी उनके नेतृत्व मे आ गया। इस प्रकार भगवान् महावीर देव के निर्वाण के बाद बहुत वर्षो तक सघ एक ही युगप्रधान के शासन मे साधना के पथ पर चलता रहा। पर बाद मे गणो और गच्छो का उदय होता रहा। कितने गण और गच्छ हुए? आज न तो वे प्राचीन गण ही विद्यमान है और न समस्त गच्छ ही। गण और गच्छ साधुओ के ही होते थे। अत जब तक तत्तद् गण या गच्छ के साधु विद्यमान रहते, तब तक उस गण या गच्छ का अस्तित्व रहता और साधुओ का अभाव होते ही वह विच्छिन्न हो जाता। (आज भी प्राय ऐसी ही स्थिति है।) सम्प्रति कई गणो या गच्छो के नाम भी नही रहे है, परन्तु किसी काल मे उन गणो-गच्छो के साधुओ ने धर्म के गौरव की वृद्धि की थी। अब न तो उनके उपकार स्मृति मे रहे और न वे ही।

स्थानकवासी जैन समुदायो-सम्प्रदायो मे से भी कई सम्प्रदाय समाप्त हो गये है। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के ही बाईस समुदाय थे। उनमे से कुछ समुदायो की ही शिष्य-परम्पराएँ आज विद्यमान है और शेष समुदाय विच्छिन्न होते गये–हो गये। इन समुदायो की भी कई धाराएँ-उपधाराएँ हुई, जिनमे से कई विद्यमान हैं और कई विलुप्त हो गई।

श्रीमद् धर्मदासजी महाराज

श्रीमद् धर्मदासजी महाराज एक ऐतिहासिक महापुरुष हो गये है। उनके युग मे उनका व्यक्तित्व बहुत ही गौरवशाली रहा। उनकी ख्याति भी दूर-दूर प्रदेशो मे व्याप्त हुई, परन्तु ऐसे प्रसिद्ध महापुरुष की जीवन-गाथा भी बराबर सुरक्षित न रह सकी। उनके जीवन के दो-चार

घटना-प्रसग ही अनुश्रुति के रूप मे उपलब्ध होते हैं। उनके माता-पिता के नाम, जन्म-सवत्, देह-विलय-सवत् आदि विषयो मे विभिन्न मत हो गये हैं। उन मतभेदो मे से सही बात का निर्णय करना दुष्कर है।

उनके परिवार के विषय मे भी विशेष जानकारी प्राप्त नही है। उनके कितने भाई बहन थे और परिवार कितना विशाल था ? क्या ऐसे महान् पुरुष से इनके परिवार वाले कोई भी प्रभावित नही हुए होगे ? यदि प्रभावित हुए, तो दीक्षित या उनके उपासक हुए या नही ? यदि प्रभावित नही हुए, तो क्यो नही हुए ? आप श्री ने गुजरात मे कितने समय तक विचरण किया और गुजरात से निकलने के बाद पुन गुजरात मे पधारे या नही ? उनका विहार क्षेत्र कितना विस्तृत था ? उनकी साधना-चर्या कैसी थी ?-आदि बातो का कही उल्लेख प्राप्त नही होता है। जब स्वय उनकी जीवन गाथा हो विशृखल है, तब उनकी कल्याण-कारिणी जन-प्रवृत्ति, उनके साधु-समुदायो की और उनकी साधु-परम्पराओ की व्यवस्थित जानकारी, उनकी अनुयायिनी साध्वियो का परिचय, उनके उपासक-उपासिकाओ और उनकी साधना आदि तथा सघ-हित मे की गई प्रवृत्तियो के उल्लेखो की आशा करना तो एक दुराशा मात्र ही है।

हाँ ! आपके विषय मे जो भी अनुश्रुतियाँ या उल्लेख प्राप्त हुए, उन्हे यथाशक्ति परखने और इस ग्रन्थ मे व्यवस्थित रूपसे सजाने का प्रयत्न किया गया है। आपके द्वारा दीक्षित साध्वियो मे 'डायाजी' का नाम देख कर, मनमे ऐसी कल्पना का उदय हुआ कि कही वे आपकी माता 'डाही बाई' तो न थी ? इस प्रकार एक पुराने पन्ने की प्रतिलिपि से ऐसा भास हुआ कि आपके कोई भ्राता भी आपके साथ दीक्षित हुए हो। पर इन बातो के लिये कोई प्रमाण नही मिल सका। इस विषय मे विशेष खोज की आवश्यकता है।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की शिष्य-परम्पराएँ

श्रीमद् के ९९ शिष्य और उनके बाईस समुदाय होने के कारण उनकी शिष्य-परम्पराएँ बहुत विशाल रही होगी। उन समस्त परम्पराओ

का परिचय प्राप्त करना असम्भव-सा है। विद्यमान परम्पराओं ने भी अपना-अपना इतिहास पूर्णत सुरक्षित रखा हो, ऐसा नहीं लगता। फिर अज्ञान, असावधानी और असुरक्षा के कारण ऐतिहासिक साधन विनष्ट हो गये है और होते जा रहे है।

इस ग्रन्थ मे पूज्य श्री की विद्यमान परम्पराओ का उल्लेख अवश्य हुआ है। समस्त परम्पराओ का परिचय इस ग्रन्थ की विषय-परिधि मे नही आता है, परन्तु विषय की शृंखला को जोड रखने के लिये उनके विषय मे थोडा-बहुत विचार किया गया है।

मालवा की शिष्य-परम्पराएँ, अन्य प्रदेश की शिष्य-परम्पराओ की अपेक्षा अधिक रही है। मेरी समझ मे बाईस समुदाय मे से अधिकाश समुदायो की विहार-भूमि मालवा ही रहा है और कई समुदाय इसी भूमि की गोद मे विलीन हो गये, जिनके अस्तित्व के चिह्न भी मिलना कठिन है तथा कुछ परम्पराएँ तो निकट के अतीत मे ही विच्छिन्न हुई प्रतीत होती है। उनका परिचय पाना तो कठिन है ही, परन्तु विद्यमान परम्पराओ के परिचय की भी यही स्थिति है। मालवा की प्रतापगढ शाखा और सीतामहू शाखा का परिचय नहिवत् ही प्राप्त हो सका है। उज्जैन शाखा के विषय मे भी यही बात है। रतलाम शाखा के सन्त भी अपने इतिहास से बहुत समय तक अनभिज्ञ ही रहे, यहाँ तक कि इन्होने अपनी शाखा का उद्भव-स्रोत भी अन्य शाखाओ मे मान लिया था, परन्तु पुरानी पट्टावलियो, ग्रन्थो की प्रशस्तियो आदि को देखने से इस त्रुटि का परिमार्जन हुआ। मालवा की अन्य शाखाओ की जानकारी के विषय मे विशेष साधन उपलब्ध न हो सके, क्योकि तत्तत् शाखाओ के ग्रन्थ-भण्डार अस्त-व्यस्त हो चुके है। जब उन प्रदेशो मे विहार हुआ था, तब इस विषय मे जानने की चेष्टा ही न हो सकी। रतलाम शाखा के विषय मे विशेष जानकारी खाचरोद, बदनावर, रतलाम, थाँदला आदि स्थानो से प्राप्त ग्रन्थो की प्रशस्तियो आदि से हुई, जिनका इस ग्रन्थ मे यथा स्थान उपयोग किया गया है।

साध्वियो का परिवार

यद्यपि भगवान् महावीर देव ने अपने तीर्थ मे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका चारो को समुचित स्थान दिया है और समस्त तीर्थङ्करो

के चतुर्विध सघ की सख्या आदि का उल्लेख भी शास्त्रो मे हुआ है, तथापि यह पद्धति पीछे के काल मे चालू न रह सकी। यद्यपि श्रमण चतुर्विध सघ मे प्रधान है, तथापि वे अपनी ही परम्पराओ के इतिहास को भी काल के मुख से न बचा सके, तो अन्य तीन सघो की परम्परा की तो बात ही क्या करना ? पूज्य श्री की साध्वियो के विषय मे ऐसी ही बात है। उनकी साध्वी-परम्परा के कुछ नाम मात्र प्राप्त हुए है। साध्वियो ने भी इस ओर कुछ ध्यान नही दिया।

पूज्य श्री की विद्यमान-परम्पराओं मे मतभेद

पूज्य श्री की विद्यमान शिष्य-परम्पराओ मे दो सबसे बडे मतभेद है—(१) सवत्सरी-विषयक और (२) श्रावको के प्रतिक्रमण विषयक। गौण रूप से चातुर्मासिक और सावत्सरिक दो प्रतिक्रमण और पाक्षिक, चातुर्मासिक तथा सावत्सरिक कायोत्सर्ग मे चतुर्विशति-स्तव के पाठो की सख्या के विषय मे भी मतभेद है। ये मतभेद क्यो हुए ? कब हुए ? कहाँ हुए ? किसने किये ? आदि यह सब विचारणीय है।*

ग्रन्थ-लेखन की कहानी

स २०२६ का वर्षावास गुरुदेव सैलाना मे व्यतीत कर रहे थे और श्री मालव केसरीजी म घाटकोपर मे। उस समय घाटकोपर मे 'जीवन और विचार' (मालव केसरीजी म. का जीवन चरित) नामक ग्रन्थ का लेखनकार्य चल रहा था। उसमे पूज्य श्री धर्मदासजी म की सम्प्रदाय के सन्तो का सक्षिप्त परिचय देने के लिये गुरुदेव के पास सूचना आई। गुरुदेव ने इस विषय मे मुझे कुछ सामग्री देकर लिखने का कहा। पर गुरुदेव अस्वस्थ हो गये। अत लेखन-कार्य न हो सका। फिर समय पा कर लिखना प्रारम्भ किया, तो बम्बई से समाचार मिले कि-'जीवन और विचार' पुस्तक लिखी जा चुकी है और उसका मुद्रणकार्य भी समाप्ति पर है। अत उस निबन्ध को वहा भेजने की बात तो रही ही नही। पर गुरुदेव ने कहा, कि-'इतना लिखा है तो इसे पूरा ही लिख डालो।' वह

*सवत्सरी पर्व-आराधना की श्रावण-भादवा अधिकमास-विषयक मालवीय परम्परा, पूज्य श्री धर्मदासजी म के शिष्य पूज्य श्री रामचन्द्रजी म. के समय तक की पुरानी है-ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

निबन्ध (पाठशालीय नोध पुस्तिका के) लगभग ५० पृष्ठो मे समाप्त हुआ। कई सज्जनो ने उस निबन्ध को देखा। रतलाम बदनावर आदि ग्रामो के प्रमुख श्रावको की यह इच्छा हुई कि इस निबन्ध को पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित करवा देना चाहिये। तब गुरुदेव ने इच्छा व्यक्त की कि 'इसमे कुछ अधिक विस्तार की आवश्यकता है और प्राप्त ऐतिहासिक साधनो का इसमे उपयोग करना जरूरी है।' श्रावको ने इस बातको सहर्ष बधाया। गुरुदेव की सतत प्रेरणा के कारण स २०२८ के रतलाम-वर्षावास के बाद उस निबन्ध के पुनर्लेखन मे प्रवृत्त होना पडा, जिसके फलस्वरूप इस ग्रन्थ ने जन्म पाया।

'श्रीमद् धर्मदासजी महाराज और उनकी मालव शिष्य-परम्पराएँ' नामक इस ग्रन्थ का लेखन कार्य स २०२९ के थाँदला-वर्षावास मे पूर्ण हुआ।

श्री मालवकेसरीजी म स २०२९ का इन्दौर का चातुर्मास पूर्ण करके रतलाम से खवासा पधारे। तब वहाँ उनके दर्शन के बाद गुरुदेव ने यह ग्रन्थ उन्हे अवलोकन के लिये दिया। वे बहुत प्रसन्न हुए और इसे जल्दी ही प्रकाशित कराने की इच्छा व्यक्त की। आप श्री ने इसके प्रकाशन की व्यवस्था करनी भी तत्काल प्रारम्भ कर दी। मैं थाँदला मे सवत्सरी के दिन 'पट्टावली' सुनाने के बाद इस ग्रन्थ को 'धर्मदास जैन मित्र मण्डल, रतलाम' को सौपने की भावना व्यक्त कर चुका था। अत यह ग्रन्थ मण्डल के माध्यम से मुद्रण-हेतु 'रूनवाल प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम' को दिया गया।

इस ग्रन्थ का विषय

इस ग्रन्थ का विषय एक महापुरुष, धर्माचार्य पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज और उनकी शिष्य-परम्पराओ से सम्बन्धित है। उनकी परम्पराओ मे से भी एक प्रदेश विशेष की परम्परा की ही विशेष चर्चा हुई है। उसका भी जैसा चाहिये वैसा सागोपाङ्ग वर्णन नही हो सका, क्योकि वैसा करने मे अधिक साधन, श्रम, समय, अन्वेषण, सहयोग आदि आवश्यक थे।

इस ग्रन्थ मे नव अध्याय और नव परिशिष्ट है। प्रथम और अन्तिम अध्याय को छोड कर शेष सात अध्यायो मे श्रीमद् धर्मदासजी म और उनकी शिष्य परम्पराओ का वर्णन है। पहले अध्याय मे विहगम दृष्टि से श्रीमद् धर्मदासजी म के पूर्व के जैन इतिहास का सक्षिप्त आलेखन किया गया है और अन्तिम अध्याय मे सम्प्रदायो के उत्थान-पतन के सम्बन्ध मे इतिहास के सन्दर्भ मे विचार किया गया है। परिशिष्टो मे सक्षिप्त पट्टावली आदि विषय दे दिये गये है। यहाँ सखेद उल्लेख करना पड रहा है कि श्रीमान् नानालालजी रुनवाल बी ए द्वारा कृत 'थेरावली' की सस्कृत छाया कही गुम हो जाने से इस ग्रन्थ मे नही दी जा सकी।

एक अभिलाषा

पूज्य श्री धर्मदासजी म की विद्यमान समस्त शिष्य-परम्पराओ का इतिहास भी महत्त्वपूर्ण है। इस लेखन कार्य मे ऐसी भावना होती रही कि कोई समर्थ लेखक महारथी इस विषय को हाथ मे ले, तो बहुत ही उत्तम रहे। अलग-अलग प्रदेश की परम्पराओ के विषय मे कुछ कार्य अवश्य हुए है। पर समस्त विद्यमान परम्पराओ के इतिहास के एक स्थान पर आलेखन के लिये भविष्य की प्रतीक्षा करना ही रही। कोई सदाशय महानुभाव इस कार्य को करे, यही अभिलाषा है।

आभार और धन्यवाद

श्री मालव केसरीजी म ही इस ग्रन्थ के लेखन मे निमित्त बने है और गुरुदेव ने ही इस ग्रन्थ की अधिकाश सामग्री प्रदान की है। आपके आशीर्वाद से ही यह कार्य पूर्ण हो सका है। मैं बडा कृतज्ञ हू, कि आपने मुझे आज्ञा प्रदान की, और प्रसन्न हू, कि जैसा मुझसे बन सका वैसा यत्किञ्चित् आज्ञा का पालन किया। मेरे बडे गुरुभ्राता श्रीमान् सुरेन्द्रमुनिजी म की सतत प्रेरणा और श्रीमान् रूपेन्द्रमुनिजी म का सहयोग चिरस्मरणीय रहेगा ही। उनका आभार मान कर उनके कृपा-प्रसाद को लघु बनाना नही चाहता। उन श्रावको को भी नही भुला सकता हू कि जिनसे उत्साहपूर्ण लेखन-प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

उन सव लेखको का भी मैं आभारी हू ही, कि जिनके ग्रन्थ, लेख आदि रचनाओ का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमे इस ग्रन्थ मे उपयोग किया गया है। श्रीमान् नानालालजी रूनवाल वी ए को धन्यवाद मात्र ही कैसे दूँ, कि जिन्होने अपना अमूल्य समय निकाल कर तथा भूमिका लिख कर ग्रन्थ को भूपित किया है। मुद्रक श्री मगनलालजी रूनवाल की भक्तिभावना और सौजन्य प्रशसनीय और अविस्मरणीय हैं, जिन्होंने मुद्रण के समय तक सशोधन, सक्षेपीकरण और परिवर्धन की छूट दी।

इस ग्रन्थ मे मेरा अपना क्या है ? मैं तो अक्षर-सयोजना मे निमित्त मात्र वना हू।

एक बात और

भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी का वर्प चल रहा है। सघ-ऐक्य की आवाज गूँज रही है। ऐसे समय मे एक सम्प्रदाय की एक उपशाखा के इतिहास को लेकर उपस्थित होना एक विसगति की वात हो सकती है और किसी दृष्टि से पिछडे युग की वात हो सकती है। पर हमे इस विषय मे भावुकता के कारण मानव-मन की गुह्य वृत्तियो को भुला कर सोचना उचित नही है। जैसे अति सम्प्रदायवादी मनोवृत्ति हेय है, वैसे ही सम्प्रदायो के उचित स्थान को छीन लेना भी मानव-विकास मे बाधक है। कमरो के समूह से घर, घरो के समूह से मोहल्ला और मोहल्लो के समूह से नगर बनता है। नगर को स्वच्छ और व्यवस्थित रखने के लिए मोहल्लो को स्वच्छ तथा व्यवस्थित वनाना पडता है और वैसे ही मोहल्लो और घरो की सुव्यवस्था के लिए क्रमश घरो और कमरो को सुव्यवस्थित बनाना पडता है। ऐसा ही कुछ सघ नगर की व्यवस्था के लिए भी करना उचित है। बस, विद्वज्जन कुछ ऐसी ही दृष्टि से इस कार्य को देखे।

अन्तिम बात

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे मेरी इच्छा के प्रतिकूल भी कार्य हुए हैं। मैं फोटो तथा अपना परिचय आदि देने के पक्ष मे नही हूँ।

इस विषय मे यदि किसी सज्जन के पास कोई ऐतिहासिक सामग्री हो और यदि वे सूचित करेंगे तथा सामग्री प्रदान करेंगे, तो अगले सस्करण मे उसका समुचित उपयोग हो सकेगा।

अन्तमे यह सत्कामना करता हूँ कि अतीत के महापुरुषो की गौरव-मडित जीवनगाथाओ को पढ कर मुमुक्षुजन गौरव-शिखर पर आरूढ हो।

—उमेशमुनि 'अणु'

श्री धर्मदास जैन मित्रमण्डल
रतलाम (म प्र)
आश्विन कृ १० गुरुवार स २०३१ वि.

श्री उमेशमुनि 'अणु' का परिचय

पुस्तक के लेखक श्री उमेशमुनिजी ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त अपना कुछ भी परिचय पुस्तक मे नही दिया है। अतएव यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उनके विषय मे सक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की जावे।

वर्तमान मध्य देश राज्य के झाबुआ जिले मे थादला नामक तहसील है। इस का प्रमुख नगर थादला है, जो पश्चिम रेल्वे की बडी लाइन पर उदयगढ स्टेशन से उत्तर की ओर ३ मील दूर है। यहा स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी तथा दिगम्बर-तीनो जैन आम्नायो के घर है, जिनमे स्थानकवासियो की सख्या अधिक है।

इसी थादला नगर मे ओसवाल वडे साथ जाति का छजलानी गोत्रीय घोडावत परिवार व्यावसायिक तथा धार्मिक क्षेत्र मे प्रसिद्धि-प्राप्त परिवार है। श्रीमान् सेठ दोलाजी घोडावत अपने समय के एक सुप्रतिष्ठित एव सुसम्पन्न श्रावक थे। उन्होने न केवल व्यापार व्यवसाय मे, वल्कि धर्म–प्रभावना के कार्यो मे भी अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी और *डूगर प्रान्त के अग्रगण्य व्यापारियो तथा श्रावको मे आपकी गणना होती थी। इन्ही सेठ दोलाजी घोडावत के एकमात्र सुपुत्र श्री रखबचन्दजी की धर्मपत्नी (लीमडी निवासी श्रीमान् जडावचन्दजी झामर की सुपुत्री) नानीवाई को कुक्षि से स १९८८ फाल्गुन शु ११ मगलवार को श्री उमेशमुनिजी का जन्म हुआ था। उसी दिन थादला मे आर्याजी श्रीकालीजी की दीक्षा हुई थी। इस पर से आपके दादाजी ने आपका नाम उच्छबलाल रख दिया था।

आपके वडे भाई श्री रमेशचन्द्रजी (पूर्व नाम-राजमलजी) ने व्यावसायिक एव तत्कालीन राजनैतिक क्षेत्र मे अच्छी ख्याति प्राप्त कर

---

*वर्तमान मध्यप्रदेश राज्य का झाबुआ जिला, धार जिले की सरदारपुर तहसील, राजस्थान का बाँसवाडा जिला विशेषत कुशलगढ तहसील और गुजरात राज्य के पचमहाल जिले के दाहोद, कतवारा, लीमडी, झालोद एव सजेली आदि नगर-ग्रामो का क्षेत्र साधारण बोलचाल मे डूंगर प्रान्त के नाम से प्रसिद्ध है।

ली थी, वे झाबुआ राज्य प्रजापरिपद् के मत्री थे। आपके दो छोटे भाई श्री चन्द्रकान्तजी तथा श्री कनकमलजी थादला तथा मेघनगर मे व्यवसाय-रत है। आपकी पाँच वहिने है।

आपके पिताजी श्री रखवचन्दजी वहुत ही शान्त स्वभाव एव धार्मिक प्रकृति वाले थे। वे कुशल व्यापारी तो थे ही, साथ ही धार्मिक तथा सामाजिक कार्यो मे भी अग्रगण्य भाग लेते थे।

उमेशजी की वचपन से ही कुछ उदासीन सी वृत्ति थी। स्वभाव भी शान्त तथा एकान्तप्रिय था। अपने सहाध्यायियो तथा साथी खिलाडियो के साथ इनका शायद ही कभी झगडा होता था। मुनियो का सत्सग इनको अच्छा लगता था और इसी से इनकी उदासीन वृत्ति ने वैराग्य भावना का रूप ले लिया और उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

आपके पितामह सेठ दोलाजी ने आपकी सगाई भी थादला निवासी श्री केशरीमलजी भण्डारी (भणसाली) की ज्येष्ठ दौहित्री के साथ कर दी थी। किन्तु सभी सासारिक वन्धनो को तोड़ कर तथा अपने दादाजी, पिताजी तथा माता आदि की आज्ञा प्राप्त कर आपने वि. स २०११ चैत्र शु १३ गुरुवार तारीख १५ अप्रेल १९५४ के शुभ दिवस थादला मे ही वर्तमान प्रवर्तक कविवर श्री सूर्यमुनिजी म के शिष्य रूप मे दीक्षा ग्रहण कर ली।

आपके दीक्षा महोत्सव का दृश्य भी वडा हृदयग्राही था। थादला के पश्चिम मे पद्मावती नदी के किनारे आम्र कु ज मे पूज्यपाद श्री किशनलालजी म, मालव केसरी श्री सोभागमलजी म, श्री सूर्यमुनिजी म आदि सन्तो तथा विशाल जैन जैनेतर मानव समुदाय के समक्ष आप दीक्षित हुए। दीक्षा महोत्सव का व्यय-भार भी आपके दादाजी सेठ दोलाजी ने वहन किया था।

दीक्षित होने के पूर्व ही आपने हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओ का तथा धर्म शास्त्रो एव ग्रन्थो का अच्छा अभ्यास कर लिया था, सस्कृत मे आपने बनारस की प्रथमा एव कलकत्ता की काव्य-मध्यमा परीक्षाएँ तथा हिन्दी मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की साहित्य-रत्न

परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। मुनि धर्म ग्रहण करने के पश्चात् तो ज्ञानवृद्धि ही आपका प्रमुख लक्ष्य हो गया और कम उम्र मे अच्छा ज्ञानोपार्जन कर लिया। जन साधारण मे तथा विद्वानो मे आप आत्मार्थी मुनि के रूपमे विख्यात हैं।

ज्ञानवृद्धि मे आपको आपके गुरुवर्य श्री सूर्यमुनिजी महाराज का प्रसाद एव सहयोग तथा आपके गुरुभ्राता श्री सुरेन्द्रमुनिजी म व श्री रूपेन्द्रमुनिजी म का भी पूर्ण सहयोग मिलता रहा, तथा अभी भी मिलता रहता है।

आपको हिन्दी मे तो कविता करने की रुचि है ही, साथ ही प्राकृत मे भी आप काव्य रचना करते है। "थेरावली" आप ही की प्राकृत रचना है। आप व्यर्थ के प्रपचो से सदा दूर रहते है, और छोटे मुनियो, साध्वियो तथा श्रावक श्राविकाओ को भी शास्त्राध्ययन करवाते हैं।

हमारी मगल कामना है कि श्री उमेश मुनि, उपनाम "अणु" चिरकाल पर्यन्त आत्मोन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए जिन शासन और जैन धर्म की प्रभावना करते रहे।

अनन्त चतुर्दशी २०३१ — सघ-सेवक

रतलाम (म प्र.) — **नानालाल रूनवाल**

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	५	युगप्रधानतत्त्व	युगप्रधानत्व
२३	२	अर्या	आर्य
२४	४	पदलिप्ताचार्य	पादलिप्ताचार्य
२८	१२	हस्ती	सुहस्ती
२८	२६	निर्माण	निर्वाण
३४	७	शिथिचाकार	शिथिलाचार
५०	१३	वर्पो	वर्षों का
५१	१८	सक्ते है	सकता है
६९	१४	पट्टीवली	पट्टावली
८५	२ (नीचे से)	रामचन्द्रजी की ही परम्परा रामचन्द्रजी की ही परम्परा	रामचन्द्रजी की ही परम्परा
८९	२	स १७१५–१७१६	स १८१५–१८१६
८९	१४	स १७०२–१७०३	स १८०२–१८०३
९१	१०	प्रभावशील	प्रभावशाली
१०१	११	षष्ठम	षष्ठ
१०२	३	उद्ध्वं	ऊर्ध्व
११३	१४	सन्तो को	सन्तो की
११४	१०	यह भूल	अपनी पट्टावली मे यह भूल
११६	२०	कतनी	कितनी
१२२	१२	जौर	और
१३०	२०	उज्जवल	उज्ज्वल
१४१	२२	भवावत्तारी	भवावतारी
१४६	७	भाईयो	भाइयो
१४६	२३	पण्डिजी	पण्डितजी
१५१	२	सूबेदार	सूबा
१५३	३	वहाँ	इन्दौर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७१	१०	[illegible]	[illegible]
१७१	१६	अनियांति	अनियंत्रित
१७८	८	ओर	और
१७८	१६	ज्ञानादि	ज्ञानादि से
१७८	२८	[illegible]	[illegible]
१८८	२०	म १८५-	म १६५-[illegible]
१९१	३	[illegible]	[illegible]
१९३	२५	नीमचपुर	नीमचपुर
२०५	२८	गुरु	शिष्य
२१४	२	प्रशिष्यायें	प्रप्रशिष्याएँ
२२२	२२	प्रशिष्यावा	प्रशिष्याओ
२३६	४	माल्वा	माल्व-
२४६	६	सूरजमलजी	सूरजमलजी
३०१	१७	मामाजी	नामीजी
३०६	२७	उगाम	उगामको
३०९	२८	टीक	ठिक
३१४	६	इतिहासिक	ऐतिहासिक
३१८	८	सगठन	सगठन
३२२	२१	इसीमे	उतनी अधिक
३२३	६	कलपुजी	कलपुर्जा
३२५	१७	प्रतिबोधित	प्रतिबोधक
३२६	८	अन्तर्पीडा	अन्त पीडा
३२९	५	हास	ह्रास
३३७	२६	नके घुद्वारा	घुन के द्वारा
३४७	५	प्रमाणिक	प्रामाणिक
३४८	१२	जागृतिको	जागृति के लिये
३५०	२०	प्रत्येक	सभी
३५२	२०	उत्थान	पतन
३७३	१७	सूर्यगुनिजी म	सूर्यमुनिजी म
४४०	९	गुणागरो	गुणागारो

कहाँ क्या है ?

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

(१)

तीर्थङ्कर का काल

मानव समुदाय मे दो प्रकार के मनुष्य होते हैं, एक तो अन्य को प्रेरणा देने वाले और दूसरे प्रेरित होने वाले। प्रेरणा देने वाले भी प्राय पहले अन्य से प्रेरणा ग्रहण करते है और बाद मे प्रेरणा प्रदान करते हैं। प्रेरणा प्रदान करने वाले के व्यक्तित्वको पूर्णत समझने के लिए उनके प्रेरणा-स्रोत का जानना नितान्त आवश्यक हो जाता है, क्योकि उनके व्यक्तित्व के निर्माण मे उन प्रेरक कारणो का बहुत बडा हाथ रहता है और किसी परम्परा से सम्बद्ध उज्ज्वल व्यक्तित्ववाले और नेतृत्व शक्ति मे चुम्बकीय गुण वाले मानव के जीवन और उसके कार्य को समझने के लिये उसके पूर्व के इतिहास की जानकारी, उसके महिमाशाली व्यक्तित्व के अनेक पक्षो को उजागर करने के लिए आवश्यक हो, इसमे दो मत हो नही सकते है। श्रीमद् धर्मदासजी महाराज जैन-जगत् के एक प्रबल प्रेरक व्यक्ति हो गये हैं। अत उनके जीवन और उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप उनकी परम्पराओ के विषय मे जानने से पूर्व उनके पहले के इतिहास को जानना उचित है।

बाईस तीर्थकर :-

जैन दृष्टि से जैनधर्म अनादि है। अत उसके इतिहास का भी प्रारम्भ-काल नही है। अर्थात् कोई भी क्षण ऐसा न रहा कि-कही न कही जैनधर्म विद्यमान न रहा हो। परन्तु विभिन्न क्षेत्र और काल की अपेक्षा से जैनधर्म का प्रारम्भ स्वय जैन मनीषियो ने माना है। यह बात भिन्न है, कि वह काल गणना आज के इतिहास का परिधि से बाहर है।

इस भरत क्षेत्र मे काल चक्र उन्नति मे अवनति और अवनति मे उन्नति के क्रम से गति करता है। उन्नति मे अवनति के क्रम से गति करने वाले काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं और अवनति मे उन्नति के क्रम मे गति करने वाले काल को उत्सर्पिणी काल कहते हैं। सम्प्रति अवसर्पिणी काल चल रहा है। प्रत्येक काल के छह-छह विभाग होते है, जिन्हे आरे या आरक कहते हैं। इस अवसर्पिणी काल के प्रथम और द्वितीय आरे की सम्पूर्ण अवधि मे और तीसरे आरे की अधिकांश कालावधि मे यहा युगलिक या भोग भूमि का ही प्रवर्तन रहा। तृतीय आरे के अन्तिम समय मे प्रकृति मे विशेष परिवर्तन होने लगा। अभी तक प्रकृति का सौम्य और जीवो की आवश्यकताओ को सहज ही पूर्ण करने वाला स्वभाव था। पर अब इससे विपरीत स्थिति उत्पन्न होने लगी और वह सौम्य और सुन्दर प्रकृति अपना कठोर रूप भी दिखाने लगी। अब आवश्यकता की पूर्ति के साधन रूप 'कल्पवृक्ष' क्षीण होने लगे। प्रकृति का परिवर्तन मनुष्यो को भयभीत करने लगा। वे किंकर्तव्य-विमूढ हो गये। ऐसे समय मे विशिष्ट बुद्धिमान पुरुषो ने मानव-समूह को धैर्य देकर साहस बधाया और प्रकृति से प्राप्त साधनो को अपने अनुकूल बनाने की या प्रकृति के अनुकूल बनने की यत्किञ्चित् शिक्षा दी। उन्होंने मनुष्यो को विविध वर्गो मे व्यवस्थित किया। वे वर्ग कुल कहलाये। शास्त्रकारो ने उन नेतृत्व करने वाले व्यक्तियो को 'कुलकर' कहा है। विभिन्न मतो के अनुसार ७ या १४ या १५ कुलकर हुए हैं।

सातवे या चवदहवे कुलकर 'नाभि' या 'नाभिदेव' हुए है। उन नाभि कुलकर की पत्नी मरुदेवी के गर्भ से सर्व धर्मो मे विविध नामो से प्रसिद्ध भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ। उन्होंने उस युग के मनुष्यो को असि मषि और कृषि का व्यवहार, सौ प्रकार के शिल्पो की विद्या, गणित, लिपि व नाट्यादि अन्य कलाएँ सिखाकर सभ्य नागरिक बनाया। राज्यो की नीव डाली। समाज और शासन से सम्बन्धित विविध नियमोपनियम बनाये। इस प्रकार उन्होने कर्मयुग का प्रारम्भ किया और बाद मे गृह का त्याग कर तपश्चर्या की और कर्मो का क्षय करके केवल ज्ञान व केवल दर्शन पाया। फिर तीर्थ या धर्म की प्रवृत्ति की अर्थात् भगवान्

ऋषभदेव पन्द्रहवें कुलकर या प्रथम राजा, प्रथम भिक्षु और प्रथम तीर्थङ्कर थे। तीर्थङ्कर धर्म-शासन के शासक होते है और अधिपति ही नहीं, निर्माता होते है। अत. धर्म के इतिहास का प्रारम्भ भी उन्ही से होता है। कुलकरो आदिका वर्णन तो धर्म-विचार की भूमिका बताने के लिए होता है।

भ. ऋषभदेव के सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। उनके बड़े पुत्र भरतदेव ने एकछत्र चक्रवर्ती-शासन की स्थापना करके तथा अन्य पुत्रो और पुत्रियो ने दीक्षित बनकर, अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार भगवान् के द्वारा प्रदत्त लोकनीति, शिक्षाओ और धर्म-शिक्षाओ का प्रसार-प्रचार किया। भगवान् ऋषभदेव का निर्वाण तीसरे आरे के समाप्त होने से कुछ वर्ष पूर्व हुआ।

चौथे आरे के आधे भाग मे भगवान् ऋषभदेव का धर्मशासन प्रवर्तमान रहा और आधे भाग मे २३ तीर्थङ्कर और हुए। भगवान् नमिनाथ तक के इक्कीस तीर्थङ्कर को आज के ऐतिहासिक पौराणिक पुरुष मानते हैं और भगवान् नेमिनाथजी को अर्द्ध-ऐतिहासिक पुरुष। अर्थात् इन महापुरुषो तक इतिहास की पहुँच बराबर नही है या बाईसवें तीर्थङ्कर तक का काल, ऐतिहासिको की दृष्टि मे प्रागैतिहासिक (इतिहास के पूर्व का) काल है। क्योंकि उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले भौतिक चिन्ह प्राप्त नहीं हो सके है। और वस्तुत इतने सुदूर अतीत काल के चिन्ह प्राप्त होना सभव भी नही लगते हैं।

भ. पार्श्वनाथ.-

भ पार्श्वनाथ ऐतिहासिक काल की अवधि मे हुए है। इतिहासकारो ने उनके अस्तित्व को प्रामाणिक माना है। जैन दृष्टि से तो सभी तीर्थङ्करो का अस्तित्व प्रामाणिक है। परन्तु आज की ऐतिहासिक दृष्टि इससे भिन्न है। यो तो कई विद्वज्जन भ० अरिष्टनेमिनाथ के विषय मे ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और कई जन उन्हे दूर प्रदेश तक विख्यात और करुणा के अवतार, महामानव के रूप मे मानने के पक्ष मे है। परन्तु भ० पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता मे तो मतभेद है ही नही।

भ० अरिष्टनेमिनाथ के निर्वाण के तिरासी हजार छह सौ पचास वर्ष बाद भ० पार्श्वनाथ का वाराणसी नगरी के महाराज अश्वसेन की महारानी वामादेवी के गर्भ मे चैत्रकृष्ण चतुर्थी के दिन जन्म हुआ। भगवान् पार्श्व के शरीर की कान्ति नील कमल के समान थी। वे क्रमश युवावय मे प्रविष्ट हुए। उस समय कुशस्थलपुर के राजा पर कलिंग के यवन राजा ने चढाई की। तब वहा के राजा प्रसेनजित ने महाराज अश्वसेन से सहायता मागी। उस समय युवक पार्श्वकुमार अपने पिता से आज्ञा लेकर कुशस्थलपुर की ओर युद्ध के लिए रवाना हुए, वहा कुमार ने युक्ति से यवन राजा को बिना युद्ध किये ही वश मे कर लिया। यवन राजा उनका सम्मान करके, वहा से लौट गया। राजकुमार पार्श्व भी अपने राज्य मे लौट आये। बाद मे राजा प्रसेनजित ने अपनी कन्या प्रभावती का जो कि राजकुमार पार्श्व पर पहले से ही अनुरक्त थी, उनसे लग्न कर दिया। दिगम्बर परम्परा भ० पार्श्व के लग्न होना नही मानती। उन्होंने अज्ञान तप करने वाले एक तपस्वी को समझाने का प्रयत्न किया और धुनी मे दग्ध बनकर मरते हुए सांप को धर्म का शरण दिया। भ० पार्श्व ३० वर्ष की अवस्था तक गृहवास मे रहे, तीस वर्ष की वय मे गृह, राज-वैभव आदि त्यागकर दीक्षित हुए। भ० पार्श्वनाथ ८३ रात्रितक छद्मस्थ अवस्था मे ध्यान मे लीन रहे। इसी मध्य मे उन्हे कमठ तपस्वी के जीवने, जिसे कि बोध देने का उन्होने प्रयत्न किया था और जो मरकर मेघमाली देव हुआ था, वैर का स्मरण करके घोर उपसर्ग दिया। उस उपसर्ग का नाग के जीव ने, जो कि नागकुमार देवो का धरण नाम का इन्द्र हुआ था, निवारण किया। भगवान् समभाव मे लीन रहे। ८४ वे दिन भगवान् को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। वह दिन भी चैत्र कृष्ण चतुर्थी का था। भगवान् ने धर्मतीर्थ की प्रवृति की।

भ० पार्श्वनाथ के शुभदत्त, आर्यघोष, वाशिष्ठाचार्य, आर्यब्रह्म, आर्यसोम आदि आठ या अन्य मत से दस गणधर हुए। उन गणधरो के नेतृत्व मे हजारो साधु-साध्वियो ने भगवान् पार्श्वनाथ के उपदेशो को सुदूर देशो मे पहुँचाया।

भ. पार्श्वनाथ का संघ और उनके पट्टधरः-

भगवान पार्श्वनाथ के १६००० साधु ३८००० साध्वियां, १ लाख ६४ हजार श्रावक और ३ लाख २७ हजार श्राविकाओ का परिवार था। इस विशाल शिष्य परिवार ने भगवान पार्श्वनाथ के प्रभाव को तत्कालीन जन-समाज के हृदय पर अमिट रूप, से अकित कर दिया। आज भी उनके यश, सौरभ की महक व्याप्त है।

भगवान् पार्श्वनाथ के १०० वर्ष की आयु मे श्रावण शुक्ला अष्टमी को सम्मेत शिखर पर्वत पर एक मास के अनशन पूर्वक निर्वाण-लाभ करने के वाद. उनके प्रथम गणधर आर्य शुभदत्त ने कुशलता से सघ का भार वहन किया। आप भगवान पार्श्व के प्रथम पट्टधर थे। आपने सघ की वागडोर को चौबीस वर्ष तक अपने हाथ मे रखी। फिर अपने निर्वाण से पूर्व योग्य शिष्य आर्य हरिदत्त को युग-प्रधान पद प्रदान करके, द्वितीय पट्टधर निर्वाचित किया। आर्य हरिदत्त पूर्वावस्था मे चोरो के अधि-नायक थे। आर्यशुभदत्त के शिष्य वरदत्त मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर अपने समूह के पाच सौ चोरो को समझाकर, उनके साथ दीक्षित हो गये और इतनी योग्यता अर्जित की, कि भ० पार्श्वनाथ के सघ के द्वितीय युग प्रधान हो गये। आपने प्रखर वैदिक विद्वान लोहित्याचार्य को वाद मे जीतकर, उन्हे उनके एक हजार शिष्यो के साथ अपना शिष्य बना लिया। फिर आपकी आज्ञा के अनुसार लोहित्याचार्य ने दक्षिण के प्रदेशो मे भ० पार्श्वनाथ के उपदेशो का प्रचार किया। आर्य हरिदत्त का कार्यकाल पार्श्व निर्वाण सवत् २४ वें वर्ष से ९४ वे वर्ष तक रहा। तीसरे युग प्रधान हुए श्री समुद्राचार्य। आपके शासन मे विदेशी नाम के मुनि के उपदेश से प्रेरित होकर उज्जयिनी के राजा जयसेन, उनकी रानी अनङ्गसुन्दरी और उनके बालकुमार केशि ने दीक्षा अगीकार की। इन्ही केशिकुमार श्रमण ने यज्ञवादी मुकुन्दाचार्य को शास्त्रार्थ मे पराजित किया था। आर्य समुद्र का शासन काल पार्श्वनिर्वाण स ९४ से १६६ वर्ष तक रहा। आर्य केशिकुमार श्रमण को चतुर्थ युग प्रधान बनाकर निर्वाण को प्राप्त हुए। आर्य केशिकुमार श्रमण ने श्वेताम्बिका के राजा प्रदेशी को उसके नास्तिकवाद की

युक्तियो का निरसन कर के परम आस्तिक बनाया। इन आचार्य ने अपने समय के साधु सघ को दस भागो मे विभक्त किया। प्रत्येक समुदाय मे पाच सौ-पाच सौ साधु थे। नव समुद्रायो को विभिन्न सुदूर प्रदेशो मे भेजा और आप स्वय एक हजार साधुओ के साथ मगध आदि प्रदेशो में विचरते रहे। इनका शासनकाल पार्श्वनिर्वाण सवत् १६६ से २५० तक रहा अर्थात् ये ८४ वर्ष तक आचार्यपद पर स्थित रहे। पचम पट्टधर आर्य स्वयप्रभ हुए। इनके साधुओ मे कोई पिहिताश्रव नाम के मुनि थे। उनके एक बुद्धकीर्ति नाम का शिष्य था। जैन परम्परा, उससे बौद्धमत का प्रारम्भ मानती है और बुद्ध की पार्श्व-परम्परा मे रहने की यह बात, महात्मा बुध्द के द्वारा वर्णित अपनी पूवचर्या से प्रमाणित भी होती है। सम्प्रति उपकेश गच्छवाले अपने आपको भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी अर्थात् भगवान् महावीर के शासन मे सम्मिलित पार्श्वसघ के वशज मानते हैं।

भगवान् महावीर के शासन में.–

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अधिकाश सन्त अपने सशयका समाधान करके भगवान महावीर के शासन मे सम्मिलित हो गये। इस विषय मे सबसे बडा प्रयास हुआ, श्रावस्ती मे। वहा आर्य केशिकुमार श्रमण ने आर्य इन्द्र-भूतिजी गौतम से शकाओ का समाधान करके भगवान् महावीर देव का पच महाव्रत रूप सप्रतिक्रमण धर्म स्वीकार किया। इस समागम का चित्रण 'उत्तरज्झयणाइ सुत्त' के तेइसवे अध्ययन मे किया गया है।

इन केशिकुमार श्रमण और चतुर्थ पट्टधर केशिश्रमण के एकत्व के विषय मे मतभेद हैं, पूज्य श्री हस्तिमलजी महाराज इन दोनो को भिन्न मानते है। प्राचीन हस्तलिखित प्रश्नोत्तरो मे भी इस मत का समर्थन देखा है। सद्धर्ममण्डन' और अन्य ग्रन्थो मे भी इनको एक ही व्यक्ति मानने का मत मिलता है। यदि केशिकुमार श्रमण दो माने जाते हैं तो भगवान् महावीर के शासन मे सम्मिलित होने वाले केशिकुमार श्रमण को भ० पार्श्व के चतुर्थ या पचम पट्टधर आर्य स्वयप्रभ के शासन

के प्रमुख साधु मानना होगा। किन्तु 'उत्तरज्झयण' के वर्णन से वे गौतम गणधर के समान ही अपने गण के प्रमुख प्रतीत होते है। सूत्रकार महर्षि ने आर्यकेशि और गौतम गणधर दोनो के लिए प्राय समान विशेषणो का प्रयोग किया है और उन्हे चन्द्र तथा सूर्य की उपमा दी है। उन्हे भिन्न मानने मे प्रबल हेतु दो है- (१) ज्ञान-स्वामित्व-वैभिन्य और (२) काल का अन्तर। अर्थात् प्रथम हेतु है, कि चतुर्थ पट्टधर चार ज्ञान के धारक थे जबकि भ० महावीर के समकालीन आर्य केशि तीन ज्ञान के धारक थे। दूसरा हेतु है कि -प्रथम केशिकुमार श्रमण भ० महावीर के द्वारा तीर्थ की स्थापना के पूर्व ही निर्वाण को प्राप्त हो गये थे। परन्तु विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरी युक्ति भ्रान्ति से उत्पन्न हुई है। क्योकि चतुर्थ पट्टधर आर्य केशि का निर्वाण काल, भगवान् महावीर के निर्वाण-काल के आसपास ही आता है, अस्तु। इस विषय मे यहाँ लम्बी चर्चा का अवकाश नही है, चाहे केशिकुमार श्रमण दो रहे हो या एक, प्रस्तुत विषय से इस बात का इतना ही सम्बन्ध है, कि भ० पार्श्व के चतुर्थ या पचम पट्टधर के समय मे पार्श्व-परम्परा के अधिकाश श्रमण भ० महावीर को चरम तीर्थङ्कर के रूप मे पहचान कर उनके शासन मे सम्मिलित हो गये।

चरम तीर्थङ्कर भगवान् वर्धमान स्वामी:-

भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण से १७८ [1] वर्ष या २०८ वर्ष या २५० वर्ष पश्चात् क्षत्रियकुण्ड नगर के अधिपति सिद्धार्थ राजा की महारानी त्रिशलादेवी के उदर से, चैत्रशुक्ला त्रयोदशी को चरम तीर्थङ्कर वर्धमान स्वामी का जन्म हुआ। वर्धमान स्वामी के बडे भाई का नाम नदिवर्धन और बहिन का नाम सुदर्शना था। आपका वश इक्ष्वाकु

---

[1] जिन अन्तर की गिनती के तीन विकल्प दृष्टिगत होते है (१) निर्वाण से निर्वाण (२) एक तीर्थङ्कर के निर्वाण से दूसरे के छद्मस्थकाल और (३) निर्वाण से अन्य तीर्थङ्कर के जन्म काल तक। इन तीनो विकल्पो के अनुसार यहाँ पार्श्व-महावीर के अन्तराल के वर्षो का उल्लेख है। पहला विकल्प उचित प्रतीत होता है।

महावीर मार्गशीर्ष कृष्णा १० को दीक्षित हुए।

दीक्षा के बाद साढे बारह वर्षों तक घोर तपश्चरण किया। अनेक उपसर्गो पर विजय पाई। साधना के पूर्वकाल मे 'गोशालक' नामक मखपुत्र भगवान् का शिष्य बनकर, कुछ वर्षो तक उनके सग रहा। उसने साथ रहते हुए कुछ एकान्तिक मतों का निर्णय किया और फिर भगवान् से अलग होकर, पार्श्वनाथ भगवान् के कुछ साधुओ के सहयोग से, आजीवको मे तीर्थङ्कर रूप से प्रसिद्ध होकर, 'नियतिवाद' नामक दर्शन की स्थापना की। वह भगवान् महावीर का प्रतिस्पर्द्धी बना। घोर तपश्चरण के बाद वैशाख सुदी १० को, भगवान् महावीर देव को, जृभिका ग्राम के बाहर उज्जुवालिया (ऋजुपालिका) नदी के किनारे, जीर्ण उद्यान के पास, श्यामाक गाथापति के क्षेत्र मे, शालवृक्ष के नीचे गोदूहिका आसन से आतापना लेते हुए, निर्जल छट्ठ की तपस्या मे, दिन के पिछले पहर मे, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रकट हुआ। साढे बारह वर्ष के साधना काल मे भगवान् को एक मुहूर्तमात्र निद्रा आई। जिसमे भविष्य-जीवन के सूचक दस स्वप्न देखे। ऐसी अप्रमत्त साधना से प्रभुने प्रभुता पाई। उस स्थान मे प्रभु की पहली देशना हुई। जिसमे तीर्थ की प्रवृत्ति न हुई-यह आश्चर्यकल्प घटना हुई।

मध्यमा पावा मे भगवान् महावीर की दूसरी देशना हुई। उसमे इन्द्रभूतिजी आदि ग्यारह विद्वान्, उन के ४४०० छात्र और चन्दनबाला आदि स्त्रिया दीक्षित हुई। तीर्थ की प्रवृत्ति हुई। गणधरो ने द्वादशाङ्गियो की रचना की। नव द्वादशाङ्गियो की सङ्कलना हुई और उनकी वाचना के अनुसार नव गणो की स्थापना हुई। पिछले दो-दो गणधरो का एक-एक गण व्यवस्थित हुआ। सद्गृहस्थो ने भी व्रतादि ग्रहण करके, श्रमणोपासकता अङ्गीकार की।

श्रमण भगवान् महावीरदेव ने केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद ३० वर्ष से कुछ कम काल तक जीवो को धर्म मार्ग का बोध दिया। भभासार राजा श्रेणिक, उसका उत्तराधिकारी अजातशत्रु अशोकचन्द्र कूणिक नरेन्द्र, वत्सदेश का स्वामी उदायन, मल्ल-लिच्छवी-गण के राजन्य

उठी। देवो ने भगवान् के शरीर का अग्नि-संस्कार किया। गण-राजाओ ने तब निश्चय किया, कि 'अब भाव-उद्योत तो उठ गया है। हम द्रव्य-उद्योत करके, भाव-उद्योत की स्मृति कायम रखेंगे।' कहते है, कि उस समय से दीपावली-पर्व की प्रवृत्ति हुई।※

भगवान् महावीरदेव के १४ हजार साधु, ३६ हजार साध्वियाँ, १ लाख ५९ हजार श्रावक और ३ लाख १८ हजार श्राविकाओ का परिवार था।

※ दशहरा और दीपावली भगवान् महावीर के बाद के पर्व प्रतीत होते है। क्योंकि पहले 'शरद् उत्सव' और 'कौमुदी-उत्सव' क्रमश आश्विन और कार्तिक की पूर्णिमा को होते थे ऐसा अनुमान होता है, कि—राजपूत युग के 'दशहरे' और भगवान् महावीर निर्वाणोत्सव 'दीपावली' ने इन दोनो पर्वों की महिमा को निष्प्रभ (फीका) कर दिया।

(२)

भगवान् महावीर के पट्टधर

तीर्थङ्कर के अभाव मे उनके शासन की बागडोर गणधर सम्हालते हैं। जब वे शासन के अधिनायक बनते है, तब उन्हे 'युगप्रधान' सज्ञा से पुकारा जाता है। गणधर के पश्चात् उनके योग्य शिष्य को उत्तराधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर यह क्रम चलता रहता है। उन सघ नेता को आचार्य या युगप्रधान कहा जाता है।

जिस दिन भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ, उस दिन इन्द्र भूतिजी गौतम को प्रभु ने 'देवशर्मा' ब्राह्मण को प्रतिबोध देनेके लिए भेज दिया था। उस रात्रि मे गौतम गणधर प्रभु के पास नही लौट सके। जब उन्होने प्रभुके निर्वाण की बात सुनी, तब वे उदासीन हो गये। स्नेह विह्वलता के कारण मन मे आर्त्तभावना उत्पन्न हो गई। भक्ति के आवेश मे प्रभुको उपालम्भ देने लगे। फिर उन्होने भावधारा का वेग मोडा और उसी रात्रि के अन्तिम प्रहर मे अक्षय ज्ञान ज्योति प्राप्त करली।

भगवान् गौतम गणधर मगध देश के 'गोबर' गाव के निवासी थे। पिता 'वसुभूति' और माता 'पृथ्वी' थी। पिता का गोत्र गौतम था। आप वेदो के पारगामी थे। जीव के अस्तित्त्व के विषय मे शङ्का का समाधान पाकर, भगवान् के पास दीक्षित हुए थे। भगवान् के निर्वाण के पश्चात् गौतम गणधर के तत्काल सर्वज्ञ हो जाने के कारण, उन्हे आचार्य पद पर स्थित नही किया गया। क्योकि सर्वज्ञ तो भगवान् होते

४४ वर्ष तो कही ६४ वर्ष दिया गया है। [A] पर ६४ वर्ष चारित्र पर्यायकाल उचित प्रतीत होता है। क्योकि ४४ वर्ष दीक्षा पर्यायकाल मानने पर, आर्य जम्बू के सग दीक्षित होने मे विसगति पैदा होगी और आर्य जम्बू के सग दीक्षित होना (जैसी कि परम्परा है) मानेगे तो आपके 'युगप्रधानतत्व' मे ही विसगति पैदा होगी और ऐसी स्थिति मे आपको जम्बू स्वामी के सग दीक्षित आर्य प्रभव से भिन्न मानना होगा। ६४ वर्ष की चारित्र पर्याय मानने से इन विसगतियो का अवकाश ही नही रहता है।

जिस समय आपने सघ-व्यवस्था सम्हाली, उस समय आपकी काफी उम्र हो चुकी थी। फिर भी आपने सघ का कुशलता से सञ्चालन किया। ग्यारह वर्ष तक सघ का नेतृत्व किया। वीर निर्वाण स ७५ मे आप स्वर्गस्थ हुए।

चतुर्थ युगप्रधान आर्य सिज्जंभव'-

जब आर्य प्रभवस्वामी ने अपनी आयु की समाप्ति का काल समीप जाना तब उन्होने किसी योग्य साधु को उत्तराधिकारी नियुक्त करने का विचार किया। परन्तु अपने सघ मे इस योग्य कोई साधु न लगा, कि—सघ के भारको कुशलता से वहन कर सके। उन्होने गृहस्थो की ओर दृष्टि डाली। उन्हे ब्राह्मण सिज्जभव योग्य पात्र लगे। तब आर्य प्रभवस्वामी ने साधुओ को भेज कर उन्हे प्रतिबोध दिया और दीक्षित किया। आर्य सिज्जभव ने अट्ठाईस वर्ष की वय मे दीक्षा ली।

[A] पट्टावली समुच्चय प्र भाग मे—श्री तपगच्छ पट्टावली सूत्रम्, श्री पट्टावली सारोद्धार और गुरुपट्टावली मे तथा पट्टावली प्रबन्ध सग्रह विनयचन्द्र कृत पट्टावली प्राचीन पट्टावली और मरुधर-पट्टावली मे प्रभव स्वामी का आयुमान एक समान ही (८५ वर्ष) है। किन्तु प्रभुवीर पट्टावली (मणिलालजी म) मे आयुमान १०५ वर्ष है और पट्टावली समुच्चय प्र भाग मे 'दु पमकाल श्रमण सघ स्तोत्र' के 'प्रथमोदय युग प्रधान यन्त्रम्' मे सामान्य चारित्र पर्याय के ४४ और ६४ ये दो कालमान देकर, ८५ और १०५ वर्ष ये दो आयुमान दिये हैं।

४४ वर्ष तो कही ६४ वर्ष दिया गया है। [4] पर ६४ वर्ष चारित्र पर्यायकाल उचित प्रतीत होता है। क्योकि ४४ वर्ष दीक्षा पर्यायकाल मानने पर, आर्य जम्बू के सग दीक्षित होने मे विसगति पैदा होगी और आर्य जम्बू के सग दीक्षित होना (जैसी कि परम्परा है) मानेगे तो आपके 'युगप्रधानतत्व' मे ही विसगति पैदा होगी और ऐसी स्थिति मे आपको जम्बू स्वामी के सग दीक्षित आर्य प्रभव से भिन्न मानना होगा। ६४ वर्ष की चारित्र पर्याय मानने से इन विसगतियो का अवकाश ही नही रहता है।

जिस समय आपने सघ-व्यवस्था सम्हाली, उस समय आपकी काफी उम्र हो चुकी थी। फिर भी आपने सघ का कुशलता से सञ्चालन किया। ग्यारह् वर्ष तक सघ का नेतृत्व किया। वीर निर्वाण स ७५ मे आप स्वर्गस्थ हुए।

चतुर्थ युगप्रधान आर्य सिज्जंभवः-

जब आर्य प्रभवस्वामी ने अपनी आयु की समाप्ति का काल समीप जाना तब उन्होने किसी योग्य साधु को उत्तराधिकारी नियुक्त करने का विचार किया। परन्तु अपने सघ मे इस योग्य कोई साधु न लगा, कि-सघ के भारको कुशलता से वहन कर सके। उन्होने गृहस्थो की ओर दृष्टि डाली। उन्हे ब्राह्मण सिज्जभव योग्य पात्र लगे। तब आर्य प्रभवस्वामी ने साधुओ को भेज कर उन्हे प्रतिबोध दिया और दीक्षित किया। आर्य सिज्जभव ने अट्ठाईस वर्ष की वय मे दीक्षा ली।

---

[4] पट्टावली समुच्चय प्र भाग मे-श्री तपगच्छ पट्टावली सूत्रम्, श्री पट्टावली सारोद्धार और गुरुपट्टावली मे तथा पट्टावली प्रबन्ध सग्रह विनयचन्द्र कृत पट्टावली प्राचीन पट्टावली और मरुधर-पट्टावली में प्रभव स्वामी का आयुमान एक समान ही (८५ वर्ष) है। किन्तु प्रभुवीर पट्टावली (मणिलालजी म) मे आयुमान १०५ वर्ष है और पट्टावली समुच्चय प्र भाग मे 'दु षमकाल श्रमण सघ स्तोत्र' के 'प्रथमोदय युग प्रधान यन्त्रम्' मे सामान्य चारित्र पर्याय के ४४ और ६४ ये दो कालमान देकर, ८५ और १०५ वर्ष ये दो आयुमान दिये हैं।

ग्यारह वर्ष तक सामान्य दीक्षा-पर्याय मे रहे और तेईस वर्ष तक युग प्रधान पद पर स्थित रहे।

आपने अपने पुत्र मनकको लघुवय मे दीक्षा दी। उन्हे अल्पायु जानकर, उनके लिए 'दसवेयालिय-सुत्त' की रचना की। जो आज तक नवदीक्षितो के लिए पाठ्यग्रन्थ के रूप मे चल रहा है। आप यशोभद्र स्वामी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर, वीर निर्वाण स ९८ मे स्वर्गस्थ हुए।

पंचम युगप्रधान आर्य यशोभद्र स्वामी:-

यशोभद्र स्वामी बाईस वर्ष की आयु मे दीक्षित हुए। आपने चौदह वर्ष सामान्य मुनिपर्याय मे साधना की और पचास वर्ष तक सघ का कुशल नेतृत्व किया। आपकी वृद्धावस्था मे आर्य सभूति सघ का काम सम्हालते थे। आपके देहान्त के समय आर्य सभूति की भी आयु ८२ वर्ष की थी। अत आपने दो उत्तराधिकारी नियुक्त किये—(१) आर्य सभूति और (२) आर्य भद्रबाहु। अभी तक सौधर्म गण के एक ही आम्नाय होते थे। परन्तु अब दो युग प्रधानो की प्रथा प्रारम्भ हुई। तथा यह व्यवस्था हुई, कि—जब तक स्थविर युगप्रधान विद्यमान रहे, तब तक उनकी ही आज्ञा चलती रहे और उनके स्वर्ग-गमन के पश्चात् ही दूसरे युगप्रधान का शासन प्रारम्भ हो। इसी कारण लोकागच्छ और स्थानकवासी पट्टावलियो मे प्राय इन्हे भिन्न युगप्रधान ही माने है। अन्य पट्टावलियो मे युग प्रधान युगलका एक पट्ट ही माना है। आर्य यशोभद्र का वीर निर्वाण स १४८ मे स्वर्गवास हुआ।

षष्ठ युगप्रधान आर्य संभूति:-

आपने बयालीस वर्ष की अवस्था मे सयम स्वीकार किया। चालीस वर्ष तक सामान्य व्रत पर्याय मे रहे और आठ वर्ष तक युगप्रधान रहे। आपके समय मे मगध राज नन्द पाटलीपुत्र मे शासन करता था। उसका मत्री सकडाल था। वह जैन धर्मानुयायी था। उसका राजनीतिक कारणो से अपने लघुपुत्र श्रीयक के हाथ से वध होने पर, उसके बडे पुत्र

स्थूलिभद्र को वैराग्य हो गया और वीर निर्वाण स. १४६ मे वे आपके पास दीक्षित हो गये। आप वीर निर्वाण स. १५६ मे स्वर्गस्थ हो गये।

सप्तम युगप्रधान आर्य भद्रबाहु स्वामी:-

आर्य भद्रबाहु स्वामी पैतालीस वर्ष की वय मे दीक्षित हुए। आपकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। अल्प समय मे ही आपने चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। मात्र नव वर्ष की दीक्षा पर्याय मे ही आपको आचार्य पद प्राप्त हो गया। आप आठ वर्ष तक आर्य सभूति स्वामी को सघ कार्य मे सहयोग देते रहे। वीर नि स १५६ से आपका युग प्रधान काल प्रारम्भ हुआ। आप चौदह वर्ष तक शासन का भार वहन करते रहे। जैन परम्परा चन्द्रगुप्त मौर्य को आपका समकालीन मानती है [८]।

आर्य भद्रबाहु स्वामी के समय मे भयङ्कर दुष्काल पडा। उस समय दुष्काल के कारण साधुओ को बहुत कठिनाइयो का सामना करना पडा। स्वाध्याय नही कर पाने के कारण श्रुत विस्मृत होने लगा। मुनिसघने यह स्थिति देखकर, योग्य समय मे पाटलीपुत्र मे एकत्रित होकर, श्रुत को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। इस प्रथम वाचना मे मुनियो ने ग्यारह अगो को यथातथ्य व्यवस्थित कर लिया। किन्तु बारहवाँ अङ्ग दृष्टिवाद विस्मृत हो गया। श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी 'महाप्राण' नामक ध्यान की साधना नेपाल मे स्थित रहकर कर रहे थे। मुनिसघ द्वारा आग्रह होने पर, उन्होने वही रहकर, मर्यादित काल मे

---

[८] आधुनिक इतिहासकारो के मतानुसार ३२२ वर्ष ईसा-पूर्व अर्थात् वी नि स २१५ मे चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक हुआ था। इस मन्तव्य के अनुसार उसका भद्रबाहु स्वामी के साथ समकालीनत्व घटित नही होता है। क्योकि भद्रबाहु स्वामी का देहान्त वी नि. स १७० मे हो गया था। किन्तु कही-कही पर चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक का काल वी नि स १६२ या १५५ दिया गया है। इस कालमान के अनुसार भद्रबाहुस्वामी के साथ राजा चन्द्रगुप्त का आठ या पद्रह वर्ष तक समकालीनत्त्व घटित होता है। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के दीक्षित होने की बात तो इस काल से भी मेल नही खाती है।

दृष्टिवाद पढाना स्वीकार किया। पाचसौ मुनि उनसे बारहवा अङ्ग पढने के लिए गये। उनमे से एक स्थूलिभद्रजी ही स्थिर होकर १० पूर्व तक पढ सके। स्थूलिभद्रजी की चमत्कार दिखाने की यत्किञ्चित् प्रवृत्ति के कारण भद्रबाहु स्वामी ने उन्हे आगे पढाने से इंकार कर दिया। मुनिसघ के अत्याग्रह और स्थूलिभद्रजी के विनय से उन्होने आगे के चार पूर्व मूल मात्र, अन्यको नही पढाने की शर्त से पढाना स्वीकार किया।

आर्य भद्रबाहुस्वामी वी. नि स १७० मे स्वर्गस्थ हो गये। आप अन्तिम श्रुतकेवली (चौदह पूर्वधर) थे। आपके देहान्त के साथ ही ११ वे, १२ वे, १३ वे और १४ वे पूर्व का रहस्य विच्छिन्न हो गया। आपके बाद आर्य स्थूलिभद्र जी युगप्रधान हुए।

भिन्न गण का उदय –

आर्य भद्रबाहुस्वामी तक किसी भी प्रकार के मतभेद या गणभेद के उदय की स्थिति का उल्लेख प्राप्त नही होता है। अबतक निर्ग्रन्थ सघ के नाम से एक ही युगप्रधान के नेतृत्व मे आत्मसाधना का कार्य चलता रहा। किन्तु भद्रबाहु स्वामी के देहान्त के बाद निर्ग्रन्थसघ से भिन्ननामके गण का उदय हुआ। गोदास स्थविर से गोदासगण का प्रारम्भ हुआ, जिसकी चार शाखाएँ हुई। [6] यद्यपि इस गण के प्रारम्भ होने मे किसी मतभेद का या किसी कारण का उल्लेख नही है और न अलग से युगप्रधान की स्थापना का ही वर्णन प्राप्त होता है, फिर भी हम अनुमान से इस विचार तक पहुँच सकते है कि-स्पष्ट रूप से भले ही यह गणभेद न हुआ हो या प्रमुख सघ (निर्ग्रन्थगण) के युगप्रधान की भी अवहेलना न हुई हो, परन्तु अपने-अपने स्थविरो को प्रधानता देने की दृष्टि रहना असभव नही है। अत अस्पष्ट रूप से ही सही, यही से

---

[6] थेरेहिंतो गोदासेहिंतो...... .गोदास गणे नाम गणे निग्गए। तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जति, त जहा-तामलित्तिया, कोडीवरिसिया, पडुवद्धणिया, दासी खब्बडिया। –कल्पसूत्र, थेरावली।

प्राय गण या गच्छभेद का प्रारम्भ होता है। युगप्रधानो की विभिन्न नामावलिया भी इस अनुमान को प्रमाणित करती है।

भद्रबाहुस्वामी के बाद के युगप्रधान:-

वीर-निर्वाण स. १७० से १००० के वीच मे निम्नलिखित युग-प्रधान हुए-

८	आर्य स्थूलिभद्र स्वामी,	युग प्रधानकाल	वी. स १७० से २१५
९	आर्य महागिरि	,, ,,	वी. स २१५ से २४५
१०	आर्य सुहस्ती	,, ,,	,, ,, २४६ से २९१
११	,, सुस्थित	,, ,,	,, ,, २९१ से
१२	,, सुप्रतिवद्ध	,, ,,	,, ,,
१३	आर्य इन्द्रदिन्न		
१४	आर्य दिन्नसूरि		
१५	आर्य सिंहगिरि		
१६	श्री वज्र स्वामी		वी स. ५४८ से ५८४
१७	,, वज्रसेनसूरि		,, ,, ५८४ से ६२०
१८	,, चन्द्रसूरि		
१९	,, समन्तभद्र		
२०	,, वृद्धदेवसूरि		
२१	,, प्रद्योतनसूरि		
२२	,, मानदेवसूरि		
२३	,, मानतु गसूरि		
२४	,, वीर सूरि		
२५	श्री जयदेव सूरि		
२६.	,, देवानद सूरि		
२७	,, विक्रम सूरि		
२८	,, नरसिंह सूरि		
२९	,, समुद्र सूरि		
३०	,, मानदेव सूरि		

ये २७ युगप्रधान पद (आर्य सभूति और आर्यभद्र वाहु, आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती तथा आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिवद्ध इन तीन युगल पट्टधरो का युग प्रधानपद एक-एक ही माना है) और ३० पट्टधर हुए।

दृष्टिवाद पढाना स्वीकार किया। पाचसौ मुनि उनसे बारहवा अङ्ग पढने के लिए गये। उनमे से एक स्थूलिभद्रजी ही स्थिर होकर १० पूर्व तक पढ सके। स्थूलिभद्रजी की चमत्कार दिखाने की यत्किञ्चित् प्रवृत्ति के कारण भद्रबाहु स्वामी ने उन्हे आगे पढाने से इंकार कर दिया। मुनिसघ के अत्याग्रह और स्थूलिभद्रजी के विनय से उन्होने आगे के चार पूर्व मूल मात्र, अन्यको नही पढाने की शर्त से पढाना स्वीकार किया।

आर्य भद्रबाहुस्वामी वी नि स १७० मे स्वर्गस्थ हो गये। आप अन्तिम श्रुतकेवली (चौदह पूर्वधर) थे। आपके देहान्त के साथ ही ११ वे, १२ वे, १३ वे और १४ वे पूर्व का रहस्य विच्छिन्न हो गया। आपके वाद आर्य स्थूलिभद्र जी युगप्रधान हुए।

भिन्न गण का उदय'–

आर्य भद्रबाहुस्वामी तक किसी भी प्रकार के मतभेद या गणभेद के उदय की स्थिति का उल्लेख प्राप्त नही होता है। अबतक निर्ग्रन्थ सघ के नाम से एक ही युगप्रधान के नेतृत्त्व मे आत्मसाधना का कार्य चलता रहा। किन्तु भद्रबाहु स्वामी के देहान्त के बाद निर्ग्रन्थसघ से भिन्ननामके गण का उदय हुआ। गोदास स्थविर से गोदासगण का प्रारम्भ हुआ, जिसकी चार शाखाएँ हुई। [6] यद्यपि इस गण के प्रारम्भ होने मे किसी मतभेद का या किसी कारण का उल्लेख नही है और न अलग से युगप्रधान की स्थापना का ही वर्णन प्राप्त होता है, फिर भी हम अनुमान से इस विचार तक पहुँच सकते है कि-स्पष्ट रूप से भले ही यह गणभेद न हुआ हो या प्रमुख सघ (निर्ग्रन्थगण) के युगप्रधान की भी अवहेलना न हुई हो, परन्तु अपने-अपने स्थविरो को प्रधानता देने की दृष्टि रहना असभव नही है। अत अस्पष्ट रूप से ही सही, यही से

---

[6] थेरेहिंतो गोदासेहिंतो ... . गोदास गणे नाम गणे निग्गए। तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जति, त जहा-तामलित्तिया, कोडीवरिसिया, पडुवद्धणिया, दासी खब्बडिया। –कल्पसूत्र, थेरावली।

प्राय गण या गच्छभेद का प्रारम्भ होता है। युगप्रधानो की विभिन्न नामावलिया भी इस अनुमान को प्रमाणित करती है।

भद्रबाहुस्वामी के बाद के युगप्रधान:-

वीर-निर्वाण स. १७० से १००० के वीच मे निम्नलिखित युग-प्रधान हुए-

८	आर्य स्थूलिभद्र स्वामी, युग प्रधानकाल	वी स	१७० से २१५
९	आर्य महागिरि „ „	वी. स.	२१५ से २४५
१०	आर्य सुहस्ती „ „	„ „	२४६ से २९१
११	„ सुस्थित „ „	„ „	२९१ से
१२	„ सुप्रतिवद्ध „ „	„ „	
१३	आर्य इन्द्रदिन्न		
१४	आर्य दिन्नसूरि		
१५	आर्य सिंहगिरि		
१६	श्री वज्र स्वामी	वी स.	५४८ से ५८४
१७	„ वज्रसेनसूरि	„ „	५८४ से ६२०
१८	„ चन्द्रसूरि		
१९	„ समन्तभद्र		
२०	„ वृद्धदेवसूरि		
२१	„ प्रद्योतनसूरि		
२२	„ मानदेवसूरि		
२३	„ मानतु गसूरि		
२४	„ वीर सूरि		

२५. श्री जयदेव सूरि
२६. „ देवानद सूरि
२७ „ विक्रम सूरि
२८ „ नरसिंह सूरि
२९ „ समुद्र सूरि
३०. „ मानदेव सूरि

ये २७ युगप्रधान पद (आर्य सभूति और आर्यभद्र वाहु, आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती तथा आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिवद्ध इन तीन युगल पट्टधरो का युग प्रधानपद एक-एक ही माना है) और ३० पट्टधर हुए।

युगप्रधान–नामावली मे विभिन्न मतभेद दृष्टिगोचर होते है। तपागच्छ पट्टावली और पट्टावली सारोद्धार मे उपर्युक्त क्रम दिया गया है। लोकागच्छीय पट्टावली (पट्टावली-प्रबध-सग्रह) मे भगवान् महावीर से २७ पट्ट गिने है। अत. उसमे सुस्थित सूरि के बाद सुप्रतिबद्ध का नाम छोड दिया गया है। सतरहवे वज्रसेनाचार्य के बाद के पट्टधरो की नामावली इस प्रकार दी है—

१८ आर्य रोह स्वामी, १९ पुष्यगिरि, २० फलगुमित्र, २१ धरणगिरि (धरणीधर), २२ शिवभूति, २३ आर्यभद्र, २४ आर्य नक्षत्र, २५ आर्य रक्षित, २६ नागेन्द्र, २७ श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण।

प्रभुवीर पट्टावली' मे २७ पट्टधरो की आर्य सुहस्ती के बाद की नामावली इस प्रकार दी गई है—

११ सुप्रतिबद्ध स्वामी, १२ इन्द्रदिन्न, १३ आर्य दिन्न, १४ वयरस्वामी, १५ वज्रसेन, १६ भद्रगुप्त अन्यमते आर्यरोह, १७ वयर स्वामी अन्यमते फाल्गुणमित्र (फलगुमित्र), १८ आर्य रक्षित अन्यमते धरणीधर, १९ नदिलाचार्य अन्यमते शिवभूति, २० आर्य नागहस्ति अन्यमते आर्यभद्र, २१ रेवतीमित्र अन्यमते आर्य नक्षत्र, २२ सिंहाचार्य, २३ स्कदिलाचार्य अन्यमते नागाचार्य, २४ नागजिताचार्य अन्यमत से श्री हरिविष्णु आचार्य, २५ गोविंदाचार्य, २६ भूतदिन्नाचार्य अन्यमते स्कदिलाचार्य, अन्यमते दुषगणी, २७ देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण।

श्री देवेन्द्रमुनिजी म० ने 'पट्टावली-प्रबध-सग्रह' की प्रस्तावना मे माथुरी-वाचना और वालभी-वाचना के स्थविरक्रम और देवर्द्धिगणी की गुरु-परम्परा मे भिन्नता की तालिका दी है। दुषमकाल-श्रमण सघ स्तोत्र के प्रथमोदय, द्वितीयोदय युगप्रधान यत्र मे दिये गये युगप्रधानो के नामो मे भी उपर्युक्त नामो से भिन्नता है। अन्यत्र भी ऐसी भिन्नता खोजी जा सकती है। इस भिन्नता का कारण शाखा-भेद, क्षेत्र-दूरी, आद्य-उपकारी का वहुमान, परम्परा की प्रीति आदि है। इसके सिवाय क्रियोद्धारको ने, सम्भव है–अपने इतिहास की उपेक्षा की होगी। परन्तु

बाद मे उनके शिष्यो के सामने, विरोधियो की ओर से परम्परा से कटे होने का प्रश्न उपस्थित हुआ होगा। अत. उन्हे खोजने पर जो भी स्थविरावलियाँ प्राप्त हुई होगी, उन्हे ही अपनी परम्परा मानकर चले होगे। दूसरी बात क्रियोद्धारक भी एक परम्परासे ही नही निकले है, वे भी विभिन्न परम्पराओ से निकले हैं। अत यो भी युग प्रधान-नामावलियो मे भेद होना स्वाभाविक ही है।

पूर्वो का विच्छेद:-

जैन आगम-साहित्य मे पूर्व-साहित्य का वहुत अधिक महत्व रहा है। जैन विद्वानो की दृष्टि मे पूर्व-साहित्य समस्त वर्णित ज्ञान और विज्ञानो का कोश था। प्रत्येक तीर्थङ्करो के शासन-काल मे उनके गणधरो के द्वारा द्वादशाङ्गियो की रचना होती है। पूर्व-साहित्य वारहवे अङ्ग दृष्टिवाद का वहुत विशाल हिस्सा होता है। इन चौदह पूर्वो का ज्ञाता श्रुतकेवली=समस्त (=सम्यग्मिथ्या सभी) श्रुत का पारगामी माना जाता है। ज्ञान का यह विभाग पूर्व क्यो कहलाता है-इस विषय मे दो मत हैं। प्रथम मत तो यह है, कि-गणधर तीर्थङ्कर भगवान् से त्रिपदी लब्धि पाकर,सर्व प्रथम इसी विभाग की रचना करते है,अत वह श्रुत विभाग 'पूर्व' कहलाता है। दूसरा मत है, कि-इस विभाग मे अन्य तीर्थङ्करो के शासन का श्रुत गर्भित होता है, इसलिए इस विभाग को पूर्व कहते है। दूसरा मत अर्वाचीन है। प्रत्येक तीर्थङ्कर के निर्वाण के बाद कुछ काल तक ही 'पूर्व' साहित्य विद्यमान रहता है।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् सूत्रार्थ दृष्टि से भद्रबाहु स्वामी और सूत्र की दृष्टि से श्री स्थूलिभद्रस्वामी अन्तिम श्रुत केवली हुए। फिर दश पूर्वधरो की परम्परा चली। वज्रस्वामी अन्तिम दश पूर्वधर थे। वी नि स ५८४ मे उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार क्रमश पूर्वज्ञान का ह्रास होता गया। वी नि स १००० मे समस्त पूर्वज्ञान का विच्छेद हो गया।

सत्ताईस पट्टधर ही क्यों ?

समस्त स्थानकवासी परम्पराओ मे सत्ताईस पट्टधरो को ही

विशेष मान्य किया गया है। ऐसा क्यो है ? क्या सत्ताईस पट्टधरो को ही विशुद्ध-परम्परा मानना-उनकी मन कल्पना है ? नही। इसके पीछे उनके कुछ तर्क है, कि—(१) उस समय तक पूर्वश्रुत विद्यमान था। उनके मत से देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण अन्तिम पूर्वधर थे, उनका वी नि की दशवी शताब्दि मे देहान्त हुआ। अन्यमत से भी वी नि स १००० मे सत्यमित्रसूरि के देहान्त के बाद पूर्वज्ञान का विच्छेद हो गया और वहा तक २७ ही युग प्रधान पद होते है। (२) दूसरा, उस समय तक समाचारी मे विशेष भेद नही हुआ था। (३) तीसरा, केवल स्थानकवासियोने ही देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की परम्परा को विशुद्ध माना है–ऐसी बात नही है। अन्यो ने भी ऐसा माना है। आचार्य अभयदेव ने कहा है–[7]

'देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की परम्परा को मैं भाव-परम्परा मानता हूँ। इसके बाद की शिथिलाचार मे स्थित बहुत सी परम्पराओ को द्रव्य से परम्परा मानता हूँ।'

गच्छ के विभिन्न नामान्तरो का रहस्य:–

लोकागच्छ और स्थानकवासी परम्पराओ ने २७ पट्टधरो तक विशुद्धि का विशेष आग्रह रखा है। परन्तु निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय, तो आर्य सुहस्ती के समय से ही निर्ग्रन्थ-परम्परा मे कुछ मिश्रण-प्रारम्भ हो गया हो-ऐसा लगता है। इसके पूर्व गोदासगणका उदय हो ही चुका था। पूर्वश्रुत के विच्छेद के प्रारम्भ होते ही, परम्पराओ मे भिन्नता आने लग गई। गोदासगण अपने को आर्यभद्रबाहु स्वामी का उत्तराधिकारी मानता होगा और आर्य महागिरि-सुहस्ती आदि अपने को स्थूलिभद्र के। आर्य सुहस्ती के बाद आर्य महागिरि और सुहस्ती के उत्तराधिकारियो मे भेद पडा। आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबद्ध ने कोटिवार सूरि मन्त्र का जाप किया। अत निर्ग्रन्थ गच्छ का 'कोटिया'

---

[7] देवड्ढि-खमासमण जा, परपर भावओ वियाणेमि। सिढिलायारे ठविया, दव्वेण परपरा बहुहा। -आगम अ गा १४ –प्रबन्ध पट्टावली सग्रह-प्रस्तावना, पृ ३०

गच्छ नामान्तर हो गया। यह उल्लेख पट्टावलियो मे मिलता है। इससे यह अनुमान होता है, कि-आर्य सुहस्ती के उत्तराधिकारियो ने यह नामान्तर स्वीकार किया होगा परन्तु आर्य महागिरि के शिष्यो ने नही। आर्य महागिरि के शिष्यो को गुरु-परम्परा से प्राप्त विशिष्ट क्रिया का भी आग्रह रहा होगा। इस अनुमान की पुष्टि के लिए, 'उत्तर वलिस्सह' शाखा के प्रारम्भ होने को, उपस्थित किया जा सकता है। इसके वाद 'वयरी शाखा' 'वनवासी गच्छ' आदि नामान्तर परम्परा के नामान्तर मात्र ही नही है, परन्तु परम्परा-भेद के सूचक है।

अन्य ज्योतिर्धरों के संघ-हित के कार्यः-

सघ-सगठन में शैथिल्य होने के साथ-साथ सघ का विखराव होने लगा। इधर काल की मार पड़ रही थी। अन्य दर्शनियो के आघात-प्रत्याघात हो रहे थे। श्रावक-सघ भी व्यवस्थित नही रहे थे। एक पीढी जैन रहती थी तो दूसरी पीढी अजैन हो जाती थी। राज्य-अधिकारियो पर जैन श्रमणो का प्रभाव क्षीण होता जा रहा था। शासन-परिवर्तन, दुष्काल आदि कारणो से जैन-श्रमणो को पूर्व और उत्तर भारत से पश्चिम और दक्षिण भारत मे खिसकना पडा। ऐसे समय मे आचार्यो ने जैन जातियों ओसवाल, श्रीमाल आदि का निर्माण किया। पीढी दर पीढी जैन धर्म सुरक्षित रहे-इसके लिए विविध प्रयास किये। श्री रत्नप्रभसूरि से इस प्रकार का आन्दोलन चल गया। सघ-विखराव की विचित्र परिस्थितियो मे जैन जातिवाद का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ समय तक गच्छवाद और जातिवाद साथ-साथ चला। अमुक जाति का अमुक गच्छ या अमुक गच्छ के धर्म शासन मे अमुक जाति रहे इस प्रकार की स्थिति चलती रही। सघके विखराव के समय मे आचार्यों ने मत्र, तत्र, ज्योतिप आदि का अवलम्बन लेकर, धर्म-प्रभावना के कार्य करना प्रारम्भ किया, जिसका आगे चल कर साध्वाचार पर अनुचित प्रभाव पडा।

ऐसे विश्रृंखलता के काल मे भी कई प्रभावशाली आचार्य होते रहे। जिन्हो नेश्रुत-रक्षा, युग के योग्य श्रुत-निर्माण, सघ-व्यवस्था,

धर्म-रक्षा आदि के लिए बहुत श्रम किया। उनके श्रम का ही यह फल है, कि आज हमे वीतराग-मार्ग का यत्किंचित् प्रकाश प्राप्त हो रहा है। सिद्धसेन दिवाकर, उमास्वाति, जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण, हरिभद्रसूरि सिद्धर्षि, पादलिप्ताचार्य, जिनदासमहत्तर, आचार्य शीलाङ्क, अभयदेवसूरि, हेमचन्द्राचार्य आदि श्वेताम्बराचार्यो और आचार्य कुंदकुंद, समन्तभद्र अकलङ्क, जिनसेन आदि दिगम्बराचार्यो ने विविध कोटि के साहित्य का निर्माण करके जैन धर्मानुयायियो की ज्ञान-ज्योति को प्रज्वलित करने का प्रयत्न किया।

(३)

मतभेदों की नोंध

विविध मतों का प्रारम्भः-

ससार के सभी मानव एक ही विचारधारा के अनुगामी रहें-ऐसा सम्भव नही हैं। विचारधारा की भिन्नता से मतभेदों की सृष्टि होती है। भोगभूमि के काल मे विचार-वैभिन्न्य से विभिन्न मतो की सृष्टि होने का अवकाश ही नही था। कर्मभूमि के प्रारम्भकाल में भी विचार के विकास की प्रक्रिया मद थी। अत. उस काल मे भी विशेष मत-भेद उत्पन्न नही हुए। जव भगवान् ऋषभदेव दीक्षित हुए, तव उनके साथ चार हज़ार पुरुष भी दीक्षित हुए। दानविधि की जानकारी के अभाव मे आहारादि नही मिलने के कारण वे सभी प्रभु का सग छोड कर, वल्कलधारी तापस बन गये और कन्दमूल का उपयोग करने लगे। जव प्रभुने केवलज्ञान की प्राप्ति के वाद तीर्थ की स्थापना की, तव कच्छ-महाकच्छ को छोड कर, सभी भगवान् के पास आकर शुद्ध वने और सम्यग् चारित्र के आराधक हुए।

भगवान् ऋषभदेव के पौत्र और भरत के पुत्र मरीचि ने कठोर निर्ग्रन्थ-चर्या के पालन नही होने से मन कल्पित लिङ्ग और आचार धारण किया। वाद मे शरीर-पीडा से आर्त होकर, कपिल राजकुमार को अपना शिष्य वनाया, जिससे परिव्राजक तापसमत (साख्य दर्शन) का प्रादुर्भाव हुआ।

भगवान् सुविधिनाथ से भगवान् शान्तिनाथ तक, सात अन्तरालो मे, जिनशासन का विच्छेद हुआ और मिथ्यामतो की वृद्धि हुई। हिंसक यज्ञो के विधि-विधान वने।

भगवान् महावीर की साधना के द्वितीग वर्ष मे गौशालक प्रभु के साथ रहा। भगवान् के साथ रहते हुए, कुछ एकान्तिक सिद्धान्तो का निर्णय किया, तेजोलेश्या प्राप्त करने की विधि जानी और फिर भगवान् महावीर से अलग होकर, कुछ समय के बाद आजीवक मत का पुरस्कर्ता और 'नियतिवाद' दर्शन का सस्थापक बना।

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के पिहिताश्रव मुनि के शिष्य बुद्धकीर्ति से बौद्धमत प्रारम्भ हुआ। उस समय भारत मे अनेक मत-दर्शनो की वौद्धिक क्रीडाए हो रही थी। व्यक्ति सत्य-दर्शन के लिए चलते थे। चिन्तन करते हुए, किसी भी नये विचार के स्फुरित होते ही उसे वे व्यवस्थित दर्शन का रूप देने का प्रयास करते थे। कुछ चमत्कारो के वल से वे अपने अनुयायियो को जुडाकर, उन्हे एक सम्प्रदाय के रूप मे सगठित कर डालते थे। इस प्रकार नाना वादो तथा सम्प्रदायो का निर्माण हो चुका था।

निह्नव वाद –

ऊपर भिन्न सिद्धान्त और भिन्न चारित्र्य वाले मतवादो के विपय मे वात कही गई। अब ऐसे मतभेदो की वात कही जा रही है, कि जिसके निर्माता वीतराग-कथित चारित्र्य की समस्त मर्यादाओ का पालन करते थे और अधिकाश सैद्धातिक बातो को भी मान्य करते थे। किन्तु किसी एक बात को लेकर, वीतराग धर्म से विरुद्ध एकान्तिक आग्रह से उसका प्रतिपादन करते थे। उन्हे निह्नव कहते है।

भगवान् महावीरदेव के केवलज्ञान के चौदहवे वर्ष के अन्त मे उनके शिप्य जमालि ने, प्रभु वीर के 'कृतमान कृत' सिद्धान्त से मतभेद व्यक्त किया और अपने आपको सर्वज्ञ घोषित करके, 'वहुरत' नामक वाद को स्थापित किया। अन्तिम समय तक यह वाद नही छोडा।

भगवान् महावीर के कैवल्य पर्याय के सोलह वर्ष वाद 'तिष्यगुप्त' नामके साधु ने 'आत्मा के अन्तिम प्रदेश मे ही जीवत्त्व है' यह वाद प्रतिपादित किया। जव समझाने पर भी नही माना, तव गुरु ने उसे

गच्छ-वाहर कर दिया। 'आमलकप्पा' निवासी मित्रश्री श्रावक के द्वारा युक्ति-पूर्वक समझाने पर प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुआ।

वीर निर्माण सवत् २१४ मे आषाढाचार्य के निमित्त से उनके शिष्यो मे 'अव्यक्तवादी' निह्नव हुआ। यह तृतीय निह्नव था।

वीर नि स २२० मे अश्वमित्र से 'सामुच्छेदिक' नामक चौथा निह्नव, वी. नि स २२८ मे 'द्विक्रियावाद' नामक पाँचवा निह्नव, वी नि स ५४४ मे रोहगुप्त से त्रैराशिक नामक छठ्ठा निह्नव और वी. नि. स ५८४ मे गोष्ठामाहिल सातवाँ निह्नव हुआ।

वीर निर्वाण की छट्ठी शताब्दि तक युगप्रधान की आज्ञा का पालन यथातथ्य होता था। अतः उन्होने भगवान् महावीर के शासन को अशमात्र भी विचार-विकृति से वचाने का प्रयत्न किया। उन्होने शिष्यमोह को तिलाञ्जली देकर, शासन की अक्षुण्णता को वनाये रखने के लिए, विकृत मान्यतावाले शिष्य को सघ से वाहर घोषित करने मे हिचक न दिखाई। दस पूर्वो का ज्ञान रहा वहाँ तक विचार भेद से सघ-भेद होने की स्थिति नही आई। पर इसके वाद (=दसपूर्वी वज्र स्वामी के देहान्त के वाद) यह स्थिति नही रही।

संघ-भेद के अन्य रूपः-

धर्म मे भेद दो प्रकार का होता है-(१) शासन-भेद और (२) सघ-भेद। शासन भेद के दो रूप हैं-(१) सम्यक् और (२) असम्यक्। सम्यक् शासन-भेद तीर्थङ्करो के द्वारा कालक्रम के अनुसार धर्म मे विशेष दृढता के लिए, कठोर या सरल अनुशासन की प्रवृत्ति से किया जाता है, जैसे भगवान् महावीर देव ने, भगवान् पार्श्व के चातुर्याम सवर के स्थान पर, पाँच महाव्रतो का और भगवान् अजितनाथ ने, भगवान् ऋषभदेव के पाँच महाव्रतो के स्थान पर, चातुर्याम सवर का प्रवर्तन किया। असम्यक् शासनभेद को निह्नववाद कहा जाता है, जो किसी भी साधक के द्वारा उसके मिथ्यात्त्व मोहनीय के उदय से होता है। जिसका वर्णन ऊपर आ चुका है।

सघ भेद भी दो तरह का होता है। प्रथम सघभेद, सम्यक् विचार-पूर्वक होता है, जिसमे सघमे आई हुई विकृति मे-सुधार, सस्कार, विशुद्धि या प्रतिकार की भावना होती है। दूसरे सघ-भेद के मूल मे सम्यक् विचारणा नही होती है। वह सघ-भेद काल के प्रवाह से, जनसघर्ष से, मनभेद या मतभेद से या गुरु-परम्परा के मोह से होता है। इस दूसरे प्रकार के सघभेद मे कभी-कभी भेद की भावना ही नही होती है, परन्तु अनायास भेद उत्पन्न हो जाता है।

आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती के बीच साभोगिक व्यवहार बद होने को, सघ मे प्रथम मतभेद माना है। यह बात राजा सम्प्रति के शासन काल की बतलाई जाती है। परन्तु इस विषय मे आर्य महागिरि के साथ कालक्रम ठीक नही बैठता है। ऐसा हो सकता है, कि आर्य महागिरि के शिष्यो और आर्य सुहस्ती के बीच या सम्प्रति के शासन के पूर्व दुष्काल मे दोनो सघ मुख्यो के बीच इस प्रकार की कोई घटना हुई हो। परन्तु वह भेद चिरजीवी न रहा। उसका समाधान हो गया।

वी नि स २९२ मे निर्ग्रन्थ गच्छ का 'कोटिय' गच्छ नामान्तर हुआ। उसी समय के लगभग आर्य महागिरि के शिष्य आर्य बलिस्सह से उनकी शाखा की स्थापना हुई। इसके प्रमाण मे 'दु.षमकाल श्री श्रमण सघ' के युग प्रधान यन्त्र से और सिद्ध-पाहुड-ग्रन्थ के युग प्रधानो के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जिसमे आर्य सुहस्ती के बाद ग्यारहवे पट्टधर से सात पट्टधरो के नाम भिन्न है-गुणसुन्दरसूरि, श्यामाचार्य, स्कन्दिल, रेवतीमित्र, धर्मसूरि, भद्रगुप्त और श्रीगुप्त। इसके बाद वज्र स्वामी का नाम है। इसके बाद पुन नामावली मे भिन्नता आ गई है।

वी नि स ५८४ मे वज्रस्वामी के देहान्त के बाद वज्रशाखा के प्रवर्तन से तथा वज्रसेन स्वामी के चार शिष्यो-नागेन्द्र, चन्द्र, निर्वृत्ति और विद्याधर से चार शाखाओ के प्रवर्तन से गच्छभेद की वृद्धि हुई।

इन उल्लेखो से ऐसा अनुमान होता है, कि वीर निर्माण की छट्ठी शताब्दि तक सघ की अनेक शाखाए-उपशाखाएँ हो गई थी। वे शाखाएँ परस्पर विरोध न करते हुए अपनी-अपनी परम्पराओ को

विशेष महत्त्व देती रही होंगी। यद्यपि उपयोग के क्रमवाद, युगपद्वाद, अभेदवाद और हास्य, रति, पुरुषवेद मोह-प्रकृतियो को पुण्यप्रकृति की मान्यता आदि से सम्बन्धित सैद्धान्तिक मतभेदो की नीव पड चुकी होगी, फिर भी सैद्धान्तिक मतभेद नहिंवत् ही था और न उनमे सघभेद हो-ऐसी उग्रता ही थी। यो तो आर्य रक्षित के द्वारा 'मात्रग' की अनुज्ञा देने पर विरोध हुआ, ऐसा उल्लेख है[8]। पर इससे सघ के दलो मे बँटने की स्थिति उत्पन्न नही हुई। परन्तु वी. निर्वाण की सातवी शताब्दि के प्रथम दशक मे ही मतभेद का भयङ्कर विस्फोट हुआ, जिससे सघ मे फूट पैदा हो गई।

आर्य कृष्ण के शिष्य शिवभूति ने वस्त्र मूर्च्छा हटाने के लिए किए गए गुरु-प्रयत्न से खिन्न होकर, साधना मे 'वस्त्र रहितता से ही मूर्च्छा-त्याग' के आग्रह को पकड लिया और वे 'सिद्धान्त ऐसा ही है'-यह प्रतिपादन करने लगे। स्थविरो के समझाने पर भी जब उन्होने हठ नही छोडी, तब उन्हे वी. नि ६०९ मे गच्छ से बाहर कर दिया। उस समय क्या स्थिति बनी, इसका पूरा विवरण प्राप्त नही होता है। पर यह निस्सशय बात है, कि—सघमे विभेद उत्पन्न हो गया और कुछ समय बाद सघ के तीन दलो के अस्तित्व का पता चलता है-श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय। वर्तमान मे यापनीय दल लुप्त हो चुका है। श्वेताम्बरो और दिगम्बरो मे बहुत कटुता उत्पन्न हो गई। अब दोनो एक दूसरे को आगम-विरोधी और अपने से नि सृत बतलाते हैं। दिगम्बरो का कहना है, कि-वी नि ६१२ मे शिथिल आचार वालो का एक सघ बना और उन्होने विच्छिन्न आगमो के स्थान पर नये शास्त्रो की रचना की। वे श्वेताम्बर कहलाये। इधर श्वेताम्बरो ने शिवभूति को 'बोडिय' नामक आठवाँ निह्नव घोषित कर दिया। उनका कहना है, कि पहले दिगम्बर इन आगमो का प्रामाण्य मानते थे, परन्तु बाद मे उन्हे अप्रामाणिक घोषित करके, नये शास्त्रो की रचना की। श्वेताम्बरो के

---

[8] शास्त्रो के परिशीलन से विदित होता है, कि—'मात्रग' की अनुज्ञा गई नहीं थी। फिर इसका विरोध क्यो हुआ यह समझ में नहीं आया।

तर्कों मे बहुत कुछ तथ्य है। उनसे जितना भी हो सका, आगमों के विच्छिन्न होते हुए अशो की रक्षा की है। तीसरा यापनीय दल तटस्थ था। वे श्वेताम्बरो से मान्य आगमो को प्रामाणिक मानते थे। अधिकाशत स्वय नग्न रहते हुए भी वस्त्र के विषय मे मध्यम-मार्ग अपनाते थे। स्त्री-मुक्ति और सवस्त्र-मुक्ति को मान्य करते थे।

इसके बाद इन दलो मे भी विभिन्न शाखा–प्रशाखाएँ हो गई। जहाँ तीर्थङ्करो, गणधरो या विशिष्ट मुनियो का दाह-सस्कार होता था, वहा भक्तजन स्तूप का निर्माण करवा देते थे। हो सकता है, कि-कोई कोई भक्त अपने आराध्य की स्मृति के लिए प्रतिमा, चित्र आदि भी वनवा लेते हो। परन्तु राजा सम्प्रति ने वीर निर्वाण की तीसरी शताब्दि मे प्रतिमा आदि को धर्म-प्रचार के लिए साधन बनाया। पट्टावलियो के उल्लेखो से ऐसा लगता है, कि-उसने मूर्तियाँ, तीर्थङ्करपट्ट आदि का खूब प्रसार किया। मन्दिरादिका निर्माण करवाया। ऐसा लगता है, कि उसके कालतक साधुओ ने प्रतिमा आदि को विधि रूप से स्वीकार नही किया था। स्थापना-निक्षेप और नाम-निक्षेप की भिन्नता वतानेवाले आगमिक उल्लेखो से आगमेतर ग्रन्थो के उल्लेखो का विकास इस बात को प्रमाणित करता है। बाद मे निर्दोष वसतिओ का मिलना दुष्कर होने पर साधुओ ने चैत्य मे वास करना प्रारम्भ किया। जब चैत्यो से साधुओ का सम्वन्ध स्थापित हुआ, तव उन्होने उनके प्रति होने वाली भक्तो की उपेक्षा देखी। इस विषय मे स्वत प्रेरणा दी जाने लगी। यह धर्मकार्य या पुण्यकार्य है, यह वताया जाने लगा और धीरे-धीरे चैत्य, पट्ट आदि के निर्माण का उपदेश दिया जाने लगा। जिसकी प्रेरणा से पट्टादि निर्मित होते, उनके नाम भी कुरेदे जाने लगे। फिर प्रतिष्ठा विधियाँ निर्मित हुई। वडे-वडे मन्दिरो का निर्माण हुआ। जिनमे साधु रहते भी थे। वी निर्वाण की आठवी शताब्दि मे समन्तभद्रसूरि ने चैत्यवास से अरुचि प्रकट की और प्राचीन यक्षायतन आदि मे निवास करने की प्रणाली को पुन अपनाया। उस समय तो उनका विशेष विरोध नहीं हुआ। परन्तु जव उनके शिष्यो ने भी यही प्रणाली अपनाई तो विरोध होना प्रारम्भ हुआ।-वन मे रहने वाले वनवासी और चैत्यो मे

रहने वाले चैत्यवासी कहलाये। विरोध शास्त्रार्थ तक पहुँचने लगा और श्वेताम्वर सव दो भागो मे विभाजित हो गया। चैत्यवासियो का वहुत वर्चस्व था। चैत्यवासियो ने वनवासी साधुओ पर अमुक नगरो मे प्रवेश करने पर राज्य की ओर से रोक लगवा दी। वनवासी मुनियो मे भी कई प्रखर विद्वान् और वादी मुनि हुए। धीरे-धीरे उनका भी जोर बढने लगा। उन्होने चैत्यवासियो को वाद मे पराजित करना प्रारम्भ किया। अन्त मे चैत्यवासियो का प्रभाव घटता गया और वे नाम नि शेष हो गये।

वी नि १४६४ (विक्रम स ९९४) में वटगच्छ का प्रादुर्भाव हुआ फिर उसके नामान्तर का रूपान्तर बृहद्गच्छ हो गया। विक्रम स ११५९ मे चन्द्रप्रभसूरि से 'पूनमिया गच्छ' और विक्रम स. १२०४ मे जिनवल्लभसूरि से 'पट्कल्याण' मतरूप 'खरतर गच्छ' की प्रवृत्ति हुई। वि स. १२१३ मे 'अञ्चल गच्छ', वि. स १२३६ मे 'सार्वं पौर्णमीय गच्छ', वि. स १२५० मे आगमिक मत और वि स १२८५ मे तपागच्छ की उत्पत्ति हुई। हमें यह वात ध्यान मे रखना चाहिए, कि—पट्टावली-लेखक जिस गच्छ से सम्वन्धित रहे हैं, उस गच्छ की सज्ञा को उन्होने मूल गच्छ का नामान्तर वताया और अन्य गच्छो को 'उत्पन्न हुए' कहा।

यो विविध गच्छों की उत्पत्ति होती गई। चैत्यवाद का प्रावल्य होता गया और क्रिया-विशुद्धि के प्रयत्न होते हुए भी साधुओ मे आचार शैथिल्य घर करता गया। प्रतिमा के प्रतिष्ठा कराने, योगोद्वहन आदि विषयो मे विविध मतभेद प्रवृत्त हो रहे थे। साधु-सघ की विचित्र स्थिति हो रही थी। वि सवत् १५०० के लगभग चैत्य आदि से सम्वन्धित आडम्वरो का प्रावल्य हो रहा था। आत्मार्थी सन्तो को आचार-शैथिल्य खटकता था। पर सुविहितो का कुछ जोर नही चल पाता था। उनके आचार-शुद्धि के विविध प्रयत्नो का विशेष प्रभाव नही होता था। उग्र क्रियाओ का पालन दुष्कर हो रहा था। अत सविग्नभाव के प्रतिपादन से अपनी आत्मतुष्टि का प्रयास किया।

ऐसे समय मे विक्रम स. १५०८ मे किन्ही यतिजी से, अहमदावाद मे रहने-वाले सद्गृहस्थ लोकाशाह को, प्रतिलिपि करने के लिए शास्त्र

प्राप्त हुए। शास्त्रो की प्रतिलिपि करते-कराते हुए, शास्त्रगत बातो को समझने पर उनके ज्ञानचक्षु खुल गये। उन्होने यथा समय (वि स १५२८) सूत्र-रहस्य प्रकट करना प्रारम्भ किया। उन्होने चैत्यवाद, विकृत प्रतिक्रमण या प्रतिक्रमण विधि, पौषधकी विपरीत क्रिया, योगोद्वहन की आडम्बर से युक्त क्रियाओ आदि का विरोध किया। 'तपागच्छ पट्टावली' के अनुसार वि स १५०८ तथा अन्य पट्टावलियो के अनुसार वि स १५२३ या १५२५ या १५२८ मे 'लोकागच्छ' का प्रारम्भ हुआ। किसी के मत से लोकाशाह दीक्षित हुए किसी के मत से नही। वि स १५३१ मे भिदाजी आदि दीक्षित हुए। वि स. १५८० मे हीरागरजी और रूपचन्दजी तथा पचायणजी बन्धुद्वयने नागौरमे दीक्षा लेकर, 'नागौरी लोकागच्छ' की नीव डाली। फिर 'उत्तराधी लोकागच्छ' हुआ। यो लोकागच्छ की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हो गई। सैद्धान्तिक ऐक्य मे भी कमी आगई। कुछ ने पुन मूर्ति पूजा स्वीकार करली। फिर भी लोकाशाह अपने कार्य मे सफल हुए। उनसे प्रेरित होकर, उनके विरोधियो मे भी क्रियोद्धार हुए।

वि स १५६२ मे कडवाशाह ने 'कडवा मत' चलाया। वि स १५७२ मे नागपुरीय तपागच्छ से उपाध्याय पार्श्वचन्दजी ने निकलकर 'पायचद गच्छ' स्थापित किया। इसी समय के लगभग 'वीजामत' आदि मतान्तर हुए।

इसी प्रकार दिगम्बरो मे भी मूलसघ, काष्ठा सघ, माथुर सघ, तारणपथ आदि कई भेद-प्रभेद हुए। इस प्रकार विक्रम की सतरहवीं शताब्दि तक जैन धर्म कई शाखा-प्रशाखाओ मे विभाजित हो गया था।

(४)

क्रिया-उद्धार

शिथिलाचार क्या है ?

मानव उत्कृष्टता के स्वप्न देखता है। वह प्रत्येक बात में श्रेष्ठता लाने का प्रयत्न करता है। मानव की बुद्धि आदर्शों के विषय मे बहुत ऊँची दौड लगा देती है, किन्तु उसका आचार पिछड जाता है। यह विडम्बना आजकी ही नही, बहुत समय से है। कोई ऐसे महामानव भी होते हैं, कि-आदर्श विचारो के अनुरूप ही उनका आदर्श आचार होता है। परन्तु ऐसे मनुष्य बहुत अल्प होते है। सामान्य जन या सामान्य साधक मे आचार और विचार मे विशेष अन्तर चल सकता है। परन्तु विशेष स्तर पर पहुँचने वाले साधको मे यह अन्तर किसी सीमा तक ही सह्य होता है।

श्रमण भगवान् महावीरदेव ने साधको केतीन स्तर फरमाये हैं-(१) सामान्य साधक-जिसके सावद्य योग के त्याग की प्रतिज्ञा नही होती है, पर समझ विशुद्ध होती है। (२) अशत प्रतिज्ञा वाला साधक-जिसके सावद्ययोग के त्याग की आशिक प्रतिज्ञा होती है और (३) विशिष्ट प्रतिज्ञावाला साधक-जिसकी सर्वत सावद्य योग के त्याग की प्रतिज्ञा होती है। इन तीनो प्रकार के साधको का अपने-अपने स्तर के अनुसार आचार नियत होता है। अत तीनो ही प्रकार के साधको मे शिथिल-आचार की स्थिति हो सकती है। अकारण ही नियत आचार से विपरीत आचरण करना, प्रतिज्ञा की परवाह न करना और सदा के लिए वैसे ही आचरण का ढर्रा पकड लेना-शिथिलाचार है। अर्थात्

जिस अवस्था मे अपने स्तर के आचार की पकड़ ढीली हो जाती है-वह शिथिलाचार है।

क्रिया-उद्धार क्या है ?

शिथिलाचार दो प्रकार का होता है-(१) व्यक्तिगत और (२) सघगत। व्यक्तिगत शिथिलाचार, उस व्यक्ति को स्वत खटकने पर ही, दूर हो सकता है और जिसे उसको सुधारने की इच्छा हो तो वह उसे प्रेरणा देकर, समझाकर उसके-शिथिचाकार को समाप्त कर सकता है। ऐसी क्रिया को आत्मोद्धार या जन-उद्धार कहते हैं। जब पूरे समूह मे आचार की शिथिलता व्याप्त हो जाती है, तब किसी आत्मार्थी को यह बात खटकने पर, यदि वह समर्थ हो तो पूरे समूह को और ऐसा न हो सके तो कुछ को, अपने सग सम्यग् आचार मे लाकर स्थित करता है, उसे क्रिया-उद्धार कहते हैं। पूरा सघ शिथिल-आचार से हटकर, सम्यग् आचार मे लीन हो जाय, इससे बढकर अत्युत्तम बात नही है, पर ऐसा होना सहज सम्भव भी नही है। तब आत्मार्थीजन के हृदय मे एक टीस उठती है, कि-इनके सग मे रहते हुए, मैं अपना भी खो रहा हू। वह सघ से अलग हो जाता है और शास्त्रानुसार चलने का निर्णय करता है। फिर निर्णय के अनुसार व्यवहार अपनाता है। कुछ जन उसका अनुसरण करते हैं। इस प्रकार क्रिया का उद्धार होता है।

इस प्रकार के क्रिया के उद्धार से वैमनस्य की स्थिति उत्पन्न होती है। एक नये सम्प्रदाय का निर्माण होता है। उस क्रियोद्धारक के अनुयायी अपनी वृद्धि के लिए, पात्र-अपात्र की सीमा-रेखा को भुला देते है और धीरे-धीरे वे भी शिथिलआचार के शिकार हो जाते हैं। फिर किसी के हृदय मे भगवान् के मार्ग के प्रति सम्यग् आस्था से दृढता-पूर्वक चलने की इच्छा होती है और वह भी इसी प्रकार क्रिया-उद्धार करता है। इनमे लाभ भी होता है तो कुछ हानि भी होती है। पर अभी तक ऐसी प्रक्रिया विकसित नही हुई, कि-जिससे सघ मे वैमनस्य न हो और आचार मे दृढता आजाय। समय-समय पर आचार मे शुद्धि और दृढता लाने के लिए क्रिया-उद्धार होते रहे हैं।

क्रियोद्धारक महापुरुषः-

लोकाशाह ने सैद्धान्तिक और चारित्रिक दोनों प्रकार के विकारों की शुद्धि का कार्य किया था। उनके पहले किसी ने ऐसा और इतना विशाल प्रयत्न किया हो इसका उल्लेख प्राप्त नही होता है। आचार-शैथिल्यके प्रति विशिष्ट साधको मे खेद था, इसकी झलक हमें 'सबोध-सत्तरि' मे मिल जाती है। 'वनवासी' और 'चैत्यवासी' रूप भागो मे सघ के विभाजित होने के मूल मे भी क्रिया-विशुद्धि का प्रयत्न ही है। पर लोकाशाह का कार्य बहुत ही विशिष्ट था। सैकडो वर्षों से ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र और तप के आचरण मे जो शिथिलता घर कर गई थी, उन्हे दूर करने के लिए, उन्होने सघ को एक बार तो झकझोर दिया।

कुछ उन्ही के प्रभाव से प्रभावित एक 'कडुआ' शाह नामक श्रावक भी आगे आया। वि. स. १५६२ मे उन्होने साधुओ के आचार-शैथित्य से खिन्न होकर, 'कडुआ मत' चलाया। उन्हे मूर्तिपूजा का विरोध उचित नही लगा। इस विषय मे सभव है, तटस्थ भाव अपनाया हो। उनका सिद्धान्त था, कि-'इस पचम काल मे कोई भी साधु नही है। साधु-परम्परा विच्छिन्न हो गई है। और इस काल में साध्वाचार पल भी नही सकता है। अत॰ इस युग मे साधु बनना वृथा है। हाँ, उत्कृष्ट कोटि की सवर क्रिया का पालन किया जा सकता है और इस काल मे यही करना श्रेष्ठ है।' उन्होने सवरी श्रावको की परम्परा चलाई। वे साधुओ जैसी क्रिया पालने का प्रयत्न करते थे और एक कपडे को सिर पर फेटा जैसा लपेटते थे। 'श्री सीमधर-शोभा-तरङ्ग' मे कडवामत की विक्रम स. १६७० तक की पट्टावली इस प्रकार है-(१) सा श्री कडूआ, (२) सा श्री खीमा, (३) सा. वीरा, (४) सा. जीवराज, (५) सा तेजपाल, (६) सा रत्नपाल, (७) सा. जिणदास और (८) तेजपाल। कडूआ शाहका देहान्त वि स १५६४ मे हुआ और शाह जिनदास का स. १६७० मे। इसके वाद तेजपाल विद्यमान रहे। सम्भव है, कि-इन्ही से एकलपातरिया पोतियावध का पथ चला हो।

लोकाशाह और कडूआशाह के प्रचार से अन्य साधुओ मे भी

खलबली मची। किसी भी कारण से हो, पर अन्ततः स १५८० में आनन्दविमलसूरि ने भी क्रिया-उद्धार किया।

लोकागच्छ मे पहले तो क्रिया-पालन मे उत्साह रहा। परन्तु अपने प्रचार के उत्साह मे अयोग्य व्यक्तियो को भी गच्छ मे सम्मिलित कर लिये। अत आचार मे शिथिलता व्याप्त हो गई। आत्मार्थी यतियो का मन खिन्न रहने लगा। उनमे से कुछ यतियो ने साहस किया और विशिष्ट क्रियाओ को पालन करने का आग्रह किया। आखिर कई यति गच्छ त्याग कर निकले और क्रिया-उद्धार किया। तत्तद् मुनियो की पट्टावलियो के अनुसार, अधिकाश मुनियो ने अपने-अपने गुरुओ की आज्ञा के साथ आशीर्वाद लेकर, गच्छ-त्याग किया तो उनके विरोधियो के मत से अपने गुरुओ से रुष्ट होकर। क्रियोद्धारक महापुरुषो मे पाँच-छह नाम प्रसिद्ध हैं–(१) जीवराजजी म, (२) लवजीऋषिजी म, (३) धर्मसिहजी म, (४) धर्मदासजी म, (५) हरिदासजी म और (६) हरजी स्वामी।

श्री धर्मदासजी म को छोडकर, शेष महापुरुषो का क्रियोद्धारक काल वि स १६०८ से १७०५ के बीच आता है। श्री जीवराजजी म. ने वि स १६०८ मे, श्री धर्मसिहजी म ने १६८५, श्री लवजीऋषि ने वि स १६९२ या १७०५ मे क्रिया-शुद्धि का कार्य किया (७)। हरिदासजी म. (लाहोरी लोकागच्छी) और हरजी म (राजस्थानी) ने श्री लवजीऋषि के शिष्य श्री सोमजीऋषि की आज्ञा शिरोधार्य की। अत इनका सम्बन्ध लवजीऋषि की शाखा से जुड गया। इन महापुरुषो के जीवन और कार्य के विषय मे विशेष विचारणा आवश्यक है। पर यह स्वतत्र विषय है।

---

(७) जीवराजजी म आदि के क्रिया-उद्धार के सवत् विचारणीय हैं। 'श्रीमद् धर्मसिहजी अने श्रीमद् धर्मदासजी' मे लिखा है, कि–'श्रीमद् धर्मसिहजी लुकागच्छथी निकली दीक्षित थया ते १६८५ वी साल मा थया' –पृ ३। इससे विपरीत दरियापुरी सम्प्रदाय पट्टावली' (पट्टावली प्रबन्ध सग्रह) मे–श्रीधर्मसिहजी स्वामी-उदयपुर मा १६९२ मा शिवजी रास रच्यो'–यह उल्लेख है। शिवजी धर्मसिहजी म के गुरु थे। क्रियोद्धार मे उनके गुरु का साथ नही था। अत उन्होने क्रिया-उद्धार के बाद उनके रास की रचना कैसे की होगी? इसी प्रकार अन्य क्रिया-उद्धारको के क्रियाउद्धार के समय के विषय मे भी मतभेद है।

द्वितीय अध्याय

श्रीमद् धर्मदासजी महाराज

की

जीवन-गाथा

तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजकीय स्थिति

पहले अध्याय के पिछले अश मे श्रीमद् धर्मदासजी म. के प्रादुर्भाव के समय की धार्मिक स्थिति का वहुत कुछ वर्णन आ जाता है। यद्यपि वह काल धर्म-सघ के विखराव का काल था, क्रियोद्धार हो रहे थे, छोटे-छोटे मतभेद भी नहुत बड़े हो रहे थे, फिर भी समन्वय-दृष्टि का, ऐक्यका या पारस्परिक प्रीति का विलकुल अभाव था, यह कहना उस काल के साथ अन्याय होगा। यदि सगठन की दृष्टि न होती तो क्रिया-उद्धारक सिद्धान्त-निर्णय के लिए परस्पर न मिलते और पारस्परिक वात्सल्य न होता तो एक सम्प्रदाय के सत की रचना का दूसरे सम्प्रदाय के सन्त आदर न करते। हाँ, इससे इनकार नही किया जा सकता है, कि-उन्हे अपनी आस्था के प्रति दृढ आग्रह था और वह आग्रह इतना दृढ था, कि-वे उसके लिए सम्प्रदाय, सघ, गुरु का सग, लोगो से प्राप्त सत्कार-सन्मान आदि त्यागने मे किञ्चिन्मात्र दु ख का अनुभव नही करते थे।

उस समय समाज मे जाति के वन्धन दृढ थे। साधुओ के मानस मे भी जातिवाद के सस्कार थे। धार्मिक ज्ञानकी भी लोगो मे कमी थी, क्योकि धार्मिक साहित्य दुर्लभ था। फिर भी लोगो मे ज्ञान-पिपासा थी। लोकागच्छ के प्रभाव से लोगो के लिए शास्त्रीय ज्ञान का द्वार खुल गया था। साध्वाचार की लोग स्पष्ट चर्चा करते थे। शिथिलाचार की टीका-टिप्पणी करते थे। कही-कही विशेष श्रुतधर श्रावक भी थे। समाज मे सम्पन्नता भी थी और विपन्नता भी। कोई-कोई धर्मानुरागी सम्पन्न व्यक्ति गच्छवृद्धि आदि की दृष्टि से विपन्नो की सहायता भी करते थे। समाज के वर्ग-विशेष मे विलासिता भी व्याप्त थी।

दिल्ली के सिंहासन पर मुगल आसीन थे। शाहजहाँ का शासन चल रहा था। प्राय अधिकाश भारत पर उसकी प्रभुता का सिक्का जमा हुआ था। शाहजहाँ के शाहजादो मे शासन के लिए विग्रह प्रारम्भ हो गया था। उसका प्रभाव शासन पर भी पड रहा था। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के जन्मकाल के लगभग इस प्रकार की स्थिति चल रही थी।

पूज्य श्री धर्मदासजी म. के वि   में ऐतिहासिक सामग्री

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्री की प्राप्ति नहिवत् ही है। उनके जीवन से सम्बन्धित अशमात्र उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते है। उनके पूर्व जीवन के विषय मे विशेष वर्णन प्राप्त नही होता है। उनके माता-पिता के नाम तक मे मतभेद दिखाई देता है। पूज्य श्री के हस्त से लिखित कुछ भी सामग्री प्राप्त नही हुई और न कोई आप श्री की विशिष्ट रचना ही मिली। अस्तु, पूज्य श्री के जीवन से सम्बन्धित जो भी यत्किञ्चित् सामग्री प्राप्त है, यहा उसे व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

जन्म-स्थान

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का जन्म गुजरात मे हुआ था। आपके जन्मस्थान के विषय मे कुछ भी मतभेद नही है। आपका जन्म अहमदाबाद के समीपस्थ ग्राम सरखेज मे हुआ था। उस ग्राम मे पहले रगाई का कार्य विशेष होता था। इसलिए रगाई-छपाई का कार्य करने वाली जाति के वहाँ विशेष घर थे। वे भावसार जाति के कहलाते थे। सरखेज मे भावसारो के सात सौ घर थे। उनमे से अधिकाश लोकागच्छ के अनुयायी थे। उनमे कई तो धर्म की दृढ आस्था वाले थे। उनमे अच्छे सम्पन्न घर भी थे। (10)

---

(10) अमदावाद थी मात्र चार कोश दूर सरखेज गाममा आपणा चरित्र नायक पांचमा सुधारक श्रीमान् धर्मदासजी म नो जन्म थयो हतो ......सरखेज गाम मा रगारो (भावसार) ना ७०० घरो हता। जेओ लोकागच्छीय धर्म ने अनुसरता,–प्रभुवीर पट्टावली पृ. २१४

'अमदावाद थी विहार करे, तिवारिं पहली मजले सरखेद गाम आवे। तिहा घणा टोला ना साध आवे। तिहा रगेटीमा धानिक नो जोग मिले। तिहा घणा रगारा साधना भाविक हुना। ते साहजे काम थकी पर वारी ने रात्रे वषांण सांभलवा आवे'–धर्मदास उत्पत्ति।

माता-पिता के नाम

उनके माता-पिता के नाम के विपय मे मतभेद है। यथा (१) जीवणलाल कालीदास,[11] (२) जीवणभाई,[12] (३) कालीदास[13] और (४) कान्हजी जीवणजी।[14] पहले और दूसरे मत मे भेद नही है। तीसरा मत भ्रान्ति से उत्पन्न हुआ है। गुजरात मे पुत्र का नाम पहले और पिता का नाम बाद मे लिखने की पद्धति है, जब कि मालवा, मेवाड और मारवाड मे इससे विपरीत पद्धति थी। अत जीवणजीकालीदास नाममे 'कालीदास' को धर्मदासजी म के पिता समझ लिया गया है। जो कि वास्तव मे उनके दादा थे। चौथे मत मे 'कान्हजी' नाम भी भ्रान्त है। सभव है, कि-यह पितामह के नामके स्थान पर हो। अत धर्मदासजी महाराज के पिता का नाम जीवणलाल, जीवणभाई या जीवणजी ही सिद्ध होना है।

माता के नाम मे भी मतभेद है। यथा- (१) डाहीवाई,[15] (२) हीराबाई[16] और (३) जीवाबाई। ये तीनो नाम प्राचीन गुजरात मे स्त्रियो के हो सकते थे। परन्तु 'जीवाबाई' नाम भ्रान्त लगता है, जो 'जीवणजी कालीदास' नाम से नि सृत हो सकता है। डाहीवाई और हीरावाई इन दो नामो मे कोई एक नाम हो सकता है। परन्तु अधिक उचित 'डाहीवाई' नाम लगता है।*

पिता की सामाजिक स्थिति और व्यक्तित्त्व

उस समय वस्त्र-उद्योग मे छपाई और रगाई करने वालो का

---

(11) प्रभुवीर पट्टावली, (12) मरुधर पट्टावली, (13) कालीदासजी पिता आपके, जीवावाई मात—एक भजन।

14 अज्ञात, 15 प्रभुवीर पट्टावली, 16 मरुधर केसरी- अभिनन्दन-ग्रन्थ,

* माता के 'डाहीबाई' नाम-निर्णय में एक कल्पना कार्य कर रही है। 'मालवा-पट्टावली' मे धर्मदासजी म. ने लाडुजी, डायाजी आदि पाच स्त्रियो को दीक्षा दी' ऐसा उल्लेख है। सभव है कि-डायाजी उनकी माता हो।

विशिष्ट स्थान था। उस कला मे दक्ष व्यवित भी विपुल मात्रा मे धनार्जन कर सकता था। जीवणभाई भी सुखी और सम्पन्न गृहस्थ थे।[17] उनका उनके समाज मे अच्छा सन्मान था। वे लोगो मे मुखिया के रूपमे प्रसिद्ध थे।[18] वे सहृदय और उदार व्यक्ति थे। वे जैन धर्म के अनुयायी थे। लोकागच्छ पर उनका अनुराग था। साधुओ की सेवा करके समुचित धर्मज्ञान भी प्राप्त किया था। धर्म मे उनकी गाढी प्रीति थी।[19] अपनी शक्त्यनुसार वे धर्मआराधना मे भाग लेते थे।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का जन्म

धर्मदासजी म का जन्म जीवणभाई पटेल के यहाँ हुआ था। आपके जन्म-सवत् के विषय मे तीन और जन्मतिथि के विषय मे दो मत प्राप्त हुए हैं-(१) सवत् १७०१ मे[20], (२) १७०२ माघशुक्ला त्रयोदशी[21] (३) विक्रम स १७०३[22], और (४) १७०१ चैत्रशुक्ला एकादशी अर्ध रात्रि मे।[23] इनमे सही सवत् और सही तिथिके निर्णय करने के कोई भी प्रामाणिक साधन प्राप्त नही है। परन्तु उनकी दीक्षा के समय की परिपक्व बुद्धि की स्थिति देखते हुए, अनुमानत स १७०१ जन्म सवत् उचित लगता है। परन्तु मालवा परम्परा का 'स १७०२ मे जन्म' मानने की ओर विशेप झुकाव है।

पारिवारिक जन

पूज्य श्री धर्मदासजी म की पारिवारिक स्थिति का कुछ पता नही चलता है। उनके माता-पिता के सिवाय उनके परिवार मे कोई अन्य जन थे या नही-इस विपय मे कुछ भी उल्लेख प्राप्त नही है। परन्तु अनुमान से ऐसा लगता है, कि आप अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान नही थे। एक पुराने पन्ने से ऐसी ध्वनि निकलती है, कि-आप के

---

[17]ते मव मा नवु धमचुस्त अने वधु सुखी श्री जीवणलाल कालीदास हता प्रभुवीर पट्टावली। [18]ते तेमनी न्यात मा मुख्य मालक हता-मरुधर पट्टावली, [19] प्रभुवीर प। [20]प्रभुवीर प, [21]हस्त लि मालवा-प, [22]आदर्श आचार्य अवतरण. [23]मरुधर-केसरी-अभिनन्दन ग्रन्थ।

भाई भी आपके सग दीक्षित हुए थे। परन्तु इसका कुछ भी पुष्ट प्रमाण नही है।

बाल्यकाल और अध्ययन

जब आप गर्भ मे थे, तब आपके माता-पिता दोनो की ही धर्म मे भावना विशेष बढ गई थी। अत माता-पिता ने आपका नाम 'धर्मदास' रखा था। बचपन से ही आपको साधु सन्त बहुत प्रिय थे और उनका सत्सङ्ग भी बचपन से ही प्राप्त था। सन्तजन की मधुर वाणी ने आपके पूर्व जन्म के उत्तम सस्कारो को जागृत करके, उनकी महक से जीवन को सुवासित बना दिया। अपनी उम्र के बच्चो की अपेक्षा आपकी बुद्धि अधिक विकसित थी। यो तो सरखेज मे सन्तो का आगमन होता ही रहता था। पर लोकागच्छ के कोई न कोई यति वहाँ बने ही रहते थे। वे बच्चों को अक्षरज्ञान के बाद सूत्र-सिद्धान्त का अध्ययन भी कराते थे। बालक धर्मदासजी ने अन्यत्र अध्ययन किया या नही, इसकी जानकारी नही मिलती। हो सकता हे कि किसी पडित की पाठशाला मे प्राथमिक अध्ययन किया हो। कुछ लेखको के मत से ऐसा लगता है कि,—वहाँ लोकागच्छी यति पाठशाला चलाते थे।[24] पर इसके लिए कोई प्राचीन प्रमाण नही है। हाँ, बालक धर्मदासजी ने लोकागच्छीय यतियो से सैद्धान्तिक अध्ययन किया।[25] परन्तु वहाँ उनकी कोई पाठशाला थी, यह सिद्ध नही होता है। क्यो कि सैद्धान्तिक अध्ययन तो यतियो के वहाँ आते-जाते रहने पर और चातुर्मास होते रहने पर भी किया जा सकता है। आठ वर्ष की वय[26] से आपका अध्ययन प्रारम्भ होना लेखको ने माना है। परन्तु आपकी बुद्धि तीक्ष्ण होने के कारण और सन्तो के समागम मे आते रहने के कारण, आठ वर्ष की वय से पूर्व ही आपका अध्ययन प्रारम्भ हो गया हो, तो कोई आश्चर्य नही। किसी के मत से आपने लोकागच्छीय यति केशवजी की पाठशाला मे, अन्य मत से

---

[24]मरुधर केसरी अभि ग्र। [25]मरुधर पट्टावली-'ते लुकाजती पासे सूत्र सिद्धान्त नो अभ्यास कीधो'। [26]प्रभुवीर पट्टा –'आठ वर्षना थया ...... तेज वरसा मा केशवजी पक्षना लोकागच्छीय यति तेजसिहजी सरखेज मा पधार्या।'–पृ २१५।

केशवजी के पक्ष के यति तेजसिंहजी के पास, सैद्धान्तिक अध्ययन किया और तीसरे मत से आपने एकल पातरिया श्रावक कल्याणजी[27] या पोतीयाबद श्रावक प्रेमचन्दजी से शास्त्रो का अभ्यास किया।[28] अध्ययन कराने वाले व्यक्ति के नाम के विषय मे भले ही मतभेद हो पर उनकी ज्ञान प्राप्ति मे लोकागच्छ और पोतियाबध श्रावक अवश्य सहायक हुए।

साराश यह है, कि–बालक धर्मदासजी ने आठ वर्ष की वय से विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया। जिज्ञासा तीव्र-तीव्रतर होती गई। उनका हृदय पूर्व-सस्कार से ही धर्म के रग मे रगा हुआ था। अध्ययन से वह रग और पक्का हो गया।[29] 'उनकी धर्मरुचि बढती जा रही थी। उनका बाल व्यक्तित्त्व आकर्षक था। सन्त उनके कण्ठ-माधुर्य, जिज्ञासा भाव, विनय, पुण्य-प्रभाव और आकृति के शुभ लक्षणो से सहसा प्रभावित हो जाते थे। बाद मे जब वे उनके बुद्धि-वैभव और स्मृति-पटुता से परिचित होते तो उन्हे ज्ञान देने मे विलम्ब नही करते थे।

पन्दरह वर्ष की वय मे पहुँचने तक तो धर्मदासजी ने अनेक सिद्धान्तो का-शास्त्रो का अध्ययन कर लिया। उनकी तर्क-बुद्धि विकसित हो चुकी थी। कई विषयो मे उनके शास्त्रानुसारी स्वतत्र निर्णय हो चुके थे। वे निर्णय कभी-कभी प्रचलित सयम-व्यवहार से विपरीत जाते थे। कभी-कभी उनके तर्को से यतिजन चौंक उठते थे।

लक्ष्य का निर्णय

जब शास्त्रो का अध्ययन करते हुए, उनकी बुद्धि का विशेष विकास हुआ, तभी उन्हे अपने जीवन के लक्ष्य के विषय मे विचार होने लगा। जिस वय मे बच्चो मे तूफान, हठ और शैतानी होना चाहिए खेलने-कूदने की तरगे होनी चाहिए, उस बेफिक्र मस्तानी वय मे ही बालक

[27]मालवा-पट्टावली (ह लि), [28]मरुधर-पट्टावली, [29]प्रभुवीर पट्टावली 'आठ वर्ष ना थया, तेटला वखतमा तो तेमनु हृदय धर्मभावना थी रगाई गयेलु थो ने लागतु हतु'–

धर्मदासजी शान्त और गम्भीर बन गये थे। शास्त्रो के परिशीलन ने मानो उनके जन्मान्तर से अर्जित दार्शनिक सस्कारो को जगा दिया था। उनकी स्थिर नयन-कीकियो के पीछे अथाह विचार-सागर लहराता हुआ-सा लगता था। ऐसा शान्त बालक, जिसने अभी बचपन की दहलीज को पार करने की तैयारी ही की हो, किसे न प्रिय लगता। परन्तु शास्त्रगगन मे उडान भरने वाले हृदय-विहग को, सुदूर जीवन-क्षितिज को भेदने का भाव विह्वल कर रहा था। अत न तो उन्हे घर की दीवारे आकर्षित करती थी और न जन-जन की दीवारें ही। उनके अन्तर्नयन ने जीवन के लक्ष्य को पा लिया। पन्द्रहवे वर्ष के लगते ही उनकी सगाई की बातें आने लगी। इस स्थिति ने उन्हे और भी विचार मे डाल दिया। उस युग मे एक दशक के भीतर की वय मे ही विवाह कर दिये जाते थे। उन बच्चो को पूछने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता था। ऐसे समय मे बालक धर्मदासजी के हृदय मे भयङ्कर सघर्ष उठ खडा हुआ। पर वे साहसी थे। उन्होने अपने पिताजी के सामने अपने निर्णय को प्रकट करने का विचार किया। आखिर कोई प्रसग खोजकर, धर्मदासजी ने अपने विचार पिता के सामने स्पष्ट रूप से रख दिये। पिता जीवणजीभाई पहले तो अवाक् उनकी ओर देखते रहे। फिर उनकी धर्मभावना ने पुत्र की बात पर सदाशय से विचार करने को प्रेरित किया। उन्होने पहले से ही पुत्र की धर्म भावना के मोड को देखा था। अत जीवणजीभाई ने पूछा 'क्या तुम विवाह करना नही चाहते हो ? क्यो साधुता को ग्रहण करना चाहते हो ?'

धर्मदासजी दृढता-पूर्वक बोले 'मैंने अनगार धर्म ग्रहण करने का निर्णय अभी नही लिया है, पर विवाह करने की मेरी इच्छा बिलकुल नही है। मुझे इन सासारिक प्रवृत्तियो मे जरा भी रस नही है।'

जीवणजीभाई ने गभीर होकर कहा 'ससार की प्रवृत्तियो मे तुम्हे रुचि नही है, सो तो मै देख ही रहा हूँ। अच्छा, फिर इस विषय मे विचार करेगें।'

इसके बाद जीवणजी भाई धर्मदासजी की सगाई की बात टालते रहे। इधर धर्मदासजी खुद ही दुविधा मे पड़े हुए थे। वे सोच रहे थे,

कि–'मैंने समस्त वासनाओ से, कषायो से और कर्मो से मुक्त होने का अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने का लक्ष्य बनाया है। पर अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए मै यति बनूँ या श्रावक ही रहूँ ?।'

मार्ग चुनने के लिए मनोमन्थन

उनकी दुविधा का कारण था यतिवर्ग का आचार-शैथिल्य और तत्कालीन होनेवाले क्रियोद्धार। वे अनेक भाँति के सन्तो के सम्पर्क मे आये थे। उन्हे विचार होता था, कि,–'ये सन्त गृहत्यागी है। अपरिग्रही होकर, इनकी परिग्रह-बुद्धि क्यो है ? क्या इस प्रकार की साधना से लक्ष्य-सिद्धिके समीप पहुंच सकते है ? क्रियोद्धार होते है। पर कुछ काल बाद पुन वैसी ही स्थिति हो जाती है। लगता है, कि–यह काल ही साधुत्व के योग्य नही है। जिन यतियो के सम्पर्क मे, मै आया हूँ, उनमे कई यति आत्मार्थी भी है। परन्तु उनका भी शास्त्रानुसार आचार नही है। अत यह काल का ही दोष है। पर ऐसे अधूरे साधुत्व से क्या लाभ ? इससे श्रावकत्व क्या बुरा है ?' इस प्रकार उनके मस्तिष्क मे अनेक वितर्क उठते रहते थे। इधर वयवृद्धि के साथ शरीर मे भी परिवर्तन हो रहा था। वह शारीरिक परिवर्तन विचारो पर भी प्रभाव डाल रहा था। ऐसे समय मे ही उनका परिचय पोतियाबध पथ से हुआ।

पन्थ का स्वरूप

'पोतियाबध' या 'एकल पातरिया' पन्थ का क्या स्वरूप था और उसकी उत्पत्ति कब हुई-इस विषय मे असदिग्ध एव पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता है। इस विषय मे लीम्बडी सम्प्रदाय के श्री मणिलालजी म अपनी 'श्री जैन धर्म नो सक्षिप्त इतिहास अने प्रभुवीर पट्टावली' नामक पुस्तक मे लिखते है, कि–

'विक्रम सवत् १५६२ मे तीन थुई मानने वाले कडवामती निकले[29]। परन्तु उसके चौथे पट्टपर कडवामती साधु[30] शिथिलाचारी

[29] पट्टावली समुच्चय प्रथम भाग पृ ६८-६९, १५७ और १७२,
[30] अन्य पट्टावलीकार कडवाशाह को ही साधुत्व का निषेध करनेवाले मानते हैं।

हो गये। परन्तु उनमे जो आत्मार्थी साधु थे, उन्होने विचार किया, कि इस प्रकार व्रत लेकर तोडने की अपेक्षा श्रावकत्त्व का पालन करना अधिक श्रेष्ठ है। साधुपने का वेश लेकर, उसके अनुसार नही चलने से भाषा-दोष लगता है। इसलिए श्रावकपना स्वीकार करके वीतराग-प्रणीत शुद्ध धर्म का उपदेश देना श्रेयस्कर है। ऐसा विचार करके, कुछ साधु उस मत से अलग होकर, श्रावकपने मे विचरण करते हुए धर्मोपदेश देने लगे। उनका वेश साधु जैसा था। रजोहरण के ऊपर का वस्त्र निकाल कर डडी खुली रखी थी। एक पात्र मे ही भिक्षा लेते थे। आचार-विचार भी अच्छा था। इसलिए वे 'एकलपातरिया' श्रावक के रूप मे पहचाने जाने लगे। इस समूह मे गुजराती लोकागच्छी साधु भी सम्मिलित हो गये। उन्होने अपने विचार-प्रवाह को फैलाते का खूब प्रयत्न किया ... .. ऐसा कहा जाता है कि—उनके गच्छ मे आठ सौ ठाणा थे [31]।'

इस कथन से भिन्न रूप मे प. रूपचन्दजी म 'रजत' 'मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ', प्रथम खण्ड मे लिखते है—

'इन दिनो पोतियाबध पथका प्रचार राजस्थान और गुजरात मे बडी तेजी से हो रहा था। इस सम्प्रदाय का सस्थापक जयमाल का प्रेमचन्द कहा जा सकता है। यह प्रेमचन्द पहले लोकागच्छीय कुँवरजी यति का शिष्य था और सखन्या ग्राम का रहने वाला था। किसी विशेष कारण से वि स १६९० मे उसने इस पथ को छोडकर, स्वय नये पन्थ की स्थापना की। ...कल्याणजी इस पथ के पथपति थे .. अपने पथ का प्रचार करने के लिए ये पैदल यात्रा किया करते थे . साधु के समस्त लक्षणो का इस पथ मे अभाव दिखाई देता है .. इस पथ के अनुयायी लाल रग के वस्त्र पहनते थे और केवल एक पात्र रखते थे। ये सिरपर चोटी रखते थे।'

इन दोनो वर्णनो मे इस पथ की उत्पत्ति मे मतभेद है। परन्तु इसमे सशय नही है, कि—दोनो मे एक ही मत का परिचय दिया है। दोनो

---

[31] पृ २१५, यह गुजराती-अश का हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

का समन्वय करने पर ये बाते प्रतिफलित होती है—

(१) 'एकल पातरिया' और पोतियाबध' एक ही पथ था ।
(२) ये पचम काल मे साधुत्व के पलने मे विश्वासी नही थे ।
(३) इनका 'कडवामत' से प्रादुर्भाव हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु कडवामत का प्रभाव इस पथ पर अवश्य था ।
(४) कडवामत के अनुयायियो और लोकागच्छीय यतियो का मिश्रण होना भी इस पथ मे सम्भव है ।
(५) इनका आचार साधु जैसा था । पर साधु से अपने को भिन्न बताने के लिए लाल वस्त्र और सिर पर चोटी रखते थे और रजोहरण खुली डडी का रखते थे ।
(६) ये एक ही पात्र रखते थे ।
(७) ये पैदल यात्रा करते हुए, अपने पथ का प्रचार करते थे ।
(८) ये अपने पथमे व्यक्तिया को दीक्षित भी करते थे ।
(९) धर्मदासजी के समय इस 'एक पात्रीय' सम्प्रदाय के पथपति 'कल्याणजी' नाम के कोई प्रभावशाली व्यक्ति थे ।

पन्थ ग्रहण

मनोमन्थन काल मे धर्मदासजी को इस पथ का परिचय हुआ । 'एक पात्रीय' पथ के पथपति कल्याणजी अपने पथ का प्रचार करते हुए, सरखेज मे आये ।[32] उनके साथ उनके बासठ रक्ताम्बर शिष्य थे ।[33] धर्मदासजी ने कल्याणजी के प्रवचन सुने और वे उनकी चर्या का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने लगे । वे कल्याणजी के उपदेश से बडे प्रभावित हुए । उनकी चर्या उन्हे भाई । उन्हे अपने विचार के अनुकूल ही वह चर्या लगी । धर्मदासजी के बुद्धि-वैभव से कल्याणजी भी प्रभावित हुए । कल्याणजी को लगा, कि यदि यह बालक इस पथ मे दीक्षित हो जाय तो इसके उत्थान मे यह बहुत बडा निमित्त बन सकता है । धर्मदासजी की भी उस पथ मे दीक्षित होने की भावना हो गई । उन्होने इस विषय मे अपने पिता

---

[32]प्रभुवीर पट्टावली । [33]सम्यक् केसरी अमि ।

से पूछा या नहीं, उनके पिता ने उस पंथ में दीक्षित होने की अनुज्ञा कैसे प्रदान करदी-इस विषय मे सिवाय अनुमान करने के, अन्य कोई उपाय नहीं है।

पंथ-ग्रहण करने के समय मे मतभेद प्रतीत होता है—

(१) सवत् १७१६, श्रावण सुदी त्रयोदशी को[34] या

(२) सवत् १७१६, आश्विन सुदी एकादशी को[35] दीक्षित हुए, अत. इससे पूर्व 'एक पात्रीय' पथ की दीक्षा ग्रहण की।

मालवा और गुजरात की पट्टावलियाँ दीक्षा-संवत् और दीक्षा-तिथि के विषय में प्राय एकमत है। सोलह वर्ष की वय, गभीर तत्वचर्चा के विषय मे, अल्पवय मानी जा सकती है। परन्तु ससार मे ऐसे कई अपवाद मिलते हैं, कि जिन्होंने लघुवय मे भी ऐसे शारीरिक या मानसिक कार्य कर डाले हैं, जो परिपक्व वयवाले भी नही कर सकते है। अत धर्मदासजी ने स. १७१५ मे 'एकपात्रीय पन्थ' की दीक्षा ग्रहण की हो तो कोई आश्चर्य जैसी बात नही है।

पंथ में कितने वर्ष रहे

'एक पात्रीय' पन्थ ग्रहण करने के पश्चात्, आप सरखेज मे ही रहे या अन्यत्र विचरण करने लगे, इस विषय मे भी एकमत नही है। कुछ पट्टावलियो का ऐसा मत प्रतीत होता है, कि-आप सरखेज मे ही रहे और वहाँ कल्याणजी से शास्त्राभ्यास करते रहे और कुछ लेखको का ऐसा मत है, कि-वे शास्त्राभ्यास करते हुए, उन सवरी श्रावको के सग परिभ्रमण करते रहे।[36] उस पन्थ की क्रियाओं का आचरण करते हुए शास्त्रो के अध्ययन मे धर्मदासजी लीन थे। उन्हें लगा, कि-मैंने साधना का मार्ग पा लिया। परन्तु एकदा भगवती सूत्र का अध्ययन करते हुए, जब यह पढा, कि-'पाँचवे आरे के अन्त तक एकावतारी जीव रहेगें और इक्कीस हजार वर्ष तक[37] तीर्थ की प्रवृत्ति (एक साधु, एक साध्वी, एक

---

[34]मरुधर पट्टा । [35]प्रभुवीर प । मालवा प । गुजरात प ।
[36]मरुधर-केसरी अ ग्र । [37]भगवती सूत्र श २०, उ ८।

श्रावक और एक श्राविका रूप तीर्थ की स्थिति) रहेगी।' तब उन्हे सत्यान्वेषण करने की वृत्ति जागी। वे विशेष अध्ययनरत हुए और कल्याणजी आदि पन्थानुयायियो से विविध प्रश्न पूछने लगे। परन्तु उनके उत्तरो से धर्मदासजी की शङ्का का समाधान नही हुआ। अत वे किसी यति या क्रियोद्धारक का सयोग पाते तो उनके पास भी अपने प्रश्न लेकर पहुँच जाते। इस प्रकार वे विविध प्रमाणो के माध्यम से सत्य के निर्णय मे लगे हुए थे।

उन्होने 'एकपात्रीय' सम्प्रदाय का आचार कितने वर्ष तक पाला-इस विषय मे दो मत हैं-(१) पॉच वर्ष तक श्रावक व्रत का पालन किया[38] और (२) 'धर्मदासजी एक वर्ष और कुछ दिनो तक पोतियाबध पन्थ के अनुयायी रहे'।

दूसरा मत समीचीन लगता है। मालवा, गुजरात आदि पट्टावलियो मे यद्यपि स्पष्ट रूप से श्रावक-पर्याय के वर्षों उल्लेख नही है। पर दूसरा मत उनके अनुकूल पडता है।

वैराग्य का कारण

धर्मदासजी को वैराग्य का क्या कारण मिला, इस विषय मे गुजरात पट्टावली मे और अन्यत्र भी इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है, कि-'सूत्र निरयावलिका के तीसरे वर्ग के दूसरे अध्ययन को सुनकर' दीक्षा ग्रहण की। निरयावलिका के 'पुप्फिया' वर्ग के 'सूरे' नामक द्वितीय अध्ययन मे सूर्यदेव के (जो कि राजगृह नगर मे भ महावीर के दर्शनार्थ आया था) पूर्व भव का वर्णन आया है। 'सावत्थी' नगरी के 'सुपइट्ठ' नामक गाथापति ने भ पार्श्व के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और विराधित चारित्रवाला होकर, सूर्य देव के रूप मे जन्म पाया। इस अध्ययन मे कुछ विशेष बात नही है। 'सुपइट्ठ गाहावइ' के जीवन का भी विस्तार मे वर्णन नही है, जिससे हृदय मे कुछ चोट लगे और वैराग्य की प्राप्ति हो। एक 'विराधित श्रामण्य' की बात (जो कि पहले अध्ययन के समान ही

---

[38]'मन्पाग प-वरस प च श्रावकपणो पाल्यो'।

है) विचारणीय अवश्य है। हो सकता है, कि-प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन को पढते हुए वैराग्य का स्फुरण हुआ हो, क्योंकि उस समय औरगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद मे डाल रखा था और भाईयो का वध करवा दिया था। इससे मिलता-जुलता पहले वर्ग के पहले अध्ययन मे 'कूणिय' का वर्णन है। अत. परिग्रह-वृद्धि से होने वाले अनर्थों को जान कर, वैराग्य स्फुरण होना सहज ही है। वह वैराग्य-भाव सूर्य देव के पूर्व-भव को श्रवण कर विशेष पुष्ट हुआ हो-ऐसा सम्भव है। क्योंकि जिस सूर्यदेव के विमान की गति से, इस लोक के समस्त व्यवहार सम्बन्धित है, जिसे लोग सूर्यभगवान मानते है और जिसके निमित्त से इस लोक मे दिन-रात का विभाग होता है, वह भी विराधित चारित्रवाले है? अत· चारित्र्य साधना मे कितना अप्रमत्त रहना चाहिए-इस या ऐसी किसी अन्य विचारणा से वैराग्य की पुष्टि हो सकती है।

साधना-मार्ग का पुन. अन्वेषण

अब श्रावक धर्मदासजी का मन, वास्तविक साधना मार्ग को खोजकर, उसे ग्रहण करने के लिए, विशेष आतुर हो उठा। वे शास्त्रो का अध्ययन और चर्चा करते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुँचे, कि–'इस युग मे चारित्र-आराधना सम्भव है। अगर विराधित चारित्र वाला जीव भी तीसरे भव मे आराधक होकर, मुक्ति की प्राप्ति कर सकते है। जब चारित्र की विराधना तीर्थङ्करो की विद्यमानता मे भी हो सकती है, तब इस युग मे चारित्र के विराधक हो-इस मे कुछ आश्चर्य नही है। पर इस कारण से उसकाल मे भी चारित्र ग्रहण करना बद न हुआ तो सम्प्रति चारित्र स्वीकार करना क्यो बद होना चाहिए। बस प्रमाद से बचना चाहिए।' इस प्रकार के विचारो से प्रेरित होकर, अपने निर्णय को कसौटी पर चढाने के लिए, विविध शास्त्रज्ञो से तत्वचर्चा करते रहते थे।

प्रभुवीर पट्टावली और प रूपचन्दजी म 'रजत' के मतानुसार धर्मदासजी सरखेज से अन्यत्र लवजीऋषि आदि से मिले। यथा–

'तरनज तेओ घरनो त्याग करी साचा ज्ञानीनी शोधमा निकली पडया त्या तेमने प्रथम लवजी स्वामीनो भेटो थयो, त्यार बाद चातुर्मास

ना समये अमदावादमा तेमने श्री धर्मसिहजी नो समागम थयो, आम ए वे महर्षिओना उद्युक्त जीवनथी तेमने सतोष थयो' प्रभुवीर पट्टावली

'आपको लवजीऋषिके सम्पर्क मे आने का अवसर मिला। दर्शन और धर्म सम्बन्धी चर्चा की ...अहमदाबाद मे आचार्य धर्मसिहजी से भी धर्म-सम्बन्धी चर्चा की.. योग्य गुरु एव सन्मार्ग की खोज मे घूमते हुए धर्मदासजी मालवा पहुँचे।' —मरुधर-केसरी अभि ग्र

इससे उलटा उल्लेख भी प्राप्त होता है—

'ज्यारे तेओ (धर्मसिहजी म) मल्या त्यारे श्रीमद् धर्मदासजी सरखेज मुकामे (अमदावाद थी छ माइल दूर छे त्या) हता, एम समझाय छे के श्रीमद् धर्मसिहजी विहार करी सरखेज गया, त्याँ बन्ने ने परस्पर मळवु थयु हतु ते घणा स्नेह ने विवेक थी भरेलु हतु, बन्ने ने शास्त्रीय वार्तालाप नो मोको (योग) सारो मली आव्यो, बन्ने व्यक्तिओ मल्या पहेला परस्पर नी ख्याति साभली, मलवा ने इच्छती होय एम का न समझीए'

—श्री हर्षचदजी म, (श्रीमद् धर्मसिहजी अने श्रीमद् धर्मदासजी)

'तेहने एकपात्रीया नी श्रद्धा हुती. तेवारे सोमजी अणगार घणी वार आवता-जावता तिहा रहेता। धर्मदास रगाराने घणा सिद्धान्त ना पाट देखाडचा, एकपात्रा नी सक्या भाजी।'

—धर्मदास-उत्पत्ति (हस्त लि०)

इन सब का समन्वय इस प्रकार किया जा सकता है। एकपात्रीय सम्प्रदाय के प्रमुख श्रावक कल्याणजी से, स १७१५ के वर्षा या वर्षा के पूर्व के काल मे प्रभावित होकर, धर्मदासजी ने श्रावकत्व अगीकार किया होगा और कल्याणजी के सग वर्षावास मे सरखेज ही रहे होंगे। चातुर्मास के बाद सरखेज मे रहते हुए ही, लवजीऋषि या उनके शिष्यो के सग कुछ चर्चा-वार्ता हुई होगी। उस चर्चा-वार्ता की बात श्री धर्मसिहजी म. को विदित होने पर, वे भी धर्मदासजी से मिलने को उत्सुक हुए होंगे। क्योंकि लोकागच्छीय होने के कारण उनके पिता से धर्मसिहजी म पहले

से ही परिचित रहे होंगे और कभी बालवय में धर्मदासजी को भी देखा होगा। इधर धर्मदासजी ने भी धर्मसिंहजी म. के क्रियोद्धार के विषय में सुन रखा होगा। अतः उन्हें भी उनसे मिलने की उत्सुकता होगी ही। फिर दोनों महापुरुषों का सरखेज में प्रथम मिलन हुआ होगा। उस समय थोड़ी बहुत चर्चा हुई होगी। इसके बाद धर्मदासजी को, श्रीलवजीऋषि और श्री धर्मसिंहजी म. के संयम-आराधन को जानकर, उनके समीप दीक्षित होने की इच्छा हुई होगी। उनसे मिलकर, धर्मदासजी के मनमें सन्तोष हुआ होगा, कि-ये दोनों महात्मा महावीर प्रभु के शासन को दीपा रहे हैं। पर, शास्त्रीय आधारों से बने हुए अपने विचारों से, दोनों में विभिन्नता भी दृष्टिगत हुई होगी। अतः उन दोनों से पुन. मिलने के लिए धर्मदासजी सरखेज से बाहर गये होंगे।

वे पहले लवजीऋषि के पास गये। उनसे सैद्धान्तिक चर्चा होने लगी। परन्तु सात[39] या इक्कीस[40] प्रश्नों का समाधान नहीं हो पाया। लगता है, कि-धर्मदासजी के तर्कों में कुछ तीखापन आ गया, जिससे लवजीऋषिजी म. के शिष्यों के मन में उनके प्रति कुछ अप्रीति पैदा हो हो गई। धर्मदासजी बोले-'स्वामी ? आप गृहस्थावस्था में लिए हुए हरी आदि के त्याग को, साध्ववस्थामें निभाने की बात क्यों नहीं मानते हैं।'

लवजीऋषि-'साधु जीवन दूसरा जन्म है। अतः गृहस्थावस्था के प्रत्याख्यान गृहस्थावस्था में ही छूट जाते हैं। जैसे किसीने बारहव्रत ग्रहण करते समय छट्ठे व्रत में अमुक कोस तक जाने के त्याग किये, दसवें और ग्यारहवें व्रत में अमुक प्रतिज्ञा की तो वे व्रत साधु अवस्था में छोड़े ही रहते हैं!'

धर्मदासजी-'स्वामिन् ! साधु के समस्त आश्रवों का त्याग हो जाने के कारण, उन व्रतों की मर्यादाएँ साधु के व्रतों में गर्भित हो जाती हैं। जैसे छट्ठे व्रत में अमुक क्षेत्र से आगे जाकर, आश्रवके सेवन करने के प्रत्याख्यान होते हैं और साधु के सर्वत्र आश्रव की विरति हो जाती है।

---

[39]एक प्राचीन पट्टावली, बूंदी। [40]प्रदत्त के अ ग्रं मरुधर पट्टावली।

इस प्रकार धर्मदासजी का लवजीऋषि से मत न मिल सका। अत वे अमदावाद मे धर्मसिहजी म के पास गये। लगता है, उस समय वर्षाकाल समीप आ गया होगा। अत. धर्मदासजी ने स १७१६ का चातुर्मास अमदावाद मे ही विताने का निश्चय किया होगा। उनके सग व्रतधारी कुछ श्रावक भी होगे, जो कि–उनकी प्रज्ञा से प्रभावित रहे होगे। श्री धर्मसिहजी म के साथ, उस चातुर्मास काल मे अनेक विषयो की विविध चर्चाएँ हुई। उन्होने धर्मदासजी को दीक्षित होने की प्रेरणा भी दी।[42] एकमतानुसार धर्मदासजी की इच्छा उन के पास दीक्षित होने की हो गई।[43] परन्तु अनेक विषयो मे धर्मदासजी का धर्मसिहजी म से मतभेद हो जाता था। जैसे व्रत की कोटियाँ, आयुष्य-टूटना, क्षायिक सम्यक्त्व, प्रसगोपात मुखवस्त्रिका बन्धन आदि इक्कीस[44] या सात[45] विषयो मे मतभेद रह गया। अत धर्मसिहजी महाराज ने विचार किया, कि–हममे दृष्टि-भेद उभर आता है। अत· आत्मिक उन्नति की दृष्टि से धर्मदासजी स्वतन्त्र ही दीक्षा ले-यही इष्ट है। क्योकि प्रयत्न करने पर भी हमारा मतभेद मिटाना सभव नही है।[46] यह विचार-भेद दोनो के लिए खेद का हेतु बन सकता है। अत धर्मसिहजी ने धर्मदासजी से कहा–'अपना विचार-भेद मिटने वाला है नही। अत. स्वत सुखपूर्वक दीक्षा लेकर, सयम आराधना करो और अपने आत्म-कार्य की सिद्धि करो।'[47] धर्मदासजी सोचने लगे 'क्या ऐसा हो सकता है?' अन्त मे उन्होने सर्वविरति को ग्रहण करने का सङ्कल्प कर लिया।

---

[42] 'अहो' धर्मदासजी ! तमो अत्यारे बारव्रतधारी श्रावकपणु पालो छो, तो पच महाव्रतधारी साधु का न थाओ ? कारण के आरंभ ने परिग्रह थी छूटा रहीं शकाय ते वो साधुवेश तो तमोए स्वीकार्यो छे'

—श्री रूपचन्दजी म, श्रीमद् धर्मसिहजी अने श्रीमद् धर्म पृ ४

[43] 'श्री धर्मदासजी ने श्री धर्मसिहजी पासे दीक्षा लेवा इच्छा हती'

—उपर्युक्त ग्रन्थ पृ० ६।

[44] एक प्राचीन पत्र की प्रतिलिपि। [45] मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ। मरुधर पट्टावली। [46] श्रीमद् धर्मसिहजी अने श्रीमद् धर्मदासजी पृ० ८। [47] अजमेर से प्राप्त एक प्राचीन पन्ने की प्रतिलिपि।

दीक्षा स्वत. ला या किसी के पास ? और कहाँ ली ?

अभीतक यही प्रसिद्धि रही है, कि–धर्मदासजी ने स्वत दीक्षा ली थी।[48] परन्तु 'मरुधर-पट्टावली' की प्राप्ति के वाद यह मत भी उपस्थित हो गया है, कि–उन्होने जीवराजजी म से दीक्षा ली।[49] इस मत पर विचार करना आवश्यक है।

मरुधर-पट्टावली के अनुसार–'एक तो स्वय आप तथा इक्कीस व्यक्ति अन्य, इस प्रकार बाईस व्यक्तियो ने अमदावाद के वाहर वादशाही वाडी मे सवत् १७२१ की कार्तिक सुदी पचमी को जीवराजजी स्वामी के पास दीक्षा धारण की। .. धनराजजी आदि इक्कीस जने धर्मदासजी के शिष्य हुए।'

श्री रूपचन्दजी म 'रजत' का मत निम्नलिखित है—

'योग्य गुरु एव सन्मार्ग की खोज मे घूमते हुए धर्मदासजी मालवा पहुँचे। मालवा मे आपको जगाधर (!) यति के शिष्य ज्योतिर्धर जीवराजजी महाराज के दर्शन हुए ...धर्मदासजी ने श्रद्धा-पूर्वक उनसे अध्यात्म-चर्चा की .जीवराजजी ने .. शकाओ का समाधान किया धर्मदासजी की प्यासी आत्मा को शान्ति प्रदान की। . एक वर्ष और कुछ दिन तक पोतियाबध पथ के अनुयायी रहे ...वि स १७१९ (!) की कार्तिक शुक्ला ५ के दिन बीस अन्य व्यक्तियो के साथ जीवराजजी से दीक्षा ग्रहण की।'

—मरुधर-केसरी-अभि ग्र पृ १४१

इन दोनो मतो मे समानता होते हुए भी दीक्षा के काल, स्थान और साथ दीक्षित व्यक्तियो की सख्या मे परस्पर स्पष्ट मतभेद है। दीक्षा के काल के विषय मे दोनो की परम्परागत मत से भिन्नता है।

---

[48]भूधर पट्टावली, गुजरात पट्टावली, मेवाड-पट्टावली, महावीर स्वामी से सतो की पट्टावली, मालवा-पट्टावली, धर्मदास-उत्पत्ति आदि। [49]मरुधर-पट्टावली और मरुधर-केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ।

अभी तक धर्मदासजी म का दीक्षा-स्थान असदावाद ही माना जाता रहा है। मरुधर-पट्टावली मे भी यही मत मान्य है। परन्तु 'रजत' जी का मत एकदम भिन्न है। उनके मतानुसार धर्मदासजी मालवा (सभवत. उज्जैन) मे दीक्षित हुए थे। किन्तु निर्विवादता से मान्य दीक्षा-स्थान से भिन्न दीक्षा-स्थान मानने मे कोई भी हेतु या प्रमाण आपने उपस्थित नही किया है।

जव धर्मदासजी जीवराजजी म के शिष्य रूप मे दीक्षित हुए तव उनके स्वत. दीक्षा लेने की वात क्यो प्रसिद्ध हुई इस प्रश्न का उत्तर दोनो ने समान ही दिया है। मरुधर-पट्टावली के अनुसार धर्मदासजी महाराज के गुरुदेव की उन पर पन्दरह दिन और रजत' जी म के मतानुसार इक्कीस दिन मात्र ही छत्रच्छाया रही। अत लोगो मे यह वात प्रसिद्ध हो गई, कि–धर्मदासजी म ने स्वत दीक्षा ली।

यदि इस प्रकार की घटना हुई हो तो भी इसके विशेष पुष्ट प्रमाणो का अभाव है। गुजराती-पट्टावली मे धर्मदासजी म के पूर्व उनके होने की भविष्यवाणी के रूप मे एक वृद्धवाक्य दिया गया है। यथा–'अमदावाद के समीप सरखेज ग्राम मे, जीवन पटेल के पुत्र श्रावक भावसार धर्मदासजी, सूत्र निरयावलीका के वर्ग तीसरे, अध्ययन दूसरे को सुनकर, सतरह जन के साथ स १७१६ आश्विन सुद ११ के दिन, चौथे पहर विजयमुहूर्त मूल नक्षत्र मे, स्वहस्त से पातिसाह वाडी मे, दीक्षा ग्रहण करके, जैन मार्ग की प्रभावना करेंगे, गया हुआ धर्म लौटाएगे, चारो दिशाओ मे सघ की स्थापना करेंगे, पाट वासठवे पर युग प्रधान होगे।' इन भविष्यवाणी रूप वाक्यो मे उनके स्वत दीक्षित होने की वात कही गई है।

'धर्मदास-उत्पत्ति' का लेखक लिखता है– इस प्रकार साधु के पास सुनते हुए धर्मदास को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने मन मे सोचा 'जिसके पास मैं दीक्षा लूँगा, उसका मुझे विनय-वैयावृत्य करना पडेगा। आज्ञा माननी पडेगी। इसलिए मैं अपने-आप ही दीक्षा लूँगा। अकेले को तो कोई मानगे नही। तीन जने हो तो टोला बन सकता है।' तब उसने

कई स्वारों को उपदेश दिया, कि-जो तुम दीक्षा लो तो हम टोला बनाकर, विचरण करें। तब दो स्वारों ने यह बात स्वीकार की।' यद्यपि यह लेखन ईर्षावृद्धि से हुआ है और वे 'एक पात्रीय' श्रावक बन चुके थे, यह बात भी लेखक ने भुला दी है, फिर भी इसमें धर्मदासजी के स्वतः दीक्षा लेने का तथ्य स्पष्ट हो रहा है।

भूधरजी की पट्टावली में-'आपने मेळे दिख्या लीधी' अर्थात् 'अपने-आप दीक्षा ली' और मन्ना की पट्टावली में-'स्वतः सात जणा का परिवार सु दीक्षा धारण करी' लिखा है।

दरियापुरी सम्प्रदाय के पण्डित मुनि श्री हर्षचन्द्रजी म. के मतानुसार-'श्री धर्मदासजी ने स्वतन्त्रपने दीक्षा ली।' मालवा-पट्टावली का भी यही मत है।

'जैनधर्म नो प्राचीन संक्षिप्त इतिहास अने प्रभुवीरपट्टावली' में प. श्री मणिलालजी म. ने इस प्रकार लिखा है, कि-'धर्मसिंहजी के समान धर्मदासजी भी अपने प्रथम उपकारी का विनय करके निकले। माता-पिता आदि की आज्ञा लेकर, मात्र १६ वर्ष की वय में वि. सं. १७१६ में आसोज सुदी ग्यारस के दिवस अहमदाबाद में आकर, सत्रह जनों के साथ पादशाहवाडी में उन्होंने भगवती दीक्षा अंगीकार की।'

इन सब प्रमाणों पर विचार करते हुए, जब तक कोई अन्य विशिष्ट प्रमाण प्राप्त न हो, तब तक यही मानना उचित है, कि-धर्मदासजी ने स्वतः दीक्षा ग्रहण की, किसी के पास नहीं और अहमदाबाद में ही दीक्षा ली, अन्यत्र नहीं।

क्या स्वतः दीक्षा ले सकते हैं?

धर्मदासजी म. की दीक्षा से एक प्रश्न उपस्थित होता है, कि क्या स्वतः दीक्षित हो सकते हैं? तीर्थंकर भगवान् स्वतः दीक्षित होते हैं। पर वे पूर्वभव से विशिष्ट श्रुत और अवधिज्ञान साथ लाते हैं। प्रत्येक बुद्ध स्वयं दीक्षित होते हैं, परन्तु उन्हें जाति स्मरण ज्ञान के द्वारा

पूर्वभव मे अधीत श्रुत स्मरण हो जाता है। अन्य भी कोई-कोई स्वयसम्बुद्ध आत्मा स्वत दीक्षित होते है, परन्तु उनके पास पूर्वभवाधीत विशिष्ट श्रुत होता है। अत इनके स्वत दीक्षित होने पर कोई प्रश्न नही उठता है। पर सामान्यजन स्वत दीक्षित कैसे हो सकता है। इस विषय मे कहा गया है, कि-अपने पूरे कुल या गण मे विकृति घर कर गई हो और वह कुल सुधरने के लिए तैयार न हो, तो आत्मार्थी स्वत उस कुल से अलग होकर, नई दीक्षा लेकर सयम-आराधना कर सकता है। पर यह बात क्रियोद्धारको के लिए उचित हो सकती है, उनके लिए नही, कि-जो अभी सागारधर्म से अनगार धर्म की ओर जाना चाहता है। यही बात धर्मदासजी म की दीक्षा को लेकर भी उठती है। इसका समाधान 'भूधर-पट्टावली' मे इस प्रकार किया गया है—

'गच्छ छोडीनै आपणै मेलं घणा दीप्या लीधी, तिम धर्मदासजी पिण आपनै मेलै दीप्या लीधी' अर्थात् जैसे गच्छ छोडकर कइयो ने स्वत दीक्षा ली, उसी प्रकार धर्मदासजी ने भी स्वत दीक्षा ली। इन पङ्क्तियो के लेखक का यह आशय है, कि-पोतियावध पथ भी एक गच्छ था। उसमे दीक्षित श्रावक सवरी कहलाते थे अर्थात् वे सवर-अवस्था मे ही जीवन यापन करते थे और भले ही दीक्षा न ली हो, पर साधु के बहुत-से आचारो का पालन करते थे तथा विशिष्ट रूप से श्रुत अभ्यास भी करते थे। अर्थात् शिथिलाचारियो का गच्छ साधुत्व से हटे हुओ का गच्छ था और 'एकपात्रीयो' का कुछ वैचारिक हीनता को लिए साधुत्व की ओर उन्मुख साधको का गच्छ था। जैसे अन्य क्रियोद्धारको के लिए स्वत दीक्षा लेने पर कोई प्रश्न उपस्थित नही होता है, वैसे ही धर्मदासजी की स्वत दीक्षा पर भी कोई प्रश्न उत्पन्न नही होना चाहिए। क्यो कि वे भी क्रियोद्धारक थे और क्रियोद्धारक के रूप मे ही उनकी प्रसिद्धि है। तथा धर्मदासजी ने श्रुत का विशेष अभ्यास भी किया था।

परस्पर विचार-विनिमय

जब धर्मसिंहजी म ने धर्मदासजी से प्रेमपूर्वक यह कह दिया कि—'हमारा-तुम्हारा मत परस्पर मिलता नही, अत तुम प्रसन्नता से

स्वत साधुत्व की दीक्षा ग्रहण करो', तब धर्मदासजी ने अपने संग रहे हुए सवरी श्रावको से विचार-विमर्श किया होगा। क्योकि उन्ही मे उनके सग दीक्षित होने वाले निकल सकते थे। उनके साथी उनकी धर्मसिंहजी म के सग हुई चर्चा के साक्षी भी रहे होगे। अत' उस चर्चा का प्रभाव उनपर भी पडा होगा। उस समय अहमदाबाद मे उनके सग कौन-कौन थे, उन सबके नाम मिलना सम्भव नही है। परन्तु दो के नाम प्राप्त होते है—(१) धनोजी और (२) सोमजी।

मरुधर-पट्टावली के अनुसार धनोजी (धनराजजी) उस समय धर्मदासजी के समवयस्क थे। उनका जन्म भी स १७०१ मे हुआ था। और स १७१३ मे पोतियाबध श्रावकत्त्व की दीक्षा ग्रहण की थी। अतः वे स. १७१५ मे कल्याणजी के सग सरखेज मे आये होगे और फिर धर्मदासजी की समान वय और बुद्धि की तीव्रता से आकर्षित होकर, उनके सग रहे होंगे। [50]एक वर्ष जितने काल मे, धर्मदासजी ने अपने शास्त्रीय अभ्यास के बल से 'एकपात्रीय' सम्प्रदाय मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया हो तो कोई आश्चर्य नही। अत. कई श्रावक उनके सग दीक्षित होने को तैयार हो गये होगें। क्योकि उन्होने भी शास्त्राभ्यास किया ही था और उन्हे भी आस-पास के वातावरण से उत्पन्न हुए प्रश्नो ने हृदय-मन्थन करने के लिए प्रेरित न किया हो-ऐसा हो नही सकता। अत जब धर्मदासजी ने लवजीऋषि और धर्मसिंहजी म. से चर्चा करके, जो निर्णय प्रकट किया, वह उन्हे ऐसा लगा होगा, कि—मानो धर्मदासजी ने उन्ही के विचारो को भाषा प्रदान कर दी है। वे उनके निर्णय से सम्मत हो गये। पर प्रश्न उठा, कि—अपने को दीक्षा कौन प्रदान करे? धर्मदासजी भी विचार सागर मे डूब गये। उन्हे लगा, कि—कोई स्थविर यति उनके कार्य मे सहयोग प्रदान करने का अनुग्रह करे तो कितना उत्तम हो।

---

[50]प्रभुवीर पट्टावली मे धनराजजी (धन्नोजी) का दीक्षा सवत् १७२७ भ्रान्त लगता है। उन्होने पहले 'एकपात्रीयो' मे दीक्षा ली हो, यह बात प्रमाणिक लगती है। हजारीमल-स्मृति ग्रन्थ पृ० १९६ मे मरुधर केसरीजी ने भी यही मत प्रकट किया है।

उपकारी का आशीर्वाद

धर्मदासजी को विचार करते हुए, अपने प्रथम उपकारी यति तेजसिंहजी की स्मृति हो आई। उनका वात्सल्य, शास्त्रज्ञान प्रदान करने की उदारता आदि याद आई। उन्होंने इस विषय मे उनसे प्रार्थना करने का विचार किया। चातुर्मास के दो मास बीत चुके थे और तीसरा मास चल रहा था। धर्मदासजी का मन कह रहा था कि–शुभ कार्य शीघ्र हो। उस समय यति तेजसिंहजी सरखेज मे विराजमान थे।[51] सरखेज अहमदाबाद से ज्यादा दूर नही है। अतः सम्भवत. धर्मदासजी तभी सरखेज यति श्री के पास गये होगे। उन्होने यति तेजसिंहजी से प्रार्थना की, कि–'आप क्रियोद्धार कीजिए। हम आपके शिष्य बनने को तैयार हैं' और सारी स्थिति उनके सामने रख दी। तब यति तेजसिंहजी ने कहा—

'महानुभाव! मैं क्रियोद्धार करने मे असमर्थ हूँ। चारो ओर व्याप्त इस शिथिलवाद का विदारण करने के लिए साहसी और दृढ व्यक्ति की आवश्यकता है। तुम्हारी यदि ऐसी इच्छा है तो यह कार्य तुम करो। मुझे विश्वास है कि,–तुम यह कार्य कर सकते हो। जाओ खुशी से शुद्ध चारित्र के मैदान मे उतरो। आत्मिक निराशा के अन्धकार को नष्ट करो और दयाधर्म की विजय-दुदुभि बजाओ।'

धर्मदासजी अहमदाबाद आये और दीक्षा की समस्त तैयारियाँ कर ली।

दीक्षा-सवत् और दीक्षा-तिथि

धर्मदासजी म. की दीक्षा सवत् के विषय मे चार मत और दीक्षा-तिथि के विषय मे दो मत हैं-(१) वि स १७१६[52],(२) स १७१९[53], (३) १२२१[54] और (४) १७३८।[55]

---

[51] प्रभुवीर-पट्टावली।

[52] प्र वी प। गुज प। मालवा प। [53] मरुधर के अ प्र। [54] मरुधर-पट्टावली। [55] धर्मदास-उत्पत्ति।

इन चार मतो मे प्रथम मत मे बहुमत है। वृद्ध-परम्परा के अनुसार प्रथम मत उचित लगता है। चतुर्थमत तो बिलकुल भ्रान्त है। इस मत मे धर्मदासजी की धर्मसिहजी (स. १६८५ से स १७२८ तक) से यत्किञ्चित् भी समकालीनता नही बनती है, जो कि समस्त परम्पराओ से विरुद्ध है।

दीक्षा-तिथि के विषय मे दो मत हैं-(१) आश्विन शुक्ला एकदशी[56] और (२) कार्तिक शुक्ला पञ्चमी।[57] दोनो तिथियाँ चातुर्मास मे ही पडती है। तिथि का वास्तविक निर्णय करने के लिए, कुछ भी प्रमाण नही है। पर प्राचीनता की दृष्टि से प्रथम मत को मान्यता देना ठीक है।

दीक्षा कितने जन के संग ?

धर्मदासजी ने कितने व्यक्तियो के सग दीक्षा ग्रहण की ? इस विषय मे विविध सख्याओ का उल्लेख प्राप्त होता है। किसी के मत से तीन[58] या अन्य मत से सतरह,[59] सात,[60] बीस[61] या इक्कीस[62] मनुष्यो के साथ दीक्षित हुए। 'तीन' सख्या के मतवालो ने धर्मदासजी को भी उसमे गिन लिया है। यथा–'उन्होने कुछ रगारो को उपदेश दिया . वहाँ दो रगारो ने दीक्षा लेना स्वीकार किया। उनके नाम–

(१) धर्मदासजी- (२) जीवोजी और (३) नागजी।[63]'

'बाद मे तीन भाइयो ने सयम लिया। तीनो भाई के नाम– धर्मदासजी, धनोजी और सोमजी। ये तीनो श्रावक थे। पढे-गुने, वोल-चाल मे प्रवीण और धर्मानुरागी भले थे। 'एकपात्रीय' श्रद्धावाले थे।'[64]

---

[56]गुजरात प , सताकी प , मालवा प । [57]मरुधर प , मरु के अ ग्र । [58]धर्मदास-उत्पत्ति। एक प्राचीन पन्ने की प्रतिलिपि। [59]गुजरात प । प्र वी प । मालवा प०। [60]सन्ता की प०। [61]मरुधर-केसरी अभिनन्दन-ग्रन्थ। [62]मरुधर-पट्टावली [63]धर्मदास-उत्पत्ति। [64]अजमेर स १९९० मे एक पुराने पन्ने की हुई प्रतिलिपि।

सात और सतरह मे लिपिकर्त्ता के दृष्टि-दोष से सतरह के स्थान पर सात लिखे जा सकते हैं। वीस और इक्कीस की सख्या मे स्मृति-भ्रम हो सकता है। सामान्यत इक्कीस की सख्या का उल्लेख हो तो कोई उसमे धर्मदासजी समेत इक्कीस मान सकते है और कोई धर्मदासजी के सिवाय इक्कीस जन। मरुधर-पट्टावली मे 'धर्मदासजी सहित वाईस पुरुषो की दीक्षा हुई, वे ही वाईस मुनि वाईस सम्प्रदाय के प्राय. आद्य पुरुष थे' यह मत स्थापित किया गया है और ऐसा होना असम्भव भी नही है। यद्यपि वे धर्मदासजी म के शिष्य रूप मे दीक्षित हुए थे, फिर भी उन्होने उन्हे अपने समान या विशेष वय के होने के कारण, अपने समकक्ष स्थान दिया हो-ऐसा भी सम्भव है।

इस प्रकार तीन, सतरह और इक्कीस इन सख्याओ के विषय मे विचार करके, सही सख्या को प्रमाणित करने का कार्य शेष रह जाता है। अनुमानत इनका समन्वय इस प्रकार हो सकता है। उन दीक्षितो मे धर्मदासजी म के उपदेश से प्रेरित दो भावसार हो सकते है तथा उन्होने श्रावक दीक्षा सतरह व्यक्तियों के सङ्ग और साधुत्व की दीक्षा इक्कीस व्यक्तियो के सग ग्रहण की होगी।

दीक्षा का तप और प्रथम भिक्षा

धर्मदासजी महाराज ने दीक्षा के वाद तप किया या नही—इस विषय मे दो मत दिखाई देते है। मरुधर-पट्टावली मे तप करने का उल्लेख नही है,[65] पर प्रभुवीर-पट्टावली और मालवा-पट्टावली मे अट्ठम तप करके दीक्षा स्थल पर ही रहने की वात लिखी है।[66] श्री धर्मदासजी महाराज ने दीक्षा के वाद तुरत तप किया हो, तो यह वात उनकी प्रकृति के अनुकूल लगती है। क्योंकि वे अमित उत्साह से दीक्षित हुए थे और तीर्थङ्करो की तप सहित दीक्षा लेने की वात भी उनकी स्मृति मे वाहर न होगी। आदर्श

---

[65] म० प०—'पहेले दिवसे गोचरी कुमारपाडा मा गया'। श्रीमद् 'दीक्षा लीधी, श्री धर्मदासजी भिक्षा माटे गृही कुल मा गया'। [66] प्र. वी प—दीक्षा-स्थले अट्ठम तप करीने रह्या' मा प—'जहा दीक्षा ली वही तेले का तप किया।'

और उत्साह से प्रेरित होकर उन्होंने तप किया होगा।

तप के तीन दिन ध्यान-समाधि मे व्यतीत हुए। चौथे दिन वे स्वय गोचरी के लिए निकले। उन्होने आहार के लिए एक घर मे प्रवेश किया। वह कुंभकारका घर था। पति-पत्नी मे किसी कारण से अनबन हो गई थी। कुम्हारिन मन ही मन नाराज हो रही थी। इतने मे धर्मदासजी महाराज ने उस घर मे प्रवेश किया।[67] उन्होने कुम्हार से आहार के लिए पूछा। कुम्हार ने कहा-'यहाँ रक्षा (राख) है'।[68]धर्मदासजी महाराज ने विचार किया, कि–'रक्षा' शब्द मङ्गलमय है और मैं भी धर्म की रक्षा के लिए निकला हूँ। अत मुझे प्रथम भिक्षा मे ही रक्षा उपलब्ध हो रही है तो प्रसन्नता-पूर्वक ले लेना चाहिए।' यह विचार करके उन्होंने कहा– रक्षा है ! इच्छा हो तो दो' कुम्हारिन उठी। सूँप मे राख पडी थी। उसने वह पात्र मे डाल दी। कुछ राख पात्र के बाहर उडकर फैल गई और कुछ पात्र मे गिरी। धर्मदासजी महाराज वह भिक्षा लेकर, वाहर निकले। कही से छाछ मिली।[69] उसमे रक्षा को घोलकर, उन्होने पारणा कर लिया।

भविष्य-वाणी

धर्मदासजी महाराज ने धर्मसिहजी महाराज से वात्सल्य पाया था और उनके स्वत दीक्षित होने मे उनका आशीर्वाद था। अत· उनका धर्मसिहजी म के प्रति पूज्यभाव था। वे पारणे के पश्चात् योग्य समय मे धर्मसिहजी म के दर्शनार्थ गये। वहाँ उन्होने प्रसगानुसार धर्मसिहजी म से भिक्षा मे मिली हुई रक्षा की वात कही। तब धर्मसिहजी म ने प्रसन्न मुद्रा मे, रक्षा के निमित्त मे सूचित होने वाले भविष्य के विपय मे कहा[70]–'धर्मदासजी ! सचमुच मे तुम भाग्यशाली हो। तुम्हे प्रथम

[67]प्रभुवीर प०। [68]मरुधर प०। [69]प्रभुवीर प० और मालवा प० के अनुसार छाछ मे और मरुधर-पट्टा० के अनुसार गरम पानी मे घोलकर, उस रक्षा का पान किया।

[70]मरुधर-प० के अनुसार यह भविष्य-फल जीवराजजी म ने कहा।

पारणे में ही रक्षा मिली है, यह तुम्हारे भाग्योदय का चिह्न है। रक्षा शुभ-सूचक है। अत तुम जिनधर्म को दीपाओगे। राख पात्र के चारों ओर उडी। इससे सूचित होता है, कि–आपका शिष्य-परिवार चारों दिशाओ मे विस्तार पाएगा। आपने राखको छाछ मे घोलकर पिया है। छाछ मे खटाश होती है। वैसे ही आपके शिष्यो का स्वभाव खटाश (पारस्परिक अप्रीति) वाला होगा। जैसे राख के कण जुदे-जुदे होते हैं, वैसे ही आपका सघ भी सगठित नही रहेगा।[71] जैसे राख के बिना घर नही होता है, वैसे ही लगभग हजार कोस मे तुम्हारे अनुयायी[72] श्रावकों के थोड़े बहुत घर प्राय प्रत्येक गाँव मे रहेगे।'

धर्मदासजी म ने धर्मसिंजी म से पूछा–'आपको प्रथम भिक्षा क्या प्राप्त हुई थी और उसके निमित्त से अपने विषय मे आपको क्या भविष्य-दर्शन हुआ।'

धर्मसिंहजी म ने सस्मित उत्तर दिया–'मुझे छट्ठ (बेला) के पारणे मे प्रथम भिक्षा मे चुरमे का लड्डू मिला था। जो पात्र मे पडते ही चिपक गया था। इस निमित्त से मुझे यह विचार हुआ, कि–मेरा परिवार अधिक विस्तृत क्षेत्र मे नही फैलेगा। सगठित रूप से सीमित क्षेत्र मे ही रहेगा।'

यो दोनो महापुरुष प्रसन्नता-पूर्वक वार्तालाप करते रहे। उपर्युक्त दोनो भविष्य-वाणियाँ सत्य सिद्ध हुई है।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का विहार

पूज्य श्री धर्मदासजी म कितने समय तक गुजरात-काठियावाड मे विचरण करते रहे और फिर उन्होने किस क्रम से अन्य क्षेत्रो मे विहार किया-इस विषय मे क्रमबद्ध वर्णन उपलब्ध नही हुआ। परन्तु ऐसी अनुश्रुति है कि–आपका विहार मालवा, कुछ उत्तर प्रदेश, यमुना-पार, मारवाड, मेवाड, सौराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशो मे हुआ। मालवा आपका

---

[71]प्रभुवीर-पट्टावली। [72]मालवा-पट्टावली। मरुधर-५०।

प्रमुख कार्य-क्षेत्र रहा । उज्जैन और धार आपकी जीवन-यात्रा से सबन्धित विशेष क्षेत्र रहे ।

आचार्य-पद-प्राप्ति

आपको आचार्य-पद कब प्राप्त हुआ-इस विषय मे भी विविधमत है । यथा —

(१) वि स १७२१, माघ शुक्ला पञ्चमी को आपको उज्जैन मे श्रीसघ ने आचार्य पद प्रदान किया ।[73]

(२) आपके गुरुदेव का आपकी दीक्षा के पन्दरह दिन बाद[74] । या इक्कीस दिन बाद[75] देहान्त हो गया । अत उनके मतानुसार वि स १७२१ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ या एकादशी से आपने अपने सघ के आचार्य रूप मे रहे ।

(३) आपको अपनी दीक्षा के छत्तीस वर्ष बाद अर्थात् वि स. १७५० मे आचार्य-पद प्राप्त हुआ ।[76]

पहले और दूसरे मत मे सवत् एक ही है, तिथि और स्थान मे मतभेद है । परन्तु तीसरे मत से उनतीस वर्षो का अन्तर पडता है । निर्णय के लिए अनुमान के सिवाय कोई प्रमाण नही है । उन्हे स १७२१ मे सघ विशेष ने आचार्य पद दिया होगा और उन्हे विविध क्षेत्रो मे परिभ्रमण करते हुए, उनतीस वर्षो के बाद युग प्रधान-पुरुषत्व प्राप्त हुआ होगा ।

जीवन की विशेष घटनाएँ

आपके जीवन की अन्तिम घटना ने जनता के मन को इतना अभिभूत कर लिया, कि–आपकी अन्य जीवन घटनाएँ स्मृति-पट से नीचे

---

[73]प्रभुवीर प , मालवा-प । [74]मरुधर-प , 'पनरे दिवस सामान्य प्रवरज्या पाली । पीछे बावन वरसा आचारजपणे रया ।' समत १७ वरस २१ सा मीगसर वद ५ जीवराज स्वामी देवलोक हुआ ।' [75]मरुधर-केसरी अ ग्र । [76]सिद्धपाहुड ।

उतर गई। आपके शिष्यो या प्रशिष्यो मे से किसी ने भी आपके जीवन-प्रसङ्गो का आलेखन नही किया। यदि किसी ने आलेखन किया भी हो तो वह लेखन प्राप्त ही नही हुआ। 'मरुधर-केसरी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' में आचार्य श्री के जीवन से सबन्धित एक प्रसङ्ग का उल्लेख इस प्रकार किया है।

वि स १७४० मे आचार्य श्री विचरण करते हुए, ग्वालियर पहुँचे। उन्होने नगर के वाहर ही एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम किया। राजा[77] जङ्गल मे शिकार खेलने के लिए गया था। उसे रास्ते में सर्प काट खाया। विषने अपना प्रभाव दिखाया। वह मृतवत् हो गया। अधिकारी लोग राजा की देह को लेकर नगर की ओर लौट रहे थे। उन्हें राजा मृतप्राय प्रतीत हो रहे थे। वे शोक सन्तप्त थे। उन्हे वृक्ष के नीचे स्वाध्याय-ध्यान मे लीन साधु दिखाई दिये। मन्त्री की दृष्टि उन साधुओ पर पडी। उसे अजनवी साधुओ को देखकर, उनपर क्रोध आ गया। वह उनके पास पहुँचा। उस युग की परम्परा के अनुसार उसने शीप तो नवाया, परन्तु अति कटु शब्दो मे वह वोला—'साधु वावा! आपका इस नगर मे आना अच्छा नही हुआ। देखो, आपके आते ही हमारे राजा को साँप ने डँस लिया। हम राजा के विरह से दुःखी है। प्रजा भी व्याकुल है। वावा! यदि आप सच्चे साधु हो तो राजा को जीवित कर दो। नहीं तो आप पर सङ्कट आया ही समझो। फिर आपकी मृत्यु भी दूर नही है।'

धर्मदासजी म निर्भयता से शान्ति-पूर्वक धीर-गम्भीर मधुर वाणी मे वोले—'महोदय! साधु मरे तो भी क्या और जिये तो भी क्या? उसको हर हालत मे आनन्द है। पर मेरे यहाँ आने मे और राजा को सर्प के काटने मे क्या सम्वन्ध है? और जो मर जाता है, वह पुनः लौटकर आता नही है। उसे मैं तो क्या, पर भगवान् भी जीवित नही कर सकते है।' यह कह कर, धर्मदासजी म मृतप्राय राजा के पास आ गये। मन्त्री का क्रोध मन्द हो गया था। सब मन्त्र-कीलित से देख रहे थे। धर्मदासजी

---

[77] राजा का नाम नहीं दिया गया है। उस समय 'सिंदे' का वहाँ राज्य नहीं था।

महाराज ने राजा की ओर दृष्टि डाली। उन्होने समझ लिया, कि–राजा मरा नही है। उन्होने मन्त्री की ओर अर्थ-गम्भीर दृष्टि से देखा। मन्त्री के हाथ सहज मे ही जुड गये और सिर झुक गया। आचार्य श्री बोले—

'महानुभाव! राजा मरे नही है। यदि आप ऐसा वचन दो, कि–आपके राजा सदा के लिए शिकार न खेलेंगे तो आपके राजा की चेतना लौट सकती है।'

मन्त्री सहज मे ही बोल उठा–'महात्मन्! हम वचन देते हैं, कि–राजा से हम शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा करवाएगे।'

आचार्य श्री एकटक राजा की ओर देखते रहे और अस्फुट स्वर में कुछ बोलते रहे। धीरे-धीरे राजा सचेत हुआ। कुछ देर वाद वह स्वस्थ हो गया। मन्त्री ने सारी घटना राजा से कह सुनाई। राजा नतमस्तक हो गया और उसने जीव-हत्या न करने की प्रतिज्ञा ले ली।

राजा एव प्रजा ने आचार्य श्री को वही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। उन्होने प्रार्थना स्वीकार की और वही चातुर्मास व्यतीत किया। इन्ही दिनो मे पाँच महानुभावो ने आपसे श्रमण दीक्षा ग्रहण की।[78]

इस घटना मे कितना ऐतिहासिक तथ्य है–यह हम नही कह सकते हैं। पर ऐसी घटना घटित होना असम्भव भी नहो है। वे उस युग के प्रधान पुरुष थे। उनके जीवन से सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हो सकती है। पर वे तथ्य प्रकाशित नही है।

वाईस सघाडों की स्थापना

क्या पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज ने स्वय वाईस सम्प्रदायो की स्थापना की? यह प्रश्न विचारणीय है। एक अनुमान ऐसा है, कि–धर्मदासजी महाराज ने वाईस सम्प्रदायो की स्थापना नही की।

[78] मरुधर केसरी अ० ग्र० पृ० १४२–१४३।

था और पीछे हो उन्हे शामिल करू तो चतुर्विध सघ को विदित होगा नही और उनके मन मे सदिग्धता (डावाँडोल) रह जाएगी। इसलिए समुदाय तो बावीस ही कायम रखेगे। परन्तु आपका व्यवहार अच्छा है . (लगता है, कि-मुद्रण मे इसके आगे का कुछ अश छूट गया है।) . उस दिन से चारो सघाडे धर्मदासजी महाराज की नेश्राय मे तो नही, पर नेश्राय जैसे रहे। धर्मदासजी महाराज ने फरमाया, कि-इन चारो सघाडो के साधु-साध्वी महा भाग्यवान है।'[80]

इन अवतरणो मे विचारणीय और विसवादी बाते हैं। आचार्य श्री ने व्यवस्था की दृष्टि से अपने साधु-सघ को पहले ही विभाजित कर रखा होगा। फिर उन्हे पुनरपि इन समुदायो की स्थापना क्यो करना पडी ? यदि चार सघाडे वाले सम्मिलित होने के लिए आये थे तो उन्हे एक जरासे कारण से सम्मिलित करने से इन्कार क्यो कर दिया ? जो चार नाम दिये है, उनमे भी समसामियकता नही बनती है। धर्मसिहजी महाराज का अस्तित्व-काल वि. सवत् १७२८ तक और अजरामरजी स्वामी जो धर्मदासजी महाराज के सतानीय साधु थे। का सवत् १८०९ से १८७० तक है। फिर वे स १७७२ मे धर्मदासजी महाराज के पास कैसे उपस्थित हो गये ! अत. इन दोनो अवतरणो की बाते अप्रामाणिक लगती है। परन्तु इतनी बात तो निश्चित है, कि-भले ही आचार्य श्री ने किसी नियत तिथि को बाईस सम्प्रदायो की स्थापना न की हो परन्तु 'बाईस सम्प्रदायो' या 'बाईस टोलो' का सम्बन्ध, पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज से ही रहा है[81] और अन्य क्रियोद्धारक महापुरुषो के सन्तो के साथ अच्छा व्यवहार रखने की उनकी अपने सन्तो को आज्ञा रही होगी।

आपके निन्यानवे शिष्य थे-इस बात मे किसी का भी मतभेद नही है। एक अनुश्रुति ऐसी भी है, कि-पूज्य श्री के सौ शिष्य हुए थे।

---

[80]मरुधर प० (प० प्र० स) पृष्ठ २६५।

[81]'.. ९९ शिष्य हुए। उन शिष्यो को २२ भागो मे विभक्त कर दिया। वही से २२ सम्प्रदायो का बीजारोपण हुआ-ऐसा वृद्धवाक्य है।'

—आदर्श आचार्य अवतरण पृ० ५

हम सथारा कैसे करवा सकते है ?' श्रावक–'महाराज ! कैसी बात करते हैं आप भी ! गुरुदेव सब शिष्यो के सङ्ग कैसे रह सकते हैं ! आपको अपना अवसर पहचानना चाहिए। शुभ कार्य मे गुरुदेव की तो आज्ञा ही है।'

आखिर मे श्रावको और साधु दोनो की ओर से विवश होकर, बडे सन्त ने रुग्ण साधु को यावज्जीवन का अनशन करवा दिया। रुग्ण साधु की, 'अब दीपक बुझा-अब दीपक बुझा' जैसी स्थिति हो रही थी। सब साधु उसके समीप बैठे हुए थे। श्रावक-श्राविकाओ का दर्शनार्थ ताँता लगा हुआ था। ऐसे पूरा दिन व्यतीत हो गया। दूसरा दिन भी बीत गया। साधु का रोग शान्त होने लगा। कुछ दिन बाद साधु को क्षुधा का उदय हुआ। वह क्षुधा से पीडित होने लगा। आखिर उसने भोजन की माँग की। साधुओ ने स्मरण कराया, कि–'आपने यावज्जीवन के लिए सथारा किया है न !' साधु बोला–'यह मुझे याद है, पर मुझे भूख सहन नही हो रही है।' यह बात प्रमुख श्रावको को भी विदित हो गई। अब साधुओ एव श्रावको की विचित्र स्थिति हो गई। श्रावकों को अब लगा कि–'हमने अनशन कराने का दबाव डालकर, कैसी स्थिति पैदा कर ली है !' वे रुग्ण साधु को समझाने लगे। पर उसने कहा–'मुझसे यह भूख सहन नही होती है।'

उस समय आचार्य श्री उज्जैन मे विराजमान थे। श्रावको ने वहाँ समाचार भेजने का विचार किया। उन्होने विमार साधु से कहा–'हम गुरुदेव के पास समाचार भेजते हैं। वहाँ से क्या आदेश प्राप्त होता है, तब तक के लिए आप शान्ति धारण कीजिए।'

आचार्य श्री का पदार्पण

आचार्य श्री के पास उज्जैन सूचना पहुँची। वे क्षणभर मौन रहे। क्षण मात्र मे इस स्थिति से सम्बन्धित विधान उनकी दृष्टि के समक्ष आ गये। परन्तु उन्होने आदेश देने के पूर्व वहाँ की स्थिति का स्वय निरीक्षण करना उचित समझा। आचार्य श्री ने फरमाया–'मैं जल्दी से जल्दी धार पहुँचने का प्रयत्न करता हूँ। तबतक के लिए सथारा भङ्ग न करे।'

आचार्य श्री ने उज्जैन से तुरत विहार किर दिया। आचार्य श्री धार के समीप पहुँच रहे थे। एक स्थान[82] पर मारवाड से दक्षिण की ओर जाते हुए व्यक्तियो ने भोजन तैयार किया था। साधुओ को देखकर उन्होने भावना भाई। वहाँ से कुछ आहार[83] लिया। थोडा-सा धोवन पानी भी मिल गया। साथ वाले मुनि को आहार नही करना था। अत पूज्य श्री ने आहार उपयोग मे ले लिया। पानी अपर्याप्त था। सोचा, कि–सन्ध्या तक धार पहुँच जाएगे। अनुमान के अनुसार ही पूज्य श्री सूर्यास्त के पहले-पहले धार पहुँच गये। उन्होने पानी के लिए पूछा। शिष्यो ने कहा-'अभी-अभी ही समाप्त किया है।' पूज्य श्री नेकहा-'अच्छा, कोई बात नही।'

रुग्ण शिष्य आकुल-व्याकुल हो रहा था। आचार्य श्री उसके पास गये। सुखशान्ति पूछी और कुछ देर वात की। इधर लोगो के आगमन का ताँता लग रहा था। प्रतिक्रमण का समय हो गया था। आप प्रतिक्रमण करने लगे।

शिष्य का उपाश्रय त्याग

प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर, पुन' सथारे वाले शिष्य के पास आये। अचार्य श्री ने पूछा–'बोलो, भैया ! क्या बात है ?' व्याकुल शिष्य वोला–'गुरुदेव ! मुझसे क्षुधा-परीषह सहन नही हो रहा है।' पूज्य श्री ने पूछा–'क्या तुमने अनशन अपनी इच्छा से किया है ?' शिष्य बोला–'हाँ ! मैंने अपनी इच्छा से ही लिया है।' तब आचार्य श्री उसे मधुर स्वर मे समझाने लगे–'भाई ! यह मनुष्य देह वार-वार नही मिलता है। यह बात सत्य है। इससे ज्यादा दुर्लभ है धर्म। देह के वदले धर्म का त्याग योग्य नही है। देह नश्वर है और धर्म अविनश्वर पद प्रदान करता है। जव

---

[82]उस स्यान के दो नाम प्राप्त होते है–भेरु-वावडी और देदला। धार के पास देदला नाम का छोटा ग्राम अभी भी है।

[83]'बाटिया मिली'–मालवा प०। 'तेल के भुजिए का आहार मिला'-म० के० म० ग्र०।

तुमने स्वय अपनी इच्छा से अनशन स्वीकार किया है, तव उसका भङ्ग करना उचित नही है। कुछ समझो और दृढ वनो। यह भूख तो क्या, पर इससे भी करोड़ो गुनी तीव्र भूख नरक मे सहन की है। वहाँ अज्ञान दशा मे भूख सहन करके थोडे ही कर्मो की निर्जरा की। अव ज्ञान दशा मे भूख सहन करने का प्रसङ्ग आया है। यह महती कर्म-निर्जरा का समय है। देवानुप्रिय! अव विचलित मत वनो। स्थिर होओ।'

शिष्य विह्वल हो रहा था। उसे ये वाते रुचिकर नही लग रही थी। गुरुदेव की अमृतवाणी, जिसका पान करते हुए वह कभी अघाता नही था, आज जहर जैसी लग रही थी। उसके परिणाम स्थिर नही हो रहे थे। उदर में जठरानल धधक रहा था। वह पीडा को भूल गया था। एक उदर-ज्वाला की ही असह्य पीड़ा याद रह गई। वह वोला 'गुरुदेव अव मुझसे नही सहा जाता है। भले अव मे यह मिट्टी ही खा लू गा। मुझसे यह क्षुधा की पीडा सहन नही हो रही है।' यह कहकर वह शय्या से उठ खडा हुआ 'गुरुदेव! मुझसे अव इस प्रतिज्ञा का पालन नही हो सकता है। आप विश्वास कीजिए, मैं जैन धर्म का परित्याग नही करू गा। पर मैं अव यहा नही रह सकता हूँ। मैं जाता हूँ।' यह कह कर, वह चल दिया। न जाने कहाँ से उसके दुर्वल शरीर मे शक्ति आ गई। आचार्य श्री उसे रोकते ही रह गय और सव लोग भी देखते रह गये। पर वह तो अति शीघ्र गति से उपाश्रय के वाहर निकल गया[84] सव आश्चर्य-चकित एक दूसरे का मुँह ताकने लगे कुछ देर तक तो 'क्या हुआ' यह वुद्धि ने ग्रहण ही नही किया। उस शिष्य का नाम किसी ग्रन्थ मे वताया गया है :-'लूणकरणजी'

आचार्य श्री का हृदय-मन्थन

आचार्य श्री का हृदय खिन्न हो गया। उन्होने कहा—'खैर, जो होना था सो हो गया। पर ऐसी हालत मे वह कहाँ गया होगा ?' आचार्य श्री की अनुकम्पा से श्रावक भी द्रवित हो गये।[85] आचार्य श्री विचार मे

[84]प्रभुवीर-पट्टावली। [85]श्रावको ने फिर उस साधु की खोज की या नही ? उसकी क्या स्थिति हुई ? इसका कही भी उल्लेख प्राप्त नही होता है।

पड गये। यह कैसी स्थिति हो गई है। जैनधर्म की अवहेलना का प्रसङ्ग उपस्थित हो गया है। यद्यपि ऐसी स्थिति के लिए, आपवादिक विधान है और शिष्य तो चल ही दिया है। लोग उन विधानो को क्या जाने ? सभी जगह अनशन की वात विस्तृत हो चुकी है। कल उसके अनशनभङ्ग की वात भी जैन-जैनतरो मे विद्युत् वेग से फैल जाएगी। जैनधर्म की कितनी निन्दा होगी। एक महत्वपूर्ण स्थान पर रहे हुए साधक के ढीले सङ्कल्प का जन समुदाय पर कैसा बुरा प्रभाव होगा ? लोगो मे यही वात होगी, कि—उच्च आचरण की वाते करते है, पर प्रतिज्ञा का महत्त्व तो समझा ही नही। मन हुआ तव प्रतिज्ञा लेली और मन हुआ तव प्रतिज्ञा भङ्ग कर डाली। जव साधुओ की ही यह स्थिति है और जव साधुओं को ही प्राणो का इतना मोह है तो वेचारे सामान्य ससारी जीवो का तो कहना ही क्या ? शिष्य गया। उसने साधुत्व का त्याग कर दिया। यह वडी करुणा की वात है। रङ्क के हाथ मे रत्न आया, पर उसने खो दिया। खैर, जो हुआ सो हुआ। पर मुझे क्या करना चाहिए ? मैं इस सघ का आचार्य हूँ। इसकी अच्छाई-बुराई का उत्तरदायित्त्व मुझपर है। धर्म की निंदा का विकट प्रसङ्ग उपस्थित हो रहा है। ऐसा कौन-सा उपाय करूँ, कि—जिसमे धर्म पर आये हुए अपवाद का निवारण हो सके। आचार्य श्री इस प्रकार सङ्कल्प-विकल्प के तूफान से गुजर रहे थे।

अनशन-स्वीकार

आचार्य श्री के मनश्चक्षु के समक्ष शास्त्रीय घटना—प्रसङ्ग उपस्थित हो गया। 'कण्डरीक मुनि राजा पुण्डरीक से राज्य का अपना उत्तराधिकार माँग रहे है। राजा पुण्डरीक मुनि को सयम मे दृढ रहने का उपदेश कर रहा है। पर मुनि सयम-त्याग को उद्यत हो रहे हैं। आखिर पुण्डरीक स्वय मुनिवेश को ग्रहण करता है और कण्डरीक राज-सिहासन ग्रहण करता है।' आचार्य श्री को इस घटना-प्रसङ्ग से प्रेरणा प्राप्त होती है और वे मन ही मन पक्का निर्णय कर लेते है। उस पट्टपर, जिसपर कि—अनशनी मुनि स्थित था, आप स्वय विराजमान हो जाते है और आपने उसी समय सभी मुनियो और श्रावको के समक्ष, अर्हन्त-सिद्ध को नमस्कार करके, उनकी साक्षी से जीवन-पर्यन्त अनशन

स्वीकार कर लिया। लोगो ने और साधुओ ने साश्चर्य कहा–'गुरुदेव! आपने यह क्या किया?' आचार्य श्री बोले–'बस, मुझे धर्म पर आनेवाले अपवाद का निवारण करने का, इसके सिवाय अन्य कोई उपाय दृष्टि-गोचर नही हुआ।' अब किसी का यह साहस नही हुआ, कि–उन दृढ प्रतिज्ञ से कोई कुछ भी निवेदन करे। सब के मन मे शोक व्याप्त हो गया और आचार्य श्री के प्रति श्रद्धा से मस्तक नत हो गया।

इस ि में म ा की अनु ि

इस विषय मे मालवा की अनुश्रुति कुछ भिन्न है। जब पूज्य श्री धार पधारे, तब उन्होने अनशनी शिष्य को अनशन मे स्थिर रहने का उपदेश दिया। पर उसे जरा भी शान्ति प्राप्त नही हुई। उसकी आर्तता बढती ही गई। उन्होने उसकी विह्वलता को और अनशन से पतित परिणामो को देखकर, शिष्य से हाथ पकड कर कहा–'भाई! यह वीरो की शय्या है। इस शय्या (पट्ट) पर प्राणो का मोह त्यागने वाला ही स्थित हो सकता है, उठो!' शिष्य पट्ट से नीचे उतर गया और उस पट्ट[86] पर आप स्वय विराजमान हो गये और जीवन भर का अनशन ग्रहण कर लिया। इसके बाद उस अनशनी मुनि की क्या अवस्था हुई-इस विषय मे पट्टावली भी मौन है।

अनशन ि ने दिन रहा?

आचार्य श्री के अनशन ग्रहण करने की बात दूसरे दिन वायुवेग से फैल गई। पूज्य श्री धीर भाव से स्वाध्याय मे तल्लीन रहते थे। कभी-कभी ध्यान मे निमग्न हो जाते थे। जो भी पूज्य श्री के अनशन की बात सुनता, वही दांतो तले अगुली दबा लेता था। अनशन के दिन व्यतीत हो रहे थे। शरीर क्षीण हो रहा था। पूज्य श्री प्रशमभाव का आस्वादन कर रहे थे। शरीर मे वेदना का प्रादुर्भाव हो रहा था। ग्रीष्मकाल था। अनशन के पूर्व, विहार मे आहार के बाद, पर्याप्त पानी

---

[86] जिस पट्ट पर पूज्य श्रीने अनशन किया था वह पाट आज भी धार मे विद्यमान है। पर सरक्षको मे ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव है।

का सयोग भी नही मिला था। अत वेदना होना सहज था। पर आचार्य श्री का धैर्य अपूर्व था।

यह अनशन कितने दिन चला-इस विषय मे चार मत है—(१) सात दिन,[87] (२) आठ दिन,[88] (३)नव दिन[89] और (४)तीन दिन।[90]

इसमे से कौन सा मत प्रमाणिक है, यह निर्णय देना अपने वस की वात नही है। हाँ यदि मालवा की अनुश्रुति को, पूज्य श्री के अनशन के क्षेत्र से सम्वन्वित होने के कारण, सुरक्षित परम्परा के रूप मे माना जाय तो पूज्य श्री का अनगन आठ दिन चला-यह कहा जा सकता है।

आचार्य श्री का देहावसान

आचार्य श्री अपने अनगन के दिनो मे जन-मानस में प्रायः धर्म-वीजो को डालते रहे। सामाधि पूर्वक समतामृत का पान करते-कराते हुए, आपश्रीने इहलोक–लीला समेट ली। जनमन इस त्याग पर मन्त्र-मुग्ध सा था। आप श्री ने जिस आत्म-ज्योति को सजोकर, साधना के लिए मङ्गल प्रयाण किया था, उसे अपने अनुपम महाप्रयाण से अखण्डित और विशेष दीप्त वना लिया।

आपके नश्वर देहके त्याग के विभिन्न सवत् और तिथि दिवस प्राप्त हैं—(१) सवत् १७७३,[91] (२) स, १७७२, ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी,[92]

---

[87]सातमे दिवम से पूज्य श्री नी आखो लाल चोल वनी गई, सर्वाङ्गे गरमाईए जोर कर्यु ...सातमा दिवसना अतिम व्याख्यान पछी पूज्य श्री नु शरीर एकदम शिथिल वनी गयु ...साजना तेओ श्री फानी दुनिया नो त्याग करी गया'
—प्रभुवीर पट्टावली पृ० २१९।

[88]मालवा-प० और अनुश्रुति 'आठ दिना को आयो सथारो'। [89]अज्ञात।
[90]महाराज श्री तीन दिन तक शान्त, स्थिर एव मौन रहे'– मरुधर के० अ० ग्र० पृ० १४३।

[91]'समत सतरे ने तीयोत्रे वरसे देवलोक हुआ धार नगर मध्ये'-मरुधर प०

[92]'वि. स १७७२ की ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को उन्होंने इस नश्वर काया को छोड दिया' मरुधर-के० अ० ग्र० पृ० १४३

(३) सवत् १७५९, आषाढ शुक्ला पचमी साझ को साढे पाच बजे,[93] (४) सवत् १७५८, फागुन शुक्ला एकम की मेघ भीनी सध्या,[94] (५) स. १७६८ मे,[95] और (६) स का उल्लेख नही, चौमासे मे सथारा किया।[96]

इन सवत् और काल की विभिन्नताओ को देखकर, ऐसा लगता है, कि–लेखको ने इस विषय मे बहुत असावधानी बरती है। ऐसे महान् और युगप्रधान आचार्य के शिष्यो-प्रशिष्यो ने भी या तो इस ओर कुछ ध्यान ही नही दिया या उन्होने आचार्यश्री के जीवन-चरित्र को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया भी हो तो वह अभीतक हमारे हस्तगत नही हुआ। परन्तु आश्चर्य तो यह है, कि–जिन के देह-त्याग को अभी तीन सौ वर्ष भी नही हो पाए है, उनसे सम्बन्धित एक भी तिथि या सवत मे मतैक्य नही है। खैर ।

देहावसान से सम्बन्धित छह मतो मे से प्रथम मत 'सिद्ध पाहुड' के मत से मिलता है। उस के अनुसार १४ वर्ष गृह-पर्याय-काल, ३४ वर्ष सामान्य प्रव्रज्या-काल और २३ वर्ष युग प्रधानत्व-काल है और उसी ग्रन्थ के ऊपर के वृद्ध-वाक्य मे आपका दीक्षाकाल स १७१६ बतलाया गया है। कुल चारित्र पर्यायकाल ५७ वर्ष होता है। दीक्षा सवत् मे ५७ वर्ष जोड देने से स १७७३ आ जाते है। परन्तु अन्य गणको ने १७१६ के वर्ष को गिनती मे लेते हुए गिना (जो कि है भी ठीक) होगा, अत सवत् १७७२ आया। स १७५९ के विषय मे ऐसा अनुमान होता है, कि–आचार्य श्री के दीक्षापर्याय काल ५७ वर्षो को गणको ने सर्वायु काल मान लिया हो तो उनके जन्म सवत् १७०१ या १७०२ मे उन वर्षो को जोडने से

[93] वि स १७५९ ना आषाड शुक्ल पचमी ए साजना साडा पाच वाग्ये ५९ वर्षनु आयुष्य भोगवी तेओ श्री फानी दुनिया नो त्याग करी गया'

—प्रभुवीर पट्टावली

[94]'मेवाडी हस्तिमलजी म० द्वारा लिखित पुस्तक 'आगम के अनमोल रत्न'

[95]'स १७३८ वर्षे धमंदास नामे रगारो वरस तीस माज मे सजम पाल्यो'

—धमदास उत्पत्ति

[96] धारनगर मे चोमासा मे सथारो कीघो' —भूधरजी की पट्टावली

स १७५८ या १७५९ निकल आता है। 'धर्मदास-उत्पत्ति' गत वर्षोल्लेख तो कर्णोपकर्ण सुना हुआ मात्र प्रतीत होता है-अतः वह विश्वसनीय नही है। अत विचार करते हुए आचार्यश्री का देहावसान स. १७७२ विश्वास के योग्य लगता है। पर इसमे भी एक बाधक कारण उपस्थित है। आचार्य श्री के शिष्य श्री मूलचन्दजी महाराज को स. १७६४ मे अहमदाबाद मे आचार्य पद दिये जाने का उल्लेख प्रभुवीर पट्टावली पृ० २२१ मे हुआ है। यदि आचार्य श्री के देह-विलय के पूर्व ही श्री मूलचन्दजी म को आचार्य-पद प्राप्ति मान ले तो उस सवत् के मान्य होने मे खास वाधा नही रहती है।

अब रही तिथि निर्णय की बात। तीसरे, चौथे और छट्ठे मत मे वर्षा से सम्बन्ध जुडा हुआ है। छट्ठे मत मे चौमासे के समीप काल को चौमासा मान लेना सम्भव है। अतः तीसरा और छट्ठा मत एक हो जाता है। इस प्रकार तीन मत रह जाते है, (१) ज्येष्ठ शु एकादशी, (२) आषाढ शु ५ और (३) फागुन शु. १। इन तीनो मत मे इतनी समानता है, कि-सभी शुक्लपक्ष मे आचार्य श्री का देहावसान मानते है। इन तीनो मे से किसी एक मत को प्रमाणित करना, बिना प्रमाण के सम्भव नही है। आषाढ शुक्ला पचमी की ओर मन ज्यादा झुकता है। पर इतिहास मे मनमानी नही चल सकती है और इन तिथियो के समन्वय का भी कोई मार्ग नही है।

एक शंका का समाधान

यह प्रश्न उठ सकता है, कि-क्या आचार्य श्री का यह आत्म-वलिदान उचित था ? ऐसा ही प्रश्न, लगभग बीस-इक्कीस वर्ष पूर्व दीक्षा के पहले मेरे हृदय मे उठा था। उस समय के विचार-द्वन्द्व और समाधान को मैंने नोध किया था-उसे यहा दे रहा हूँ—

'आचार्य-प्रवर धर्मदासजी महाराज के आत्म-वलिदान की कहानी मैं बचपन मे भी सुना करता था। परन्तु उस समय उस कहानी के मर्म को या आत्म-वलिदान के महत्त्व को समझने की शक्ति नही थी। परन्तु-जव बुद्धि कुछ तर्क-योग्य हुई तो अकस्मात् विचार तरङ्ग उठी, कि-इस प्रकार मृत्यु के वरणको वलिदान कहे या और कुछ ? वलिदान

कहता तो उसका सूक्ष्मतत्त्व ग्रहण नही हो पाता था और आत्महत्या कहने का दु साहस हो नही सकता था। आचार्य श्री शास्त्रज्ञ थे, उनका विशाल विहार-क्षेत्र था, सौ मे एक कम शिष्यो के गुरु थे और जिनका अनुयायी श्रावक वर्ग भी प्रबुद्ध था। वे ऐसी गलती कैसे करते ? मैं जब भी इस विषय मे विचार करता, तब-तब मैं विकल्प जाल मे फँसकर, उलझ जाता था। एकदम या तो अश्रद्धा का स्वर मुखरित हो उठता था या अपने आपके प्रति तिरस्कार उत्पन्न हो जाता था। अत मैंने इस विषय मे सोचना ही बद कर दिया। परन्तु आज उलझन सुलझ गई है– कुछ रहस्य खुल गया है। यद्यपि जैन दर्शन का गहरा अध्ययन मुझे नही है और जैन दर्शन की कसौटी पर, इस बलिदान को कसना-मेरा काम भी नही है। मैंने सङ्कल्प के माहत्म्य का जो तथ्य पाया, वह आचार्य श्री की इस जीवन-गाथा मे उजागर हो रहा है। आज मेरे लिए सङ्कल्प-दृढता के हेतु आचार्य श्री की जीवनी प्रकाश-स्तम्भ के समान है। .. जिसने सत्सङ्कल्प की कीमत नही जानी, उसने कुछ नही जाना। असत् सङ्कल्प से भव की-जीवन की सृष्टि होती है और सत्सङ्कल्प से भव से मुक्ति-ससार-परिभ्रमण से मुक्ति मिलती हैं। इसलिए जीवन से कही अधिक सत्सङ्कल्प का मूल्य है। सत्सङ्कल्प की नीव पर ही धर्म स्थित है। सत्सङ्कल्प की तौहीन धर्म की तौहीन-मुक्ति की तौहीन है। जिसका सङ्कल्प वल-हीन है, वह जिन्दा होते हुए भी मुर्दा है। किसी अधिकारी की-धर्म के विशेष आराधक की सङ्कल्प-हीनता सारे धर्म-शासन को डगमगा देती है और लोक दृष्टि मे धर्म-शासन धूमिल हो जाता है। अत धर्म की चमक पर आये हुए उन धब्बो को धोने के लिए, किसी महान् का आत्म-बलिदान ही समर्थ हो सकता है।'[97]

---

[97]'सिद्ध पाहुड' में एकभवावतारी युग प्रधानो मे आचार्य श्री का नाम है। भक्तो की ऐसी धारणा है, कि-आचार्य श्री द्वितीय स्वर्ग मे गये हैं और वृद्धवाक्य में भी इस बात का उल्लेख है।

तृतीय-अध्याय

श्रीमद् धर्मदासजी महाराज

के

शिष्यों की परम्पराएँ

थे। उस समय तक न तो मूलचन्दजी महाराज ही दीक्षित हुए थे और न रामचन्द्रजी महाराज ही । अत. तत्-तत् पट्टावलियो मे जो अपने-अपने आद्याचार्यों को प्रथम शिष्य कहा गया है, उन्हे वहाँ उल्लिखित क्रम की अपेक्षा से प्रथम शिष्य समझना चाहिए-दीक्षा क्रम की अपेक्षा से नही ।

मेवाड-परम्परा के अनुसार छोटे पृथ्वीराजजी महाराज आचार्य श्री के पाँचवे शिष्य थे[103] और सीतामहू-शाखा के पूज्य श्री ऋषि मोतीचन्दजी महाराज के मतानुसार, सीतामहू-शाखा के प्रवर्तक पूज्य श्री जसराजजी महाराज लघु शिष्य थे ।[104] इन उल्लेखो के सिवाय तत्सबन्धी सामग्री प्राप्त न हुई ।

आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज की शिष्य-परम्पराएँ

पूज्य श्री का शिष्य परिवार बाईस भागो मे विभाजित होकर विचरण करता था । वे बाईस सघाडे या बाईस सम्प्रदाय या बाईस टोला के नाम से प्रसिद्ध हुए ।[105] उन सभी सघाडो की परम्पराएँ चली या नही ? यदि चली तो कब तक चली और कई परम्पराएँ कहाँ एव कब विच्छिन्न हो गई ? -इन जिज्ञासाओ के समाधान के लिए प्रामाणिक जानकारी सग्रह करना सम्भव नही है । किन्तु यह तो निश्चत तथ्य है, कि सभी सघाडो की परम्पराएँ अभी विद्यमान नही है और यह भी असदिग्ध सत्य है कि-कई सघाडो की परम्पराएँ अभी भी विद्यमान है ।

---

[103] 'पूज्य श्री धमदासजी महाराज के पाचवें शिष्य छोटे पृथ्वीराजजी म हुए । मेवाड-सम्प्रदाय की शाखा उन्ही से सम्बन्ध रखती है ।'

—आदर्श आचार्य-अवतरण पृ ५

[104] गणनायक धर्मदासजी रे, हुआ नीनाणु सीस ।
लघु चेला जसराजजी रे, तपकर गाली देह (रीस) २९ ।

—सत्यशील प्रवन्ध ढाल १७ वी ।

[105] बाईस सम्प्रदायो के नामो मे मतभेद है । प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार बाईस सम्प्रदायो के नाम इस प्रकार हैं—

१. पूज्य श्री मूलचन्दजी महाराज
२ „ धनाजी महाराज
३. „ लालचन्दजी महाराज
४ „ मनाजी महाराज
५ „ मोटा पृथ्वीराजजी म.
६. „ छोटा पृथ्वीराजजी म.
७ „ वालचन्दजी महाराज
८. „ ताराचन्दजी महाराज
९ „ प्रेमचन्दजी महाराज
१० „ खेतशीहजी महाराज
११ „ पदार्थजी महाराज
१२ पूज्य श्री लोकमलजी महाराज
१३ „ भवानीदासजी म.
१४ „ मलुकचन्दजी महाराज
१५ „ पुरुषोत्तमजी महाराज
१६. „ मुकुटरायजी महाराज
१७ „ मनोरदासजी महाराज
१८ „ रामचन्द्रजी महाराज
१९ „ गुरुसहायजी महाराज
२० „ वाघजी महाराज
२१ „ रामरतनजी महाराज
२२ „ मूलचन्दजी महाराज

मरुधर-पट्टावली के अनुसार २२ सम्प्रदायो के नाम इस प्रकार हैं—

१ पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२ „ धनराजजी महाराज
३ „ लालचन्दजी महाराज
४ „ हरीदासजी महाराज
५ „ जीवाजी महाराज
६ „ वडा पृथ्वीराजजी म
७ „ हरीदासजी महाराज
८ „ छोटा पृथ्वीराजजी म
९ „ मूलचन्दजी महाराज
१०. „ ताराचन्दजी महाराज
११. „ प्रेमराजजी महाराज
१२ पूज्य श्री खेताजी महाराज
१३ „ पदारथजी महाराज
१४ „ लोकपनजी महाराज
१५ „ भवानीदासजी महाराज
१६ „ मलुकचन्दजी महाराज
१७ „ पुरुषोत्तमजी महाराज
१८ „ मुगद (मुकुट) रायजी म
१९ „ मनोरजी महाराज
२० „ गुरुसाहजी महाराज
२१. „ समरथजी महाराज
२२ „ वागजी महाराज

ऊपर की नामावली मे मूलचन्दजी नाम दो वार आया है, जब कि नीचे की मे हरीदासजी नाम। जिसका ऊपरकी नामावली मे जिक्र ही नही है। तथा धमदासजी व समरथमलजी का भी नाम नही है। नीचे की नामावली मे रामचन्द्रजी, रामरतनजी (वस्तुत ये दोनो एक सम्प्रदाय हैं) और मनाजी का नाम नही है। धर्मदासजी की परम्परा रामचन्द्रजी की ही परम्परा रामचन्द्रजी की ही परम्परा है। अन्य नाम प्राय: समान हैं।

भले हीकई सघाडे विच्छिन्न हो गये हो, परन्तु इन सघाडो का स्थानकवासी सघो पर इतना उपकार था, कि–एक समय समस्त स्थानकवासी समुदाय 'वावीस टोला' के अनुयायी के रूप मे पहचाना जाता था, यद्यपि समस्त समुदाय उनका अनुयायी था नही। यह बात उनके विशेष उपकार की ओर इगित करती है।

कई पट्टावलियो मे उनके पाच शिष्यो की परम्पराओ का उल्लेख मिलता है[106] (१) श्री धन्नाजी म (२) श्री मूलचन्दजी म (३) श्री छोटे पृथ्वीराजजी म (४) श्री मनोहरदासजी म और (५) श्री रामचन्दजी म। इनके सिवाय दक्षिण[10] और पजाब की परम्पराएँ भी विद्यमान है। पजाब सम्प्रदाय के सत पजाब सम्प्रदायमे सम्मिलित हो गये है। उनकी परम्परा का विशेष परिचय प्राप्त नही हो सका। मनोहरदासजी म की परम्परा के विषय मे मतभेद है। कई पट्टावलियो मे उपाध्याय[108] अमरचन्दजी महाराज के पूर्वजो को इस परम्परा मे गिनाया है। परन्तु पूज्य श्री रत्नचन्दजी महाराज की स्मृति मे प्रकाशित ग्रन्थ मे इस विषय मे मतभेद दरसाया है।

मारवाड़-परम्परा

पूज्य श्री धनाजी (धनराजजी) महाराज की परम्परा मारवाड मे ही विकसित हुई है। अत उसे मारवाड-परम्परा कहा जा सकता है। धनराजजी महाराज का, मारवाड के मालवाडा ग्राम के निवासी पोरवाड कामदार वाघाजी मूथा के यहा, स १७०१ मे जन्म हुआ था। उस युग मे माता-पिता अपने लाडले के सगपन-विवाह वाल्यकाल मे ही कर दिया करते थे। धनराजजी की सगाई भी वचपन मे ही हो गई थी। आपको पोतियावध श्रावको की सगति प्राप्त हुई और धर्म का रङ्ग लग गया। आपने स १७१३ मे सगाई छोडकर, 'एकपात्रीय' सम्प्रदाय मे पोतीयावन्ध

---

[106] प्रभुवीर प०, मालवा प। [107] म सन्ता की पटावली-'दूजा चेला दक्खण वाला हाल मे रतलाम वाला नो परिवार लिख्यते'-पृ ७। [103] प्रभुवीर पट्टावली। मालवा-प।

श्रावकत्व स्वीकार किया। वि स १७१५ मे या १७१६ मे आप श्री धर्मदासजी महाराज के सम्पर्क मे आये। उस समय धर्मदासजी 'पोतीयाबन्ध' श्रावको मे नवदीक्षित थे। परन्तु धनराजजी उनके शास्त्रीय ज्ञान और तीव्र बुद्धिबल मे उनकी ओर आकर्षित हुए और उन्ही के सग, उनके शिष्य के रूप मे, साधु-पर्याय मे दीक्षित हो गये।[109] अन्य मतानुसार[110] आप अपने जन्म स्थान मे ही, पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का उपदेश सुनकर, उनके पास स १७२७ मे दीक्षित हुए। इससे भिन्न उल्लेख भी मिलता है। मरुधर केसरीजी ने लिखा है-

चल दिये धनाजी साथ मालवा कानी, महाराज करे वहाँ धर्म प्रचार जी।
पूज्य धर्मदासजी महाराज उनको मिले सुखदानी जी ॥
उनसे चर्चा करत श्रद्धा सत आई, महाराज बने उनपे अनगारी जी।
गुरु भये धनाजी धन्य शिष्य भूधर अति प्यारा जी ॥

-श्रीमद् रघुनाथ (भूधरजी म. का जीवन चरित्र)

इस उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है, कि-धनाजी और भूधरजी दोनो ने मालवा मे आकर, पूज्य श्री धर्मदासजी म के पास, एक पात्रीय श्रावकत्व को छोडकर, साधु-दीक्षा स्वीकार की। इस मत का उल्लेख करने वाले लेखक ही इससे भिन्न मत भी अभिव्यक्त करते हैं। यथा- 'आप ....परिवार छोडने निकलिया। बादमे धर्मदासजी म तथा धनाजी म रा ससर्ग मे साची बात जाणने (पोतीयाबध धर्म छोड़कर) शुद्ध साधुपणो लियो।'

-समाजरा साँचा सपूत (हजारीमल स्मृतिग्रन्थ पृ ११६)

इससे यही बात सिद्ध होती है कि-धनाजी म. और भूधरजी म दोनो पहले पोतीयाबद सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे। परन्तु बादमे भिन्न २ समय मे उन्होंने साधुमार्ग को स्वीकार किया था।

---

[109] मरुधर-पट्टावली मे धर्मदासजी महाराज का दीक्षाकाल स १७२१ माना है। अत. आपका भी दीक्षा-काल यही माना गया है। [110] प्रभुवीर-पट्टावली।

धनाजी महाराज दीर्घजीवी सन्त थे। 'आप आडो आसन करने सूवता नही-आतापना लेता।'[111] आपने पिछली वयमे बहुत समय तक एकान्तर तप किया। फिर ९ महिने तक बेले-बेले की तपश्चर्या की। घृत-पुडी के सिवाय आपके सभी विगयो के त्याग थे।[112] अन्तिम बेले के पारणे के दिन आपने, शिष्यो के पारणे का आग्रह करने पर कहा-'अब खम्भा धान खाय, तो धना धान खाय।' फिर दो दिन के सथारे सहित देह त्याग दिया। आपके देहान्त के दो सवत प्राप्त है-१७८० और १७८४।[113]

धनाजी महाराज के कई शिष्य हुए। उनमे से श्री भूधरजी महाराज को आचार्य पद प्रदान किया गया। आप बडे विशिष्ट सन्त थे। आपके नव शिष्य हुए। जिनमे श्री रुगनाथजी म[114] या रघुनाथजी म, श्री जयमलजी म और श्री कुशलजी म ये तीन प्रमुख सन्त हुए। ये तीनो ही आचार्य रूप मे प्रसिद्ध हुए और तीनो की परम्पराएँ चली। जिनसे पाच सम्प्रदाय और एक पथ चला-(१) पू श्री रुगनाथजी म की सप्रदाय, (२) पू श्री जयमलजी म की सम्प्रदाय, (३ पू श्री रतनचन्दजी म की सम्प्रदाय, (४) पू श्री चौथमलजी म. की सम्प्रदाय, और (५) पू श्री महाचन्दजी म की सम्प्रदाय। सम्प्रति रुगनाथजी म की सम्प्रदाय के मरुधर-केसरी मिश्रीमलजी म, पू श्री रतनचन्दजी म. की सम्प्रदाय के पू श्री हस्तिमलजी म. और पू श्री जयमलजी म की सम्प्रदाय के श्री जीतमलजी म., श्री मिश्रीमलजी म 'मधुकर' आदि प्रमुख सन्त है और कई विदुषियाँ एव तपस्विनियाँ साध्वियाँ भी है।

---

[111] समाज रा साचा सपूत (हजारीमल स्मृतिग्रन्थ पृ०)

[112] भूधरजी की पट्टा०। [113] (अ) 'आया मरुधर सेर मेडते, सतरा अस्सी साल पूज्य धनाजी कर सथारो, कर गया वांपे काल।'

—मरुधर केसरजी, श्रीमद् रघुनाथ।

(आ) मरुधर-पट्टा०-। प्रभुवीर प०-।

[114] आपका 'श्रीमद् रघुनाथ' नामसे जीवन चरित्र प्रकाशित हो चुका है।

पूज्य श्री रुगनाथजी म के शिष्य या प्रशिष्य भीपणजी स्वामी से स १८१५ या १८१६ मे तेरापन्थ का प्रारम्भ हुआ। सैद्धान्तिक मतभेद के कारण या तो पूज्य श्री ने उन्हे वगडी मे गच्छ के बाहर कर दिया या वे स्वय अलग हो गये। अभी उनके नवम आचार्य श्री तुलसीगणी विद्यमान है।

गुजरात-परम्परा

गुजरात-परम्परा पूज्य श्री धर्मदासजी म के शिष्य पूज्य श्री मूलचन्दजी म. की परम्परा है।

पूज्य श्री मूलचन्दजी म का जन्म, अहमदावाद मे दशा श्रीमाली कुल मे हुआ था। प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार आप १८ वर्ष की वय मे दीक्षित हुए।[115] आपको स १७६४ की पौषी पूर्णिमा को अहमदावाद मे आस्टोडीया के उपाश्रय में श्रावक सघ ने आचार्य पद पर स्थापित किये। आपके सात शिष्य हुए। आप ८१ वर्ष की वय मे अहमदावाद मे अनशन पूर्वक स १८०२[116] या १८०३[117] मे दिवगत हुए। आप श्री का परिवार गुजरात मे अनेक शाखा-प्रशाखाओ मे विभाजित होकर विकसित हुआ।

आपके शिष्य-प्रशिष्यो से कई सघाडो या सम्प्रदायो की उत्पति हुई। ऐसा अनुमान होता है, कि–जहाँ-जहाँ स्थविर सन्त विराजमान हुए, वहाँ-वहाँ से उनकी परम्परा मूल सघाड़े से अलग होकर, स्वतन्त्र सघाड़े के रूप मे प्रतिष्ठित हो गई और कुछ सघाडे मतभेद के कारण से भी

[115]आपके देह त्याग के सवत् मे प्राय विवाद नही है। स १८०२ या १८०३ में आपका देहान्त हुआ। तब आपकी वय ८१ वर्ष की थी। अत. आपका जन्म सवत् १७२१ या २२ ठहरता है। यदि १८ वर्ष की वय मे दीक्षा हुई हो तो स १७३८ या ३९ निश्चित होता है पर पट्टावली-प्रवन्ध सग्रह-गत गुजरात-पट्टा. मे (पृ० २०९) स. १७५३ में दीक्षा वताई है। तदनुसार दीक्षा के समय ३१ या ३२ वर्ष की उम्र ठहरती है।

[116] गुजरात-पट्टावली। [117] प्रभुवीर पट्टावली।

उत्पन्न हुए। (१) लीबडी मोटो सघाडो, (२) लीबड़ी सघवी सघाडो, (३) गोडल मोटो सघाडो, (४) गोडल सघाणी सघाडो, (५) बोटाद सघाडो, (६) बरवाला सघाडो, (७) सायला सघाडो, (८) कच्छ मोटी पक्ष, (९) कच्छ नानी पक्ष, (१०) चूडा सघाडो, (११) ध्रागध्रा सघाडो, (१२), उदेपुर सघाडो आदि कई शाखा-प्रशाखाएँ हुईं। जिनमे से कई सम्प्रदायो की परम्पराएँ विच्छिन्न हो गई हैं। लीबडी के दो सघाडे, गोडल के दो सघाडे, बरवाला, बोटाद तथा सायला के सघाडे और कच्छ की मोटी तथा नानी पक्ष के साधु-साध्वियाँ वर्तमान मे कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात मे विचरण कर रही हैं। कई साधु विद्वान् और साध्वियाँ विदुषियाँ है।

मेवाड़-पर

छोटे पृथ्वीराजजी महाराज की शिष्य-परम्परा से मेवाड सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। आपका विशेष परिचय प्राप्त नही हुआ। आपकी परम्परा को (सम्भवत मालवा-स्थित सन्तो को) प्रतापगढ परम्परा के रूप मे भी कहा है।[118]

मेवाड-सम्प्रदाय की परम्परा इस प्रकार है—

धर्मदासजी पहला, दूजा छोटा पृथ्वीराज,
दुर्गादास तीजा, चौथा हरीरामजी।
पाँचवाँ गागोजी स्वामी, छटा रामचन्द्र हुए,
सातवाँ नाराणदास, किया शुद्ध काम जी॥
आठवाँ पूरोजी स्वामी, नवाँ रोडीदासजी,
दसवाँ नृसिहदासजी, मेवाड मे धामजी।
मानमल इग्यारवाँ, वारवाँ एकलिंगदासजी,
द्वादश पाट जाने, 'कालू' को प्रणामजी॥

पूज्य श्री एकलिङ्गदासजी के वाद, आचार्य श्री मोतीलालजी महाराज हुए। अव आपकी परम्परा मे प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म,

---

[118] 'छटो टोलो लोहडा पीथाजी को, प्रतापगढ का साध'
—कोटा परम्परा की पट्टावली प प्र मं)।

हस्तिमलजी म , शान्तिलालजी म , मगनलालजी म. 'रसिक', सौभाग्य-मुनिजी 'कुमुद' आदि सन्त विद्यमान है ।

पट्टावली-प्रवन्ध-सग्रह की मेवाड-पट्टावली मे उपर्युक्त परम्परा से भिन्न परम्परा दी गई है ।[119]

पूज्य श्री रोडजी (रोडीदासजी) स्वामी महान् तपस्वी एव प्रतापी सन्त थे । साधुचर्या मे किसी प्रकार दोष न लगे इस हेतु आप विशेष यत्नवान रहते थे । आप नित्य वेले-वेले पारणा, एक महिने मे दो अठाई और वर्ष भर मे दो मासक्षपण करते थे । हाथी और वैल के द्वारा भिक्षादान-सम्वन्धी, आपके उग्र अभिग्रह, उदयपुर मे फलीभूत हुए । पूज्य श्री मानमलजी महाराज भी वडे प्रभावशाली सन्त थे । राजा-राणा किंकरवत् आपके श्रीचरणो मे उपस्थित रहते थे ।

मालवा-परम्परा

अव रही पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा । आप की परम्परा पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की मालवा-परम्परा की एक सम्प्रदाय है । अव तक वर्णित विभिन्न प्रदेशो की परम्पराएँ पूज्य श्री के एक–एक शिष्य से सम्वन्ध रखती हैं । परन्तु मालवा-परम्परा पूज्य श्री के विभिन्न शिष्यो की परम्पराओ का समूह है । पूज्य श्री के कई टोले (अखाड़े) मालवा मे ही विचरते रहे होगें । उनमे से कुछ सघाडो की परम्परा प्राप्त होती है । मालवा-परम्परा की प्राय सभी सम्प्रदायें, विभिन्न स्थानो से सम्वन्धित होकर भी 'पूज्य श्री धर्मदासजी म की सम्प्रदाय' के रूप मे, अपना परिचय देती आई हैं । मरुधर–पट्टावली के अनुसार वाईस सघाडो मे से वृहत सघाड़े का नाम 'पू श्री धर्मदासजी म की सम्प्रदाय' रखा गया था। परन्तु वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है,

---

[119] (१) पू श्री धर्मदासजी म , (२) श्री पृथ्वीराजजी (३) दुर्गादासजी म , ४. श्री नारायणदासजी म (५) श्री पूरणमलजी म , (६ श्री रामचन्द्रजी म , (७ श्री रोडीदासजी म , (८) श्री नृसिंहदासजी म , (९) श्री मानमलजी म., (१०) श्री एकलिंगदासजी म , (११) श्री मोतीमालजी म ।

कि-पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा के सन्त, पूज्य श्री के आचार्य-पद-प्राप्ति के स्थान उज्जैन से सम्बन्धित होने के कारण, अपने को अधिकार-पूर्वक 'धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय' के रूप मे घोषित करते थे और अन्य परम्पराओ का उनके आद्य पुरुषके नाम से या स्थान विशेष के नाम से परिचय देते थे। परन्तु तत्-तत् परम्परा के सन्त प्राय. अपनी परम्परा को धर्मदासजी म की सम्प्रदाय के रूप मे ही बतलाते थे। अत मालवा-परम्परा मे कई शाखा-प्रशाखाएँ थी। उनमे से चार शाखाओ का स्पष्ट रूप से पता चलता है। पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा उज्जैन शाखा, पूज्य श्री उदयचदजी म की परम्परा दक्षिण या रतलाम शाखा, पू. श्री जसराजजी म की परम्परा सीतामहू शाखा और पू श्री छोटे पृथ्वीराजजी म की परम्परा प्रतापगढ-शाखा के रूप मे प्रसिद्ध रही है। एक अन्य शाखा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यह शाखा पू श्री पदार्थजी महाराज के सघाडे से सम्बन्धित थी। इस शाखा का मालवा के कौनसे स्थान से सम्बन्ध था, कब तक इस शाखा के साधु विद्यमान रहे और कब यह परम्परा लुप्त हो गई ? इस सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात नही हो सका। रतनपाल-चरित्र (पत्र ४५) की पुष्पिका इस प्रकार है—

'पूज्य पदारथजी, पूज्य रायभाणजी, तस्य शिष्य पूज्य खेमचन्दजी, तस्य शिष्य तपस्वी रतनचदजी, तस्य शिष्य पूज्य वालचन्दजी, तस्य शिष्य रिष प्रथीराज स १८९७ फागण विद (अमावस) ऽऽ मगलवार। गाम जारडा मेदपुर का।'

मालवा परम्परा की उपशाखाएँ

उज्जैन शाखा से दो उपशाखाओ का आविर्भाव हुआ। उज्जैन शाखा के छट्ठे आचार्य पूज्य श्री नरोत्तमजी म के शिष्य गगारामजी म. की शिष्य परम्परा शाजापुर शाखा के रूप मे प्रसिद्ध हुई और पूज्य श्री मेघराजजी महाराज मालवा से अन्यत्र भरतपुर आदि क्षेत्रो मे विचरण करने लगे। अत आपकी शिष्य-परम्परा उधर ही रही। सुविधा के लिए हम उसे पल्लीवाल शाखा या भरतपुर शाखा कह सकते है। इन शाखा-उपशाखाओ की कुल-परम्पराएँ जिस रूप मे प्राप्त हो सकी हैं, उन रूप मे अगले अध्याय मे किञ्चित् परिचय दिया जा रहा है।

चतुर्थ-अध्याय

पुज्य श्री धर्मदासजी महाराज की

मालवा-परम्परा के

कुलों के

मुख्य मुनि

तृतीय अध्याय मे श्रीमद् धर्मदासजी महाराज के शिष्यो की परम्पराओ का सक्षिप्त सामान्य परिचय दिया गया है। अव इस अध्याय मे मालवा के कुलो (परम्पराओ) के प्रमुख आचार्यों या प्रवर्तको का जो भी परिचय प्राप्त हो सका है, वह दिया जा रहा है।

(१)

उज्जैन-शाखा

पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा के साधु 'उज्जैन वाला' के नाम से पहचाने जाते थे। अत. उन्हे 'उज्जैन-शाखा' के सन्त रूप मे हमने वताया है। इस शाखा मे भी प्रथम आचार्य के रूप मे पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज को ही माना है।

पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज–(द्वितीय आचार्य)

पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज इस शाखा के प्रवर्तक द्वितीय आचार्य थे।

स १७५४ मे पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का आगमन धारा नगरी मे हुआ। पूज्य श्री के वचनामृत का पान करने के लिये, आध्यात्मिक तृषा से आकुल जन समुदाय उमडने लगा। पूज्य श्री 'उत्तरज्झयणसुत्त' के उन्नीसवे 'मियापुत्तीय' अज्झयण पर प्रतिदिन प्रवचन फरमा रहे थे। एक दिन प्रवचन के समय, धार के एक गुसाईजी का चेला रामैया कार्यवशात् उधर से निकला। * रामैया (रामचन्द्र) अपने गुरु का प्रिय शिष्य था। परन्तु उसके मनमे कुछ ऐसी भूख थी, जो अपने राजमान्य गुरु गुसाँईजी का कृपा-प्रसाद पाकर भी, वूझ नही रही थी। उसने आचार्य श्री की

---

* आपके उधर से निकलने के विषय मे मौखिक अनुश्रुति इस प्रकार है—
रामैया या रामचन्द्रजी गुसाईजी के प्रमुख शिष्य थे। वे हाथी पर असवार होकर उधर से निकले। वे आचार्य श्री की वाणी से वडे प्रभावित हुए और भीतर आकर पूज्य श्री के प्रवचन सुने।

वाणी सुनी। वाणी की सरलता, मधुरता और सरसता ने उसे आकर्षित किया। वह एक तरफ छिपकर, उनका प्रवचन सुनने लगा। उसे लगा कि—इस वाणी मे मेरे हृदय की भूख को मिटाने की क्षमता है। उसे गुरु के द्वारा कराये गये अध्ययन से उत्पन्न प्रश्नो का समाधान, उस वाणी से मिलता हुआ लगा। वह तीन दिन तक लगातार आचार्य श्री के प्रवचन सुनता रहा। इन दिनो मे उसके विवेकचक्षु खुल गये। आत्मा जिस मार्ग की खोज मे था, वह मिल गया। अपने गुरु से उसने जैन साधु बनने की आज्ञा मागी। परन्तु गुरु ने जैनो की नास्तिकता आदि की बाते बताई। रामैया अब पहले वाला रामैया नही रहा था। उसने गुरु गुसाईजी को विनम्रता से यथोचित उत्तर दिया। बडी कठिनाई से गुरु ने उसे दीक्षा की अनुज्ञा दी। रामैया स १७५४ मे सत्ताईस वर्ष की युवावय मे आचार्य श्री के शिष्य रूप मे दीक्षित हुआ। वे ही रामचन्द्रजी महाराज थे।

श्री रामचन्द्रजी महाराज जैनेतर साहित्य रामायण, महाभारत, पुराण आदि के अभ्यासी तो थे ही। अब उन्होने सोने मे सुगन्ध के समान जैनागमो का भी तलस्पर्शी अध्ययन कर लिया। आप इस प्रकार स्व-पर-सिद्धान्त के ज्ञाता बनकर, देश-देशान्तर मे धर्म-प्रेरणा करते हुए विचरण करने लगे। आपने कई वर्षो तक आचार्यदेव के चरणो की उपासना की। आचार्यदेव ने धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया। उस समय देश मे काफी उथल-पुथल मची हुई थी। औरगजेब बादशाह का देहावसान हो चुका था। दिल्ली का सिंहासन डोल रहा था। मराठो और सिक्खो का अभ्युदय हो रहा था। मराठा-मडल सगठित होकर, उत्तर की ओर बढ रहा था। मालवा मे मराठा-शासन स्थापित होता जा रहा था। उस समय पेशवा का काफी प्रभाव था। बालाजी पेशवा का स १७७७ के आसपास देहान्त हो चुका था। उनके पुत्र बाजीराव पेशवा की धाक उत्तर तक जम चुकी थी। उसके पश्चात् मराठो ने बहुत दूर-दूर के प्रदेशो पर विजय पाई। मराठा-मण्डल के प्रमुख सदस्य शिंदे (सिंधिया), होलकर, गायकवाड और पवार प्रबल हो रहे थे। उन्होने अवसर का लाभ उठा कर, अपने-अपने राज्यो की नीव डाल दी थी और वे अपने शासन की जडे मजबूत बना

रहे थे। ऐसे समय मे स १७८८ मे पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज का पदार्पण उज्जैन नगर मे हुआ। जैन जनता का मन उल्लसित हो उठा।

उस समय पेशवा की माता तीर्थाटन कर रही थी। वह उसी उद्देश्य से उज्जैन आई हुई थी। उसके पास एक प्राचीन पुस्तिका (पोथी) थी। वह उसके अर्थ को समझने के लिए, उसे विद्वानो को बताती रहती थी। लेकिन लिपि की प्राचीनता और भाषा की सक्षिप्तता के कारण उसका अर्थ खुल नही पा रहा था। उस समय वहाँ माधोसिंहजी नामके एक श्रेष्ठि रहते थे। उनका वहाँ अच्छा प्रभाव था। वे अधिकारी वर्ग मे प्रतिष्ठित थे और पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज के भक्त भी थे। उनसे या किसी अन्य से पेशवा की माता ने रामचन्द्रजी म की प्रशसा सुनी। जब उसने पूज्य श्री की विद्वता, चारित्रशीलता आदि की बाते सुनी, तब वह भी उन जङ्गम तीर्थ के दर्शन के लिए लालायित हुई। उसने किसी भी तरह पूज्य श्री के दर्शन का योग प्राप्त किया।[120] उनके दर्शन करके और उनकी ज्ञान भरी जादुई असर वाली मधुर वाणी सुनकर, वह बडी प्रसन्न हुई। उसने वह पोथी पूज्य श्री रामचन्द्रजी म को बताई। पूज्य श्री प्राचीनतम लिपि को पढ सकते थे और उन्हे कई भाषाओ की जानकारी थी। अत उन्होने उस पोथी के भावो को स्पष्ट एव विशद करके समझाया। पेशवा की माता उस पुस्तिका के आशय को समझकर, सन्तुष्ट एव प्रसन्न हो गई। उसने पूज्य श्री से कुछ मागने का अत्यधिक आग्रह किया। तब पूज्य श्री ने कहा–'मुझे कुछ भी आवश्यकता नही है, मेरे लिए और मेरे प्रभु का धर्म तो सदा जयवन्त है। हाँ ! यदि आप देना ही चाहती हो तो मेरी इतनी–सी माग है, कि–आपके पुत्र के कारागृह मे कई व्यक्ति, जिनमे राजा और राजकुमार भी हैं बद हैं–उन्हे आप छुडवा दीजिए।' माता ने कहा–'धन्य है आपकी उपकार-वृत्ति को ! यद्यपि यह कार्य अति कठिन है, फिर भी मैं इसके लिए यथा शक्ति प्रयत्न करूँगी।' पेशवा की

---

[120] प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार उसने आचार्य श्री को अपने आवास स्थान पर बुलवाया था। परन्तु मालवा-पट्टावली के अनुसार पूज्य श्री के पास स्वय पेशवा की माता आई थी। दूसरी बात ठीक भी हो सकती है, क्यो कि महाराष्ट्र में पर्दा की प्रथा पहले से ही नही है।

माता तीर्थाटन करके, पुन पूना लौटी। परन्तु उसने नगर में प्रवेश नही किया। पेशवा स्वय माता के पास आया और नगर मे प्रवेश नही करने का कारण पूछा। माता ने कहा–'बदीगृह में कितने कैदी हैं ? उनमे से कइयो की मेरी जैसी माताएँ भी होगी। कितना दु.ख होता होगा उन्हे। यह कल्पना करके मुझे अत्यधिक पीडा होती है ? और उनके मुक्त न होने पर मेरी तीर्थ यात्रा का क्या फल ?' माता के आग्रह से पेशवा ने कैदियो को छोड दिया।[121] जब बदियो को अपने को मुक्त करवाने वाले उपकारी महापुरुष का नाम ज्ञात हुआ, तब उनमे से कइयों ने उज्जैन आकर, पूज्य श्री के चरणो मे वन्दना करके, कृतज्ञता प्रकट की।

पूज्य श्री रामचन्द्रजी म का उज्जैन मे अत्यधिक प्रभाव हो गया। यह स्थिति देखकर, कई विद्वानो के हृदय मे ईर्ष्या की आग धधकने लगी। सनातनियो को लगा, कि–यहाँ जैनो का वर्चस्व बढ रहा है। वे ऐसा प्रयत्न करने लगे, कि–जैन और उनके गुरु रामचन्द्रजी महाराज दडित हो। उन्होंने राणोजी सिंधिया के कान भरे। कहा–'यह रामचन्द्र पहले गुसाँई बावा था। परन्तु अब यह जैन साधु हो गया है। पहले यह गगा और सूर्य भगवान् की प्रशंसा करता था। पर अब यह सनातन देव-देवियो को मानता नही है और उनकी निंदा करता है।' पूज्य श्री को राणोजी ने राजसभा में बुलवाया और कहा-'आप महादेव, सूर्य, गगा आदि देव-देवियो को क्यो नही मानते हो ?' तब पूज्य श्री ने महादेव का सच्चा स्वरूप बतलाया और कहा–'अब रही इनको मान देने की बात ! पर हम तो किसी का भी तिरस्कार नही करते है। पर सूर्य को देव माननेवाले सूर्यास्त के बाद भोजन करते हैं और गगा को पवित्र मानने वाले उसमे स्नान करके, अपने शरीर के मैल व पसीने से उसे अपवित्र बनाते हैं। इससे विपरीत हम और हमारे कई अनुयायी सूर्यास्त के बाद अन्न का एक दाना क्या, पानी की एक बूंद भी ग्रहण नही

---

[121] इस विषय में श्री मगनमुनिजी म द्वारा रचित 'मेघमुनि चरित्र' की प्रशस्ति में इस प्रकार उल्लेख हुआ है। जैसे—

पद्दिम जन-सिर-सेहरा, तस पाटे हो, हुआ मुनि रामचन्द।
सदानन्द छोडाविया, पेशवा नृप से हो, जिन कैदीवृन्द ॥

करते हैं और गगा को तो अपने पैरो की रजमात्र से भी अपवित्र नही करते हैं। अब आप ही विचार कीजिए, कि-उन देवो का अनादर कौन करता है ?' राणोजी पूज्य श्री का युक्तियुक्त उत्तर सुनकर, बडा प्रसन्न हुआ। विरोधी-दल भी उनके उत्तर को सुनकर आश्चर्य-चकित रह गया। पूज्य श्री ने वहाँ सक्षिप्त सारगर्भित उपदेश दिया। जिससे प्रभावित होकर, राणोजी ने शिकार खेलने व मद्य-मास भक्षण के त्याग किये। इसके वाद पूज्य श्री ने अन्यत्र विहार कर दिया।

आप दीक्षा-पर्याय मे लगभग पचास वर्ष तक रहे। इस कालावधि मे आपने अनेक क्षेत्रो मे पदार्पण करके, लोगो को धर्म और नीति की प्रेरणा दी। सवत् १८०३ मे आपने उज्जैन मे ही अनशन-पूर्वक देह त्याग दी।

पूज्य श्री माणकचन्दजी महाराज (तृतीय आचार्य)

आपका विशेष परिचय प्राप्त नही हुआ। आपकी दीक्षा शाजापुर मे स. १७९५ मे हुई थी। दीक्षा के समय से ही आप तपश्चर्या करने लगे। आपका स्वभाव सौम्य था। आपकी गुण-प्रशस्ति सीतामहू शाखा के पूज्य मुनि श्री मोतीचन्दजी म. ने इस प्रकार की है—

पुज साहब श्री माणकचन्दजी, क्या कहुँ उनके गुन भारी।
खम्या दया तप करणी जाकी, कहत न आवे मुज पारी॥

कोई 'मगन' नाम का एक कवि था। वह पूज्य श्री की चर्या से बडा प्रभावित था। उसके स्वरो मे भक्ति का भाव उमड पडा—

जगसे विरागी जाकी, मुगत से लव लागी,
सजम मे दृढ सदा, रहे मन चैन मे,
भव्य जीव आवै उसे, हेतु-उपदेश देय,
ताते मैं जाण्यो अमृत, वसे याके वैन मे।
सदा काम-भोग से, उदास रहे आठो याम,
मुनि जाति-कुलवन्त, लज्जा घणी नैन मे,
कहत 'मगन' मेरे, केते पाप झर गये,
श्री माणकचन्द साधु, देखे मैं उज्जैन मे।१।

पच इद्री वश कीनी, सर्व आत्मा को चीन्हीं,
समता मे रहे लीन, जिनद-आचार से,
परिग्रह-त्यागी, रागी- बहुत धरम ही के,
ऐसे है विरागी, वाणी बोलत विचार से।
जैन मारग को जाण्या, नवतत्त्व को पिछाण्या,
आप ही बखाण्या, लगे-सजम सुसार से,
करे 'मगन' यो स्तुति, धरू उर, भाव-भक्ति,
माणकचद साधु ये, विरक्त ससार से ।२।

आपने स १८५० भादवा सुदी ग्यारस के दिन अनशन ग्रहण किया और आश्विन कृष्णा २ के दिन नश्वर देह का त्याग किया।

रिख भगवान्जी ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है-

भादवा सुदी नवमी दिन, रे लाल ! सथारा ऊपर मन्न रे सुघडनर !
चार तीरथ भेला हुवा, रे लाल ! पचख्यो इग्यारस दिन्न रे सुघडनर !
पूज्य माणकचदजी ने वन्दना रे लाल ॥१३॥

सवत् अठारे पचास में, रे लाल ! सहर अवती के माय, रे सुघड नर !
आसो विद दिन वीजने, रे लाल ! हुआ इन्द्रपुरी नाराय रे सुघड नर !
पूज्य माणकचदजी ने वन्दना रे लाल ॥१७॥

आपके चार शिष्यो के नामो का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। (१) ऋष देवाजी,[122] (२) ऋष जोगाजी, (३) ऋष चमनाजी और (४) ऋष अमीचदजी[123]

पूज्य श्री दल्लाजी महाराज (चतुर्थ आचार्य)

आपके विषय मे इतनी ही जानकारी मिलती है, कि– आपने स

---

[122] जाके सीप देवाजी मोटा, वहु गुण अछे भण्डारी।
पटितराजजी करणी करने, आतम अपनी सुधारी ॥
–श्री मोतीचन्दजी महाराज

[123] परिशिष्ट पुष्पिका ए उज्जैन शाखा।

१८६९ मे अपने समुदाय की मर्यादा बाधी थी[124] सम्भवत श्री माणकचंदजी म के शिष्य थे और आपका उनके पट्टधर के रूप मे उल्लेख हुआ है।[125]

पूज्य श्री चमनाजी महाराज (पचम आचार्य)

पू श्री माणकचदजी म के पास सं १८३२, चैत्र शु० ३ सोमवार को आपकी और श्री जोगाजी म की दीक्षा हुई। आपका मौड वैश्यो (वणिक) पर विशेष प्रभाव था। आपके प्रभाव से कई मौड कुल जैनधर्म के अनुयायी बने थे।[126]

आपकी विद्यमानता वि स १८७३ तक तो थी ही[127] इसके पश्चात् आपका कब तक और कहा-कहा विचरण हुआ इसका पता नही है।

पूज्य श्री नरोत्तमजी महाराज (षष्ठम आचार्य)

आपने स १८४१ ज्येष्ठ कृष्णा १ बृहस्पतिवार को सयमी-जीवन

---

[124] समत्त १८६९ वर्षे वैशाख सुद ७, पुज श्री ७ श्री दलाजी चमनाजी मरजाद बादी' श्री मूलचन्दजी महाराज।

[125] तस पाटोधर दीपता, सूरीश्वर हो, हूवा मानकचन्द।
तस कुल कमल-कलानिधि, दल्लाजी हो, मुनिवर सुखकद॥

मेघमुनि च० प्र०

[126] षट्त्रिंशत गुणयुत हुवा, तस पाटे हो, चिमनाजी सूरि।
मौढ वैश्य मालव विषै जिन कीये हो, जिनधर्मी भूरि॥

—मेघमुनि च०

[127] सवत् १८७३, कवल्या पूनम को ऋषि मोतीचदजी म ने आपकी इस प्रकार स्तुति की थी—

माणकचन्दजी के पाटवी राजत, पुज चमनाजी छे हितकारे।
पडतराजजी गुण का दरिया चतुरसघ ने बहु प्यारे॥
एक-एक थी गुणज अधिका, साल रूखने परिवारे।
दुख दालिद्दर मिट जावे, मुख देख्या उतरे भव पारे॥

स्वीकार किया। आप विशिष्ट तपस्वी सन्त थे। बारह वर्ष तक आपने शयन करके निद्रा नही ली। अर्द्ध-रात्रि व्यतीत हो जाने के बाद आप उद्धर्व-पाद-आसन (उत्कटिकासन या शीर्षासन) से स्थित होकर, एक प्रहर तक ध्यान योग की आराधना करते थे।[128]

आपके बीस शिष्य हुए। जिनमें से (१) मेघराजजी म (२) काशीरामजी म और (३) गगारामजी म इन तीन शिष्यो की परम्पराए चली।

इन तीनो की परम्पराएँ आगे चलकर उज्जैन शाखा की उप-शाखाओ मे विभाजित होगई। [129]

भरतपुर शाखा

पूज्य श्री मेघराजजी म भरतपुर की तरफ पधार गये और आप उसी प्रदेश मे प्राय विचरण करते रहे। उनका शिष्य परिवार अधि-काशत उसी क्षेत्र का था। अत. वे भी उसी प्रदेश मे रहे और उनका शिष्य समूह उज्जैन शाखा की उप शाखा के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

नरोत्तमजी महाराज के बाद, श्री मेघराजजी म., श्री चुन्नी-लालजी म, श्री मगनमुनिजी म[130] और श्री रतनमुनिजी म, क्रमशः इस

---

[128] पूज्य नरोत्तमजी हुवा, तस पाटे हो, तपसी-सरदार।
द्वादश हायन लग जिने, नही निद्रा हो, लई पाँव पसार।।
अर्द्ध रात्रि वीत्या पछे, नित करता हो, निज आतम ध्यान।
उद्धर्व पाद आसन धरी, थित रहता हो, इक प्रहर प्रमान।।
—मेघमुनि चरित्र प्र०

[129] महावीर स्वामी से सन्ता की पाटावलि।

[130] कविकुल-मुगमडण हुआ, तस पाटे हो मेघराज मुनीश।
तस शिष्य चुन्नीलालजी, जस जगमे हो, यश विसवा वीश।।
तस पद-पकज मधुकरू, मुनि मगने हो, मेघमुनि चरित्र।
गायो परमानन्द से, जस सुनता हो, होय श्रवण पवित्र।।
—मे० च०

शाखा के प्रमुख हुए। श्री मगनमुनिजी म. के पश्चात् प्रमुख रूप मे पडित रत्न पूज्य श्री माधव मुनिजी म इस कुल के प्रमुख थे। परन्तु आपको रतलाम शाखा के सन्तो ने अपने आचार्य के रूप मे स्वीकार कर लिया। श्री शोभाचदजी म, श्री रतनचन्दजी म, आदि सन्त भरतपुर की ओर ही विचरण करते रहे। नये सन्त विशेप हुए नही और धीरे-धीरे उन सन्तो का देहान्त हो गया। पूज्य श्री माधवमुनिजी म के शिष्य प० श्री मूल मुनिजी म सम्प्रति आवर मे स्थिरवास रूप से स्थित है। आपके शिष्य श्री महेन्द्रमुनिजी म. एक होनहार सत थे। किन्तु आपका युवावस्था मे ही स्वर्गवास हो गया।

मूल शाखा: काशीरामजी महाराज (सप्तम आचार्य)

पूज्य श्री काशीरामजी म की शिष्य-परम्परा उज्जैन शाखा के रूप मे ही अवस्थित रही। काशीरामजी म उस युग के प्रतिष्ठित सन्त थे। आपके पाँच शिष्य हुए। उनके (१)तुलसीरामजी म (२)रामरतनजी म (३) रामचन्द्रजी म. (४) कन्हैयालालजी म और (५) पन्नालालजी म क्रमश नाम थे।[131]

तुलसीरामजी म के शिष्य ख्यालीरामजी म हुए और उनके शिष्य थे भोरारामजी महाराज।

पूज्य श्री रामरतनजी महाराज (अष्टम आचार्य)

काशीरामजी म. के बाद आप उज्जैन शाखा के आचार्य बने। पू रामरतनजी म एक प्रभावशाली सन्त थे। आपके तीन शिष्य हुए। पूज्य श्री चम्पालालजी म, घोर तपस्वी श्री केशरीमलजी म और श्री छोगमलजी महाराज।

तपस्वी लालचन्दजी महाराज

आप श्री छोगमलजी महाराज के शिष्य थे। आप महान् तपस्वी सन्त थे। आपने वहोत्तर मासक्षपण किये। आप पारणे के दिन स्वय ही

---

[131] महाराज से सन्ता की पा०।

गोचरी के लिये जाते थे। एक ही पात्र ले जाते थे और जो भी आहार मिलता, वह उसी मे ग्रहण करते थे। स्थानक मे आकरउसे छानकर, तरल पदार्थ पी लेते और कपडे मे रहे हुई पदार्थ (बोदर) का आहार ग्रहण कर लेते थे। आप पिछली वय मे धार विराजमान रहे थे।

पूज्य श्री चम्पालालजी महाराज (नवम आचार्य)

पूज्य श्री रामरतनजी महाराज के देहान्त के बाद इस कुल के आप प्रमुख रहे। बाद मे आप रतलाम शाखा के आचार्य हुए। आपका परिचय आगे दिया जाएगा।

तपोधन पूज्य श्री केशरीमलजी महाराज

आप उज्जैन कुल के प्रमुख मुनि थे। आपका जन्म, जावरा स्टेट के पुन्याखेडी[132] ग्राम के निवासी सचेती पन्नालालजी की गृहणी घीसादेवी की कुक्षि से स १९२७, भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन हुआ था। पन्द्रह वर्ष की वय मे आप की सगाई कर दी गई। विवाह का एक मास शेष रहा था। माता-पिता शादी की पूर्व-तैयारियो मे लगे हुए थे। परन्तु उसी अवधि मे आप के हृदय मे वैराग्य जागृत हो गया। श्री केशरीमलजी ने अपनी भावना माता-पिता के समक्ष रखी। माता-पिता ने उन्हे दो वर्ष तक समझाया, परन्तु उनके वैराग्य का रग गाढा होता गया। आपने अनुभव किया, कि-पिताजी सहर्ष आज्ञा प्रदान नही करेगे। अत: उन्होने गृहत्याग का सङ्कल्प कर लिया और एक दिन वे घर छोड़कर गुप-चुप उज्जैन पहुँच गये।

उस समय उज्जैन मे पूज्य श्री रामरतनजी म विद्यमान थे। उनसे आपने दीक्षा प्रदान करने के लिये प्रार्थना की। पूज्यश्री ने पिता की आज्ञा के बिना दीक्षा देने मे इन्कार कर दिया। तब आपने स्वय ही वेष-परिवर्तन कर लिया।[133] अन्त मे स १९४८, माघ शुक्ला पचमी

---

[132] [illegible] के मालव मध्य पुन्याखेडी ग्राम—तपस्वी जीवन

[133] आज्ञा बिन मैं गुरु तो नाहि । दीक्षा देऊँ नाय'
[illegible] आटी, घर-घर गोचरी जाय —तपस्वी जीवन

बुधवार को आपकी विधिवत् दीक्षा सम्पन्न हुई।[134] पूज्य श्री रामरतनजी म उज्जैन मे स्थिरवास विराजमान थे। अत आप गुरुजी की सेवा मे चार वर्ष तक रहे। सेवा और ज्ञानाभ्यास के साथ ही साथ आपने तप-अराधना भी की। आपके गुरुदेव ने आपको स १९४८ मे 'तपस्वी' पद प्रदान किया।

स. १९४९ मे पूज्य श्री रामरतनजी म का देहावसान हो गया। इसके बाद आप अपने गुरु भ्राता के सग दक्षिण मे पधार गये। आपने महाराष्ट्र मे भी कई चातुर्मास किये। आपका जीवन-चरित्र आपके प्रशिष्य मोतीलालजी म द्वारा रचित पद्य मे और प बलदेव शर्मा के द्वारा लिखित गद्य मे 'तपस्वी जीवन' नाम से प्रकाशित हुए थे। उनमे आपके चातुर्मासो, तपस्या आदि का वर्णन किया गया है।

पू श्री केसरीमलजी म स १९८२ मे कराही (करी) कस्बा पधारे। वही चातुर्मास किया। चातुर्मास पश्चात् शेषकाल मे पाटल्या, सोमाखेडी पधारे। सोमाखेडी से विहार किया। गाँव के बाहर आपने श्रावको से कहा-'अवसर आ गया' और मगल पाठ का उच्चारण करने लगे। माङ्गलिक उच्चारण करते-करते ही आपने देह त्याग दिया। वह दिन था, पौष कृष्णा पचमी का। उस समय आपकी कुल ५६ वर्ष की आयु थी।

आप दीर्घ तपश्चर्या करने वाले सन्त थे। आपने अपने ३८ वर्ष के चारित्र-पर्याय काल मे इस प्रकार तपश्चर्या की। आपने चार मास तक एकान्तर उपवास, साढे आठ मास तक बेले-बेले और पौने दो मास तक तेले-तेले का तप किया। चोले ९, पचौले ११, छह १, सात १, अठाई ११, नव ४, दस ३, ग्यारह ४, तेरह १, सोलह १, अठारह १, तीस १, इकतीस ४, चौतीस ३, पैंतीस १, सैंतीस १, अडतीस १, उनचालिस २, इकतालीस २, पैंतालीस १, अडतालीस १, बावन १, उनसीतर १, सीतर

---

[134] गुन्नीसे चूमालिस वर्षे, महासुद पाचम जान।
बुधवार शुभ मुहुर्त मांई, ली दीक्षा गुणवान। —तपस्वी जीवन

१, छिहतर १, और अभिग्रह सहित ८३ । इस तपश्चर्या के सिवाय धर्म-चक्र और अन्य फुटकर तप भी आपने किया ।

आपके दो शिष्य हुए-अचलदासजी म और धनचन्द्रजी म । अचलदासजी म के दो शिष्य थे-मन्नालालजी म और मोतीलालजी म धनचन्द्रजी म के दो शिष्य थे-भैरवमुनिजी और म लक्ष्मीचन्द्रजी म अब इस कुल मे अकेले धनचन्दजी म विद्यमान है। आप रुग्ण है। आप कराही (कस्बा) मे विराजमान है।°

शाजापुर-शाखा

पूज्य श्री नरोत्तमजी महाराज के बीस शिष्यो मे से एक शिष्य गगारामजी म थे। आपकी शिष्य परम्परा 'शाजापुर शाखा' कहलाई। पू श्री गगारामजी म से ही शाखा अलग हो गई या बाद मे ? इस प्रश्न का समाधान यही है, कि उनके शिष्य जीवराजजी म के समय तक भी यह शाखा अलग रूप से प्रतिष्ठित नही हुई थी । उज्जैन शाखा के प्रमुख की ही आज्ञा प्राय मान्य रहती थी। परन्तु परोक्ष रूप से अपने कुल के मुख्य को विशेष महत्व देने की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। गगारामजी म के पश्चात् तपस्वी जीवराजजी म और ज्ञानचन्दजी म क्रमश आठवे और नवमे कुल प्रमुख हुए।

पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी महाराज

ज्ञानचन्दजी म का जन्म, बडोद ग्राम (म प्र) मे परमेचा मोहता कुल मे हुआ था। आपने तपस्वी पू श्री जीवराजजी म के पास प्रव्रज्या अङ्गीकार की थी। आप भी तपस्वी सन्त थे। आप मालवा से राजस्थान-मारवाड की ओर पधार गये। आपने वि स १९४७ मे

°इस ग्रन्थ के प्रकाशन से पूर्व ही आप का श्री महावीर जयती के दिन, स २०३०, 'भक्तामर' का पाठ करते हुए कराही कस्बा मे स्वर्गवास हो गया।

बीकानेर चातुर्मास किया था।[135] वहा आपने विशिष्ट तप किया। लोग बडे प्रभावित हुए।

पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी महाराज का शिष्य-परिवार

आपके श्री गेन्दालालजी म., श्री लखमीचन्दजी म, श्री चिमनलालजी म., श्री किशनलालजी म, श्री मगनलालजी म आदि कई शिष्य हुए। आपके शिष्यो की निश्चित सख्या ज्ञात नही है। पर श्री मगनलालजी म को आपके आठवे शिष्य बतलाया है। अत. आपके आठ या आठ से अधिक शिष्य हो सकते हैं। आपका कुछ शिष्य-परिवार मारवाड मे और कुछ मालवा-मेवाड मे विचरता रहा।

पूज्य श्री गेन्दालालजी म. मालवा मे ही रहे थे। पूज्य श्री गेन्दालालजी म के शिष्य श्री रखबचन्दजी म, श्री पन्नालालजी म और श्री पूरणमलजी म थे। श्री पूरणमलजी म आवर (मालवा) के निवासी थे। आप बाबाजी म के नाम से प्रसिद्ध थे। आप बडे निर्भीक, ज्ञानी और आचार मे दृढ सन्त थे। आपने अनेक बडे-बडे सन्तो की सेवा की थी। पन्नालालजी महाराज के शिष्य श्री इन्द्रमलजी म थे। आप थोकज्ञान के विशेषज्ञ थे। आप ज्ञान-दान मे बहुत उदार थे। आपके शिष्य मोतीलालजी म भी सिद्धान्त-प्रेमी सन्त थे। आप कुशस्थला (ढुढार) के निवासी थे। आपकी सयमनिष्ठा प्रशसनीय थी। आपने उग्ररोग भी बडी शान्ति से सहन किया और समाधि पूर्वक सनवाड (मेवाड) मे स २०१७ मे देहत्याग दिया।

---

[135] मुलक मालवै माह, बडोद शहर भारी।
परमेचा मोहता कुल ऊपना, हुवा जोगधारी ...
पूज्य जीवराजजी पर दीक्षा लेकर धरम दीपाया....
सोले परणे सोले करिया, दिन बत्तीस अभिग्रह सुद्ध फलिया।
धोवण आगार तप इत्ता करिया, छुटकर तपस्या करी जिसकी गिणती नही लाया। गेंनचन्दजी गुणवान गुणो का पार नही पाया। भवजीवा उपगार चौमासे बीकानेर आया—४

उगनीसे सैंतालीस साल कारती सुदी नवमी गायो
(श्रावक कनीराम, गुण विलास बावीस समुदाय पृ० ९२।९३)

आपके गुरुभाई वडे उत्तमचन्दजी म , शिष्य लालचन्दजी म और प्रशिष्य सागरमलजी महाराज सम्प्रति वहुश्रुत श्री समरथमलजी म की आज्ञा मे विचरते है।

पूज्य श्री ज्ञानचन्द्रजी म के आठवे शिष्य श्री मगनमलजी म का शिष्य परिवार मारवाड मे विचरण करता रहा, जो कि 'पूज्य श्री ज्ञानचन्द्रजी म की सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पू श्री मगनमलजी म के वाद श्री चुन्नीलालजी म , श्री केवलचन्दजीम और श्रीरतनचन्दजी म इस परम्परा के क्रमश अग्रणी सन्त हुए। पूज्य श्री केवलचन्दजी म भद्रिक सन्त थे। आपने अपने अन्तिम समय मे स्वय ही सलेखना-अनशन स्वीकार किया था। श्री रतनचन्दजी म के शिष्य श्री मुलतानचन्दजी म , श्री सिरेमलजी म और श्री सरदारमलजी म हुए। पूज्य श्री रतनचन्दजी म खीचन मे वहुत समय तक स्थिरवास विराजमान रहे। अत इस सम्प्रदाय का दूसरा नाम 'खीचन सम्प्रदाय' भी प्रसिद्ध हो गया है।

वहुश्रुत पं. श्री समरथमलजी महाराज+

आप मुलतानचन्दजी म के ससारपक्ष के पुत्र है। सिरेमलजी म आपके काका थे। आपका जन्म स १९५५ मे राजा के पिंपलगाव मे हुआ था। मारवाड मे आपका निवास स्थान था-जसवतावाद। आपने स १९७१, वैशाख शु १ को प्रव्रज्या अङ्गीकार की। आप लोढा परिवार के रत्न थे। आपका जन्म नाम भीखमचन्द था। आपने अपनी दीक्षा के वाद ही विशेष अध्ययन किया और आज जैन सिद्धात के मर्मज्ञ सन्त है। आपकी चारित्रनिष्ठा दृढ है। इसलिए आप वहुश्रुत और श्रमण-श्रेष्ठ के रूप मे प्रख्यात है। आप विशिष्ट ज्ञानी और वहुजन के पूजनीय सन्त होते हुए भी सरलता की मूर्ति है। आप वहुत दूरदर्शी सन्त है। आपमे वैयावत्य का भी विशेष गुण है। आप पूज्य श्री रतनचन्दजी म की सेवा मे कितने वर्षो तक खीचन मे रहे। आपके अभी तक स (२०२९,

+नोट : खेद है, कि—वहुश्रुत प श्री समरथमलजी महाराज का मार्गशीर्ष शु ... को (स २०३०) [illegible] (राजस्थान) मे अनशन पूर्वक स्वर्गवास हो गया।

ज्येष्ठ कृ) १९ शिष्य और एक प्रशिष्य हुए है। आपके शिष्य परिवारो मे ज्ञानी, तपस्वी और विशिष्ट प्रतिभा के धनी सन्त विद्यमान है।

'श्री नन्दकुँवरजी म की सम्प्रदाय' के रूप मे प्रसिद्ध साध्वीवृन्द वहुश्रुतजी म की आज्ञा मे विचरण करता है।

(२)

दो लुप्त शाखाएँ

सीतामहू और प्रतापगढ ये दोनो शाखाएँ लुप्त हो गई है। अव इन शाखाओ के मालवा मे कोई सन्त नही रहे है।

सीतामहू-शाखा

इस शाखा का प्रवर्तन पूज्य श्री धर्मदासजी म के लघु शिष्य तपस्वी पूज्य श्री जसराजजी महाराज से हुआ था। पूज्य श्री जसराजजी म का कुछ भी परिचय प्राप्त नही है। इतना ही ज्ञात होता है, कि-आप तपस्वी सन्त थे।[136] आप सीतामहू मे वृद्धावस्था मे स्थिरवास रहे थे।[137] आपका अस्तित्व काल वि स १८२३ तक विदित होता है।[138] आपकी परम्परा के सन्तो ने अपने द्वारा प्रतिलिपि किये गये ग्रन्थो मे, आपके नाम के लिखने के पूर्व, प्राग रामचन्द्रजी म का नाम

---

[136] (अ) 'पूज्य श्री १००८ श्री धर्मदासजी म तत शिष्य १००८ श्री तपसी श्री जसराजजी म तस्य शिष्य श्री जोगराजजी' जम्बू पयन्ना पत्र ५३

(आ) रतनचूड च पुष्पिका पत्र—'तपसी जसराजजी'

(इ) 'लघु चेला जसराजजी रे, तपकर गाली देह'-सत्य शील प्रवन्ध

[137] 'मालव देश सुहामणो सीतामहो सुठाम।
पुज्यजी श्री जसराजजी सार्या आतम-काम'

—ऋषि मोतीचन्दजी

[138] 'स १८२३ महा सु ५ मगल, लि मयाचन्द सीतामहो श्री तपस्वी जसराजजी प्रसादात्' —प्रश्न व्या पु पत्र ५८

लिखा है । [139]

तपस्वी जसराजजी म के शिष्य जोगराजजी म. और पद्मजी म थे । [140] जोगराज म. भी तपस्वी सन्त थे । [141] इन दोनो सन्तो की जोडी का सीतामऊ शाखा के सन्तो ने प्राय. युगपत् स्मरण किया है । [142]

पूज्य श्री जोगराजजी महाराज के शिष्य थे, पण्डित शोभा-चन्दजी म । आप मारवाड के पारिख ब्राह्मण थे । चौदह वर्ष की आयु मे आप दीक्षित हुए थे । आपने पचास वर्ष तक सयम की आराधना की । स १८९०, कार्तिक शुक्ला ८ को आपने अनशन किया और ढाई पहर बाद देह त्याग दिया । [143]

---

[139] (अ) 'स १८९६ पूज्य श्री धर्मदासजो त शि रामचन्दजी तस गुरुभाई जसराजजी... ... ... कनिरामजजी मु सैलाना मे लिखा' —दशवैकालिक मूल

(आ) मदनमजरी पत्र ४० [परिशिष्ट, पुष्पिका]

(इ) गुण स्थान द्वारा पत्र १२ " "

[140] 'पूज श्री ५ तपसी जसराजजी शिष्य जोगराजजी तस गुरुभाई सामी श्री पदमराजजी तत शिष्य सोभाचन्दजी तत शिष्य रिखसंभूराम स १८८७ विदी १ गुरु जानकी पुरमध्ये' —रामजस प ६४

[141] 'तपसी जोगराजजी " ... " जीतमल स १८९६ वै सु १५, ग्राम गगराड' — नमिराय अर्थ

[142] (अ) ऋषभ चरित्र पु० [परिशिष्ट . पुष्पिका]

(आ) सिद्धान्त शतक पत्र १९ " "

[143] 'जिणका चेला दीपता, जोगराज पदमजी साम ।
जिणका चेला दीपता, सोभाचन्दजी साम ।।
मारवाड नो देशना, कुल ब्राह्मण पारिक ।
चवदे वरसना सजमी, कुटव कीयो तारिक ।।
चारित्र पाल्यो निरमलो, वरस पचासा जाण ।
पडतराज खम्यावन्त छे, मुनिवर विरला जाण ।।
समत अठारे नेउ मे, काती सुद अष्टमी सार ।
ढाई पेर में सीजियो, सथारो स्वीकार ।।'

—मोती विलाप, मोतीचन्दजी म.

श्री मोतीचन्दजी म. के शिष्य जीतमलजी म और वदीचन्दजी म ने अनेक विशेषणो से युक्त आपका स्मरण किया है। यथा–

"...... क्षमावन्त गुणभण्डार प. उपगारी श्री १००८ श्री सोभाचन्दजी तस्य शिष्य ....' मदनमन्जरी पत्र ४०

'..... पूज्य साहब क्षमावत दयावत शीलवत सतोषवत वैराग्यवत सम्यक्त्ववत चारित्रवत वीर्यवत ज्ञानदाता चारित्रदाता सोभाचदजी ... ... वदीचन्द लिखी सीतामहू मे स १८९६ चे .. ...'

—गुणस्थान द्वार पत्र १२

आपके तीन शिष्य थे (१) मोतीचन्दजी म (२) सभूरामजीम (३) कनिरामजी म ।

पूज्य श्री मोतीचदजी महाराज की दीक्षा, पूज्य श्री जोगराजजी म के हाथ से स १८५९, ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को बड़नगर मे हुई थी आप अच्छे सिद्धातज्ञ सन्त थे। आप पद्य–रचना भी करते थे। आप की कुछ रचनाएँ यत्र-तत्र प्राप्त होती है। आपने गुजरात, सौराष्ट्र प्रदेशो मे भी विचरण किया था। आपने स १८७३ मे नयापुरा उज्जैन मे 'उज्जैन शाखा' के मुनियो से अपनी शाखा के सम्वन्ध को नया वनाया था। उस समय आपने वहाँ विद्यमान वडे सन्तो की स्तुति की थी। स १८९० मे जव आपके गुरु सोभाचन्दजी म का वियोग हो गया, तव आप अकेले रह गये। उस समय आपके दो गुरु भाई अन्यत्र थे। आपको वडा आर्तध्यान आया। आपने अपनी उस समय की मानसिक स्थिति का वर्णन अपनी एक रचना मे किया था। वह रचना प्राप्त है। उसे हम 'मोती-विलाप' कह सकते है।

आपके स १८९० से स १८९५ के वीच पाँच शिप्य हुए। तीन के नाम प्राप्त है-(१) जीतमलजी म (२)नदलालजी म (३) वदीचदजी म । एक शिष्य का नाम दलीचदजी म था। पर वे स १८८४ के पूर्व आपके शिप्य हुए थे ।

आप चमत्कारिक सत थे। आपके शिष्य श्री [illegible] चमत्कारिक [illegible] मुनी थे। आपके शिष्यो के बाद इस शाखा का परिचय कुछ भी प्राप्त नही होता है। इस परम्परा के अन्तिम साधु श्रीओंकारलालजी म थे। आप मन्त्र-तन्त्र के ज्ञाता थे। और वे बड़े जिनकल्पी थे। स १९०५ म धार के समीप के ग्राम दिगठान म आपका देहान्त हो गया।

आपके विषय म, जब हम दिगठान गये थे, तब वहा एक भाई ने एक बात सुनाई थी। वह इस प्रकार है—

उस भाई ने यह सुन रखा था, कि—इन महाराज के पास कुछ चमत्कार है। एक दिन वह और उसके कुछ साथी उनसे जङ्गल मे मिले। वह उनसे कहने लगा, कि 'महाराज ! हम कुछ चमत्कार बताओ ?

साधुजी बोले—'भाई ! चमत्कार क्या देखना है ? क्या तुम्हे यह ससार चमत्काररूप दिखाई नही देता है ?'

भाई—'महाराज ! आप टालो मत। आज हम कुछ भी चमत्कार देखे बिना यहा से हटने वाले नही है'।

जब उस भाई ने बहुत हठ की, तब उन्होने कहा 'अच्छा, तो लो देखो' ! उन्होने एक ककरी उठाई और कुछ बुदबुदाते हुए, समीप के सूखे वृक्ष पर डाल दी। देखते-देखते ही भयङ्कर आवाज के साथ वह वृक्ष फट गया। सभी आश्चर्य चकित थे। उनके बाद इस शाखा मे कोई सत नही रहा।

प्रतापगढ शाखा

प्रतापगढ शाखा के विषय मे कुछ भी जानकारी प्राप्त नही हो सकी। 'वैरीसिह चरित्र' के अन्तिम उन्नीसवें पन्नेपर निम्नलिखित पङ्क्तियाँ लिखी हुई है।

'पूज्य ज्ञान के सागर श्री उदेभाणजी श्री हीराचदजी तस्य शिष्य ओकारलालजी स १९२७ श्रावण सुद ५ सोम प्रतापगढ मे।'

प्रतापगढ शाखा का सम्बन्ध छोटे पृथ्वीराजजी महाराज से है। कोटा सम्प्रदाय के आचार्य पू. श्री छगनलालजी म के द्वारा लिखित एक पन्ने से इस बात की पुष्टि होती है। यथा—

'परतापगढ का श्री लहूडा छोटा पृथीराजजी की समुदाय का म्हासतीयाजी श्री श्री कुनणाजी, श्री रतनाजी, श्री गुमानजी, श्री सिणगाराजी तत् शिष्यणी श्री सिरेकुँवरजी तपस्या ईण रित करी " '

अब मालवा मे इस परम्परा के कोई भी सन्त या सती नही हैं। इस परम्परा के अन्तिम सन्त लालचदजी म. थे। जिनका देहान्त स २००६ मे हुआ।

(३)

रतलाम शाखा

मालवा की पूज्य श्री धर्मदासजी म की शिष्य-परम्पराओ मे चौथी प्रमुख परम्परा रतलाम-शाखा है। सवत् १८०० के बाद इस परम्परा के सन्तो की 'रतलामवाला' सज्ञा हुई। इसके पूर्व इन सन्तो को 'दक्खणवाला' सज्ञा थी।

एक भ्रान्ति का निराकरण

'रतलाम शाखा' के प्रमुख सन्तो के विषय मे लिखने से पूर्व इनके विषय मे प्रचलित एक भ्रान्ति का निराकरण कर देना उचित होगा।

'जैनधर्मनो प्राचीन सक्षिप्त इतिहास अने प्रभुवीर पट्टावली' पृष्ठ २६७ पर मालवा के आचार्यों की पट्टावली इस प्रकार दी गई है— (१) पू श्री धर्मदासजी म, (२) श्री रामचद्रजी म, (३) श्री मानकचदजी म, (४) श्री जगराजजी म, (५) श्री पृथ्वीचदजी म, (६) श्री मोटा अमरचदजी म, (७) श्री लघु अमरचदजी म, (८) श्री केशवजी म, (९) श्री मोखमसिंहजी म, (१०) श्री नदलालजी म, (११) श्री माधवमुनिजी म, (१२) श्री चम्पालालजी म, (१३) श्री ताराचदजी म।'

यह पट्ट-परम्परा भ्रान्त है। क्योंकि पू श्री रामचदजी म, श्री जसराजजी म, और पृथ्वीचदजी (लघु पृथ्वीराजजी म) म ये तीनो गुरु भ्राता थे और तीनो ही मालवा की तीन परम्पराओ के आद्य पुरुष थे। तीनो की परम्पराएं अलग-अलग थी। परन्तु उपर्युक्त भ्रान्ति का उत्तरदायित्व पू श्री मणिलालजी म पर नही है। रतलाम-शाखा के पिछले सन्त भी इस भ्रान्ति से ग्रस्त थे। लगता है, इस शाखा के सन्त यह भूल गये थे, कि-हमारी परम्परा दक्षिण की परम्परा है। वे यही मानने लगे थे, कि हम मालवी परम्परा के ही है। पर जब उन्होंने अपनी पट्टावली मे श्री रामचदजी म आदि का नाम नही देखा तो उन्हे यह भूल लगी। अत. सीतामहू शाखा के सन्तो के द्वारा लिखित किसी ग्रन्थ की पुष्पिका के आधार से उन्होने अपनी पट्ट-परम्परा को सुधारने का प्रयत्न किया, जिससे उक्त भ्रान्ति का उद्भव हुआ। गुरुदेवने स्वय इस प्रकार पट्ट-परम्परा गुम्फित की थी।

'श्री धर्मदास मुनीश पट पै, रामचन्द्र मुनीश थे।
माणिक्यमुनि जसराजमुनि, विख्यात प्रजाधीश थे।।
श्रीमन्मयाचन्द्रार्य के पट, युग अमर सूरीश थे।
केशव तथा मोखम मुनीश्वर, नन्द मुनिगण-ईश थे।।'

वस्तुत इस पद्य मे मालवा की दो परम्पराओ के आद्य पुरुषो के नामो को सङ्कलित कर लिया गया है। जिसमे कालक्रम की अपेक्षा से भी यह नामक्रम दूषित है। क्योकि काल की दृष्टि से माणकचदजी म. के नाम के पहले जसराजजी म नाम आना चाहिए। परन्तु गुरुदेव को प्राचीन ग्रन्थो और पट्टावलियो को टटोलने पर इस भ्रान्ति का पता लगा। अन्तमे खोज करने पर वास्तविक तथ्य प्रकट हो गया और फिर गुरुदेव ने इस पट्ट-परम्परा मे निम्नलिखित रूप मे सुधार किया।

श्री धर्मदासाचार्य पट पे, उदयचन्द्र गणीश थे।
श्री मन्मयाचन्द्रार्य के पट, मुनि अमर सूरीश थे।।
श्री पूज्य केशवराज मोखम, नन्द गुरुवर वीर थे।
माधव तथा चम्पक मुनीश्वर, भव्य तारक धीर थे।।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज (प्रथम आचार्य)

पूज्य श्री उदयचन्द्रजी महाराज * (द्वितीय आचार्य)

आपको 'संता की पाटावली' मे धर्मदासजी म के शिष्य वतलाये है। और पूज्यश्री के निन्यानवे शिष्यो की नामावली मे 'उदेसिंहजी' नाम है भी सही। परन्तु वाईस समुदाय मे उदेसिंगजी के समुदाय की गिनती नही है। और न धर्मदासजी म के किन्ही उदेसिंगजी, ऊदाजी, या उदयचदजी की कोई शिष्य-परम्परा का ही उल्लेख है। परन्तु रतलाम शाखा की पट्टावलियो मे धर्मदासजी महाराज के वाद द्वितीय आचार्य के रूप मे उदयचद्रजी म को ही माना है। वस्तुत आप धर्मदासजी म के शिष्य नही थे। परन्तु आचार्यश्री के प्रशिष्य के प्रशिष्य थे। पूज्य श्री धर्मदासजी म के शिष्य थे हरिदासजी महाराज, उनके शिष्य साराजी, उनके शिष्य खेमजी (खेमराजजी) और उनके शिष्य थे उदयचदजी म (ऊदोजी या उदेराजजी।। इस परम्परा से विदित होता है, कि-जो हरिदासजी म का सघाडा था शायद वही या उसकी कोई उपशाखा 'रतलाम शाखा' है और यह भी शङ्का होती है कि उदयचन्दजी म के पूर्व इस शाखा के कोई और भी आचार्य रहे होगे। परन्तु पट्टावलियो मे इस वात का सङ्केत मात्र भी नही है। अत अनुमान करना पडता है, कि—भले ही उदयचन्दजी म पू श्री धर्मदासजी म के प्रशिष्य के प्रशिष्य रहे हो, पर उनके समक्ष ही उनकी दीक्षा हो गई होगी और आचार्यश्री के देहान्त के वाद अपने परिवार मे आपही अग्रणी सन्त रहे हो। शायद इसीलिए आपको 'उज्जैन-पट्टावली' मे आचार्य श्री के शिष्य मान लिये हो। इस अनुमान मे प्रमाण यह है, कि आचार्य श्री के शिष्य और सीतामहू-शाखा के प्रवर्तक पूज्य श्री जसराजजी म. के दर्शन पूज्य श्री उदयचदजी म के प्रशिष्य श्री मयाचदजी म ने स १८२३, सीतामहू मे किये थे। अत धर्मदासजी म के समय मे आपकी विद्यमानता घटित हो सकती है।

---

* पूज्यश्री उदयचदजी म के पूर्व एक और आचार्य पूज्य श्री खेमजी म के अस्तित्व का सकेत मिलता है।

आपके विषय मे भी कुछ भी जानकारी नही है। 'उदाजी' के हस्त से स १८२०, ज्येष्ठ विदि ११ को लिखित एक प्रति प्राप्त है।[144] ये 'ऊदाजी' पू श्री उदयचदजी म हो सकते है। पर वे ही थे—यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है।

पूज्य श्री मयाचदजी महाराज (तृतीय आचार्य)

आप पूज्य श्री उदयचन्दजी म के प्रशिष्य और श्री खुशालजी म के शिष्य थे। आपके द्वारा की गई कई ग्रन्थो व शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ प्राप्त होती है। इन प्रतिलिपियो का समय स १८२३ से लगाकर स १८४४–१८४५ तक का है। आपका विशेष विचरण मालवा मे ही रहा। आपके कई शिष्य-प्रशिष्य हुए। आपके आठ शिष्यो के नाम तो मिलते है। यथा–भगाजी, खेमजी, चिमनाजी, मोतीचदजी, अमरजी, सोभाचन्दजी, दानाजी, और भीषमजी। इनमे चिमनाजी घोर तपस्वी और भगाजी एव अमरजी तपस्वी सन्त थे।

पूज्य श्री अमरजी महाराज (चतुर्थ आचार्य)

आपके विषय मे, आपके द्वारा की गई ग्रन्थो की प्रतिलिपियो के सिवाय जानकारी का कोई अन्य स्रोत नही है। आप पूज्य श्री मयाचदजी म के शिष्य थे। आपका अस्तित्व-काल स १८४५ से स १८८१ तक असदिग्ध है। स १९०१ मे बने हुए मर्यादा–पट्टक मे भी अमरजी म का नाम है, किन्तु वे ये ही अमरजी म थे–यह निर्णय नही हो सकता है। क्योकि परम्परा यह है (और एकाध ग्रन्थ की पुष्पिका से भी यह सिद्ध होता है), कि अमरजी म दो हुए है। बडे अमरजी म चतुर्थ आचार्य थे। आपके शिष्यो मे तपस्वी परसरामजी म और केशवजी म विशेष प्रसिद्ध सन्त हुए।

पूज्य श्री केशवजी महाराज (पाँचवें आचार्य)

आपका अस्तित्व स १८८० से स १९०१ या स १९१३ तक रहा। आपने स १८८१ मे कोटा मे, कोटा सम्प्रदाय के तपस्वी

---

[144] लुद्धा नरा० पत्र ३-पुष्पिका–'उदाजी स १८२०, ज्येष्ठ विदि ११, रतलाम मे'।

फरसरामजी म के समीप चातुर्मास किया था।[145] आपके कई शिष्य हुए। जिनमे दो शिष्य मुख्य थे। मोखमसिंहजी म और इन्द्रजीतजी म. आपके समय मे रतलाम शाखा के दो विभाग हो गये। आपके गुरुभ्राता तपस्वी परसरामजी म के सन्त कुछ काल तक अलग रहे। फिर स १९१३ मे समाधान हो गया, और शाखा-भेद होते-होते वच गया।

पूज्य श्री मोखमसिंहजी महाराज[146] (छट्ठे आचार्य)

प्रतापगढ-निवासी श्री नेमिचन्दजी पोरवाड की धर्मपत्नी श्रीमती विरजावाई की कुक्षि से वि स १८६९ माघ शुक्ला पूर्णिमा को मघा नक्षत्र मे एक पुण्यशाली वालक का जन्म हुआ। जिसका नाम मोखमसिंह या मोकमचद्र रखा गया। इक्कीस वर्ष की वय मे मोखमसिंहजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ। स १८९०, मार्गशीर्ष कृ ९ को रतलाम मे आपने पूज्यश्री केशवजी म की नेश्राय मे प्रव्रज्या ग्रहण की। आपने गुरुदेव के सान्निध्य मे रहकर सतत ज्ञानाभ्यास किया। आपके विहारक्षेत्र, जीवन-प्रसङ्ग, शिष्यो आदि के सम्वन्ध मे जानकारी अधिक नही मिलती है। परन्तु आपके जीवन से सम्वन्धित जो भी थोडी-वहुत वाते ज्ञात है, वह अल्प सी जानकारी भी आपके जीवन की भव्यता के दर्शन करवा देती है। आप पिछली वयमे लम्वे समय नक रतलाम मे स्थिरवास रहे। आपने वि स १९६३, चैत्र शुक्ला ९ की रात्रि मे ग्यारह वजकर, दस मिनट के लगभग अनशन पूर्वक देह छोड दिया।

आपने अनेक क्षेत्रो मे विहार किया। आप गभीर शान्त और सिद्धान्त-मर्मज्ञ सन्त थे। गुरु के रूपमे मालव-प्रदेश पर आपका वर्चस्व

---

[145] स १८८१, कार्तिक मासे, कृष्णपक्षे, ७ गुरुवार, पूज्यजी श्री श्री १०८ श्री मगाचदजी तस्य शिष्य स्वामी श्री अमरजी, तपसीजा श्री फरसरामजी के तपतेज सुनजर महर कृपाकर जिनसे ग्रन्थ सुखे समाधे लिखि रिप केशवजी, सहर कोटा का रामपूरे, नवा कटला मे चौमासो कीधो। स्वामीजी श्री परसरामजी काटा का ज्या कने से उतारो कीधो। —धमदत्त चरित्र पत्र ५५

[146] मोकजी, मोखजी, मोघजी, मोगजी, आदि आपके ही नाम अपभ्रश रूपान्तर है।

बहुत अधिक था। परन्तु आप सच्चे सन्त थे। क्षेत्र और भक्तो के ममत्व से मुक्त थे। जिस समय आप रतलाम मे स्थिरवास विराजमान थे, उस समय रतलाम के अधिकाश श्रावक आपकी सम्प्रदाय के अनुयायी थे और रतलाम आपका ही क्षेत्र माना जाता था। परन्तु आपकी शिक्षा का ऐसा प्रभाव था, कि–आपका अनुयायी-वर्ग, बिना भेद-भाव के अन्य सम्प्रदाय के सन्त-सतीवर्ग की सेवा करता था। कोई कोई सन्त भोले श्रावको को विविध युक्तियो से अपने अनुरागी बनाकर उन्हे या उनके बच्चो को अपने नाम से गुर्वाम्नाय देने लग जाते थे। जब पूज्यश्री के परम भक्त श्रावको को सम्प्रदायवाद के अकुर जमते दिखाई दिये, तब उन्होने पूज्यश्री के पास आकर शिकायत की। पूज्यश्री पहले तो मौन रहे। फिर कुछ देर बाद उत्तर दिया–'भाई! अपनी सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय के साधु भी पाच महाव्रतधारी हैं। यदि वे गुर्वाम्नाय दे जाते हैं तो क्या हो गया? पच-महाव्रतधारी सब गुरु ही हैं।' श्रावक यह बात नही जानते हो-यह बात नही थी और उन्हे सम्यक्त्व की प्रतिज्ञा देते हुए भी,–'पच महाव्रतधारी सुसाधुगुरु है' यही पाठ पढाया गया था। उनका भी इस आशय से कुछ विरोध नही था। परन्तु वे पूज्यश्री के पास शिकायत लेकर इसलिए जाते थे, कि-केवल अपने ही अनुरागी बनाने के लिए दी जानेवाली सम्यक्त्व, आगे चलकर सघमे फूट उत्पन्न करेगी, पूज्यश्री प्रभावशाली हैं, वे चाहे तो इस कार्य को रोक सकते हैं और वे अपने प्रभाव का उपयोगकरें-इसी हेतु श्रावक शिकायत करते थे। परन्तु पूज्यश्री का शान्त उत्तर सुनकर चुप रह जाते थे वे।

पूज्य श्री मोखमसिंहजी म एक सच्चे साधक सन्त थे। उन्होने यश और प्रतिस्पर्द्धा की भावना पर जय पा ली थी। आपने अपने अनुयायी–वग को गुणानुराग की ही शिक्षा दी थी। आपका समकालीन रतलाम का श्रावक वर्ग कितना निष्पक्ष और सेवाभावी था, कि उस समय एक इतर सम्प्रदाय-पूज्यश्री हुक्मीचदजी म की सम्प्रदाय के आचार्य भी यहाँ स्थिरवास रहे। पूज्य श्री उदयसागरजी म की सेवाका लाभ भी श्रावक वर्ग बिना भेद-भाव के ले रहा था। कई श्रावक उनके गुण कीर्तन का भजन गाते थे –

श्रीमद् जैनाचार्य—

स्व. पूज्य श्री मोखमसिंहजी महाराज

जन्म संवत् १८६१ दीक्षा संवत् १८८० स्व. संवत् १९६३

पूज उदेसागरजी को शरणो रे।
मारे भवसागर सू तरणो॥

एक दिन पूज्य श्री मोखमसिहजी म के प्रशिष्य श्री गिरधारी-लालजी म के प्रशिष्य श्री किशनलालजी म (श्री कृष्णलालजी म.) ने उपर्युक्त भजन की कडियाँ सुनी। उनके हृदय मे अपने पूज्य श्री की गुणगीतिका बनाने की इच्छा हुई। वे पूज्य श्री के पास पहुँचे और उन्हे उनके माता-पिता का नाम आदि बाते पूछने लगे। परन्तु पूज्यश्री ने उल्टा प्रश्न कर लिया 'क्यो भाई! तुम्हे मेरे पिता आदि के नाम की क्या आवश्यकता हुई?' श्री किशनलालजी म ने विनय और सकोच के साथ कहा–'मुझे आपके गुणो का भजन बनाना है।'

पूज्य श्री ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा –'तुम्हे मेरे गुण गाना है? तीर्थङ्कर भगवान के नाम नही रहे क्या? गुण गाना ही हो तो तीर्थङ्कर भगवान के गुण गाओ।'

लघुमुनिजी कुछ क्षण के लिये चुप हो गये। परन्तु हृदय मे भावना जोर मार रही थी। अत साहस बटोरकर कहा–'पर गुरुदेव! श्रावक लोग पूज्य श्री उदेसागरजी म के गुणगान तो गाते है?'

पूज्य श्री के मुखपर मुस्कान छा गई। वे बोले 'अच्छा यह बात है! पर भाई वे तो गुणी है। अच्छी बात है, यदि कोई उनके गुण गाते है तो! और देखो, कोई काम होड-होड मे ही नही करना चाहिए।'

कितनी गम्भीरता थी पूज्य श्री मे? उन्होने लघु मुनि की जिज्ञासा शान्त नही की। पूज्य श्री अपने जीवन से सम्बन्धित प्रश्नो को प्राय टाल दिया करते थे। उनसे यदि कोई प्रश्न करता, कि-'आपके कितने शिष्य हुए?' तो वे उत्तर देते, कि 'जिन्होने देह छोड दी सो तो गये और जो है सो सामने है।' प प्र श्री किशनलालजी म आपके विषय मे ऐसे कई सस्मरण सुनाया करते थे। अभी भी किसी-किसी के मुह से कुछ अनुश्रुतियां सुनने को मिल जाया करती हैं।

आपके श्री हिन्दुमलजी म , घोर तपस्वी श्री शिवलालजी म पूज्य श्री ताराचदजी म आदि कई शिष्य हुए ।

पूज्य श्री नन्दलालजी महाराज (सातवें आचार्य)

आपका जन्म, मालवा के खाचरोद ग्राम के निवासी बूबक्या गोत्रीय ओसवाल नगाजी (नगीनलालजी) की धर्मपत्नी अमृताबाई की कुक्षि से, स १९१९ चैत्र कृष्णा मे हुआ था। आप उस समय अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। अत आपका बडे लाड-प्यार से पालन-पोषण हुआ। आप युवावय मे आये। आपकी सगाई कर दी गई।

'निश्चय किया सगपन वहीं, कन्या सुघड लख नैन से'

— प्रथम सर्ग नन्दलाल सूरीश्वर च

किसी समय पू श्री मोखमसिहजी म के शिष्य श्री हिन्दुमलजी म के शिष्य क्रियापात्र श्री गिरधारीलालजी म का पदार्पण खाचरोद मे हुआ। युवावस्था की दहलीज पर खडे नन्दलालजी ने मुनि श्री का सत्सग पाया। मुनि श्री की वय भी उस समय सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की अर्थात् यौवन अवस्था थी। मुनि श्री गिरधारीलालजी म का जन्म भी ग्वालियर रियासत के बडनगर ग्राम मे स १९१२ मे हुआ था। अल्पकाल की दीक्षा-पर्याय मे ही आपके तप-त्याग की विशेष वृद्धि हो रही थी। आपकी चरणोपासना से नन्दलालजी के मन मे जीवन के ध्येय और उसकी सफलता के साधनो के विषय मे प्रश्न उठने लगे। उन्होंने अपने जीवन के लक्ष्य का निर्णय किया और उसकी सिद्धि के लिए साधना-पथ पर चलने का विचार उत्पन्न हुआ। उन्हे निश्चल निर्णय लेने मे मानसिक कठिनाई होने लगी। लेकिन उन्होने मोह के अवरोध को आखिर मे तोड ही डाला। सुख मे पले हुए सुकुमार ने यौवन की इच्छाओ को जलाञ्जली देकर, साधना के कण्टकाकीर्ण मार्ग पर चलने का दृढ निश्चय कर लिया। वे अवसर देखकर, माता-पिता के पास आये और उन्होने दीक्षा की आज्ञा मागी। परन्तु माता-पिता ने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नही दिया और प्रेमपूर्ण उलाहनो से उन्हे चुप कर दिया।

कुछ दिनो के वाद श्री गिरधारीलालजी म ने वहाँ से विहार कर दिया। वे छोटे ग्रामो मे विचरण करने लगे। वे तिलगारा (वदनावर के समीप) ग्राम मे विराजमान थे। इधर नन्दलालजी ने विचार किया, कि-माता-पिता का मुझ पर अत्यधिक स्नेह है। क्योकि मेरे सिवाय इनके अन्य पुत्र नही है। इसीलिए मुझे आज्ञा प्राप्त होना वहुत कठिन कार्य है। परन्तु मुझे अन्तरतम मे कोई पुकारकर, साधना के मार्ग पर चलने के लिए कह रहा है। मैं अपने अन्तर्मन की वात अनसुनी नही कर सकता हू। मुझे चलना है-अवश्य चलना हैं साधना-पथ पर। वे यह विचार करके, अपने माता-पिता या किसी से भी कुछ कहे विना ही, जिधर अपने गुरुदेव विचरण कर रहे थे, उधर चल दिये। नन्दलाल-जीने तिलगारा मे गुरुदेव के दर्शन किये। इधर नन्दलालजी के गृहत्याग से माता-पिता आकुल-व्याकुल हो गये। उनकी खोज होने लगी। लोग उन्हे आश्वासन देने लगे। माता-पिता कुछ सङ्केत पाकर, पुत्र की खोज करते हुए, सकुटुम्ब तिलगारा आ पहुँचे। वहाँ क्लेशपूर्ण स्थिति हो गई। तव नन्दलालजी ने विचार किया, कि-अभी इनके सग खाचरोद चला जाना ही उचित है और वे पिता के सङ्ग खाचरोद चले आये।

मुनि श्री गिरधारीलालजी म विहार करते हुए वदनावर पधारे। नन्दलालजी कुछ दिन घर रहे। परन्तु उनका हृदय उन्हे कचोटने लगा। उन्हे एक ही लगन लग रही थी। वे पुन मुनिश्री की सेवा मे आ पहुँचे और वहा उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। मुनिश्री ने कहा-'भाई! तुम्हारे माता-पिता की आज्ञा के विना हम तुम्हे दीक्षा नहीं दे सकते हैं।' अपने गुरुदेव का यह उत्तर सुनकर नन्दलालजी विचार मे पड गये। इस वार वे घर से, पुन घर नही लौटने का निर्णय करके आये थे। वे जानते थे, कि-माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त होना टेढी खीर है। इसलिए उन्होने जल्दी ही निर्णय करके स्वय ही वेश परिवर्तन कर लिया और स्वमुख से ही 'करेमि भन्ते!' के पाठ के द्वारा दीक्षा की प्रतिज्ञा ले ली। वे भिक्षा के द्वारा आहार ग्रहण करते और फिर गुरुदेव के पास ज्ञानाभ्यास करते। पिता भी वदनावर आ गये।

अपने पुत्र को साधुवेश मे देखकर, उन्हे बडा दुःख हुआ। उन्होंने राजकर्मचारी से जाकर शिकायत कर दी। कर्मचारी ने पूछा क्या-'साधु आपके लडके को जबर्दस्ती ले आये है?' सेठजी ने कहा-'नही लडका ही नही मानता है। पर साधुने उसे न जाने क्या कर दिया है!' कर्मचारी-'कितनी उम्र है आपके पुत्र की?' सेठजी-'यही, उन्नीस-बीस वर्ष की।' कर्मचारी-'कानूनन तो मैं आपको कुछ भी मदद नही कर सकता हू। फिर भी आपका पुत्र सन्यास का विचार त्याग कर, आपके सग चला जाय-इसके लिए कुछ उपाय करु गा।' राजकर्मचारी ने युक्ति से नन्दलालजी को अपने पास बुलवा लिया। प्रेम, भय, प्रलोभन आदि उपायो से उन्हे समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु वे टस से मस नही हुए। अन्त मे कर्मचारी ने गुस्सा दिखाकर, उनके वस्त्र उतरवा लिए और उन्हे तेज धूप मे खडे कर दिये और सिर पर बडा-सा पत्थर रख दिया। पर क्या दृढ निश्चयी बाधाओ से कभी अपने लक्ष्य से हटे है? ऐसी नन्दलालजी इस कष्ट से जरा भी विचलित नही हुए। कर्मचारी ने उनकी दृढता देखकर, उनके पिता से कहा-'सेठजी! आपका पुत्र वैराग्य-रग मे पक्का रग गया है। इसे सन्यास लेने से रोकना सम्भव नही है।'

पिता निराश हो गये। फिर भी उन्होने दीक्षा की आज्ञा नही दी और वहाँ से रवाना हो गये। श्री नन्दलालजी को भी साधुवेश मे घूमते हुए बारह महिने बीत गये। अब पिता ने देखा, कि नन्दलाल अब घर आनेवाला नही है। आखिर उन्होने आज्ञा प्रदान की और नन्दलालजी की वि स १९४०, वैशाख सुदी तीज को धार मे दीक्षा हो गई। आपका प्रथम चातुर्मास धार मे ही हुआ।

दीक्षा के पश्चात् श्री नन्दलालजी म. सोलह-सत्रह वर्ष तक अपने गुरुदेव के सग विचरे। आपसे पूर्व आपके गुरुदेव के पास भरगट गोत्रीय गम्भीरमलजी ने भी दीक्षा ली थी। वे आपके बडे गुरुभ्राता थे। स १९५७, मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को आपके गुरुदेव का ४५ वर्ष की आयु मे देहान्त हो गया। आपने समभाव से इस आघात को सहन किया। स १९५७ मे पूज्य श्री मोखमसिंहजी म ने श्री नन्दलालजी म को युवाचार्य पद प्रदान किया। आप लगभग सात वर्ष तक युवाचार्य पद

श्रीमद् जैनाचार्य—

स्व पूज्य श्री नन्दलालजी महाराज

जन्म संवत् १९१२ दीक्षा संवत् १९४० स्व संवत् १९७२

पृष्ठ १२०

पर रहे। वि स १९६३, चैत्र शुक्ला १० को प्रात ९ वजे रतलाम मे आपको आचार्य पद दिया गया।

जब आपका स १९४६ का चातुर्मास थान्दला मे था, तब वहाँ के निवासी ओसवाल चुन्नीलालजी पीचा गोत्रीय ने आपके पास दीक्षा ग्रहण की थी। स १९५९ मे श्रावणी पूर्णिमा को रतलाम मे श्री किशनलालजी म ने दीक्षा ली। इसके पश्चात् पूज्यश्री को एक वहुत वडा आघात लगा। पूज्यश्री के लघु गुरुभ्राता, जो एक होनहार संत थे।, श्री वृद्धिचदजी म का २१ वर्ष की अल्पायु मे देहान्त हो गया। पूज्य श्री मोखमसिंहजी म के देहान्त के वाद सन्त वहुत ही अल्प रह गये थे। इस सम्प्रदाय के विद्वेषी जन कहा करते थे, कि-'बूढे सावु मर खप जाएँगे। एकाव युवा सावु है तो उसकी क्या चलेगी ? वस अव यह सम्प्रदाय खतम हुई ही समझो।' पर, कही विल्ली के कहने से छीका टूटता है क्या ? जिसकी जीवन-ज्योति प्रवल होती है, वह क्या यो ही समाप्त हो सकता है ? पूज्यश्री जैसे महान् त्यागी सन्त जिस सम्प्रदाय मे होते रहे है उस सम्प्रदाय की जीवनधारा कैसे रुक सकती है ? वि स १९६७–६८ मे पूज्यश्री के पास ५ दीक्षाएँ हुई। जिनमे तीन सन्त अल्पवयवाले और दो सन्त प्रौढ वयवाले थे। वि स १९६८ मे आपन मरुधरा की ओर विहार किया। मारवाड मे आपको अनेक कष्ट सहन करने पडे। स १९७० मे किशनगढ मे सवेगियो से चर्चा मे विजय पाई। वहाँ चातुर्मास मे चौदह पचरगियाँ हुई और अन्य तपश्चर्याए भी वहुत हुई। हिंसा निवारण आदि कई उपकार के कार्य हुए। स १९७०, माघ-कृष्णा १ को व्यावर मे शाजापुर शाखा के प्रमुख सन्त श्री पन्नालालजी म श्री केवलचदजी म श्री रतनचदजी म आदि मुनियो से मिलकर और मर्यादा वान्धकर, उनके साथ तथा श्री नन्दकुँवरजी म की सतियो के साथ साम्प्रदायिक ऐक्य स्थापित किया। इस प्रकार पूज्यश्री मालवा मेवाड, मारवाड आदि प्रदेशो मे यथाशक्ति विहार करके, धर्म–उद्योत करते रहे।

पूज्यश्री की शारीरिक स्थिति निर्वल होने लगी। उस समय आप रतलाम मे विराजमान थे। जव पूज्यश्री को अपनी शक्ति की

क्षीणता के कारण अपनी आयु की अल्पता का आभास हुआ, तब उन्होने किसी योग्य साधु को युवाचार्य पद पर स्थापित करने का विचार किया। उनकी दृष्टि भरतपुर, आगरा की तरफ विचरने वाले उज्जैन परम्परा की भरतपुरीय उपशाखा के विद्वान् मुनि श्रीमान् माधवमुनिजी म पर गई। आपने उन्हे अपने उत्तराधिकारी के रूप मे नियुक्त करने का विचार अपने मुनिमण्डल और रतलाम सघ के प्रमुख व्यक्तियो के समक्ष प्रकट किये। सभी ने पूज्य श्री के इन विचारो को, उनकी आज्ञा मानकर, शिरोधार्य किये। और श्रीमान् माधवमुनिजी म के अभिप्राय को जानने के लिये, एक शिष्ट-मण्डल उनकी सेवा मे रवाना हुआ।

उस समय प श्री माधवमुनिजी म आगरा मे विराजमान थे। रतलाम का शिष्ट-मण्डल वहाँ पहुँचा, और मुनि श्री को सम्पूर्ण स्थिति की जानकारी दी। महाराज श्री ने रतलाम की स्थिति जानने के बाद अपने सतो से कुछ विचार-विमर्श किया और उत्तर दिया-'आचार्य पद के ग्रहण के विषय मे अभी कुछ भी निर्णय नही दे सकता हू। परन्तु पूज्यश्री ने मुझे याद किया है, इसलिये अनुकूलता रही तो चैत्र के चरमान्त तक पूज्य श्री के दर्शन करने की इच्छा है।' रतलाम के विचक्षण श्रावको ने इन सीमित शब्दो मे अपने कार्य की सफलता देखी। वे बडे प्रसन्न हुए। उन्होने रतलाम आकर, पूज्य श्री को इस बात की सूचना दी। यह बात है-वि स १९७७ की।

श्रीमान् माधवमुनिजी म अपने वचनानुसार चैत्र के शुक्लपक्ष मे (स १९७८) रतलाम पधार गये। वे पूज्य श्री की आज्ञा और सघ के अनुरोध को न टाल सके। वैशाख शुक्ला पचमी को उन्हें युवाचार्य पद प्रदान किया गया। स १९७९ मे आचार्य श्री की रुग्णता बढ गई। तब वै वि १० को, युवाचार्य श्री, उपाध्याय श्री चम्पालालजी म, स्थविर श्री ताराचन्दजी म तथा अन्य साधु और प प्रवर श्री अमीऋषिजी म, ज्योतिष शास्त्र-निष्णात प दौलतऋषिजी म आदि प्रमुख सत, प्र श्री माणकजी म और प्र श्री टीबूजी म आदि साध्वियो, रतलाम के प्रमुख श्रावको एव श्राविकाओ की उपस्थिति मे पूज्य श्री ने चतुर्विध सघ से क्षमायाचना और क्षमार्पण करते हुए, शिष्य सम्प्रदाय, उपकरण आदि

का ममत्व त्यागकर लगभग ८ वजे जीवन-पर्यन्त अनशन ग्रहण कर लिया। अनशन पाठ प श्री अमीऋषिजी म ने सुनाए। पूज्यश्री उस समय बडे सावधान थे। उस समय पूज्य श्री के वस्त्र पर वहुत छोटा खटमल जा रहा था। पूज्य श्री ने सतो से उसकी यत्ना करने के लिए कहा। श्रीमान दौलतऋषिजी म यत्ना करने के लिए तत्पर हुए। परन्तु उन्हे वह लघुकाय खटमल दृष्टिगत नही हुआ। फिर अन्य सत ने यत्नापूर्वक उसे अन्य स्थान पर रख दिया। तव प. श्री दौलतऋिपिजी म. ने कहा-'पूज्य श्री की दृष्टि अभी भी इतनी तीक्ष्ण है। अत सभव है, कि—सथारा लँबे समय तक चले।' इस प्रकार उनकी चेतना स्वस्थ थी। उसी दिन लगभग ग्यारह बजे आपने सिद्धप्रभु का स्मरण करते हुए, देहपिन्जर का त्याग कर दिया।

पूज्यश्री एक प्रमुख एव विशिष्ट सम्प्रदाय के आचार्य थे। लगभग ३०० साधु-साध्विया उनकी आज्ञा मे विचर रहेथे। परन्तु उन्हे अपने पद का लेशमात्र अभिमान नही था। कोई यदि उनका नाम पूछता तो सहज और निश्छल भाव से उत्तर देते-'मेरा नाम नन्दा!'

पूज्यश्री मे निर्ममत्त्व भी विशिष्ट मात्रा मे था। एक वार आप विहार करते हुए महिदपुर पधार रहे थे। गॉव के वाहर एक परिचित व्यक्ति मिल गया। उसने वन्दना करके कहा-'भले पधारे महाराज! आपके भाई की [146] वारात भी यहाँ आई हुई है। अच्छा सयोग रहा।' पूज्यश्री को इस बात का पता नही था। वे अचानक ही उधर पधार गये थे। परन्तु वे समयज्ञ थे। उपर्युक्त बात सुनते ही पूज्यश्री ने उसी क्षण अन्य दिशा मे अपना विहार मोड दिया। कहनेवाला बेचारा ताकता ही रह गया। कैसा था आपका नि.स्नेह भाव?

---

[146]आपकी दीक्षा के बाद सेठ नगाजी (पू श्री के पिता) के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। भेरूलालजी ओर चम्पालालजी। उस समय चम्पालालजी की शादी थी। सप्रति वयोवृद्ध श्री चम्पालालजी ओर उनका परिवार सघ-सेवा मे अच्छा लाभ लेते है।

किन्ही तात्कालिक कारणो से प्रेरित होकर, स्थानक-त्याग की घोषणा की। उस समय अपने ही साधु, साध्वियो और श्रावको द्वारा घोर तिरस्कार किये जाने पर भी न तो आप क्रुद्ध हुए और न विचलित हुए। खाचरोद के एक प्रमुख सेठ, विद्वान श्रावक जीतमलजी सेठिया ने पूज्यश्री को इस विषय को लेकर खूब कठोर बाते कही। पूज्यश्री मौन रहकर सुनते रहे। जब सेठजी बोलने से रुके, तब पूज्यश्री ने शान्त स्वर मे उनसे कहा—'बस अब कुछ शेष तो नही रहा। यदि कुछ बाकी रह गया हो तो और सुना दीजिए। ये कान खुले है ही।' यह सुनकर सेठजी कुछ लज्जित हो गये।

यह तो दीये जैसी स्पष्ट बात है, कि-पूज्यश्री के हृदय मे अन्य परम्परा के साधुओ के प्रति भी विशेष मान था। यह बात तो आपके द्वारा अपने उत्तराधिकारी के चुनने से ही विदित हो जाती है। जब रतलाम मे श्रावको के प्रतिक्रमण के विषय मे विवाद खडा हुआ, तब उसका निर्णय करने के लिए, किसी ने अन्य सम्प्रदाय के आचार्य का नाम सुझाया। यद्यपि पूज्यश्री निर्णय देने मे स्वतन्त्र थे, उन्हे अपनी सम्प्रदाय के ऊपर, अपनी श्रद्धा के अनुसार अनुशासन करने मे, किसी की राय मात्र का भी बन्धन हो नही सकता था। फिर भी पूज्य श्री का सौहार्द था, कि-उन्होने इस बात को स्वीकार मात्र ही नही किया, पर उन आचार्य श्री का मान रखने के लिए, कई मील चलकर उनके पास गये। परन्तु उन आचार्य प्रवर ने पूज्य श्री से इस विवाद के विषय मे कुछ भी चर्चा किये बिना ही अपनी साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार एक पक्षीय निर्णय दे दिया। इससे पूज्य श्री के साधुओ और श्रावको मे क्षोभ व्याप्त हो गया। फिर भी पूज्य श्री ने उन आचार्य के प्रति जरा भी घृणा का प्रदर्शन नही किया और न उन आचार्य के श्रावको के दबाव मे आकर सत्य से विचलित ही हुए। इस प्रकार पूज्य श्री ने कई बार अपमान के विष को पचाया था।

अनेक शिष्य–प्रशिष्य हुए। जिनमे प श्री किशनलालजी म और कविवर्य श्री सूर्यमुनिजी म प्रसिद्ध शिष्य रहे है।

पूज्य श्री माधवमुनिजी महाराज (आठवे आचार्य)

इस शाखा के आठवे आचार्य पू श्री माधवमुनिजी म हुए। कुछ समय के लिए मालवा-परम्परा की विद्यमान समस्त शाखा-प्रशाखाए एकसूत्र मे आवद्ध हो गई। उनकी जीवन गाथा, आपके शिष्य श्रीमान् मूलमुनिजी म के द्वारा प्राप्त सामग्री के अनुसार दी जा रही है।

वालक माधव:–

आगरा और भरतपुर के वीच के प्रदेश मे एक अछनेरा कस्वा है। उसके सन्निकट एक पूरे 'ओढेरा' मे सनाढ्य ब्राह्मण 'वशीधरजी' रहते थे। उनकी पत्नी का नाम 'रायकुँवर' था। वशीधरजी उस वस्ती मे पुरोहिताई का काम करते थे। अत लोग उन्हे गामोठजी पण्डित कहते थे। उन्हे स १९२८ मे एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र क्रमश. वढने लगा। उस शिशु का नाम 'माधव' रखा गया। वालक पाच वर्ष का हुआ। माता रुग्ण हो गई और वीमारी मे ही वह चल वसी। पिता को पत्नी का वियोग सालने लगा। वालक के लिए पिता ही सव कुछ थे। परन्तु माता के देहान्त के कुछ काल वाद ही पिता भी इस विशाल ससार मे वालक माधव को अकेले ही छोडकर, यहाँ से सदा सदा के लिए रवाना हो गये। माधव अल्पायु मे ही माता-पिता की मङ्गल छाया से वञ्चित हो गये। वालक माधव ने अभी ससार को चकित नयनो से देखना सीखा ही था, कि–कठोर काल ने उस अवोध दृष्टि के सामने ससार की भयावनी मुद्रा अनावृत कर दी।

उस समय भरतपुर मे पल्लीवाल जाति के एक राजकर्मचारी थे। वे वक्सीजी के नाम से पहचाने जाते थे। वे बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनके यहाँ एक ब्राह्मणी रसोई वनाया करती थी। वह वालक माधव की भूआ थी। उसने अपने भाई के देहान्त की वात सुनी। उसको वडा दुःख हुआ। वह अपने भाई के गाँव पहुँची। अपने भाई

की एक मात्र थाती बालक 'माधव' को अपने साथ लेकर वह भरतपुर लौट आई। वह बालक को अपनी शक्ति के अनुसार प्यार दुलार दे रही थी। बालक का गौरवर्ण था। शरीर सुगठित था। मुखमुद्रा आकर्षक थी।

प्रतिभा की पहचान.—

पूज्य श्री मेघराजजी म * विचरण करते हुए भरतपुर पधारे। वे अनेक विद्याओं के मर्मज्ञ सन्त थे। वे प्राय भजन-ध्यान में लीन रहते थे। महाराज श्री के दर्शन करने एव उपदेश सुनने के लिए बक्सीजी की धर्मपत्नी भी आती थी। वह कभी-कभी अपने सग बालक माधव और उनकी भूआ को भी लाती थी। बालक माधव तब तक नव-दस वर्ष के हो चुके थे। उनकी चेतना सवेदनशील थी। अत उन्हे कुछ-कुछ अपनी परिस्थिति का बोध हो रहा था। महाराज श्री ने बच्चे को स्थिर बैठकर, अपनी बात को ध्यानपूर्वक सुनते हुए पाया। उन्होंने बालक की देहपर, भविष्य का भेद लेती हुई अपनी दृष्टि को फिराई। उन्हे बालक मे विलक्षणता प्रतीत हुई। महाराज श्री को लगा, कि-यदि यह बालक दीक्षित हो, तो धर्म की बहुत बडी प्रभावना कर सकता है। उन्होंने अपने मन की बात बक्सीजी की धर्मपत्नी और माधव की भूआ के सामने रख दी। भूआ पहले तो विचार मे पड गई। पर फिर उसने दीर्घदृष्टि से सोचा, कि-'इस बालक का मेरे सिवाय कोई आधार नही है और मेरे ही तन का क्या भरोसा? यदि यह महाराज श्री के पास रहेगा तो पढेगा-लिखेगा और विद्वान बनेगा। भाई के वश को उज्जवल ही करेगा। महाराज तो सिद्ध पुरुष है। उन्होंने बच्चे के भविष्य को देखकर ही बात कही है। मुझे बच्चे पर ममत्व नही करना चाहिये। ममत्व से तो मै इसे कुछ भी नही बना सकूँगी?' वह श्रद्धावनत होकर गद्गद कण्ठ से बोली गुरु महाराज, हम तो पामर प्राणी हैं, आप महान् आत्मा है। आपकी वाणी को हम कैसे ठुकरा सकते है। यह बालक जन्म से दुखी है। पाँच-छह वर्ष की वय मे ही इसके माता-पिता उठ गये। क्या मालूम यह भगवान के रास्ते पर चलने के लिये ही जन्मा हो! इसलिए इसके

* मालवा पट्टावली में श्री चुनीलालजी म के पदार्पण का उल्लेख है।

रास्ते से सभी बाधाँए हट गई है। आप तो भगवान के स्वरूप है। भगवान् अपनी ही वस्तु माँग रहे है तो मै उसमे कैसे बाधक बन सकती हू ! मैं इस बालक को सहर्ष आपके चरणो मे भेट करती हूँ।' यह कहकर भूआजी ने अञ्चल से आसू पोछकर, हाथ जोडे और मस्तक जमीन पर टेक दिया। बस बालक उस दिन से महाराज श्री का हो गया। बालक ने मानो अपने माता पिता तो क्या पर सब कुछ पा लिया।

अब बालक महाराज श्री के सग ही रहने लगा। बालक नयनाभिराम सौन्दर्य का स्वामी होने के साथ ही साथ कुशाग्र बुद्धिवाले थे। बालक मे बचपन की चञ्चलता की अपेक्षा वैचारिक वृत्ति ज्यादा थी। वह कोई भी बात बडे ध्यान से सुनते थे और धारणा शक्ति भी विशिष्ट थी। फिर भी थे बालक ही। अत उनकी देख रेख के लिये गोपालजी (श्रीमान् मूलमुनिजी म के ससार पक्ष के काका) नाम के व्यक्ति सग रहते थे। वे बडे प्रेम से बालक का प्रतिपालन करते थे।

वैरागी माधव:-

माधव अब वैरागी थे। अध्ययन से उनकी बुद्धि मे परिष्कार हो रहा था। पूज्य श्री के साथ-साथ वे विहार करते थे। कष्ट-सहिष्णु तो वे पहले से थे ही। अब उनके इस गुण मे और वृद्धि हो रही थी। बालक के व्यक्तित्व के विकास मे पूज्य श्री की वात्सल्य भरी अमृत दृष्टि का वडा प्रभाव था। महाराज श्री के सग बालक माधव ने मालवभूमि का भी स्पर्शन किया। रतलाम, खाचरोद, उज्जैन, धार, आदि प्रमुख नगरो को बाल्यकाल मे ही देखकर, मानव-जीवन की विविधताओ का निरीक्षण कर लिया। आपको उज्जैन के समीप के ग्राम विछडौद मे रहने का काम विशेप पडा। पूज्य श्री माधव की बुद्धि को परिपुष्ट वनाने के हेतु विविध प्रयोग भी किया करते थे। * माण्डवगढ के एक खण्डहर मे महाराज श्री ने वैरागी माधव के नेत्रो पर कुछ प्रयोग किया। बालक चकित होकर कुछ गिनने लगा। पूज्य श्री ने पूछा–'माधव ! तुम क्या

---

* यह प्रसग गुरुदेव प्र प श्री सूयमुनिजी म. के मुख से सुना है।

देख रहे हो।' माधव बोले 'गुरुदेव ! मुझे सोने की ईंटों से भरी हुई अठारह कोठरियाँ दिखाई दे रही है।' महाराज श्री ने वह प्रयोग हटा दिया और वे मुस्कराने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे मौन भाषा मे कह रहे है, कि-'भाई ! किसीने कितनी तीव्र अभिलाषा से इस सोने का सग्रह और सरक्षण किया होगा। परन्तु इस सग्रह का वह गर्वोन्नत स्वामी कहाँ गया-इसका पता ही नही है और यह मिट्टी का जाया स्वर्ण मिट्टी मे ही दवा पडा है।'

महाराज श्री ने जयपुर-भरतपुर की तरफ विहार किया। कोटा के आसपास माधव एकदम अस्वस्थ हो गये। महाराज श्री ने गोपालजी से कहा-'गोपालजी ! इस बच्चे को पीठ पर उठाना होगा। हमे इस स्थान से जल्दी ही वारह कोस दूर चला जाना होगा।' गोपालजी बोले 'गुरुदेव ! कोई चिन्ता की वात नही। मैं तैयार हू।' फिर ऐसा ही हुआ बालक को क्षण भर मे मरणासन्न देखकर महाराज श्री को कुछ शङ्का हो गई थी उस क्षेत्र की सीमा से वाहर होने के वाद, गोपालजी ने महाराज श्री के सङ्केत के अनुसार उनका कुछ उपचार किया और वे तत्काल स्वस्थ हो गये। इस घटना के वाद महाराज श्री ने उन्हे मनोवल दृढ बनाने का शिक्षण देना भी प्रारम्भ किया।

अचानक महाराज श्री ने भरतपुर की तरफ जाने का विचार स्थगित कर दिया और वे अजमेर पधार गये। वहाँ एक वृद्धा साध्वी थी। वे अकेली ही थी। लोगो की उन पर ऐसी शङ्का थी, कि उन्हे डाकिनी मन्त्र सिद्ध है। पर उन सतीजी ने वैरागी माधव को बहुत ही वत्सलता प्रदान की। इस प्रसग से माधवजी को यह शिक्षा मिली कि-'आप भला तो जग भला' और 'भ्रम का सही उपचार है, वस्तु स्वरूप का सही दर्शन।'

वैरागी माधव की दीक्षा -

माधवजी को महाराज श्री के सग रहते हुए, चार-पाँच वर्ष हो चुके थे। आपकी आयु भी बारह-तेरह साल की हो चुकी थी। अब माधव बचपन और यौवन के बीच की किशोर-अवस्था से गुजर रहे थे।

उन्होंने कुछ जैनागमों का भी अध्ययन कर लिया था और स्तोकज्ञान (थोकडो) का भी अर्जन किया था। चिन्तन का वैभव भी शनै शनै प्रकट हो रहा था। लोगो का आग्रह हुआ, कि-वैरागीजी की दीक्षा अजमेर मे ही हो। महाराज श्री ने भी समय योग्य देखा। वे सेठो के वाग मे पधारे और स १९४०, अक्षय तृतीया को प्रात काल विना किसी आडम्वर के, दीक्षा प्रदान कर दी। वहाँ आये हुए दर्शनार्थियो को, लोढा परिवार की एक सेठानी माँ साहिवा की ओर से प्रभावना दी गई थी। वैरागी के लिए साधुवेश और अन्य पात्र आदि सामग्री भी सम्भवत उन्ही की ओर से प्रदान की गई थी। अव वैरागी माधवजी 'माधवमुनिजी' वन गये थे। श्री माधवाचार्य जी उन उदारमना सेठानीजी की उदारता की वहुत ही प्रशसा करते थे।

गुरुदेव का वियोग:-

दीक्षा के वाद सोजत, जैतारण पाली आदि क्षेत्रो मे विचरण करते हुए, महाराज श्री पल्लीवालो के क्षेत्र मे पधार गये। गुरुदेव की छत्रछाया मे दो ढाई वर्ष वीत गये। महाराज श्री ने महुआ रोड (मडावर) मे सेठ रामलालजी चाँदूलालजी की दूकान मे चातुर्मास किया था। चातुर्मास अधिकाँश बीत गया था। दीपावली हो चुकी थी। कार्तिक शुक्ला पचमी का दिन था। दैवसिक प्रतिक्रमण हो गया था। श्रावक गण सायङ्कालीन सामायिक करके घर जाने की तैयारी कर रहे थे। तव महाराज श्री ने दो वृद्ध धर्मज्ञ श्रावको को फरमाया, 'कि आज रात्रि मे आपको सवर के लिए यहीं अवसर देखना आवश्यक है।' श्रावक महाराज श्री की वात से चौके। पर उन्होने कुछ भी प्रश्न न करके, उन की आज्ञा को 'तहत्ति' कह कर शिरोधार्य कर लिया।

दोनो श्रावक अपने-अपने विछौने ले आये और महाराज श्री से सवर ग्रहण किया। महाराज श्री ने उनसे कहा-'तुम्हे आज रात्रि भर धर्म जागरिका करना है।' इसके वाद माधवमुनिजी म की ओर सकेत करके कहा-'यह अभी वच्चा है। कदाचित् यह भयभीत हो जाय। इसलिये इसे निद्रा लेने दो और आप जागते रहो।' महाराज श्री ने लघुमुनिजी के

मस्तक पर हाथ फेरा और कहा–'वत्स! जाओ! अव सो जाओ।' माघवमुनिजी म को इन वातो मे क्या रहस्य है–इसका कुछ भी पता नही चला। वे सो गये। उन्हे निद्रा लग गई। महाराज श्री ने स्वय अपने हाथो से उन्हे कमली औढा दी। फिर श्रावको से वोले–'मैं क्षमा चाहता हू और तुम्हे क्षमार्पण करता हू।'

श्रावक वोले–'गुरुदेव आप! यह क्या फरमा रहे हैं?' महाराज श्री वोले-'काल के आगे किसी की ननु-नच नही चल सकती है। मेरे गुरुभाई [147] मगनमुनिजी म हाडौती मे विचरण कर रहे हैं। उन्हे सदेश देकर एव यहा बुलाकर, इन वालमुनि को उन्हे सौप देना और जव तक वे यहा न आये, तव तक आप इसे धैर्य और विश्वास दिलाकर, यहीं रखना। इसे किसी प्रकार का भय-क्लेश न होने पाये। यह आपके खोले है। अव मैं कायोत्सर्ग करता हू। मुझे छेडना मत।' दोनो श्रावको ने महाराज श्री के चरणो का स्पर्श किया, श्रद्धापूर्वक 'तथास्तु' कहा और प्रतिज्ञा की-'गुरुदेव! आपकी आज्ञा का अक्षरश. पालन होगा। जव तक मगनमुनिजी म न पधार जाए गे, तव तक हम इन्हे क्षणभर भी अकेले नही छोडे गे। आप निश्चिन्त होकर आत्म–साधना करे।

महाराज श्री ने पद्मासन लगाया। मुख पर चादर औढ ली और समाधिस्थ हो गये। दोनो भाई उन ध्यानमग्न महामुनि को एक ध्यान होकर देखते रहे। लगभग अर्द्ध रात्रि व्यतीत हो गई। उस समय महाराज श्री ने दोनो हाथो से तीव्र वेग से मुख पर से चादर हटाई। तीन हिचकियाँ आई और सब कुछ शान्त हो गया। उस नीरव शान्त रात्रि मे वे दोनो श्रद्धालु श्रावक गुरु गुणो का स्मरण करते हुए उनके शव की रक्षा करते रहे।'

रात बीती। प्रात काल का समय समीप था। बाल सन्त की निद्रा उड चुकी थी। वे अपने आसन से उठे और सदा के अनुसार

---

[147] श्री मगनमुनिजी म ने मेघमुनि चरित्र मे लगता है अपने गुरु चुनीलालजी म को बताये है और उनके गुरु मेघराजजी म बताये हैं। ऐसा ही क्रम म सता की पा' मे भी हैं। यहा यह बात किस आशय से कही है–समझ मे नही आई।

रात्रिक प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के लिए गुरुदेव के समीप आकर उन्हें वन्दना करने को तत्पर हुए। तब श्रावकों ने कहा–'आप किसे वन्दना कर रहे हैं ? गुरुदेव तो है नही !' बालसन्त बोले–'ये गुरुदेव ही तो विराजमान है !' श्रावक बोले-'नही ! यह तो गुरुदेव का शरीर मात्र है। गुरुदेव अब नही रहे।' यह सुनकर बालमुनि स्तब्ध रह गये। उनकी बुद्धि ने इस बात को स्वीकार नही किया। वे एकदम बोल पडे–'आप यह क्या कह रहे है ? श्रावकों ने सारी घटना कह सुनाई। सारी स्थिति जानकर, बाल सन्त श्री माधवमुनिजी म शोकाकुल हो गये-'अब मेरी क्या गति होगी ? मुझे कौन ज्ञान देगा ? गुरुदेव ने मुझे कुछ भी नही बताया ! रात्रि मे मुझे जल्दी ही सुला दिया। गुरुदेव ! गुरुदेव !!' उनकी आकुलता देखकर श्रावक उन्हे धैर्य दिलाते हुए बोले–'महाराजजी ! होनी की अनहोनी हो नही सकती। अब आप चिन्ता न करे। श्रीमान् मगनमुनिजी म हाडौती मे विचर रहे हैं। गुरुदेव ने हमे आज्ञा दी है, कि-हम आपको उन्हे सुपुर्द कर दे। हम हाडौती मे सदेश पहुँचा रहे है। वे अवश्य यहाँ पधारेंगे, और हम आपको उनकी सेवा मे रखकर ही चैन की नीद लेंगे।'

श्री माधवमुनिजी म ने दीक्षा के बाद बहुत अल्पकाल ही गुरुदेव के सग बिताया था। गुरुदेव का यह अकस्मात् वियोग उन्हे बहुत ही कसक रहा था। पर उन्होने अबतक मन को समझाने की कला प्राप्त कर ली थी। उन्होने अपना मन वज्रतुल्य बनाया।

नये छत्र की छाया मे

श्रावकों ने श्रीमान् मगनमुनिजी म के पास सदेश भेजा। उन्हे श्री मेघराजजी म के देह-विलय के समाचार से बडा आघात लगा। वे जल्दी ही मडावर की ओर चल दिये और उग्र विहार करके वहाँ पहुँच गये। उन्होने श्री माधवमुनिजी म को अपने हृदय से लगा लिया और वात्सल्य की वर्षा से उनका गुरुवियोग–जनित ताप शान्त कर दिया।

उस समय श्री माधवमुनिजी म की पन्दरह-सोलह वर्ष की आयु थी। अभी विधिवत् शास्त्राभ्यास प्रारम्भ ही हुआ था, कि–गुरुका वियोग हो गया। अब श्रीमान् मगनमुनिजी म. ने बालमुनि की अध्ययन की

रुचि देखी तो उन्होने सप्तभङ्गी-स्याद्वाद् षड्द्रव्य, नवतत्त्व, सग्रहणी, जीव-विचार, द्वादशानुप्रेक्षा, महादण्डक, निक्षेप-विचार आदि प्रकीणक ग्रन्थो का अध्ययन कराने के साथ साथ सारस्वतव्याकरण भी पढाया। फिर आपको अनुयोगद्वार, औपपातिक, राजप्रश्नीय, प्रज्ञापना, व्याख्याप्रज्ञप्ति, जीवाभिगम, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति और प्रश्नव्याकरण इन सूत्रो मे अच्छे व्युत्पन्न बना दिये। करौली मे एक राजपूज्य यतिवर्य थे। उनसे आपने चन्द्रिका और ज्योतिष का अध्ययन किया। अब आप (राय धनपतसिंह बहादुर के द्वारा प्रकाशित) आगमो की टीकाओ का अवलोकन करने लगे। जहाँ टीकाओ मे आपको विरोधाभास प्रतीत होता था, उन स्थानो को आप मूल आगम से मिलान करके और पुन पुन अनुप्रेक्षा करके निर्णय कर लेते थे। या फिर आप वह शका पूज्य श्री मगनमुनिजी म के समक्ष रखते थे। तब वे विविध तर्कों से समझा कर शङ्काओ का समुचित समाधान करते थे।

आप विचरते हुए एकदा भरतपुर पधारे। वहाँ बाबू मङ्गलसिंहजी (टोक रियासत के निवृत सूबेदार) ने आपकी ज्ञान-पिपासा देखकर पण्डित कुञ्जलालजी वाजपेई से परिचय करवा दिया। पण्डितजी ने काशी के सरस्वती प्रज्ञाचक्षु से विद्याध्ययन किया था। आप पाणिनीय अष्टाध्यायी और उसके महाभाष्य के पारगत थे। न्याय के नब्बे हजार ग्रन्थ (श्लोक) उनकी जिह्वा पर विचरण करते थे। उस समय पडितजी वृद्ध हो चुके थे। उनकी रजत-धवल दाढी नाभितक पहुँचती थी। वे पूरे ऊँचे और गौराङ्ग थे। वे अलवर और भरतपुर रियासत मे तहसीलदार रह चुके थे और अब इन कार्यों से निवृत्त होकर, विद्यार्थियो को निशुल्क न्याय और व्याकरण का अध्ययन करवाने मे आनन्द का अनुभव करते थे। आप भी ब्राह्मण और पूज्यश्री माधवमुनिजी म भी ब्राह्मण ! दोनो मे गाढी बनी। पण्डितजी ने अपने हृदय हस की विद्या भगवती को स्वच्छ रूप से मुनिश्री के कण्ठ मयूरासन पर विराजित कर दी। पण्डितजी ने उन्हे वैयाकरण और नैयायिक बना दिया। मुनिश्री ने पण्डितजी से अष्टाध्यायी और उस की काशिका वृत्ति को तो हस्तामलकवत् कर लिया।

अब युवक मुनिजी को अध्ययन रुचि तीव्र हो गई थी। उन्होंने पण्डित के पास अध्ययन करने के पश्चात् सप्तभङ्गी-तरङ्गिणी, स्याद्वाद-मञ्जरी, प्रमाण-नयतत्त्वालोक, गुणस्थान-क्रमारोह, कर्मग्रन्थ, प्रवचन-सारोद्धार, समयसार द्रव्यसंग्रह, ज्ञानार्णव, तत्त्वार्थसूत्र, गोम्मटसार, तत्त्वार्थराजवार्तिक, जैन तत्वादर्श, तत्वनिर्णयप्रासाद, समकितसार, सम्यक्त्व शल्योद्धार आदि जैनधर्म के ग्रन्थो का, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति, कुछ पुराण, कुछ उपनिषद्, सत्यार्थप्रकाश आदि जैनेतर धर्मग्रन्थो का, ग्रहलाघव, होराचक्र, मुहूर्त चिन्तामणी, ताजिक नीलकण्ठी, रण-वीरज्योतिर्महानिबन्ध आदि ज्योतिष-ग्रन्थो का और सुश्रुत, चरक, वाग्भट, योग चिन्तामणी, भावप्रकाश, शार्ङ्गधर आदि वैद्यक ग्रन्थो का यथा समय परिशीलन किया।

इस प्रकार आपने श्रीमान् मगनमुनिजी म की छत्रछाया मे अपना सर्वाङ्गीण विकास किया। आप उन के वात्सल्य पूर्ण व्यवहार से कृतज्ञता से भर गये। प श्री मगनमुनिजी म ने यह नही समझा, कि—यह अन्य गुरु का शिष्य है और न श्री माधवमुनिजी म ने ही यह समझा, कि मेरे गुरु मगनमुनिजी म नही है। यहाँ तक कि उन्होने अपने दीक्षादाता गुरु का कही नामोल्लेख ही नही किया। किन्तु 'सुगुरु मगन सुपसाय' 'चरणकरणयुत सुगुरु मगनमुनि' 'लहि माधवने गुरु मगन–चरण की शरण' 'सुगुरु पाये मैं बडभागन्। मगनमुनिराज मनभावन आदि ही उल्लेख किया है और जन समाज मे यही प्रसिद्धि है, कि—आप 'मगन-मुनिजी म' के शिष्य थे। एकबार आपके शिष्य श्री मूलमुनिजी म ने आपसे पूछ ही लिया, कि– गुरुदेव! आपके गुरुवर तो श्री मेघराजजी म है, परन्तु उनका आपने कही नाम ही नही लिया।' यह सुनकर उनकी आखो मे अश्रु भर आये। वे बोले–बच्चा! तुमसे क्या कहू? मेरे दीक्षादाता महान् गुरु श्री मेघराजजी म (!) थे मै उन्हे कैसे भूल सकता हू। उन्होने ही मुझ कङ्कर को शङ्कर के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। वे तो मेरे हृदय सिंहासन पर विराजमान है और श्री मगनमुनिजी म मेरे पालक है, शिक्षागुरु है। उन्होने मुझे पत्थर से प्रतिमा बनाया। उनका नाम जिह्वा पर से कैसे हटा सकता हू'?' कैसी थी आपकी यह कृतज्ञता?

उदात्त वृत्तियाँ

इस प्रकार श्री माधवमुनिजी म स्व-पर-सिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता हो गये। आपको दश शास्त्र और सिद्धान्त के रहस्य रूप कई थोकडे कण्ठस्थ थे। आपने वादविद्या मे भी दक्षता प्राप्त की थी। आपके व्यक्तित्व की जैन समाज पर इतनी गहरी छाप पड़ चुकी थी, कि–'सौ साधु एक माधु' की उक्ति प्रचलित हो गई थी।

आप अध्ययन के प्रेमी मात्र ही न थे। परन्तु अन्य को भी उदारता के साथ हृदय खोलकर, विद्यादान करते थे। योग्य पात्र को अध्ययन कराने मे आपको बडी प्रसन्नता का अनुभव होता था। आपने अलवर निवासी भाई सुन्दरलालजी को पाणिनीय अष्टाध्यायी और आगमो की टीकाओ का अभ्यास करवाया था, जो आगे चलकर पू श्री जवाहरलालजी म के सन्तो मे दीक्षित हुए और पूज्यश्री घासीलालजी म के पास तपस्वी श्री सुन्दरलालजी म के नाम से प्रसिद्ध हुए। अलवर निवासी सेठ चाँदमलजी पालावत भी धार्मिक ज्ञान की प्राप्ति में अपने ऊपर पू श्री का उपकार मानते थे। इस प्रकार क्या गृहस्थ और क्या साधु, जो भी आपके पास जिज्ञासु बनकर आता, वह इस अजस्र प्रवाहित धारा ज्ञान-पयस्विनी से अपनी प्यास बुझाकर ही जाता। आपका ज्ञानदान अपूर्व था।

आप विद्वान् सन्त थे, परन्तु आपमे विद्वता का अभिमान नही था। गुरु-आज्ञा का पालन करने मे सदा तत्पर रहते थे आप। श्रीमान् मगनमुनिजी म के सग ही आपका चातुर्मास अलवर मे था। एक दिन दुपहर के समय एक ओसवाल भाई आया और श्री मगनमुनिजी म से बोला–'महाराज! मेरे बच्चे को न जाने क्या हो गया है? आप मङ्गलपाठ सुनाने के लिये पधारें।' महाराज श्री ने श्री माधवमुनिजी म से कहा–'माधव! जा। उस बच्चे को मङ्गलपाठ सुना आ'। आपने क्षण भर की देर न की और श्रावक के सग हो गये।

आपने श्रावक के घर मे प्रवेश किया। बच्चा महाराज श्री को देखते ही चिल्लाकर बोला–'हाँ! मैं जानता हू, आप जैन साधु है। परन्तु

उन सेठजी का और उनके मुनीमजी का, ये दो घर ही जैन के थे। सेठजी की उदारता से वहाँ की अधिकांश जनता प्रभावित थी। सेठजी का आग्रह था, कि श्री माधवमुनिजी म का एक चातुर्मास यहाँ हो जाय। जब सेठजी का अत्यधिक आग्रह देखा, तब मुनिश्री ने यह बात गुरुदेव को कही। श्री मगनमुनिजी म ने न जाने क्यो उन्हे अकेले ही चातुर्मास करने की आज्ञा दे दी। आप गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके, वृन्दावन मे एकल विहारी के रूप मे रहे। उस चातुर्मास मे आपके व्याख्यान आदि से पण्डित लोग अत्यन्त प्रसन्न रहे। इस प्रकार आपने अकेले रहकर सयम की कसौटी साधी। इधर श्री मगनमुनिजी म का हृदय आपके वियोग से विशेष व्यथित रहने लगा। अत चातुर्मास उठते ही गुरुदेव ने अपने शिष्य को अपनी सेवामे बुलवा लिया।

पूज्य मगनमुनिजी महाराज का वियोग

स १९७६ मे आपका चातुर्मास पालनपुर था। और उस समय श्री मगनमुनिजी म का चातुर्मास मण्डावर मे था। उनके पास बालसत रत्नमुनिजी ही थे। सवत्सरी के बाद श्री मगनमुनिजी म का स्वास्थ्य बिगड गया। औषध-उपचार का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। सब समाचार पालनपुर पहुँचे। गुरुदेव की सेवा मे पहुँचना आवश्यक हो गया। अत आपने आश्विन शुक्ला १ या २ को शिष्य मडली सहित मडावर की ओर विहार कर दिया। आप अजमेर की ओर सडक पर चल रहे थे। उस समय अचानक ही आपके पैर का अँगूठा टीस के साथ सूज गया। आपका माथा ठनका और व्यग्रचित्त से बोल पडे-'मालूम पडता है कि आज गुरुदेव के शरीर मे कुशल नही है।' ज्यो-त्यो करके साय-ड्काल को एक छोटे ग्राम मे पहुँचे। वहाँ श्रावको के कुछ घर थे। सारी रात चिता मे बीती। प्रात काल विहार को तत्पर थे, कि अजमेर का एक भाई तार के समाचार लेकर आया कि-कल (अर्थात स १९७६ कार्तिक शु ५) को अर्द्ध रात्रि के लगभग श्री मगनमुनिजी म का देहान्त हो गया। यह कैसा सयोग था, कि-श्रीमेघराजजी म और श्रीमगनमुनिजी म दोनो का उसी गाम मे, उसी मकान मे, उसी मास के उसी पक्ष की उसी तिथि मे और लगभग उसी समय मे देहान्त हुआ और दोनो के पास

एक-एक वालमुनि ही थे। अपने महान उपकारी के देहान्त के समाचार पाकर, उन महापुरुष का हृदय व्यथित हो गया।

अजमेर की ओर चरण वढ रहे थे। उस समय अजमेर मे चातुमासार्थ श्रीमान् प अमीऋषिजी म विराजमान थे। श्रीअमीऋषिजी म वालमुनियो की अनुकम्पा से प्रेरित होकर कुछ आहारादि लेकर आगे पधारे। उन्होने आपके प्रति पूज्यभाव और वालमुनियो के प्रति पूर्ण वत्सलता प्रकट की। आपने सभी को सान्त्वना दी। अन्त मे आप जयपुर आदि स्थानो पर होते हुए मडावर पहुँचे और जैसे श्री मगनमुनिजी ने उन्हे हृदय से लगाया था। वैसे ही उन्होने श्री रत्नमुनिजी म को हृदय से लगाकर सान्त्वना दी।

आचार्य-पद प्राप्ति

स १९७७ मे पू श्री माधवमुनिजी का चातुर्मास आगरा मे था। रतलाम श्री सघ की रतलाम की ओर पधारने की आग्रह भरी विनती हो रही थी। पूज्यश्री नन्दलालजी म आपको अपने उत्तराधिकारी चुनने के भाव प्रकट कर ही दिये थे। आपने रतलाम की ओर विहार कर दिया। तव आपके अन्तेवासी श्रीमान् मूलमुनिजी म को आचार्य-पद की प्राप्ति के लिए विहार अपने गुरुदेव के विचारो के प्रतिकूल लगा। अत. उन्होने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा 'गुरुदेव! रतलाम चलकर और पूज्यपद लेकर क्यो उजागरा पल्ले वाँधना?' महाराजश्री क्षण भर मौन रहे। फिर शान्ति के साथ अपने प्रिय शिष्य को समझाते हुए कहा-'वत्स! प्रपच से दूरातिदूर रहने की मेरी प्रकृति है। पर वात यह है कि सिद्धपाहुड प्रकरण मे एक-भवावत्तारी युग प्रधानो की नामावली मे 'माधव' नाम दो वार आया है। क्या-पता उन दोनो मे से एक 'माधव' मैं ही होऊ। [148]अवश्यम्भाविभाव' कौन टाल सकता है? यदि तुम्हें

[148] सिद्ध पाहुड मे [154]वें माधव' युगप्रधान का गृहपर्याय काल ११ वर्ष दीक्षा पर्याय काल ४० वर्ष और युग प्रधान पर्याय काल ९ वर्ष दिया है और [573] वें 'माधव' युगप्रधान का गृहपर्याय काल १३ वर्ष सामान्य दीक्षा पर्यायकाल १६ वर्ष और युगप्रधान काल १५ वर्ष दिया है। परन्तु पूज्यश्री का गृह पर्यायकाल १३ वर्ष, चारित्र पर्यायकाल ३७ वर्ष और युगप्रधानकाल ३ वर्ष है।

मालवे मे असुविधा होगी तो मैं उधर से पलटने मे विलम्ब न करूंगा।' प श्री मूलमुनिजी म सिद्ध पाहुडगत विषय को ज्ञातकर पूज्य श्री के विचार से सहमत हो गये। 'जैनपथ-प्रदर्शक' पत्रने इस विषय मे विरोधी रुख अपनाया और उसमे सम्पादक ने मालवा की ओर विहार के सम्बन्ध मे टिप्पणी की। इधर इतर सम्प्रदाय के मुखियाओ ने पूज्य श्री नन्दलालजी म के अनुयायी प्रमुख श्रावको को श्रीमान्माधवमुनिजी म के विरुद्ध बाते कही। पर श्रावको को तो पूज्यश्री की आज्ञा ही शिरोधार्य थी। अत वे अपने विचारो पर दृढ रहे। किन्तु उन्हे जैन पथ-प्रदर्शक' के विरोधी रूख से चिन्ता हुई। जब महाराजश्री का गगापुर से मालवा की ओर विहार हो गया, तब श्रावको की चिन्ता भी निर्मूल हो गई महाराजश्री अपने वचनानुसार योग्य समय पर चैत्रमास मे रतलाम पधार गये।

* आपको स १९७८, वैशाख शु ५ को युवाचार्य पद प्रदान किया। उसी समय पूज्य श्री चम्पालालजी म को उपाध्याय पद और चार साध्वियो को प्रवर्तिनी पद दिया गया। चार प्रवर्तिनियाँ-श्री बडे मेन-कुँवरजी म, श्री माणकजी म श्री महताबकुँवरजी म और श्री टीबूजी म थी। उसी समय प श्री सौभाग्यमलजी म और प श्री समर्थमलजी म (बहुश्रुत) को प्रवर्तक पद दिया गया था। आप पूज्यश्री नन्दलालजी म से दीक्षा मे कुछ काल [149]बडे थे। आप जब पधारे तब पूज्यश्री नन्दलालजी म आपको वन्दना करने के लिए हाथ जोडकर खडे हुए, परन्तु आपने पूज्यश्री को वन्दना करने से रोक दिया और हाथ जोडकर कहा 'भले ही मै आपसे दीक्षामे कुछकाल बडा हू। तथापि मैं साधारण मुनि

[149] पूज्यश्री नन्दलालजी म की दीक्षा तिथि स, १९४०, वै शु ३ है और पूज्यश्री माधवमुनिजी म की दीक्षा तिथि भी स १९४० वै शु ३ ही मूलमुनिजी म ने बताई है। और पू श्री माधवमुनिजी म को आठ मास बडे लिखा है, यह कैसे सम्भव हो सकता है? हा! आठ घण्टे बडे हो-यह सम्भव हो सकता है।

* युवाचार्य-पदोत्सव के आमन्त्रण-पत्र के रूप एक-एक पैसे के मात्र सौ पोस्टकार्ड छपे थे और आठ आने मात्र छपाई का व्यय हुआ था।

ठहरा और आप आचार्य पद धारक असाधारण आत्मा है। आपने अपना फर्ज अदा किया और अब मेरा फर्ज मुझे अदा करने दीजिए। मैं आपको लघु दीक्षित होने के कारण वदन करने मे असमर्थ हूँ तो वडे पद पर स्थित होने के कारण आपसे वन्दन कराना भी अनुचित समझता हूँ।' इस प्रकार आपने आचार्य श्री को वदन करने से रोक दिया और दोनो आत्मा नीर-क्षीरवत् आत्मीयता मे लीन हो गये। आपने उस वर्ष का चातुर्मास, समाचार पत्र, विज्ञापन, कुङ्कुम पत्रिका या साधारण पत्र-व्यवहार से दर्शनार्थियो को आमन्त्रित नही करना, इस शर्त मे इन्दौर मे करना स्वीकार किया और दूसरी शर्त यह भी रखी, कि– यदि दर्शनार्थी आये भी तो उनकी भोजन-व्यवस्था हेतु चौका नही चलाना। वहाँ चातुर्मास मे श्रीपूर्णमुनिजी (पूरणमलजी) म ने ग्यारह दिन का तप किया। परन्तु आपने तपोत्सव के नाम से किसी प्रकार का आडम्बर नही होने दिया। अन्त मे निरारम्भी तपोत्सव अपूर्व रूप से मनाया गया।

चातुर्मास बाद आपने देवास, उज्जैन, रतलाम, पेटलावद, थान्दला, झाबुआ, राजगढ आदि क्षेत्रो मे विचरण कर, धार मे पदार्पण किया। वहाँ रतलाम से समाचार प्राप्त हुए, कि–आचार्य श्री का स्वास्थ्य खराब है, अत युवाचार्य श्री जल्दी ही रतलाम पधारे। अत युवाचार्य श्री उग्रविहार करके, जल्दी ही रतलाम पधार गये। पूज्य श्री ने वै वि १० को चतुर्विध सघ की साक्षी से सस्तारक (अनशन) ग्रहण किया और उसी दिन लगभग ११ बजे सस्तारक सिद्ध हुआ। तब श्रीमान् अमीऋषिजी म. ने आचार्य पद की चादर, तत्काल युवाचार्य श्री को समर्पित की। सघ के नये आचार्य श्री माधवाचार्यजी म की साकेतिक अनुज्ञा प्राप्त करके पूज्य श्री की देह को बैठक दी, और 'जय जय नन्दा–जय जय भद्दा' की ध्वनि के साथ, सघ ने यथा स्थान पूज्य श्री की देह का अन्तिम सस्कार चदन द्वारा किया।

स १९७९ का चातुर्मास रतलाम मे ही हुआ। इस चातुर्मास मे उपाध्याय श्री चम्पकमुनिजी म और तपस्वी श्री केशरीमलजी म भी सग ही थे। पूज्यश्री के सान्निध्य मे तपस्वी श्री भगवानदासजी म ने तपस्या की। परन्तु यहाँ भी इन्दौर के समान ही निराडम्बरी प्रवृत्ति रही। इस

चातुर्मास के पश्चात् पूज्यश्री ने मालवा छोड दिया। आपके इस अल्प-कालीन मालव-विहार ने भी मालवा के भावुक जनो को मुग्ध कर लिया। उस विहार मे तत्कालीन जन-मानस पर आपने ऐसी छाप अङ्कित कर दी, कि-जिसका मन्द-मन्द आभास अभी तक प्रतीत होता है। इसके बाद आपका आगरा और जयपुर मे चातुर्मास हुआ। जयपुर का चातुर्मास आपका अन्तिम चातुर्मास था। किसे पता था, कि-एक सामान्य बालक युगप्रधान पुरुष बन जाएगा।

देह-त्याग—

आपका स १९८१ का चातुर्मास जयपुर मे हुआ। पूज्यश्री रतनचदजी म के सम्प्रदाय के पूज्यश्री शोभाचदजी म का चातुर्मास उस वर्ष जोधपुर था। आपका आग्रह हुआ कि-पू श्री माधवमुनिजी म यहाँ पधारे। क्योकि मेरी वृद्धावस्था है और आपसे मिले भी बहुत समय हो गया है। जोधपुर सघ का भी अत्यधिक आग्रह था। अत आपने चातुर्मास के बाद मार्गशीर्ष कृ १ को विहार कर दिया। जय-पुर मे आपको अपनी आयु के विषग मे कुछ शका हो गई थी। वहाँ के ज्योतिषियो ने आपकी शका का समाधान करने का प्रयत्न किया था। परन्तु हुआ वही जो होना था। आप मार्गशीर्ष कृ ७ को रात्रिमे 'गाडूता' नाम के ग्राम मे रहे। आपके सग श्री पुष्पमुनि और श्री हेममुनि थे। मार्ग मे घरो की सख्या ठीक न होने से अन्य सन्त आगे-पीछे-विहार कर रहे थे। रात्रि मे पूज्यश्री के गले मे असह्य पीडा उठी। वहाँ रुकने जैसा स्थान था नही। अत पूज्यश्री ने प्रात काल मे विहार किया। आपके भण्डोपकरण लेकर एक शिष्य आगे चल रहा था और एक सन्त सग मे। सताईसवाँ मील आया। पूज्यश्री अचानक खडे रह गये। पैरो की शक्ति जवाब दे चुकी थी। उन्होने समीपस्थ शिष्य के मस्तक पर हाथ रखा और कहा-'बच्चा अब हम जाते हैं। प्रसन्न रहना।' परमेष्ठी को नमस्कार करने के लिये पूज्यश्री ने दोनो हाथ जोडे और घुटने टिकाने के लिये नीचे झुके। परन्तु सन्तुलन रह नही सका और आप नीचे गिर पडे। आवाज होने के कारण आगेवाले सन्त ने पीछे मुडकर देखा। वे तत्काल लौट कर आपके समीप आये और आपको सम्हाला। बडी

कठिनाई से आपका मस्तक गोद मे लिया और नमोक्कार महा मत्र सुनाने लगे। आपकी स्पन्द-क्रियाँ निश्चल हो गई थी और वाणी भी बन्द थी। कुछ क्षणो मे ही पूज्यश्री की आत्मा इह लोक से प्रयाण कर गयी। शिष्य हक्के-बक्के रह गये। ये समाचार जयपुर पहुँचे। लोगो ने आकर वहा मार्ग के समीप ही पूज्यश्री की देह का अग्नि-सस्कार किया।

आगे गये हुए सतो के पास, एक भाई यह समाचार लेकर गया। जब सन्तो ने यह बात जानी, तब उनका हृदय शोक से सन्तप्त हो गया। वे पीछे जयपुर की ओर लौटे। जहा पूज्यश्री का अग्नि-सस्कार किया था और जहाँ पूज्यश्री ने देहत्याग किया था, वहाँ पर पहुँचने पर उनका शोक-सन्तप्त मन बोल उठा—

पूज्य माधवमुनि ज्ञानी, गयो हा ! जैन को हीरो।
विशद विद्वान गुणखानी, गयो हा ! जैन को हीरो॥
गयो हा ! जैन को इन्दू, गयो हा ! जैन को भास्कर।
गयो हा ! जैन को वत्सल, गयो हा ! जैन को आकर॥

सचमुच ही पूज्यश्री जैन जगत के उज्जवल हीरे थे। पूज्यश्री के देहावसान से जैन समाज मे शोक की लहर व्याप्त हो गई। लगभग ५३ वर्ष की वय मे ही आपका देहान्त हो गया। परन्तु इस अल्प कालावधि मे आपने जो गुणो की सौरभ छोडी, उसकी कुछ महक अभी तक छा रही है

कुछ विशेषताएँ -

आप विचक्षण और यशस्वी आचार्य थे। आप सत्य-सिद्धान्त के प्रतिपादन मे निर्भीक एव दक्ष थे। आप विरोधी को विनोद मे जीत लेते थे। स १९७९-८० की बात है। आप मथुरा पधारे। उस समय वहाँ स्थानकवासी जैनो के घर नही थे। इसलिए सन्तो को वहाँ ठहरने के लिए स्थान बडी कठिनाई से प्राप्त होता था। वहाँ पूज्यश्री के गुरु-देव का परिचित एक अग्रवाल भाई रहता था। वह पूज्यश्री के गुरुदेव का भक्त था और उनकी भी उस पर विशेष कृपा-दृष्टि थी। पूज्यश्री स्थान की खोज मे अपने सन्तो के साथ उसके घर पहुँच गये। उस अग्रवाल

भाई का देहान्त हो चुका था। पर वह परिवार जैन सन्तो का अनुरागी वन चुका था। अत सन्तो को उनके निमित्त से ठहरने का स्थान मिल गया। यह बात आर्य समाज के पडित को अच्छी नही लगी। वह उस अग्रवाल भाई को उकसाने लगा। पर उसने उनकी वात पर कोई ध्यान नही दिया। उस पडित ने अन्य सनातनी भाइयो को उभाडा। कई सनातनी बन्धु, जहाँ पूज्य श्री विराजमान थे, वहाँ आ गये और वह पडित पूज्य श्री के विरुद्ध सनातनी भाईयो को भडकाने के लिए या पूज्यश्री का अपमान करने के लिए प्रश्न करने लगा। पण्डित बोला-'हम आपसे कुछ पूछना चाहते हैं ? क्या आप उत्तर देगे ?'

पूज्यश्री ने कहा—'प्रसन्नता से पूछिये।'

पडितजी—'सनातन शब्द का क्या अर्थ है ?'

पूज्यश्री—'जो सदा से है-उसे सनातन कहते हैं।'

पडितजी—'अच्छा, तो अब आप बताइए, कि-सनातन धर्म प्राचीन है या जैन धर्म ?'

पूज्यश्री—'पडितजी आप इस झमेले मे क्यो पडते है ? कोई पुराना हो या नया-इससे आपको क्या ?'

पण्डितजी—'जो पुराना होता है वह अच्छा ही होता है न ! कहा भी है न, कि-जो पुराना होता है; वह सोना होता है ?'

पूज्यश्री--'पडितजी ! ऐसी कोई बात नही है। पुराना और नया दोनो ही अच्छे और बूरे दोनो प्रकार के होते है और जो पुराना है वह, सोना ही है–यह भी पूर्ण सत्य नही है। पडितजी ! मैं आपसे ही पूछता हूँ कि-आप स्वय पुराना पसन्द करते हैं या नया ?' पण्डितजी चुप रहे। पूज्य श्री ने पुन पूछा–'आप बासी रोटी खाएगे या ताजी ?' पण्डिजी मौन रहे। तव पूज्यश्री ने कहा–'मैं समझता हूँ कि–आप बासी रोटी कदापि न खाएंगे। बासी रोटी पुरानी नही है क्या ? पण्डितजी वास्तविकता यह है, कि–प्राचीनता या नवीनता ही वस्तु की उत्तमता की कसौटी नही है'

सब अवाक् एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। उस समय उन अग्रवाल भाईने कहा 'मैंने आपसे पहले ही कहा था, कि—इन्हे मत छेड़िये। अब देख लिया मजा।'

पूज्यश्री ने बात को स्पष्ट करते हुए अपना वक्तव्य आगे बढ़ाया 'भाइयों! हमे यह न भूल जाना चाहिए, कि जितना प्राचीन सत्य है, उतना ही झूठ भी। जितना प्राचीन धर्म है उतना ही अधर्म भी। जितना प्राचीन अमृत है, उतना ही जहर भी। अच्छाइया और बुराइयाँ दोनो ही सदा से है। इसलिए नये-पुराने का झगड़ा ही वृथा है और धर्म तो न नया होता है, न पुराना। क्या अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि कभी नये-पुराने होते हैं। अहिंसा आदि धर्म के मूल तत्व हैं। ये कदाचित् नये हों, तो भी ग्रहण करने योग्य है। क्या सनातन धर्म अहिंसा आदि मे धर्मत्व नही मानता?' पण्डितजी निरुत्तर थे। वे लज्जित हो गये। धीरे-धीरे वहा से जन समुदाय बिखर गया!

आप उलझन भरे जटिल साम्प्रदायिक विषयो मे शीघ्र ही विवेक पूर्ण निर्णय लेने मे दक्ष थे। किसी भी साधुपर आये हुए आरोप का सही-सही समाधान करने मे आप बडे कुशल थे। साधुओ को शिक्षण आप स्वय देते थे। आपकी शिक्षण-शैली अत्युत्तम थी। आप उपासको का भी निपुणता से योग्य पथ-प्रदर्शन करते थे। अनुशासन-भङ्ग करने वाले के प्रति आपका कोमल हृदय कठोर बन जाता था।

आपको धर्म की मर्यादा भङ्ग करनेवाले व्यक्ति अच्छे नही लगते थे। आप उन्हे समुचित उत्तर देते थे। आगरे मे एक भाई महाराज श्री के पास प्राय आया करता था। उस भाई ने एक बार पूज्यश्री के शिष्य के पास मुखवस्त्रिका बांधने और स्थानकवासी सतो के विषय मे निन्दा की। यह बात पूज्यश्री के पास पहुँची। उन्होने उस भाई से इस विषय मे पूछा। तब वह बोला—'महाराज! मुँह पर मुखवस्त्रिका बाधने से बोलते समय उन पर थूंक लगता रहता है। अत. उसमे जीव उत्पन्न हो जाते है और महाराज स्थानकवासी साधु सचमुच गन्दे रहते हैं।

पूज्य श्री हँसकर बोले—'अच्छा भाई! तुम्हे सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के

उत्प न होने के चौदह स्थानो का पता है ? उनमे कही भी थूँक का नाम नही आया है और सदा मुख पर मुखवस्त्रिका बँधी रहने से कैसे जीव उत्पन्न हो सकते है ? तुमने वर्षा मे पतरे आदि से जमीन पर जहाँ पानी की धाराएँ गिरती है, वहाँ कभी देखा हो, तो ज्ञात होगा, कि जिस स्थान पर धारा का वेग गिरता है, वहाँ हरी, फूलन आदि की उत्पत्ति नही होती है और चालु मार्ग मे भी। इसी प्रकार मुखवस्त्रिका पर भी वायु का वेग पडने से जीवो की वहाँ उत्पत्ति नही होती है। रही हमारे गन्दे रहने की बात, तो भाई हमे गन्दे रहने का शोक नही है। पर सयम पालन की रुचि है। फिर हम किसी को बुलाने जाते नही, कि हमारे पास आओ। जिसको आना हो, वह हमारे पास आवे। हमारी ओर से किसी पर कोई दबाव नही है।' वह निरुत्तर हो गया। आगे उस का तर्क करना बन्द हो गया।

आपके विषय मे झाबुआ-निवासी श्रीमान् नानालालजी रूनवाल से निम्नलिखित बात सुनी थी

झाबुआ मे श्री दुर्लभरामजी शास्त्री नाम के राज-पडित थे। आप सस्कृत के श्रेष्ठ विद्वानो मे से थे। श्री नानालालजी रूनवाल आपके छात्र रहे हैं। वे प्रसगोपात कहा करते थे, कि-'तुम्हारे ढूढिये साधुओ मे सस्कृत के कोई भी विद्वान नही है।' जब पूज्यश्री माधवमुनिजी म झाबुआ पधारे, तब शास्त्रीजी भी उनके गुणो की प्रशसा सुनकर उनके पास आये। उनसे पूज्यश्री का, घण्टो सस्कृत भाषा मे विविध विषयो पर धारा-प्रवाह वार्तालाप हुआ। शास्त्रीजी बडे प्रभावित हुए। जब तक पूज्यश्री झाबुआ मे विराजमान रहे, तब तक शास्त्रीजी उनके सत्सग का लाभ लेते रहे। शास्त्रीजी ने आपसे पूछा-'क्या स्थानकवासी सतो मे सस्कृत का कोई और विद्वान भी है।' तब पूज्यश्री ने शताव-धानी प श्री रतनचदजी म का नाम सुझाया। उनके विहार के बाद श्री नानालालजी के पूछने पर शास्त्रीजी ने कहा-'पूज्यश्री धुरधर विद्वान् हैं।'

आपके द्वारा रचित पद्यो का सग्रह-'स्तवन-तरङ्गिणी' और गद्य प्रबन्ध है-'दण्डी-दम्भ-दर्पण।'

श्री सौभाग्यचन्द्रजी म, श्री रतनमुनिजी म आदि आपके गुरुभ्राता (श्री मगनमुनिजी म के शिष्य) थे। प श्री मूलमुनिजी म आपके शिष्य है । वृद्धावस्था के कारण अभी आवर ग्राम मे विराजमान है ।

पूज्य श्री चम्पालालजी महाराज (नवमे आचार्य)

सोधवाड (मालवा) मे वडोद नामका एक ग्राम है। वहाँ स्थानकवासी जैनो के काफी सख्या मे घर है । वहा के निवासी जनो मे अच्छी धर्म-भावना है । लगभग सवासौ वर्ष पूर्व उस ग्राममे अम्वालालजी नाम के सद्गृहस्थ रहते थे । उनकी धर्मपत्नी का नाम गगाबाई था । श्रीमती गगाबाई की कुक्षि से स १९१५ मे पू श्री चम्पालालजी म का जन्म हुआ था । पच्चीस वर्ष की आयु मे उज्जैन शाखा के पूज्यश्री रामरतनजी म के पास स १९४० मे आप दीक्षित हुए । आपने दक्षिण प्रदेश मे-बहुत काल तक विहार किया । उधर आपने जिन प्रदेशो मे विहार किया था, उन प्रदेशो मे आपका बहुत ही प्रभाव था । उधर आपके दो शिष्य हुए । श्री नानचन्द्रजी म (कच्छी) और श्री रामचन्द्रजी म और एक प्रशिष्य हुए-(श्री रामचद्रजी म के शिष्य) घोर तपस्वी श्री भगवानदासजी म । सवत् १९८१, मे माघ शुक्ला पाँचम को जयपुर मे आपको आचार्य-पद प्रदान किया गया । आपने स १९८१ चैत्र कृष्णा ११ प्रात.काल जयपुर से 'घाट' की ओर विहार किया और वहा से दो कोस दूर एक वृक्ष के नीचे ही अकस्मात् देह त्याग दिया । यह कैसा आकस्मिक सयोग था, कि-पूज्य श्री माधवमुनिजी म, पूज्य श्री चम्पालालजी म और आपके गुरुभ्राता पू श्री केशरीमलजी म थोडे थोडे समय के अन्तर से विहार मार्ग मे ही परलोकवासी हुए । पूज्य श्री चम्पालालजी म डेढ मास से कुछ अधिक काल तक ही आचार्य रहे ।

आपके व्याख्यान बहुत ही रोचक होते थे । आपकी वाणी सुन कर जनता आनन्दित हो उठती थी और अनायास ही नीतिमार्ग और धर्ममार्ग पर चल पड़ती थी । अत जनता आपको व्याख्यान-वाचस्पति के नाम से पुकारती थी । आप जहाँ भी पधारते थे, वहा जैन-जैनेतरो के पूज्य और प्रेमपात्र वन जाते थे । कडा-आष्टी की वात है । महाराज

श्री वहाँ पधारे। कुछ काल वहाँ विराजमान रहे और फिर विहार करने लगे। जैन-जैनेतर लोग इकट्ठे हो गये। वे प्रार्थना करने लगे, कि-कुछ दिन और हमे आपके वचनामृत का पान कराइये। पर सन्त ही ठहरे। उन्होने किसी की बात पर ध्यान नही दिया और विहार कर दिया। लोगो की आँखो से झर-झर आसू बहने लगे। तब एक मराठा भाई आगे आया और महाराज श्री का रास्ता रोक कर खडा हो गया। वह बोला-'आपको हम अभी नही जाने देगे।'

महाराजश्री बोले-'भाई! मैंने तो अब विहार कर ही दिया है।'

मराठा भाई हाथ जोडकर आग्रह पूर्वक बोला-'देखिये महाराज! प्रार्थना मान लीजिए और गाव मे लौट चलिये।' महाराज श्री ने कहा-'मैंने कहा न, कि मैं विहार कर चुका हूँ।' यो कहकर महाराज श्री आगे बढने लगे। वह मराठा भाई बलिष्ठ था। उसने आव देखा न ताव। दोनो हाथ फैलाकर महाराज श्री को उठा लिया और ग्राम की ओर चलने लगा। महाराज श्री बोले-'भाई! यह क्या करते हो यह क्या करते हो?' मराठा बोला-'बस आपको जाना हो तो जाइए। कैसे जाते है आप? अब मैं भी देखता हूँ।' महाराज श्री अपने को छुडाने का प्रयत्न करते हुए बोले-'भाई! ऐसा मत करो।' इधर लोगो मे कोलाहल मच रहा था। सभी एक स्वर से कह रहे थे-'आपको अब ग्राम मे पधारना ही होगा।' मराठा भाई बोला-'आपकी बात पूरी हो गई। आपने विहार कर दिया। अब आप गाव मे पधारने का वचन दे तभी मै नीचे उतारूगा। नही तो इसी प्रकार ले जाकर स्थानक मे बिठा दूगा।' आखिर महाराज श्री को ग्राम मे पुन पधारना ही पडा और वहा कुछ दिन और रहना पडा।

राजा, ठाकुर, उच्च अधिकारी और कई राजवर्ग के व्यक्ति आपके भक्त थे। अत आप राजगुरु के रूप मे प्रसिद्ध थे। उन लोगो को कई बार आपकी वचनसिद्धि का अनुभव होता था। एक बार उज्जैन मे आपका चातुर्मास था। वहाँ व्याख्यान मे 'रफीतुल्लखाँ' नामके तहसीलदार आये। महाराज श्री के मुँह से उनके लिए अचानक

पूज्य प्रवर्तक—

स्व श्री ताराचन्दजी महाराज
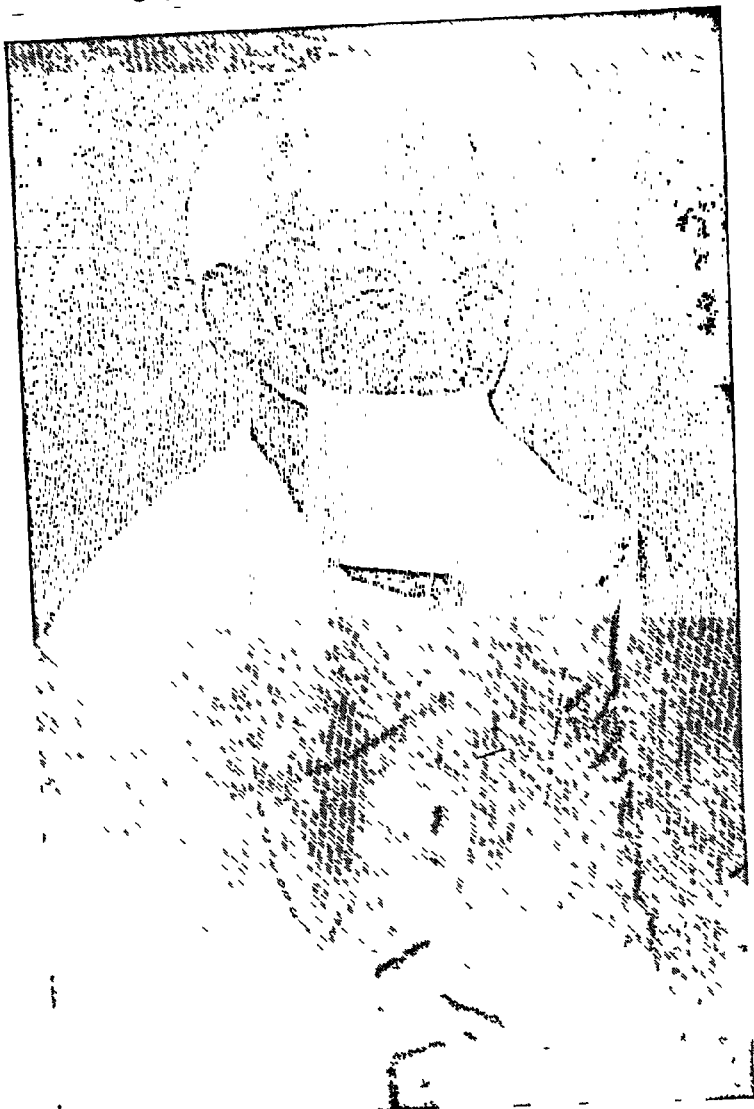
जन्म सवत् १९२३ दीक्षा सवत् १९४६ स्व सवत् २००६

'सूबा साहब' सम्बोधन निकल गया। सयोगवशात् कुछ समय बाद रफीतुल्लाखा अनायास ही सूबेदार बन गये । तब खाँ साहब को लगा, कि–'यह उन महात्मा के सिद्ध–वचन का प्रताप है।' उन्होने समय–समय पर महाराजश्री के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और मन्दसोर एव मन्दसोर जिले मे जीव–दया सम्बन्धी विशेष आदेश निकलवाये।

पूज्यश्री आचार-निष्ठ सन्त थे । परन्तु उन्हे आचार सम्पन्नता के नाम पर वृथा ढोग और आत्मलक्ष्य–विहीन आचार का आडम्बर पसन्द नही था । उन्होने मल्लिनाथ चरित्र की एक ढाल मे–'हा रे म्हारा जीवडा ! चीकणा करम तू काई बाधे !' इस प्रकार आत्म–सबोधन करते हुए, मायाचार पर व्यग्योक्ति-पूर्वक तीव्र प्रहार किया है ।

जब श्रीमान् जवाहिरलालजी म (तब आप आचार्य नही थे) का किसी कारण से उनकी सम्प्रदाय, कान्फरन्स और समाज की ओर से बहुत विरोध हो रहा था, तब दक्षिण मे आपने ही उनको आश्वासन पूर्वक काफी साथ दिया था और उनको हार्दिक शान्ति प्राप्त कराने के लिये विशेष प्रयत्न किया था ।

आप सामान्य लोक-भाषा मे पद्य–रचना करते थे। आपने कई फुटकर पदो की और भ. मल्लिनाथ चरित्र की रचना की। आपका विहार-क्षेत्र बहुत विस्तृत था। आपके शिष्य श्री रामचन्द्रजी म ने शिक्षण आदि से सम्बन्धित कई लोकोपकार के कार्य किये।

पू. प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी म. (दशवें गण अग्रणी)

पूज्यश्री चम्पालालजी म के दिवगत होने के बाद इस गण मे आचार्य-पद–प्रदान की पद्धति बन्द कर दी गई और स्थविर सन्त की आज्ञा मान्य करने की रीति अपनाई गई। अत उस समय स्थविर सन्त पूज्यपाद श्री ताराचन्दजी म को प्रवर्तक पद प्रदान किया गया ।

रतलाम नगर को पूज्यश्री तिलोकऋषिजी म (ऋषि सम्प्रदाय के प्रख्यात आचार्य), पूज्यश्री मन्नालालजी म (पू श्री हुक्मीचन्दजी म

की सम्प्रदाय की द्वितीय [जावरा] शाखा के आचार्य) आदि कई रत्न जैन-संघ को अर्पण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पू. श्री ताराचन्दजी म. भी रतलाम की ही विभूति थे। रतलाम मे छोटे साथ (दशा) ओसवालो के 'मुणत' गोत्रीय परिवार विशेष सख्या मे है। श्रीमान् मोतीलालजी मुणत रतलाम के रामगढ मोहल्ले मे रहते थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नानूबाई की रत्नकुक्षि से वि, स १६२३, फागुन विदि ५ को आपका जन्म हुआ। श्री ताराचन्दजी म ने लगभग तेईस वर्ष की उम्र मे, अपनी माता नानूबाई, बहिन प्रेमकुँवरबाई और भोजाई माणकबाई के साथ, आचार्य पू श्री मोखमसिहजी म के पास वि स १९४६, चैत्र शुक्ला ११ को दीक्षा ग्रहण की।

आप अपने गुरुदेव की सेवा अग्लान भाव से करने लगे। आपने लगातार सतरह वर्षो तक रतलाम मे रहते हुए अपने स्थविर गुरुदेव की सेवा की। गुरुदेव के दिवगत होने के पश्चात् आपने भारत के अनेक प्रदेशो को अपने चरण-चिन्हो से अलकृत किया। राजस्थान, मालवा, गुजरात काठियावाड, खानदेश, कोकण, हैदराबाद स्टेट, मद्रास, बेंगलोर, मैसुर जमनापार आदि प्रदेशो में विचरण करते हुए, भव्य जीवो को धर्मप्रेरणा दी। आप वृद्धवय मे भी प्राय. विहार करते रहे। आप शारीरिक निबलता के कारण कुछ काल तक रतलाम मे विराजे। परन्तु किसी निमित्तवशात् आपने रतलाम से विहार कर दिया।

वि,स २००५ की बात है। आपने इस वृद्धवय मे भी झाबुआ तक विहार किया। झाबुआ से आप धार की ओर पधार रहे थे। मार्ग मे रुग्ण हो गये। उस समय गुरुदेव (कविवर श्री सूर्यमुनिजी म) बदनावर या बखतगढ, इन्दौर पधारने के हेतु विहार करते हुए विश्राम के लिए विराजमान-थे। क्योकि इन्दौर मे उस समय गुरुदेव के पिताजी महाराज वृद्धावस्था के कारण और आपके शिष्य श्री माणकमुनिजी म रुग्णता के कारण विराजमान थे। उनकी सेवा मे मात्र तीन वर्ष के दीक्षित श्री रूपेन्द्रमुनिजी म ही थे। अत वहा जाना आवश्यक था। परन्तु पूज्यपाद प्रवर्तकजी म की रुग्णता के समाचार जानकर, गुरुदेव इन्दौर न जाते हुए उग्र विहार करके, पूज्य श्री की सेवा मे पहुँच गए और

ज्यों-त्यों करके आपको धार लाये। गुरुदेव कुछ दिन तक प्रवर्तक श्री जी की सेवा मे रहे। परन्तु इन्दौर जाना आवश्यक होने के कारण गुरुदेव ने वहा से विहार कर दिया और वहा पहुँच गये। इधर स २००६, चैत्र शुक्ला ८ को प्रवर्तकश्रीजी ने उपवास किया। आप अष्टमी चतुर्दशी को सदा उपवास करते थे। दूसरे दिन नवमी रविवार को प्रवर्तक श्रीजी को विशेष अस्वस्थता लगी। आपकी सेवा मे शतावधानी प श्री केवलमुनिजी म आदि सन्त थे। उन्होने प्रवर्तकश्री को उन की इच्छा के अनुसार पूज्य श्री धर्मदासजी म के अनशन के पाट पर विराजमान कराये। आपने लगभग प्रात ६ बजे जीवन भर के लिए अनशन ग्रहण किया और ७॥। बजे सिद्धो का शरण लेते हुए, इस क्षणभगुर देह को त्याग दिया।

आप आचार्य न होते हुए भी आचार्य के समान ही पूजित हुए।

यद्यपि आपकी भद्रिक प्रकृति थी। फिर भी किसी बात की तहतक जाने की आपकी बुद्धि थी। एक बार धार मे आपको, अपने आपको उत्कृष्ट क्रिया के धनी बताने वाले सम्प्रदाय के प्रमुख मुनि (जो कि आगे चलकर उसी सम्प्रदाय के आचार्य हुए) से भेट हुई। तब उन्होने बातचीत के प्रसङ्ग मे प्रवर्तकजी म. से पूछा–'आप कितने हाथ की चादर रखते है।' महाराज श्री ने कहा-'बारह हाथ की।' तब वे प्रमुखमुनि (आप महाराज श्री से दीक्षा मे छोटे थे) तीखे स्वर मे बोले 'इतनी बडी चादर रखते हैं आप। भेखधारी है।' उस समय वे यह बात सुनकर विचार मे पड गये। मेरे बारह हाथ[150] की चादर भी छोटी पडती है। और ये मुनिजी मुझसे शरीर मे ठीक है। फिर इनका शरीर मेरी चादर से छोटी चादर के द्वारा कैसे ढँकता होगा। तब महाराजश्री ने उन प्रमुखमुनि जी से कहा–'अच्छा आपकी और हमारी चादर बराबर करके तो देख ले।' दोनो चादरे बराबर की गई तो उन मुनिजी की चादर महाराजश्री की चादर से बडी निकली। तब महाराजश्री ने

[150] बारह हाथ अर्थात् एक हाथ चौडाई बारह बारह हाथ।
दो हाथ चौडाई और छह हाथ की लम्बाई हो तो बारह हाथ होते हैं।

कहा-'मुनिजी ! यह क्या बात है ?' तब वे मुनिजी बोले-'ऊह ! तुम्हारी चादर जैसी चादर तो हमारे यहाँ खडिये (छोटे टुकडे करके उपयोग मे लेने योग्य वस्त्र) की गिनती मे रहती है।' महाराजश्री हँस पडे। महाराजश्री ने जाना कि ये उत्कृष्ट क्रिया का ढिंढोरा पीट कर, चम्पा मरोडी के हाथ आदि के रास्ते निकालते है। पर इस प्रकार दूसरे सन्तो को निकृष्ट बताकर, भक्तो की टोली जमाने के सिवाय ये और क्या सार पाते है ?

आपमे वेयावच्च का गुण विशेष था। आप वेयावच्च को निर्जरा का हेतु मानकर, छोटे बडे का भेद न करते हुए वृद्धवय मे भी सेवा मे रत रहते थे। आपश्री मागलिक श्रवण कराने को भी साधना के रूपमे देखते थे। लोग आपश्री की मागलिक श्रवण कराने की मङ्गल-मुद्रा का अभीतक स्मरण करते हैं।

आप श्री के जीतमलजी आदि ५ शिष्य हुए थे।

पू श्री किशनलालजी म. (ग्यारहवे गण-अग्रणी)

जावरा रियासत मे मोरिया नाम का एक ग्राम था। वहाँ केशरीचन्दजी नामके आद्यगौड ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम मन्दीबाई था। स १९४४ मे उनके यहाँ एक बालक का जन्म हुआ था। उसका नाम रखा गया 'नादरजी'। जब नादरजी की उम्र बारह वर्ष की हुई तब उनकी रुक्मणी नाम की एक ब्राह्मण-कन्या के साथ सगाई कर दी गई। बालक नादरजी सगाई होने पर बडे प्रसन्न हुए। पर विधि का विधान तो कुछ और ही था। स १९५६ मे दुष्काल पडा। अत. ब्राह्मण परिवार अपने जीवन निर्वाह के लिये मोरिया ग्राम से इधर-उधर बिखर गये। बालक 'नादरजी' भी अपने परिवार के सग वहाँ से निकले। पर वह अपने परिवार से कैसे बिछुड गये-इस विषय मे कुछ जानकारी नही है। नादरजी अपने सगियो से विछुडकर भटकते हुए खाचरोद पहुँचे। वहाँ उस्ताद केशरीमलजी नाम के जैन बन्धु ने अनुकम्पा से प्रेरित होकर, वालक नादरजी को आश्रय प्रदान किया। पूज्य श्री नन्दलालजी म का खाचरोद मे पदार्पण हुआ। उस्तादजी पूज्यश्री के

महाराष्ट्र मंत्री स्व. श्री किशनलालजी महाराज

जन्म संवत् १९४८
मोरिया (जावरा)

दीक्षा संवत् १९५०
(रतलाम)

[illegible]
(इन्दौर)

पृष्ठ १५८

भक्त थे। अत. नादरजी को भी उनके निमित्त से पूज्यश्री का सत्सङ्ग हुआ। पूज्यश्री की शान्त मुद्रा और निश्छल वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से नादरजी आकर्षित हुए और उस्तादजी की अनुज्ञा से पूज्यश्री के सङ्ग हो गये। स १९५९, श्रावण शुक्ला १२ को नादरजी की लगभग पद्रह वर्ष की वय मे रतलाम नगर मे दीक्षा हुई। आपका नाम रखा गया–किशनलालजी म। आपने पूज्य श्री मोखमसिंहजी म से भी अनुग्रह प्राप्त किया। दीक्षित होने के बाद आपने यथोचित विद्याध्ययन किया। थोडे समय मे सैद्धान्तिक ज्ञान भी अच्छा प्राप्त कर लिया। आप लघुवय से ही प्रतिभाशाली सन्त थे। आपने सम्प्रदाय मे पूज्य श्री नन्दलालजी म के समय मे ही विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था। आपके सुमधुर व्याख्यानो का जन समुदाय पर सुन्दर प्रभाव पडने लगा। किशनगढ के शास्त्रार्थ मे आपने ही पूज्यश्री का प्रतिनिधित्व किया था।

पूज्य श्री ताराचन्दजी म के देहान्त (स २००६, चेत सु ९' के बाद आप सम्प्रदाय (रतलाम शाखा) के प्रवर्तक रूप मे रहे। आपके समय मे 'श्रमण सघ' रूप साधु सगठन की पूर्व भूमिका के रूपमे ब्यावर मे पू श्री धर्मदासजी म. की सम्प्रदाय, ऋषि सम्प्रदाय, पूज्य श्री मन्नालालजी म की सम्प्रदाय आदि पाँच सम्प्रदायो का सगठन अस्तित्व मे आया। इसके बाद स. २००९ मे सादडी (मारवाड) मे बृहत् साधु–सम्मेलन हुआ। जिसमे 'वर्धमान श्रमण सघ' के नाम से, अनेक सम्प्रदायो का विलीनीकरण होकर, एक बृहत्सगठन हुआ। उस समय श्रीमान् किशनलालजी म (कृष्णलालजी म) को महाराष्ट्र-मत्री पद प्रदान किया गया। तब से आप शरीरान्त तक मन्त्री मुनि के रूप मे सघ का और सम्प्रदाय का कार्य सम्हालते रहे।

वि स २०१२ के बाद आपका शरीर दुर्बल होता गया। शरीर मे रोग बढता गया। विहार जैसी स्थिति नही रही। अत आप इन्दौर मे ही विराजमान रहे। स २०१६ मे रुग्णता विशेष बढ गई। आप शान्त भाव से पीडा सहन करते रहे। वि स २०१७, माघकृष्णा २ को सूर्यास्त के समय आपका देहान्त हुआ। आप लोकप्रिय सन्त थे।

आपश्री सदा प्रसन्न रहते थे। आपके मुख पर मुस्कान खेलती

रहती थी। आप अस्वस्थता मे भी प्रसन्न बने रहते थे। आपके व्याख्यानो मे भी आपके प्रसन्न और विनोदी स्वभाव की छाप रहती थी। आपके व्याख्यान मे लोग प्रसन्नता से झूम उठते थे। आपके शास्त्रीय प्रवचनो मे भी सरसता रहती थी। आपके मधुर वार्तालाप मे आत्मीयता की झलक विद्यमान रहती थी। आप छोटे-बडे सभी व्यक्तियो को भाग्यवान पुण्यवान, गुणवान आदि आदरयुक्त सम्बोधन से पुकारते थे। आप अपने अतीत जीवन के सस्मरण निश्छल भाव से विनोदात्मक शैली मे सुनाते थे। सस्मरण मे जीवन के कडवे-मीठे सभी तरह के अनुभव होते थे।

एक बार आप दिल्ली की ओर विहार कर रहे थे। आप एक ऐसे ग्राम मे पहुँचे, कि-जहाँ जैन का एक भी घर नहीं था। कोई भाई भी साथ मे नही था, जो आहार पानी की दलाली कर देता। ऐसी स्थिति मे सन्तो को बहुत कडवे अनुभव होते है। अत कोई भी सन्त वहाँ गौचरी जाने के लिये तैयार नही हुए। तब आपने पात्र लिए और गौचरी के लिए चले। एक सत भी साथ हो गये। आप गौचरी के लिए घूमते हुए एक ब्राह्मण के यहाँ पधार गये। ब्राह्मण आपको देखकर क्रुद्ध हो गया। वह रोष से बोला-'ये ढुढिये-मुडिये न जाने कहाँ से आ टपके। अमङ्गल दर्शन हुए आज। क्या तुम्हारे बाप यहाँ कुछ रख गये है, जो मागने आ गये।' इस प्रकार ब्राह्मण ने आपको कई अपशब्द सुनाये। महाराजश्री प्रसन्नता से सुनते रहे। जब ब्राह्मण चुप हुआ तब महाराजश्री हँसते हुए बोले-'भूदेव! हमारे बापने तो आपके यहाँ कुछ नही रखा है। पर आप ब्राह्मण हैं। आपका दान लेने की किस मे शक्ति है? हमारे जैसे सन्त ही तुम्हारा दान ले सकते हैं, और पचा सकते है।' ब्राह्मण यह बात सुनकर हँस पडा और अपनी पत्नी से बोला-'अरी सुन तो! ये महाराज अपनी सद्गति का द्वार खोलने आये है। घरमे कुछ भोजन हो तो दे इन्हे।'

आपको अपने गुरुदेव पूज्य श्री नन्दलालजी म पर पूरी भक्ति थी। आप उनके गुणो का स्मरण करते हुए गद्गद होकर, कहा करते थे, कि-'ऐसे शान्तमूर्ति के तो दर्शन ही दुर्लभ है। कैसे महान् पुरुष थे वे? क्या कहू मै? उनकी शान्त मुद्रा के प्रताप से ही संयममे स्थिरता

आई है।'

वे कडवी से कडवी बात, विना लाग-लपेट से इस प्रकार से सुना देते थे, कि-सुननेवाला उसे आशिर्वाद ही समझता। आपकी अध्यात्म रुचि भी तीव्र थी।

आपने-पद्य रचना भी की। भजन, पद आदि वनाये। कृष्ण कुसुमावलि और चरितावलि मे आपकी कुछ रचनाओ का सग्रह है। आप अपनी रचनाएँ सामान्य लोक-भाषा मे ही करते थे।

आपके तीन शिष्य हुए-(१) प्र वक्ता मालव केशरी श्री सौभाग्य-मलजी म (२), श्री गुलावचन्दजी म और (३) प्रियवक्ता श्री विनय-चन्द्रजी म ।गुलावचन्दजी म का दीक्षा के एक वर्ष वाद ही देहान्त हो गया। सम्प्रति आपके दो शिष्य विद्यमान है। * और दोनो ही स्थानकवासी जैन समाज के प्रख्यात संत है। आप अपने दोनो शिष्यो को अपने नयन-युगल के समान समझते थे।

श्री नानालालजी रूनवाल ने आपकी प्रशस्ति इस प्रकार की है—

(स्त्रगधरा-वृत्तम्)

कृष्णो गोधूमवर्ण स्त्वपि सितहृदय शुक्लभाव-स्वभाव ।
शान्तो दान्तोऽथ विज्ञ शिव-पथ-पथिक. सर्वलोक-प्रियश्च ॥
चारित्रे दत्तचित्त सुमधुर-वचनो दर्शन-ज्ञान-मग्नो ।
नन्दर्षेः पादसेवी श्रमण-गण-हरि. कृष्णलाल. स जीयात् ॥

(दिनाक १४-२-१९६२)

आपके देहान्त के वाद मालव-केसरी प्र व श्री सौभाग्यमलजी म सम्प्रदाय का कार्यभार स २०२० तक सम्हालते रहे। वाद मे अजमेर के सम्मेलन मे कविवर्य प श्रीमान् सूर्यमुनिजी म को प्रवर्तक पद दिया गया। आप दोनो का परिचय आगे दिया जाएगा।

---

* सम्प्रति एक ही शिष्य श्री मालव केसरीजी म ही विद्यमान है। क्योंकि गतवर्ष श्री विनयमुनिजी म का देहान्त हो चुका है।

पञ्चम अध्याय

(मालवा - परम्परा के अतीत के

अन्य मुनि और साध्वियां)

साधु-समुदाय

पूज्य श्री धर्मदासजी म की मालवा-परम्परा की शाखाओ मे अनेक त्यागी, तपस्वी, प्रभावशाली और विद्वान् सन्त हुए है। परन्तु उन सन्तो का परिचय प्राप्त होना सरल नही है। यहाँ कतिपय सन्तो का कुछ परिचय दिया जा रहा है।

(१) तपस्वी श्री रुगनाथजी महाराज

तपस्वी रुगनाथजी महाराज दीर्घ तपस्वी सत थे। आपके पिता का नाम धर्माशाह और माता का नाम पद्मावती था। यथा-

धन-धन तपसी रुगनाथजी. धन-धन धरमासा तुम तात तो।
धन-धन माता पद्मावती, जायो पुत्र-रतन साक्षात तो
तपसी तणा गुण गाइये ॥

आपने स १८०० या १८०१ मे पूज्य श्री खेमाजी स्वामी के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। आपने अपने जीवन को सूत्र-सिद्धान्त के अभ्यास-पूर्वक विनय गुण और तप से सुवासित किया। आपने छोटी तपश्चर्या अनेक की। लम्बी तप-आराधना की गिनती इस प्रकार है—

आपने 'अवरगावाद' के भगुशाहजी के स्थानक मे पाँच वार दीर्घ तप किया। पहली वार वत्तीस, दूसरी वार छत्तीस, तीसरी वार तेतीस, चौथी और पाँचवी वार चालीस-चालीस की तपस्या की। गज उदगा के वर्षावास मे वत्तीस किये। पैठ खराडी मे मासक्षपण, मेव्या नगरी मे दश दिन, अठारह दिन और अन्य छुटकर तप, हिवरापुर मे पन्द्रह, अठाई तथा छुटकर तप और वराट देश के वालाजीपुर पैठ मे इकतीस का थोक किया। जालणापुर मे आपने चार थोक किये-पहला इकतीस, दूसरा वत्तीस, तीसरा छत्तीस और चौथा पैंतालीस दिन का तप किया।

मोटा मुनिवर श्री रुगनाथजी, तपसी सोभे ज्युं सुर इंद तो।
धरमदासजीना टोला मधे, दीपे जाणे पूनम चन्द तो-
तपसी तणा गुण गाइये॥ १५॥
धन-धन तपसीजी जिहां विचरैं, धन-धन ते नगरीना लोग तो
धन-धन ते जो नित दर्शन करैं, नित वखाण सुणे तजी शोगतो १७

सवत १८१६ मे जालणापुर मे चार सतो ने चौमासा किया-पूज्यश्री उदाजी स्वामी, तपस्वी श्री रुगनाथजी म, श्री रिखमाधवजी और श्री गगारामजी म। सवत १८१६ कार्तिक सुदी तीज मगलवार को तपस्वीजी ने आलोचना करके सथारा ग्रहण किया। स १८१६, मृगसर सु २ बुधवार को एक मास के अनशन सहित तपस्वीजी ने देह छोड दिया।

संथारे तपसी सीझिया, पाम्या छे सुर पदवी सार तो।
जय-जयकार हुयो जेहनो घणो, आगले पामसी सुख अपार तो॥

(२) घोर तपस्वी श्री जी महाराज

खारिया ग्राम[15] मे गिरधरलालजी नाम के एक सद्‌गृहस्थ रहते थे। उनकी पत्नी का नाम सामाबाई (श्यामाबाई) था उनकी कुक्षि से भगाजी का जन्म हुआ था। आप खारिया से पेटलावद आये। आपको धर्म पर बचपन से ही अनुराग था। आप दीक्षा लेने के पहले से ही बेले-बेले पारणा की तपश्चर्या करते थे, गर्मी मे आतापना लेते थे, गरम पानी पीते थे और मस्तक के बालो का लुञ्चन करते थे।

आगम के ज्ञाता गुरुवर पूज्य श्री मयाचन्दजी म (रतलाम शाखा के तृतीय आचार्य) का पदार्पण पेटलावद मे हुआ। पूज्य श्री के पास आकर भव्यात्मा भगाजी ने पूज्य श्री से निवेदन किया-'मेरी अब दीक्षा लेने की भावना है। कृपा करके आप मुझे संयम का दान दीजिए'। पूज्य श्री ने उनकी उत्कृष्ट वैराग्य-भावना को देखकर, योग्य समय मे उन्हे दीक्षा दी। आपने स १८२५ या २६ मे दीक्षा स्वीकार की।

---

[15] खारिया ग्राम मारवाड मे है।

आपने लगभग उनतीस वर्षो तक तपश्चरण करते हुए सयम की आराधना की। फिर आपके शरीर मे रोग के कुछ चिन्ह प्रकट हुए। वि स १८५४, माघमास की पूर्णिमा को रतलाम मे रात्रि मे यावज्जीवन अनशन करने का विचार हुआ। पहर दिन के बाद गुरुदेव ने आपसे आहार के विषय मे पूछा। परन्तु आपने इनकार कर दिया और कहा– 'मुझे अभी तपश्चर्या करना है।' सातवे दिन आपने अपने भाव गुरुदेव के समक्ष प्रकट कर दिये और विधिपूर्वक अनशन ग्रहण कर लिया। वीस दिन सुख पूर्वक निकल गये। आपके गुण गाते हुए 'जालम' नाम के भक्त श्रावक ने गाया–

दिन वीस सुख से काढिया, टसक्या नहीं लिगार हो।
घर-घर हर्ष-वधावणी, घर-घर मगलाचार हो॥
नर-नारी हर्षे घणा, दर्शन लेवे आय हो।
जब देखे तब जागता, जाणे देव विराज्या आय हो॥

कर संथारो जी भाव से

स १८५४, फागुन सुदी पॉचम के दिन आप औदारिक शरीर को त्याग कर, दिव्य धाम पधारे। कवि के स्वर मे हम भी अपनी भव्य भावना को पूरित करते हैं–

'भगाजी ! धन थारो अवतार'

(३) पूज्य श्री दानाजी स्वामी

पूज्य श्री दानाजी स्वामी रतलाम शाखा के तृतीय आचार्य तपस्वी पूज्य श्री मयाचन्दजी म के शिष्य थे। आपके पिता का नाम सूरतसिहजी ओर माता का नाम चैनादे था। आपका तत्कालीन जन-समुदाय पर विशेष प्रभाव था। आप आचार्य के तुल्य मान्य थे। मालवा परम्परा के सन्तो ने स. १८६९ मे मर्यादा बाधी और रतलाम, उज्जैन और सीतामहू शाखा के वरिष्ठो की, सम्प्रदाय की उलझनो को सुलझाने के लिए, पाँच सदस्यो की एक समिति की स्थापना की। दानाजी स्वामी भी उस समिति के एक सदस्य थे।

स १८७८ मे आपका चातुर्मास रतलाम मे था। आपने आश्विन कृष्णा २ को जीवन भर के लिए अनशन स्वीकार किया। चवदवे दिन आश्विन कृष्णा अमावस्या को आपका सथारा सिद्ध हुआ। वखतगढ के श्रावक अजबजी ने उस प्रसग को इस प्रकार शब्दो मे बाँधा—

नगर का भाग्य उदय आया रे ! नगर०
रतनपुरी के बीच दानाजी स्वामी संथारा ठाया ॥

तपस्वी परशरामजी म के शिष्य श्री प्रेमचन्दजी म ने भी आपकी प्रशस्ति गाई है। यथा—

दानाजी स्वामी ! तुम गुण का नही पार
विनतडी अवधार–दा० ।
सूरतसिंह–सुत चैनादे जाया, कर दिया खेवा पार ३
आसोज विद अमावस सीझा, दिन चवदा संथार ४

आपके दो शिष्यो– वदीचन्दजी म और भारमलजी म और दो प्रशिष्यो–रूपचन्दजी म और किशनजी म का नामोल्लेख प्राप्त होता है। इनकी हस्तलिखित ग्रन्थ-प्रतिलिपियाँ भी प्राप्त होती है।

(४) महान तपस्वी श्री चमनाजी म.

दो चमनाजी म का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रथम चिमनाजी म उज्जैन शाखा के आचार्य थे, जिनका परिचय पिछले अध्याय मे दिया जा चुका है। द्वितीय चमनाजी म रतलाम–शाखा के एक तपस्वी सन्त हुए है। आप पूज्य श्री चिमनाजी म के बाद मे दीक्षित हुए और पहले दिवगत हुए।

ढूँढाड मे 'ममाणो' नामका एक ग्राम था। वहा चमनाजी नाम के एक श्रावक रहते थे। वे आजीविका के या अन्य किसी कारण से 'मारोला' नाम के ग्राम मे आकर रहने लगे। आपको बचपन से वीतराग धर्म के ऊपर प्रेम था। श्रावक चमनाजी पचपर्वी (वीज, पाचम, आठम ग्यारस और चऊदस) तपश्चर्या करते थे। आप किसी निमित्त से रतलाम

आये। पूज्य श्री मयाचन्दजी म का सत्समागम प्राप्त हुआ। ऐसा उत्तम निमित्त पाकर, आपका वैराग्य तीव्र हो गया। आपने तत्काल दीक्षित होने की भावना प्रकट की। रतलाम के श्रावक कहने लगे–'कुछ समय के लिए ठहर जाओ। फिर सयम लेना।' चमनाजी श्रावक बोले-'एक श्वास का विश्वास नही है। मैं अब रुक नही सकता।' श्रावको ने पुन रोकने का प्रयास किया तो चमनाजी बोले–'मुझ पर अविश्वास मत करो। मैं अपनी शक्ति तोलकर अपनी इच्छा से ही दीक्षित हो रहा हू।' श्रावकजी ने पूज्य श्री मयाचन्दजी म के पास दीक्षा अङ्गीकार की।

वे दीक्षा के बाद ज्ञानाराधना करने लगे और तप-आराधना तो गृहस्थ पर्याय से ही चल रही थी। अब वे तप की वृद्धि करने लगे। गृहस्थ पर्याय का पचपर्वी तपश्चर्या का नियम यथावत् चल रहा था। अब चमनाजी म ने एकान्तर तप प्रारम्भ किया। एकान्तर करते हुए वीर्योल्लास विशेष प्रबल हुआ। अत उन्होने निरन्तर छट्ठ-छट्ठ (बेले) की तपश्चर्या प्रारम्भ की, जो छह मास तक चलती रही। फिर परम उल्लासपूर्वक दस उपवास (बावीस भक्त) के प्रत्याख्यान लिये। दस उपवास के पारणे की पूर्व रात्रि मे भावना हुई, कि–'खाते-खाते जीव को अनन्तकाल हो गया है। गुरुदेव से मैंने सुना है, कि–जीव ससार मे परिभ्रमण करते हुए, लगातार तीन समय से अधिक अनाहारक नही रहा। जीव अपने अनाहारक स्वभाव को ही भूल गया हैं। एक अणु मात्र भी ऐसा नही है, जिसे जीवने ग्रहण न किया हो। फिर भी जीव को तृप्ति नही आई। रे चेतन! आहार सज्ञा को जीत ले और अपने स्वभाव मे आजा।' ऐसा विचार कर के, उन्होने छहो विगय के त्याग कर दिये और उस पारणे मे ज्वार की रोटी और मू ग की दाल के सिवाय अन्य पदार्थ न लिये। यथा–

पारणा नो दिन साधियो, रे लाल! एसो मन मे लाय, सुखकारी रे!
वार अनत खाता हुवा, रे लाल! फिर भी तृप्ति न आय, सुखकारी रे!
छहु विगय ने त्यागिया, रे लाल! उज्ज्वल भाव विसाल" रे!
पारणे लेऊं रोटो जवारनो, रे लाल! वलि मूंगानी दाल" रे!
साध चमनाजी दीपता रे लाल! ७।८

दस के पारणा के बाद ही आपने पन्द्रह (बत्तीस भक्त) की तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। पन्द्रह उपवास के पारणे मे लूखा भोजन ग्रहण किया और चौदह उपवास (तीस भक्त) का तप प्रारम्भ हो गया। चौदह उपवास के पारणे मे चाँवल का आटा और छाछ ली। फिर मास क्षपण तप प्रारम्भ कर दिया। तप मे शान्ति पूर्वक आत्म-रमणता करने लगे। एक दिन अन्तर्लीनता मे भास हुआ, कि-'आयुष्य अल्प रह गया है।' ऐसा भास होते ही वे अपने गुरुदेव के समीप आये और वन्दना करके, विधि-पूर्वक आलोचना की। चारो तीर्थो से क्षमा-याचना की और अपने परिणामो की उज्ज्वलता बढाने लगे। उन्होने यावज्जीवन का अनशन कर लिया। लोग दर्शनो के लिए उमड पडे। राजा-प्रजा सब धन्य-धन्य कहने लगे। लोग भी विविध त्याग-प्रत्याख्यान करने लगे। बहुत पौषध,उपवास हुए। जन-जन के होठो पर तपस्वीजी की प्रशसा रमने लगी।

राजा प्रजा सहु भणे रे लाल ! धन धनश्री जिन धरम, सुखकारी रे।
मारग जैन दीपावियो रे लाल ! श्रावक बोले परम, सुखकारी रे ॥ १७
सवत अठारह चोपन मे रे लाल ! तपसी एहवा होय, सुखकारी रे।
तपसी घणा जग देखिया रे लाल ! एवा दीठा न कोय, सुखकारी रे।
साध चमनोजी दीपता रे लाल ॥ १८

जब मासक्षपण के बीस दिन व्यतीत हो गये, तब तपस्वीजी के शरीर मे कुछ असाता वेदनीय का प्रभाव हुआ। परन्तु वे महान् तपस्वी परम शान्ति मे लीन रहे और परमेष्ठि का ध्यान करने लगे। इस प्रकार उन्होने परमात्म-ध्यान मे तल्लीन बनते हुए, इक्कीसवे दिन भादवा सुदी अष्टमी को, सूर्योदय के समय नश्वर औदारिक शरीर को त्याग कर भास्वर देवलोक मे प्रयाण किया। धन्य है ऐसे महा तपस्वी को।

आगम सुण्या धन्नामुनि रे लाल ! ते प्रत्यक्ष दीठा आज सु०
पाँचमे आरे उजवालियो रे लाल ! धन-धन श्री मुनिराज सु०
गुरु भला मयाचदजी रे लाल ! तेहना चेला सुजान सु०
मात सूड़ीबाई ना नदना रे लाल ! चमनाजी तपसी वखान सु०
चमनाजी दीपता रे लाल !

(५) मुनि श्री सोमचंदजी महाराज

पूज्य श्री मयाचन्दजी म के शिष्य श्री मोतीचन्दजी म आदि सन्त मालवा मे विचरण कर रहे थे। वे विचरण करते हुए राजगढ (सरदारपुर) के समीप 'उमरिया' [151] ग्राम मे पधारे। वहा एक वणिक रहता था। उसके यहाँ सोमचन्द नामका एक वालक रहता था। वह भी वणिक-पुत्र था। उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी। माता पिता के वियोग का दु ख उसे सतप्त कर रहा था। उसे अपने जातीय भाई ने आश्रय दिया। वह वालक अपने दु:ख को भूल नही पा रहा था। ऐसे समय मे वहाँ श्री मोतीचन्दजी म का पदार्पण हुआ। सोमचन्द कुल के सस्कार से प्रेरित होकर मुनि श्री के पास आया। मुनि श्री ने उसका परिचय पूछा। सोमचन्द ने अपनी स्थिति कह सुनाई। मुनि श्री ने वात-चीत मे वालक के भावो की थाह पाली। ऐसी दु ख-पूर्ण मन -स्थिति मे किन्ही भव्यात्माओ के हृदय मे वैराग्य के अकुर जम जाते है। मुनिश्री ने सोमचन्द मे सयमी वनने की योग्यता दिखाई दी। वालक सस्कारी और सुशील था। मुनि श्री ने उसे सयम-पथ पर चलने की प्रेरणा दी वालक को भी लगा, कि-समस्त दु खो की औषधि सयम है। वालक की उपस्थिति मे, जव आश्रयदाता मुनिश्री के समीप आया, तव मुनिश्री ने योग्य समय देखकर उस श्रावक से पूछा-'क्या तुम सोमचन्द को हमे दे सकते हो।'

श्रावक भावुक था। वह वोला-'महाराज ! इसके माता-पिता नही है। यह मेरे आश्रित है। इसका पालन करना मेरा कर्तव्य है। इसके भाव विना मैं इसे कैसे दे सकता हूं और इसके पिता के वश मे यह अकेला ही है।'

मुनिश्री ने कहा-'भाई ! वश का मोह तो निरर्थक है। यह कौन जानता है, कि-भगवान् महावीर के वश मे अभी कौन है ? फिर भी उनका जो धर्मवश चल रहा है, आज उसकी कितनी महिमा है ? रही

---

[151] उमरकोट-निवासी भाई श्री नथमलजी से पता लगा कि पहले उमरकोट को उमरिया कहते थे और अभी भी कोई-कोई उमरिया कहते हैं।

सोमचन्द के भाव की बात ' हमने उसके भावों को जानकर ही आपसे यह बात कही है ।'

सोमचन्द की ओर देखकर श्रावक बोला-'महाराज ' मैं ऐसे उत्तम कार्य मे अन्तराय देना नही चाहता हू । यदि सोमचन्द की इच्छा हो तो मैं इसकी दीक्षा मे बाधक नही बनूंगा ।' श्रावक ने सोमचन्द के भावो को जाना और उसे महाराज के सग जाने की आज्ञा दे दी । सोमचन्द यह अनुज्ञा पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ।

श्री मोतीचन्दजी महाराज ने स १८५९ मे [132]शुभ मुहूर्त मे सोमचन्दजी को दीक्षा प्रदान की । आपने तप-आराधना पूर्वक ज्ञान-आराधना की । आपने अपने नाम के अनुसार अपने स्वभाव मे भी चन्द्र के समान सौम्यता और शीतलता प्रकट की । आप थोडे ही काल मे मालवा के यशस्वी सन्तो मे परिगणित होने लगे ।

सोम स्वभाव हिये धर्यो, ममता मेटी तत्काल हो स्वामी ।
समता सागर झूलिया, कुमति कीनी दूर हो स्वामी ।।
ममता मेटी मन तणी, साहसिक हुवा शूर हो स्वामी ।
थारी महिमा घणी मालव देश मे-४ ॥

वैरागी हो विचरिया, वर्ष पचास प्रमाण हो स्वामी
लागा दूषण टालिया, मुनिवर माहि वखाण हो. था० ७

सोमचन्दजी म पचास वर्ष तक भव्य जीवो को प्रतिबोध देते हुए, इस भूमण्डल पर विचरण करते रहे । स १९०८ मे आप इन्दौर पधारे । इन्दौर के श्रावको के आग्रह से उस वर्ष का वर्षावास आपने वही व्यतीत किया । चातुर्मास का अधिकाश काल व्यतीत हो गया था । दीपावली का समय चल रहा था । आप तन-मन एकसा स्थिर करके

---

[132]श्री सोमचदजी महाराज के द्वारा लिखित 'रत्नचूड चोपई' की प्रतिलिपि मे प्रतिलिपि-काल स १८४६ बतलाया गया है । पर उसमे कुछ त्रुटि प्रतीत होती है ' क्यो कि जब दीक्षा सवत् १८५९ है, तब स १८४६ मे प्रतिलिपि काल कैसे हो सकता है ?

स्थिर आसन से विराज गये। साधुओ और भक्तों ने बहुत प्रयत्न किया। परन्तु आप विलकुल नही बोले। तीन दिन तक मौन रहे। कार्तिक सुदी बीज के दिन आपने मौन खोला और आपने जीवन भर के लिए तीन आहार का त्याग कर दिया।

दूज दिवस दूरा किया हो स्वामी ! तीनो अहार जावजीव हो राज ।१३।
शुक्लपक्ष शुभ ध्यान से हो स्वामी ! पचमी दिवस सुरलोक हो राज
आज सथारो भल कियो मोरा सोमजी स्वामी ॥१४॥

इस चातुर्मास मे आपके गुरुभ्राता श्री माणकचन्दजी म आपके साथ थे। श्री माणकचन्दजी म ने श्री सोमचन्दजी म की विनय पूर्वक सेवा भक्ति की और बहुत धर्म साहाय्य दिया। सवत् १९०८ कार्तिक सुदी पचमी को सोमजी स्वामी ने अपनी इहलोक-लीला का सवरण कर लिया।

(६) तपस्वी पू. श्री परसरामजी महाराज

मरुधरा मे बुरणपुर नाम का एक ग्राम था। वहाँ नगजी नाम का एक कु भकार रहता था। स्थानकवासी जैन सन्तो के सम्पर्क मे आने के कारण उसका जैन धर्म पर कुछ अनुराग था। उसकी पत्नी का नाम परभूबाई था। सवत् १८२५ मे परभूबाई की कुक्षि से एक वालक का जन्म हुआ, जिसका नाम परसराम रखा गया। पूज्य श्री मयाचन्दजी म के शिष्य वडे अमरजी म (रतलाम शाखा के चतुर्थ आचार्य) का विचरण राजस्थान मे हुआ या किसी निमित्त से छब्बीस वर्ष की आयु वाले युवक परसराम का अमरजी म से समागम हुआ। उनसे प्रेरित होकर, युवक परसराम ने स १८५१ मे जैन दीक्षा अगीकार की।

श्री परसरामजी म दीक्षा लेने के वाद ज्ञानाभ्यास करने लगे। आपने दीर्घ तपस्याएँ की। पाँचो विगय के त्याग कर दिये। सूय की आतापना लेने लगे। इस प्रकार आत्म-साधना करते हुए अन्य भव्य जीवो के लिए भी आराधना के अवलम्बन वने। आपके कई शिष्य हुए तपस्वी श्री दीपचन्दजी म, तपस्वी सूरजमलजी म, मूलचन्दजी म कवि प्रेमचन्दजी म, नन्दरामजी म आदि। मूलचन्दजी म ने अनेक ग्रन्थो

की प्रतिलिपियाँ की। आपके द्वारा प्रतिलिपि किये गये ग्रन्थ बहुत दूर प्रदेशो मे भी प्राप्त हो जाते है और कवि श्री प्रेमचन्दजी म॰ ने अनेक राग-रागिनियो मे कई पदो की रचना की, जो यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते है।

पूज्य श्री परसरामजी म की श्रुत-आराधना की रुचि भी तीव्र थी। आपका शिष्य-परिवार विशाल था। शिष्य प्राय शास्त्रो और ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ किया करते थे। अत आपके पास ग्रन्थो का कुछ न कुछ सग्रह रहता था। यदि किसी सन्त को आपके पास का ग्रन्थ पसन्द आ जाता और वे लेना चाहते तो आप उदार हृदय से उन्हे ग्रन्थ प्रदान कर देते थे। आपने कई सन्त-सतियो व श्रावको को ११५ से अधिक शास्त्र, ग्रन्थ, चौपइयाँ, थोकडे आदि की प्रतिया प्रदान की।

स १८९०, फागुन विदि ८ को आपको अपने शरीर मे क्षीणता दिखाई दी। उनके मन मे तत्काल यावज्जीवन का अनशन ग्रहण करने की इच्छा हुई और उस इच्छा को क्षण भर मे ही कार्यरूप मे परिणत कर लिया। उपस्थित साधु और श्रावको के समक्ष आपने स्वय अपने मुख से जीवन भर के लिए अनशन ग्रहण कर लिया और लगभग आधे प्रहर जितने काल मे ही आपने क्षणभगुर देह को त्याग दी।

श्री परसराम तपसी है बड भागी।
निजमुख से अनशन करके काया त्यागी॥

जैन जगत् के तत्कालीन प्रसिद्ध कवि श्री जिनदासजी ने आप के गुणो से प्रेरित होकर, आपका गुणगान इस प्रकार किया—

हुवा है रस कस का त्यागी-२
लूखो-सूको करे पारणो तपस्या का रागी।
दसा निर्लोभ तणी जागी-२
समकित रसको चाख लियो जिनवर से लव लागी।
भेद जिनवाणी का पाया रे! भेद जिनवाणी का पाया।
परसरामजी तपसीजोने खूब कसी काया-२॥

(७) तपस्वी श्री सूरजमलजी महाराज

तपस्वी श्री सूरजमलजी म भी रतलाम के रत्न थे। आपका विशेष परिचय ज्ञात नही है। आपने तपस्वी श्री परसरामजी म के पास प्रवज्या ग्रहण की थी। आपने १२ वर्ष तक खूब तपश्चर्या की। आपने कठोर सयम-चर्या अपनाई थी। जव आप थान्दला मे विराजमान थे, तव वहाँ कोई निमित्त पाकर आपने सथारा किया और समाधि-पूर्वक काया को छोड दिया। कवि श्री प्रेमचन्दजी म के शव्दो मे हम भी उन तपस्वी सन्त का गुणगान करले —

तुम चित्त समुदर लहर शील का दरिया।
नैना नहीं निरखी नार फंद सब परहरिया॥
है धरती सामे ध्यान कठिन तुम किरिया।
तुम मुख से सुन उपदेश घणा जन तिरिया॥
तुम ज्ञान तणी झड लगी पाणी जुं परला।
श्री तपसीजीका शिष्य विनयवंत सरला॥
श्री सूरजमल्ल-सा साध जगतमे विरला॥ ३॥

इन शव्दो मे मात्र अतियोक्ति से पूर्ण स्तुति मात्र नही है, पर सचमुच मे उनमे ऐसी ही विशेपता थी।

(८) घोर तपस्वी श्री दीपचन्दजी महाराज

मालव-प्रदेश भारत के उर्वर प्रदेशो मे से है। प्राचीन उक्ति है कि—'मालव भूमि गहन गभीर। डग-डग रोटी पग-पग नीर।' यद्यपि आज इस भूमि के विपयमे यह उक्ति शत प्रतिशत चरितार्थ नही होती है, फिर भी इस उक्ति मे वहुत-कुछ तथ्य है। मालवा के सीमान्त प्रदेश मे कही-कही पहाडी प्रदेश है। मध्य मालवा जैसी सीमान्त प्रदेश की स्थिति नही है। ऐसे ही प्रदेश मे डूगरप्रान्त (राजस्थान, गुज-रात और मालवा की प्रान्त सीमान्त भूमि) की गिनती है। अधिकांश प्रदेश मे भीलो का निवास है। वडे गावों और कस्वों मे अन्य शिष्ट जनो का भी वास है। उस प्रदेश मे 'पेटलावद' नामका एक ग्राम है। उस

ग्राम मे ओसवालो के, अच्छी सख्या मे घर है। लगभग डेढ सौ–पौने दो सौ वर्ष के पहले इस गॉव मे 'वगताजी' कटकानी नाम के एक सद्गृहस्थ रहते थे। उनकी पत्नी का नाम जीवावाई था। स १८६३ या ६४ के लगभग दम्पति को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उस कुल-दीपक का नाम दीपचद रखा गया। दीपचदजी का युवावस्था मे पदार्पण हुआ। उनकी आयु वीस वर्ष की हुई। माता का मन पुत्र के लग्न करके चन्द्रमुखी वधू घर मे लाने का था। वह इसी प्रयत्न मे थी।

इसी वीच मे युवक दीपचन्दजी ने उज्जैन शाखा के आचार्य श्री दल्लाजी म का उपदेश सुना और उनके हृदय मे ससार की नि सा-रता के भान–पूर्वक वैराग्य उत्पन्न हुआ। उस समय दल्लाजी म थान्दला मे विराजमान थे। थान्दला पेटलावद से लगभग सात कोस दूर है। वैराग्य–वासित हृदय वाले युवक दीपचन्द जी मन मे दीक्षा लेने के निर्णय सजोकर, थान्दला मे पूज्य श्री के समीप आ पहुँचे। माता को इस वात का पता चला। वह वडी व्याकुल हो गई। माता भी पुत्र को मनाने के लिए जल्दी ही थान्दला आ गई। वह अपने पुत्र को भाति-भाँति से समझाने लगी। वह ज्यो-त्यो करके अपने पुत्र को पेटलावद ले आई।

माता अश्रुपूर्ण नयनो सेपुत्र से वोली-'वेटा! मैं जहाँ तक जीवित हू वहाँ तक दीक्षा मत लो।' पुत्र ने माँ को समझाते हुए कहाँ–'माँ! कौन पहले चला जाएगा और कौन वाद मे–इसका क्या भरोमा? मुझे मत रोको। ऐसी भावना सदा हो नही सकती और रह नही सकती। क्योकि शुभ भावना की स्थिरता के लिए वैसा अनुकूल वातावरण चाहिये, पर ममार मे ऐसी स्थिति कहाँ रहती है? मुझे अव घर मे विलकुल अच्छा नही लगता है। अत. मुझे अव दीक्षा की आज्ञा देकर पुण्यभागिनी वनो' इस प्रकार कुछ काल वीत गया। आखिर मे उनके वैराग्य को दृढ जान–कर माता ने उन्हे दीक्षा की आज्ञा दे दी।

रतलाम शाखा के तपस्वी मुनि पूज्य श्री परसरामजी म लीमडी (पचमहाल) मे विराजमान थे। दीपचन्दजी आज्ञा मिलते ही उनके पाम जाकर, दीक्षित हो गए। आपने वहुत शास्त्राभ्यास किया। वादविद्या मे भी

दक्षता प्राप्त की। धर्म पर आक्षेप करने वाले कई पाखण्डियो के मान का मर्दन किया। आपने केवल वाद-विवाद के लिए ही ज्ञानार्जन नही किया था। वाद-विद्या को तो वे सिर्फ जन-समुदाय मे धर्म की सुरक्षा के लिए आवश्यक मानते थे। पर आत्मा मे धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए आत्मिक लक्ष्य पूर्वक की जानेवाली साधना को ही महत्व देते थे। अत आप निरन्तर तेले-तेले की तपश्चर्या करते थे। जिससे स्वाध्याय ध्यान मे तल्लीनता हो सके। आप उपकरण भी बहुत अल्प रखते थे। एक पुरानी चादर मात्र से तन ढँकते थे। आप उग्र आचार-निष्ठ सन्त थे। आपने गुरु की आज्ञा लेकर एकल विहार भी किया था। आपके विषय मे यह उक्ति प्रसिद्ध थी, कि—

चौथा आरामे मुनि कई हुआ रे, जिन कल्पी कह्या जिनराय रे !
पाँचमे आरे हद करणी करी रे, दीपने ओपम तेहवी थाय रे !
दीपचन्द मुनिवर दीपता रे-९

आप जहाँ भी जाते, वहाँ सवर सामायिक, पौषध आदि विशेष रूप से होते थे। क्योकि आपका ऐसा नियम था, कि-जहाँ अमुक सख्या मे पौषधादि हो, वही ठहरना। आप एकाकी भी सिंह के समान विचरे। रात्रि मे आप मौन रखते थे। इस प्रकार आप साढे गुनतीस वर्षों तक इस धरा पर विचरण करते रहे और भव्यो के जीवन मे धर्माराधना की सौरभ भरते रहे।

स १९१३ का चातुर्मास आपने धारा नगरी मे किया। वर्षा-वास मे आपके देह मे वेदना उत्पन्न हुई। आपने उस ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। देही होते हुए भी आप देहातीत दशा मे रमण कर रहे थे। चातुर्मास के पश्चात् आप विहार करते हुए जावरा पधारे। माघ मास था। कडाके की ठड थी। वहाँ रोगने विशेष जोर पकडा। आपको दृढ प्रतीति हो गई, कि-अब चैतन्यदेव की इस देह के निवास की अवधि पूर्ण होने को आई है। अत तपस्वीजी ने गुप्त रूप से सथारा कर लिया और चैतन्यदेव की उपासना मे लग गये। जब आपका चार घडी आयुष्य

शेष रहा, तब आपने अपने अनशन की बात सघ के प्रमुख व्यक्तियो के समक्ष प्रकट कर दी। लोगो मे वायुवेग के समान यह बात फैल गई। दर्शनार्थी स्थानक मे आने लगे और तपस्वीजी ने लोगो से स्थानक के भरते-भरते ही स्वर्गलोक की और प्रयाण कर दिया। वह दिन था-सवत् १९१३, फागुन विदि दूज मङ्गलवार।

लोकां तो आडंबर कीधो घणो रे, जिन मारग रो हुओ उद्योत रे
फागुन विद बीज भोम छे रे, साल गुन्नीस्से तेरे होत रे
दीपचन्द मुनिवर दीपता रे ॥ १२ ॥

आपके विषय मे वृद्ध जनो के मु ह से कई चमत्कारिक घटनाए सुनने मे आई है। यथा-(१) एक समय दीपचन्दजी स्वामी विचरण करते हुए गिरनार पहुँच गये। वे ऊपर जा रहे थे। किन्तु किन्ही साम्प्रदायिक मनोवृत्तिवाले व्यक्तियो ने उन्हे ऊपर जाने से रोक दिया। तब आपश्रीने कहा-'दीपा को तुम कहाँ कहाँ रोकोगे' आप वही ध्यानस्थ हो गये। आरोपियो ने ऊपर जाकर, सर्वत्र दीपजी के ही दर्शन किये। आखिर उन्होने नीचे आकर उनसे क्षमा याचना की। (२) एक समय खाचरोद मे, दोपहर के समय आप ध्यानादि निवृत होकर बैठे हुए थे। एक भाई दर्शनार्थ आया। महाराज श्री ने अकस्मात् उससे कहा-'भाई! तुम परदारागमन के त्याग करलो।' महाराज श्री ने उसे हेतु-दृष्टान्त से समझाया। पर वह त्याग करने के लिये तैयार नही हुआ। तब आपने कहा-' देखो कल तुम्हारे लिये यही समय कही पश्चाताप का न हो जाय।' दूसरे दिन लोगो ने उसे दोपहर मे ही परस्त्री-गमन के अभियोग मे जूतो से पीटे जाते हुए देखा। (३) पूज्य श्री मोखमसिंहजी म ने अवसर देखकर श्री दीपचन्दजी म से पूछा-'स्वामिन्! आपके पास क्या कुछ लब्धि है।' उस समय मे उल्लास मे उन के मुख से अनायास ही इतनी बात निकल गई, कि-'मैं चाहू तो प्रतिदिन दो हजार मोहरे व्यय हो सकती है' और फिर एकदम मौन हो गये। आदि ऐसी कई चमत्कारिक बाते आपके विषय मे प्रसिद्ध रही है। परन्तु चमत्कारो से भी अधिक महत्व है-उनकी परमोज्ज्वल आत्म भावना का।

एह पुरुषां ने नित-नित वंदिये रे, जिन मारग में चढायो सोभरे।
'प्रेम' कियो निज धर्म थी रे, टाली छे ममता लोभरे ॥१४॥

[९] महान साधक पूज्य श्री गिरधारीलालजी महाराज

श्री गिरधारीलालजी म का जन्म स १९१२ मे बडनगर ग्राम मे हुआ था। बडे साथ ओसवाल के सस्कारी कुल मे जन्म होने के कारण युवावस्था मे ही उत्कृष्ट त्यागमार्ग पर चलने की तीव्र इच्छा हुई। आपने परम तेजस्वी श्री हिन्दुमलजी म का शिष्यत्व स्वीकार किया। आप परम सवेग भाव से साधना मे निरत हो गये। मुनि श्री गिरधारीलालजी म अल्पकाल मे ही महान क्रियानिष्ठ सत के रूप मे प्रसिद्ध हो गये। आपकी क्रियोत्कृष्टता के कारण जिस कुल मे आपकी गौचरी हो जाती, वह कुल अपने को विशष्ट भाग्यशाली मानता था। ऐसी उत्कृष्ट आपकी एषणा समिति थी। आप भव्य जीवो के लिये प्रेरक आदर्श थे। आपका गौरवशाली व्यक्तित्व परमोच्च शिखर के तुल्य था।

आपके तीन शिष्यरत्न हुए। (१) भद्र परिणामी श्री गभीरमलजी म, (२) आचार्य श्री पूज्य नन्दलालजी म और (३) दिव्य सत श्री वृद्धिचन्दजी म। स १९५७, मार्ग शीर्ष शु ११ को, आपने देह त्याग भाव से अतीत होकर, समाधि पूर्वक इहलोक-लीला को समेट लिया।

(१०) तपोधन श्री स्वरूचन्दजी महाराज

रतलाम-इन्दौर या रतलाम-धार मार्ग पर, रतलाम से लगभग २८ मील दूर बदनावर नाम का ग्राम स्थित है। इस गाव का इतिहास काफी पुराना है। धर्म-आराधना मे इस ग्राम का प्राचीन समय से गौरव-पूर्ण स्थान रहा है। इस ग्राम मे जैनधर्म के अनुयायी श्रावको के कई घर हैं। लगभग सवासौ वर्ष पूर्व इस ग्राम मे रामचदजी ओसवाल नाम के धर्मप्रेमी श्रावक रहते थे। उनकी धर्मपत्नी मानीबाई के उदर से स १९०६ मे एक पुण्यशाली बालक का जन्म हुआ। उस बालक का नाम स्वरूपचद रखा गया। स्वरूपचद क्रमश युवावय मे आया। स्वरूपचद के लग्न हुए या नही इसका उल्लेख कही देखा नही।

स्वरूपचदजी की छब्बीस वर्ष की अवस्था हुई। ऐसे भरयौवन मे सद्गुरु की सगति ने आपके जीवन का प्रवाह मोड दिया। परम वैराग्य-भावना से वासित हृदय वाले होकर, आपने माता-पिता से चारित्र-आराधना के लिए आज्ञा मागी। माता-पिता ने आज्ञा प्रदान नही की। कुछ समय आज्ञा की प्रतीक्षा मे बीत गया। आपकी वैराग्य-भावना तीव्र-तीव्रतर होती गई। आज्ञा प्राप्त नही होने पर भी आप घर से निकल गए। पूज्य श्री मयाचदजी म के यशस्वी शिष्य श्री दानाजी स्वामी के सतानीय शिष्य श्री मयाचदजी म उस समय धार मे विराजमान थे। आप वहाँ पहुँच गये और गीतार्थ गुरु की चरणोपासना से परम आनन्दित हुए। योग्य समय मे आपने स १९३३ मे साधुधर्म ग्रहण कर लिया।

आपने दीक्षा के बाद यथोचित ज्ञानोपासना की और फिर तप-आराधना मे प्रवृत्त हो गये। आपने उपवास से लगाकर तेवीस तक (अन्य मत से इक्कीस तक), इकतीस से पैंतीस (अन्य मत से ३० से ३५) तक, चालीस से पैंतालीस तक और फिर पैंतालीस की तपश्चर्या की। दो वर्ष तक निरन्तर बेले-बेले की और बारह वर्ष तक निरन्तर तेले तेले की, पाँच अठाई तथा कई वार पन्दरह की तपस्या की। आपने भोजन मे छह द्रव्यो के सिवाय अन्य द्रव्यो का और एक विगई के सिवाय अन्य विगइयो का त्याग कर दिया था। बारहो मास एक चादर और दो चोलपट्टे (अधोवस्त्र) रखते थे। बदनावर मे आपके गुरुदेव स्थिरवास विराजमान थे। वहाँ उनके पास चातुर्मास मे एकावन दिवस के उपवास किये। बदनावर से अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर पूज्य श्री मोखमसिहजी म की सेवा मे आये। पूज्य श्री के पास रहते हुए शान्ति से आत्म-साधना करने लगे।

पूज्य श्री ताराचदजी म तपस्वीजी म के विषय मे उस समय की एक घटना सुनाया करते थे। वह इस प्रकार है—

तपस्वीजी के दर्शनो के लिए प्राय श्रावको की भीड लगी रहती थी। यात्रा देखकर किसी श्रावक ने उनके कान भरे, कि–'अहो! इतने महान तपस्वी आप! और आपकी यहाँ कुछ कद्र नही!' इस प्रकार धीरे-धीरे तपस्वीजी को उकसाया। उनका मन पूज्य श्री की सेवा मे

उचट गया। उन्हें श्रावकों ने ऐसा भरमाया, कि-उनका मन अन्य सम्प्रदाय मे जाने का हो गया। वे पूज्य श्री के पास आये और विनय से बोले' ... के पास मैं जाना चाहता हू।' पूज्य श्री ने समझा, कि, ये वहाँ दर्शन करने के लिए जाने की आज्ञा माँग रहे हैं। अत पूज्य श्री ने सहज भाव मे उत्तर दिया-'अच्छा'। तपस्वीजी ने यों सहज मे आज्ञा प्राप्त होते देखकर, स्पष्टीकरण दिया-'मैं उन्हीं के पास रहना चाहता हूं।' तब पूज्य श्री ने साश्चर्य उनकी ओर देखते हुए पूछा-'क्यो ? आपको यहाँ क्या कष्ट है ?' तपस्वीजी बोले-'कुछ नही ! मैं उनके पास ही रहना चाहता हू।' आचार्य श्री समझ गये, यह किन्ही श्रावकों की करतूत है। पूज्य श्री मौन रहे। तपस्वीजी वहाँ से चल दिये। पर उन्हें वहाँ से अपने भण्डोपकरण ले जाने का साहस नही हुआ। वे जहाँ अन्य स्थविरसंत विराजमान थे, वहा पहुच गये और उन स्थविर महाराज के सत आकर, तपस्वीजी के भण्डोपकरण ले गये। उन स्थविर सत के भक्त श्रावकों ने तपस्वीजी के इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशसा की। किसी ने प्रशसा के अतिरेक मे कहा-'नगीना तो सोने की अंगूठी में ही शोभा पाता है।, ताम्बे-पीतल की अंगूठी में नहीं।' परन्तु परम सेवाभावी निष्पक्ष श्रावक श्री छोगाजी और उम्मेदजी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा-'जिनकी वस्तु जिनके पास ही शोभा पाती है अन्य के पास नही।'

इधर पूज्य श्री मोखमसिहजी म के हृदय पर, जिन्हे अपने प्रिय शिष्यो के वियोग मे भी पीडा नही हुई थी, इस घटना से चोट पहुँची। उन्होंने इस प्रदेश पर अपनी सम्प्रदाय की विजय-दुदुभि गूजते हुए सुनी थी। अभी भी वह गूज जनमन पर व्याप्त थी। परन्तु आज उनके चद श्रावक अन्य के बनकर अन्दर ही अन्दर सम्प्रदाय की जडे काट रहे थे। पूज्य श्री को, श्रावक किसी के भी भक्त रहे-इस बात का खेद नही था। पर वे एक सम्प्रदाय के आचार्य थे। इस प्रकार अकारण ही एक विशिष्ट सन्त के द्वारा सम्प्रदाय के त्याग से उन्हे खेद होना सहज ही था। वे स्थितप्रज्ञ सन्त थे। फिर भी इस घटना से उनके हृदय मे कुछ हल्का-सा आर्तभाव आ गया। इतने मे पूज्य श्री को भास हुआ, कि-उन्हे सम्बोधित करके कोई कह रहा है-'भन्ते ! खेद क्यो करते हो ! आप की वस्तु आप के पास आ जाएगी।' पूज्य श्री जैसे आत्मनिष्ठ सन्त को

वैसे भी आर्तभाव ज्यादा रह नहीं सकता था। पर इस आभास* के पश्चात् तो पूज्य श्री तत्काल प्रसन्नवदन अपनी चर्या मे रत हो गये।

तपस्वी श्री स्वरूपचदजी म उस उपाश्रय मे रहे। परन्तु वहाँ उनका चित्त न जाने क्यो अशान्त रहने लगा। वे स्थडिल गये। वहाँ उन्हें कुछ आवाज सुनाई दी-'तपस्वीजी ! अपने स्थान पर जाओ'। तपस्वीजी ने इधर-उधर देखा। उन्हे कोई भी दिखाई नही दिया वहाँ। पुन: वही आवाज सुनाई दी। उन्हे विचार हुआ-'मेरे स्थान पर जाऊ ? कहाँ है मेरा स्थान ? कौन से स्थान पर जाऊँ ?' उन्हें ध्यान आया 'स्थान-भ्रष्टा न शोभन्ते।' उन्हें श्रावको की वह बात भी याद आई 'नगीना सोने की अगूठी मे ही शोभा पाता है ...' सोने की अ गूठी कौन और ताम्बे की अ गूठी कौन ? पूज्य श्री मोखमसिंह जी म कितने भद्र प्रकृति के हैं ? कैसी उनकी आत्मनिष्ठा है ? ऐसे स्थित आत्मा सन्त विरले है। उन्होने मुझे जरा भी उपालम्भ नही दिया। मैंने उन महापुरुष की आशातना की है-घोर आशातना की है। इसलिए मेरे चित्त मे अशान्ति है।' उन्होने वही से पूज्य श्री के पास जाने का निर्णय कर लिया।

वे पूज्य श्री के पास आये और वन्दना करके, क्षमा याचना करने लगे। पूज्य श्री ने प्रसन्नता से क्षमा प्रदान की। तपस्वीजी ने श्री ताराचद जी म से कहा 'तारा ! जा, मेरे नेश्राय के भण्डोपकरण उस उपाश्रय मे ले आ।' श्री ताराचद जी म उनके भण्डोपकरण ले आये।

एक वार तपस्वीजी पूज्य श्री के पास आये। और सविनय वोले 'मुझे एक सौ छह भक्त (वावन उपवास) के प्रत्याख्यान करा दीजिए।' पूज्य श्री ने पूछा-'अभी वावन दिन का तप करना चाहते हो ?' तपस्वीजी ने कहा-हां ! मेरी इच्छा वावन उपवास करने की है।' पूज्य श्री को इस मे भेद प्रतीत हुआ। अत उन्होने कहा-'तपस्वीजी ! अभी आप इतनी लम्बी तपश्चर्या क्यो कर रहे हैं ? कुछ रहस्य है क्या इसमे ?' तपस्वी जी ने कहा फिर कहूँगा' और उन्होने स्वय वावन उपवास के प्रत्याख्यान ले लिए।

---

* पूज्य श्री के दिवगत शिष्य तपस्वी श्री शिवलालजी महाराज की ओर से उन्हे ऐसे आभास प्राय हो जाया करते थे।

छट्ठ पारणे इकदिन तपसी, सुखसाता माई।
काया चेतन से जान पराई, बावन तप ठाई॥

तपस्वी खूब कसी काया रे ! तपस्वी खूब कसी काया !
स्वरूपचंद महाराज आपने बावन दिन ठायां॥ १४॥

स्थानक के पास की पौषधशाला मे वे विराजमान हो गये। साधुओ ने यथा समय आपको पानी के लिए पूछा। आपने कहा–'मुझे चौविहार प्रत्याख्यान है।' इस प्रकार पाँच दिन बीत गये। पूज्य श्री स्वय तपस्वीजी के पास आये और पूछा–'तपस्वीजी ! क्या कारण है कि–आपने पानी का भी त्याग कर दिया।' तपस्वीजी ने कहा 'मुझे चौविहार त्याग है।' पूज्य श्री ने साश्चर्य पूछा 'क्या बावन ही दिन।' तपस्वीजी ने सक्षिप्त उत्तर दिया-'जी, हाँ !' पूज्य श्री ने पूछा–'क्या आपको अपने अन्त समय का कुछ पता लग गया है।' तपस्वीजी बोले-'भन्ते ! मुझे सथारा करना है।' पूज्य श्री उन्हे समझाने लगे-'नीरोग शरीर है। उम्र भी पक्की नही है। शरीर मे अन्तकाल के चिह्न भी नही है। फिर अभी सथारा क्यो ?' तब तपस्वीजी ने कहा–'मेरा अन्तिम समय समीप आ गया है। अब पाँच दिनो की ही अवधि है।' पूज्य श्री बोले 'जब ऐसी बात है तो जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो।'

समझाया पूज्य विविध से, माने एक नाहीं।
अवसर म्हारो आय गयो हो, पाच दिना माहीं॥१७॥
पूज्य गुरु श्री सुनकर बोल्या, कीजे सुख थाई।
शूरवीर हो अनशन लीना, हर्ष अधिका लाई॥१८॥

वे पूज्य श्री के सम्मुख ही बैठ गये। उन्होने श्री ताराचदजी म से राख मगवाई। अपने आसपास राख की लकीर बना दी। सभी जीवों से क्षमा याचना की और पूज्य श्री के मुख से ही उन्होने विधिपूर्वक सथारा (सलेखना) ग्रहण कर लिया। फिर यह विशेष प्रतीज्ञा की, कि 'शारीरिक कारण के सिवाय इस रेखा से बाहर निकलने के जीवन भर के त्याग हैं। जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज ने उस समय की स्थिति का इस प्रकार वर्णन किया है—

चढता ही परिणाम से, शूरवीर ऋषिराय ।
आज्ञा ले श्री पूज्य की, दिया सथारा ठाय ॥
जैसे तरु से टूट के, पडे जमीं पे डाल ।
ऐसी समता धार के, पोढ्या पौषधशाल ॥
साधु साध्वी श्रावक श्राविका, चार तीर्थ सुखकार ।
सेवा करता आपकी, सोहै ज्यो गुलजार ॥
कई गाव का भायाजी । दर्शन करने आया जी ।
सूरत मोहनगारीजी । सोहै चद ज्यो दीदारी जी ॥
जाकी जाऊ बलिहारीजी । कहू धन-धन तपधारीजी ।

लोगो मे आपके अनशन की खबर फैल गई । स्थानक मे श्रावक श्राविकाओ का जमघट लग गया । वाहर से भी दर्शनार्थी आने लगे । भजनो के स्वरो से स्थानक गू ज उठा । चारो और शान्ति का वातावरण था । केवल आत्मलीनता की प्रेरक भजनो की कडियो के स्वर व्याप्त हो रहे थे । समाधि मरण के योग्य भव्य वातावरण की सृष्टि हो गई ।

'न्हाले धोले शीश गुंथाले साजन के घर जाना होगा' ।

तपस्वीजी महाराज ने सब तैयारी कर ली थी । पूज्य श्री ने पूछा 'मुझे समय का क्या पता लगेगा, तपस्वीजी !' तपस्वीजी वोले–जब मेरे जाने का समय होगा, तव मैं आपको बुला लूगा ।' पाच दिन वीत गये । तपस्वीजी का वोलना वन्द हो गया । छट्ठे दिन रात्रि के तीन वजे अचानक उनकी वाणी खुली । उन्होने श्री ताराचदजी म से कहा-'तारा ! पूज्य श्री को बुला लाओ ।' पूज्य श्री सूचना पाते ही तपस्वीजी के पास पधारे । तपस्वीजी ने–'मेरे अपराध क्षमा करना'–यो कहकर, पूज्य श्री के चरणो मे शीष झुकाया । पूज्य श्री उन्हे उठाने के लिये झुके तो उन्होने वहाँ शरीर को ही पाया । हँस उड चुका था । कुल ग्यारह दिन का सथारा आया । सवत् १९५६, फागुन सुदी नवमी के दिन तपस्वी श्री [illegible]जी महाराज का सथारा सिद्ध हुआ ।

अन्त समय निज जान पूज्य को, बुलवाया निज पास
'खमजो मुझ अपराध' कहत ही लियो स्वर्ग मे वास २१

सवत् गुन्नीस्सौ साल छपन मे, पाया स्वर्ग विमान
अषाढ़ सुद नवमी दिन तपसी, किया आत्मकल्याण २२

पण्डित मरण सदैव अभिनन्दनीय है।

(११) कवि श्री प्रेमचंदजी महाराज

आप तपस्वी पूज्य श्री परसरामजी म के शिष्य थे। आप मालवी भाषा या सामान्य जनभाषा मे पदो की रचना करते थे। आपके कई पद बड़े भावपूर्ण है। आपकी रचनाए सुरक्षित नही रही। आपकी छोटी-छोटी रचनाएँ यत्र-तत्र पन्नो मे बिखरी हुई हैं। यह भी सम्भव है कि आपने कोई बड़ी रचना भी की होगी। परन्तु वह प्राप्य नही है। आपके पदो को देखते हुए अनुमान होता है, कि-सैद्धान्तिक बोध के साथ ही साथ सगीत के विविध रागो का भी आपको अच्छा बोध रहा होगा। राग बसत, राग मेघमल्हार आदि रागो मे कतिपय पद प्राप्त होते है। कुछ भजनो मे प्रसगवशात् प्रकृति-चित्रण भी अच्छा बन पड़ा है। यथा

राग-मेघमल्हार

'पारस पर बादल बरसत मेह' या—
पारस पर गरजत है घनघोर।

चचल चपला चहु दिशि चमकत, पानी बरषत जोर १
कडकडाहट अति होत गगन मे, दाणी बोलत मोर २
नीली पीली कांवल अति काली, आई जल भर जोर ३
पचवरण बादल झड लागी, बरसे वाधी जोर ४
'प्रेम' दरी कमठ पग लागो, भागो भरम अघोर ५

महाराज के शिष्य। थे तपोधन श्री स्वरुपचन्दजी महाराज और श्री भेरुलालजी महाराज आपके गुरु 'भ्राता थे। श्री सिरेमलजी महाराज के विषय मे बहुत ही अल्प जानकारी मिलती है।

आप शान्त स्वभाव वाले सन्त थे। आपके विषय मे यह प्रसिद्धि थी, कि-आप कई चमत्कारी विद्याओ के ज्ञाता थे। एक बार श्रीमान् ताराचन्दजी महाराज आपकी सेवा मे पधारे। उस समय तक मुनि श्री के कोई शिष्य नही हुआ था। बातचीत मे श्री सिरेमलजी महाराज को इस बात का पता लग. गया। श्री सिरेमलजी महाराज श्री ताराचन्दजी म की सेवा भक्ति और विनयशीलता से बडे प्रसन्न थे। उन्होने ताराचन्दजी महाराज से उनकी चादर मँगवाई और उसके पल्लो पर कुछ लिख दिया। वह चादर उन्होने वापिस ताराचन्दजी महाराज को लौटाते हुए कहा–'इस चादर को अभी धोना मत। तुम उत्तर दिशा मे जाना। तुम्हे तीन शिष्यो की प्राप्ति होगी-दो महिने के भीतर-भीतर।' कुछ दिन बाद श्री ताराचदजी महाराज ने नागदा धार) से विहार कर दिया। पर उन्होने सोचा–'ये भोले महाराज क्या जानते है? इनके खुद के तो शिष्य है नही। इन्होने मेरी चादर यो ही खराब कर डाली।' श्री ताराचन्दजी महाराज ने वह चादर पानी मे निकाल ली। अकस्मात् ऐसा ही सयोग हुआ, कि–ताराचद जी महाराज को डेढ माह के भीतर-भीतर नागदा (धार) से उत्तर दिशा मे स्थित जावरा जाना पडा। वहाँ उन्हे तीन शिष्यो की प्राप्ति हुई-एक पिता और उसके दो पुत्र। जीतमलजी और उनके दोनो पुत्र ताराचन्दजी महाराज के शिष्य रुप मे दीक्षित हुए। जैन दिवाकर श्रीमान् चौथमलजी महाराज ने भी आपका आशिर्वाद प्राप्त किया था।

आप स्तवन-भजनो की रचना मालवी-भाषा मे करते थे। आपके द्वारा रचित भजन, स्तवन और पद लोगो मे खूब प्रचलित थे। आपके प्रेरणाप्रद भजनो मे–'चेतरे चेतरे · मानवी' आदि भजन प्रसिद्ध है। आपकी रचनाओ मे हास्य और व्यग का पुट भी मिलता है। इसकी झलक हमे आपकी प्रसिद्ध रचना–'म्हारा अन्न देवता रे!' नामकी 'अन्न स्तुति' मे अच्छी मिलती है।

आप तात्कालिक घटित घठनाओ के विपय मे भी पद रच डालते थे। एकवार कोई आपकी पू जनी (प्रमार्जनी) उठा ले गया। तव आपने उस प्रसग को–'देखो मारी पू जनी को चोर आयोजी–' इस प्रकार शव्दो मे वाँधते हुए, पू जनी का परिचय और पू जनी के अभाव मे होने वाली अपनी असुविधाओ का अच्छा चित्रण किया है। आप वृद्धवय मे नागदा (धार) मे स्थिरवास रहे थे। वहाँ स्थानक कच्चा ही था। वर्षा हुई अधिक। अत स्थानक मे पानी चूने लगा। एक दिन स्थानक मे बहुत अधिक पानी चू गया। मिट्टी के आँगन मे फिसलन हो गई। महाराज श्री सम्हलकर चलते हुए भी गिर पडे। घुटने मे चोट लग गई। उस समय के द्रश्य का चित्रण करते हुए, निश्छल भाव से अपनी मन स्थिति का और पीडा का भी वर्णन कर दिया —

चुइ चाल्यो चुइ चाल्यो जी, देखो म्हारा थानक मे चुइ चाल्योजी

आपने–'यह पचम काल है, कलियुग है, इसमे सचाई कहाँ ?–' ऐसा कहने वालो पर करारा व्यग्य किया हैं। आपके रचित भजन-स्तवन भी सुरक्षित नही रह सके। अधिकतर लोगो के कण्ठ पर ही रहने के कारण उनमे अशुद्धियाँ भी बहुत हो गई हैं।

(१३) प्रतिभाशाली सत श्री वृद्धिचन्दजी महाराज

रतलाम सचमुच मे ही रत्नपुरी रही है। इस रत्नखान से कई नररत्न निकले है। महान् प्रतिभाशाली सन्त श्री वृद्धिचन्दजी म. भी इस रत्नपुरी के ही नरपु गव थे।

घाँसीरामजी मुणत रतलाम के सहृदय गृहस्थ थे। उनकी पत्नी का नाम रतनबाई था। आपके तीन पुत्र थे–सौभाग्यमलजी, समर्थमलजी और वृद्धिचन्दजी। यह परिवार वहुत ही धर्मप्रेमी था। समर्थमलजी आगे चलकर सिद्धान्तज्ञ सुश्रावक हुए। छोटे पुत्र वृद्धिचन्दजी का जन्म स १९४१ मे हुआ था। उस युग के अनुसार आपको शिक्षण मिला।

वृद्धिचन्दजी छोटीवय से ही अपने पिताजी के सङ्ग स्थानक मे आया करते थे। आपको माता–पिता की ओर से तो धर्म–सस्कार प्राप्त

हुए थे ही । स्थानक मे आते रहने से उन सस्कारों का रङ्ग और गाढा हो गया । आपको क्रियापात्र श्री गिरधारीलालजी म से विशेष धर्म-प्रेरणा मिलती रहती थी । उनके निमित्त से वृद्धिचन्दजी के धर्म-सस्कार और प्रबल हो गये । चौदह वर्ष की अल्पायु मे ही उनका मन सन्त बनने का होने लगा । इधर उनकी माता की धर्मभावना भी प्रबल थी । माता के हृदय मे भी वैराग्य जागृत हो रहा था । आपकी माता रतनबाई को प्रवर्तनी श्री मेनकुँवरजी म की गुरुणी श्रीवाली जी म से धर्म प्रेरणा प्राप्त हुई थी । उन्ही से उन्हे ज्ञान प्राप्ति हुई थी । अत. माता रतनबाई उनके पास दीक्षित होना चाहती थी । कुटुम्बीजनो के समक्ष माता-पुत्र दोनो की इच्छा व्यक्त हुई । वह धर्मप्रेमी कुटुम्ब ऊपर से ही धर्मप्रेमी नही था, वे सच्चे धर्मप्रेमी थे । उन्होने माता-पुत्र की उच्च भावना को मान दिया और उनके इस सत्कार्य मे अन्तराय न बनते हुए, उन्हे दीक्षा की आज्ञा सहष प्रदान कर दी ।

स १९५४, वैशाख सुदी ४ के दिन रतलाम से कुछ दूर स्थित करमदी ग्राम मे माता रतनबाई और पुत्र वृद्धिचन्दजी की दीक्षा हुई । रतनबाई वालीजी म की शिष्या हुई और वृद्धिचन्दजी म पण्डित श्री गिरधारीलालजी म के शिष्य हुए । बालमुनि श्री वृद्धिचन्दजी कुशाग्रबुद्धि थे । उन्होने शास्त्र व थोकडे कण्ठस्थ करना प्रारम्भ किये । परन्तु गुरुदेव का सान्निध्य अधिक समय तक नही रह सका । दीक्षा के दो-तीन वर्ष बाद ही श्री गिरधारीलालजी म का स १९५७ मौन एकादशी को देहावसान हो गया । आप अपने मँझले गुरुभ्राता श्री नन्दलालजी म की छत्रछाया मे ज्ञानादि गुण का विकास करने लगे । आपने अल्पकाल मे ही ग्यारह शास्त्र (४ मूल, ४ छेद, आचारांग, सूयगडांग और सुख विपाक-बारहवां आवश्यक सूत्र) और कई थोकडे कण्ठस्थ कर लिए । आप दिवस मे शास्त्र पढते थे और साथ ही उन शास्त्रो से नि सृत थोकडे कण्ठस्थ करते जाते थे । फिर रात मे वे थोकडे अपने बडे भ्राता समर्थमलजी आदि श्रावको को सिखाते थे । यद्यपि आपकी वय छोटी थी, फिर भी आपके ज्ञान का इतना प्रभाव था, कि बडे-बडे श्रावक साधु, साध्वियां आदि आपका आदर करते थे ।

आपके व्याख्यान प्रभावपूर्ण और वैराग्य भावना से भरपूर होते थे। आपके व्याख्यानो को श्रवण करके, श्रोता शान्तरस मे निमग्न हो जाते थे। एक वार रतलाम मे रीयाँवाले चाँदमलजी सेठ आये। वे व्याख्यान श्रवण करने के लिए गलीवाले स्थानक (जहाँ आज कन्याशाला है) मे गये। वहाँ विराजमान् पू. श्री मोखमसिंहजी म मे निवेदन किया –'महाराज ! व्याख्यान फरमाने की कृपा करे।' पूज्य श्री ने लघुमुनि श्री वृद्धिचन्दजी म की ओर सङ्केत कर के कहा–'अभी हमारे छोटे मुनिजी व्याख्यान देते है।' सेठजी वोले-'महाराज ! ये क्या व्याख्यान देगे अभी तो ये टावर (छोटे लडके) है।' पूज्य श्री वोले-'आपने वड़े-वड़े के व्याख्यान वहुत सुने है। आज छोटे वच्चे के भी व्याख्यान सुनलो।' सेठजी अनमने भाव से व्याख्यान श्रवण करने वैठ गये।

श्री वृद्धिचन्दजी म. ने व्याख्यान प्रारम्भ किये। नमोकार मत्र आदि के उच्चारण के वाद जब मुनिश्री ने'महावीरत्थुई' की 'उड्ढ अहेय ...' चौथी गाथा का उच्चारण किया, तव उनके द्वारा गाथा के उच्चारण के लिए अपनाई गई शैली मात्र से ही सेठजी का अनमनापन न जाने कहाँ चला गया और फिर इतने तल्लीन हुए, कि–मुनिश्री उस गाथा पर विविध दृष्टियो से हेतु–दृष्टान्त सहित कितनी देर प्रवचन करते रहे, इसका कुछ ध्यान ही नही रहा। वे एकटक मुनिश्री की ओर देखते ही रह गये। जब मुनिश्री व्याख्यान–समाप्ति की स्तुति वोले, तव सेठजी का घडी की ओर ध्यान गया। कव एक घण्टा व्यतीत हो गया-इसका कुछ पता ही नही चला। वे मुनिश्री के व्याख्यान से वडे प्रभावित हुए। और वे उनके व्याख्यान की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे। उन्होने पूज्य श्री के पास जाकर, मुनिश्री की प्रशसा की और कहा–'आज मुझे पक्का विश्वास हो गया, कि 'ज्ञान–विकास का वयमात्र से सम्वन्ध नही है। महाराज ! ऐसा लगता है, कि-ये वालमुनि पूर्वभव से ही ज्ञान का विशेप क्षयोपशम करके आये है।'

श्री वृद्धिचन्दजी महाराज की वैराग्यपूर्ण जीवन–चर्या अनूठी थी। आपकी सगति और वाणी को श्रवण करने से कई जन का मन हो जाता था, कि–उनके पास दीक्षित होकर, आत्म–कल्याण

के मार्ग पर चले। कुछ जन के विचार निर्णय की सीमा पर पहुँच रहे थे, कि–अकस्मात् वज्रपात हो गया। स १९६१ मे रतलाम मे रोग का प्रकोप हुआ। चातुर्मास का काल था। उस समय युवाचार्य श्री नन्दलालजी महाराज ने विचार किया, कि–मेरे पास छोटी वय के साधु है। अत मुझे अभी इस प्रदेश से बाहर निकल जाना चाहिये। पूज्य श्री (मोखमसिहजी महाराज) ने भी उन्हे आज्ञा प्रदान करदी। विहार करने की तैयारी ही थी, कि-वहा एक श्रावक आये। उन्होने महाराज श्री को बिहार करते हुए देखकर कहा–'क्या साधु भी मृत्यु से डरते है ?' महाराज श्री को ये वचन वाण जैसे लगे। उन्होने विहार स्थगित करदिया। होनहार की वात, कि-उसी दिन सायङ्काल मे श्री वृद्धिचन्दजी महाराज के शरीर मे रोग की गाँठ उठी। उन्होने किसी से इस विषय मे नही कहा। पर अपने से छोटे साधु श्री किशनलालजी म को वह गाँठ दिखाते हुए बोले-'देखो, किसी से कहना मत। वडे महाराज से भी मत कहना। मुझे यह गाँठ हो गई है।' वह गाँठ देखकर, श्री किशनलालजी म को बडा आघात लगा। वे श्री वृद्धिचन्दजी म के रोकने पर भी युवाचार्यजी म के पास पहुँच गये और सारी वात उनसे कह सुनाई। श्रावको तक बात पहुँची। रोगोपचार की तैयारी होने लगी। परन्तु रोग की वृद्धि हो चुकी थी। उपचार होते-होते, वह अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, स १९६१, भादवा विदी तीज को, इस ससार से उठ गया। लगभग सात वर्ष की उनकी दीक्षा-पर्याय थी और कुल इक्कीस वर्ष की वय थी। इतने से अल्पकाल मे भी उन्होने जो प्रभाव डाला, वह अनुपम था। नगर के भावुकजनो मे हाहाकार मच गया। युवाचार्यजी को इससे वडा आघात लगा। परन्तु काल के आगे किसका वस चलता है। भव्यजनो को उनकी छत्र-छाया प्राप्त नही होनी थी, सो वे इस आपाधापी से भरे जगत से चल दिये।

उस समय प्रमुख माने जानेवाले श्रावक श्री अमरचन्दजी पितल्यिा ने उनके देहावसान की वात सुनकर, शोक से विह्वल होकर अश्रुपूर्ण नयनो से कहा–'एक सम्प्रदाय का ही नही, परन्तु आज जैन-जगत् का उज्ज्वल नक्षत्र उदय होते-होते ही अस्त हो गया।'

सरल स्वाभावी—

स्व. श्री वच्छराजजी महाराज

युवाचार्यश्री को आपके वियोग का आघात बहुत समय तक सालता रहा।

(१८) सरल स्वभावी श्री वच्छराजजी महाराज

मारवाड से भूतकाल मे कई कुटुम्ब आजीविका के लिए निकल कर, दूर–दूर प्रदेशो तक फैलते रहे है। उनमे से एक पीपाडा कुटुम्ब भी आकर पेटलावद मे बसा। किन्तु वहाँ से भी वह कुटुम्ब उठकर, व्यापार की अनुकूलता के अनुसार ताल और फिर ताल से भी आलोट आकर बसा। वहा सेठ जवरचन्दजी पीपाडा की धर्म पत्नी जडाववाई की कुक्षि से स १९३०, भादवा विदी ८ को वच्छराज जी का जन्म हुआ था। जब वच्छराजजी युवावस्था मे आये, तब जावरा निवासी नन्दरामजी पटवा की पुत्री फूलकुँवरबाई के साथ आपके लग्न हुए। आपके कई सताने हुई उनमे से एक पुत्र भेरुलालजी (प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी म) ही चिरञ्जीव हुए। अन्य सताने अल्पआयु मे ही काल–कवलित हो गई। परन्तु जब भेरुलालजी की उम्र पाच–छह वर्ष की थी, तभी उनकी माता का देहान्त हो गया। युवक वच्छराजजी के हृदय मे इससे ठेस पहुँची। उनका हृदय ससार से उदासीन हो गया। उन्हे दीक्षा लेने की भावना हुई। आपने अपने पुत्र को भी वैराग्य भावना की ओर प्रेरित किया।

स १९६७ मे आप अपने नववर्षीय पुत्र को लेकर पूज्य श्री नन्दलालजी म के पास दीक्षित होने के लिए आये। क्योकि आपके पूर्वज पूज्य श्री मोखमसिंहजी म के भक्त थे। आपने भी उन्ही के सन्तो की गुरुभाव से आराधना की थी। चातुर्मास के बाद आपके पुत्र के संग आपकी और अन्य तीन जनो की दीक्षा बखतगढ मे हो रही थी। लेकिन विघ्नसतोषी लोगो के कारण आपकी दीक्षा मे बाधा उपस्थित हो गई। अत दीक्षा वहाँ न हुई और स १९६८, ज्येष्ठ सु ५ को पिता-पुत्र दोनो ने उज्जैन मे पू श्री नन्दलालजी म की नेश्राय मे चारित्रधर्म ग्रहण किया। दीक्षा के बाद आप सैद्धान्तिक ज्ञान उपार्जन करने लगे। थोकडे रूप चाबियो से सिद्धान्त का मर्म हृदयङ्गम करते हुए आप अपने पुत्र बालमुनि श्री सूर्यमुनिजी म को भी विद्याध्ययन और शास्त्राध्ययन की प्रेरणा देते रहते थे।

आपने दीक्षा के बाद राजस्थान, जमनापार, दिल्ली, ढूंढाड, हाडोती, झालावाड, मेवाड, मालवा, महाराष्ट्र, मुंबई, हैदराबाद, मद्रास, सौराष्ट्र आदि प्रदेशो मे विचरण किया। आप बहुत ही भद्रिक प्रकृति के संत थे। आपको फालतू बाते करना पसद नही थी। आपके पास कोई भी आकर बैठता तो उसे कुछ न कुछ ज्ञान की बात सुनाते रहते थे। कइयो को आपने थोकडे सिखाये। आप व्याख्यान नही देते थे। फिर भी आपने जैनेतरो को भी जैन धर्म के दृढ श्रद्धानी बनाये। आपका उठते-बैठते थोकडो का चिन्तन चलता रहता था दोपहर मे पेन्सिल से पन्नो पर कुछ न कुछ लिखा ही करते थे। आपको कई भजन, पद, दोहे, लोकोक्तियाँ आदि भी याद थे। उनके माध्यम से भी आत्मचिन्तन और धर्मोपदेश चलता रहता था।

आप अपने हाल मे मस्त रहने वाले सत थे। पर कभी-कभी आसपास भी दृष्टि डाल लिया करते थे। एक बार आपने मेरी (लेखक की) भी परीक्षा ले डाली। जब मैं दीक्षा लेने की भावना से इन्दौर मे रहकर अध्ययन कर रहा था, तब आपने मुझसे कहा था-'तुम्हारी दीक्षा लेने की भावना पक्की है-यह कैसे माने? यदि पक्की भावना हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करलो।' मै उस समय असमंजस मे पड गया। परन्तु मुझे महाराज श्री की स्वाभाविक सरलता के कारण उनसे कुछ सकोच नही रहा था। अत मे चट से कह बैठा- 'दीक्षा लेने की मेरी भावना है-यह सही है। परन्तु मै आपके कहने मात्र से व्रत ग्रहण नही करूंगा। भविष्य मे क्या हो, कौन कह सकता है?' महाराज श्री मुस्कराये और बोले-'मैं भी तो तुम्हारी पक्की भावना की बात कह रहा हू।' इसके बाद आप मौन हो गये। आपकी ओर से न उपालम्भ था, न तिरस्कार। मुझ पर इस बात का विशेष प्रभाव हुआ। वह प्रश्न बार-बार मेरे चित्त मे चक्कर काटने लगा। जब कुछ समय बाद मैं खाचरौद गया, तब तक चिन्तन से मेरी मनोभूमि ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करने योग्य हो गई थी, तब मैंने वहाँ बहुश्रुत प पूज्य श्री समरथमलजी म के पास आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत और सुखसमाधि रहते हुए पाक्षिक उपवास का नियम ग्रहण किया। यह था महाराज श्री की स्वाभाविक प्रेरणा का फल।

आप किसी को प्राय उपालम्भ नही देते थे। पर ममय समय पर मार्गदर्शन से भी नही चूकते थे। गुरुदेव-रचित रामायण का मुद्रण चल रहा था। गुरुदेव उसके प्रुफ सशोधन का कार्य करते थे। कुछ कारणो से प्रेरित होकर गुरुदेव ने प्रेरणा देकर थाँदला मे 'पूज्य नन्द जैन साहित्य समिति' की स्थापना करवाई थी और उसी की ओर से 'जैनरामायण' का प्रकाशन हो रहा था। परन्तु बडे महाराज (वच्छराजजी महाराज) को यह सब अच्छा नही लगता था। एक दिन उन्होने गुरुदेव से शान्त स्वर मे कहा-'सूरज! मैंने तुम्हे यह सब प्रपञ्च करने के लिए दीक्षा नही दिलाई है। समिति फमिति से तुम्हे क्या करना है? इनसे आत्मा का कोई उद्धार नही है।'

अन्तिम समय मे आप वृद्धावस्था के कारण लगभग तीन वर्ष तक इन्दौर मे विराजमान रहे। देहावासन के कुछ समय पूर्व से आप यही रटन करने लगे-'हे भगवान! मुझे जल्दी-जल्दी मोक्ष जाना है।' आपकी आँख मे काँच विंदु हो गया था। उसका ऑपरेशन भी सफलता पूर्वक हो गया था। पर कुछ समय वाद स २००७, माघ शुक्ला ११ को ७। वजे आपका देहान्त हो गया। आपके डोली अग्नि-सस्कार सम्बन्धी व्यय का भार उदारमना सेठ इन्दरमलजी पोरवाड ने स्वेच्छा से सहर्ष उठाया था। जनता आज भी आपको भद्रिक सन्त के रूप मे याद करती है।

(१५) घोर तपस्वी श्री भगवान्दासजी महाराज

अहमद नगर के समीप चाँदा ग्राम के निवासी श्री नन्दरामजी ओसवाल और श्रीमती काशीवाई के चार पुत्र थे। छोटे पुत्र का नाम था-भगवान्दासजी। एक दिन मुनि श्री रूपचन्दजी महाराज (पजावी) के प्रवचन मे भगवान्दासजी ने ब्रह्मचर्य का माहात्म्य श्रवण किया। उसी समय आपने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का निर्णय कर लिया। फिर आप पू श्री चम्पालालजी महाराज के सुशिष्य प श्री रामचन्द्रजी म के सम्पर्क मे आये। आपने वैराग्य भावना से प्रेरित होकर, उनके पास स १९६१, मार्ग शीर्ष कृ २, बुधवार को प्रव्रज्या अगीकार कर ली।

श्री भगवानदासजी महाराज ने ऋषि सम्प्रदाय के घोर तपस्वी श्री वेलजीऋषि महाराज के उग्रतप की प्रशसा सुनी। आप उनके जीवन से वडे प्रभावित हुए। आप भी लगभग साडे दस वर्ष तक केवल छाछ के आधार से ही रहे। आपका स १९९२ तक की तपस्या का विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है—

स १९७०, साकूड (दक्षिण) मे १७ दिन का तप। स १९७१, हातोद (मालवा), २१ दिन। स १९७२, चैत्र विदी ९ से साढे दस वर्ष तक तक्राहार (वीच मे उपवास भी चलते रहे)। स १९७८, रतलाम मे (मालवा) २३ दिन। स. १९८२, नायडोगरी (दक्षिण) २७ दिन। स १९८३ धूलिया (खानदेश) ३२ उपवास, मनमाड मे २१ उपवास और नासिक मे १७ उपवास। स १९८४, चादा (दक्षिण) मे ३७ उपवास, मीरि मे २४ उपवास, चार मास तक भद्रातप और छह मास तक वेले-वेले पारणा स १९८५ मे वम्बई मे ४५ उपवास, पूनामे १४ उपवास और चार मास तक तेले-तेले पारणा। स १९८६, रतलाम मे ६३ उपवास, विहार करते हुए कुशलगढ मे ३२ उपवास, १६ उपवास, १२ उपवास। स १९८७ थाँदला मे ६२ उपवास, विहार मे २६ उपवास और १५ उपवास। स १९८८ लीमडी मे ६७ उपवास, विहार करते हुए २८ उपवास, ३१ उपवास और २२ उपवास। स १९८९, उज्जैन मे ५५ उपवास, विहार करते हुए १७ उपवास और छह महिने तक छाछ पर रहे। स १९९०, अजमेर मे ६१ उपवास, विहार करते हुए २७ दिन, १७ दिन २५ दिन उपवास। स १९९१, चार मास तक तेले-तेले पारणा और साथ ही १७ दिन, ११ दिन, १३ दिन और ९ दिन के उपवास, विहार मे १७ और १३ उपवास स १९९२, उज्जैन मे ५६ उपवास।

इसके वाद आपके तपश्चरण की नोध प्राप्त नही हुई। आप तपश्चरण मे प्राय शास्त्र-स्वाध्याय मे तल्लीन रहते थे। आपको कोई अपने कर्त्तव्य के प्रति शिथिल दिखाई देता तो सहन नही होता था। आप उसे कभी कठोरता से तो कभी कोमलता से कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते थे।

स १९९९ मे प्रवर्त्तक पूज्यपाद श्री ताराचन्दजी म के सग चातुर्मास किया। उसी चातुर्मास मे आपका देहान्त हो गया।

घोर तपस्वी—

स्व. श्री भगवानदासजी महाराज

दीक्षा संवत् १९६९ स्व संवत् १९९९ जाचरौद

पृष्ठ १८९

शतावधानी—

पं. श्री केवलमुनिजी महाराज

दीक्षा संवत् १९८५ स्व संवत् २०११

पृष्ठ १५२
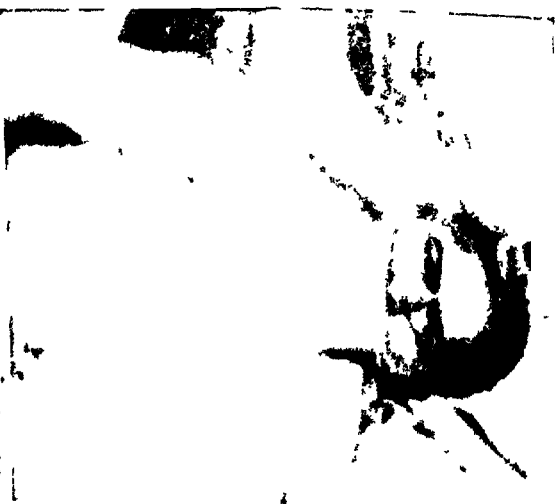
(१६) आदर्श त्यागी श्री रतनलालजी महाराज

श्री रतनलालजी भटेवरा उज्जैन-निवासी सद्गृहस्थ थे। आपकी पत्नी का नाम रतनबाई था। दम्पति बडे धमप्रेमी थे। रतनलालजी सम्पन्न गृहस्थ थे। सन्तो के सेवाभावी उपासक थे। आप आचार्य प्रवर पूज्य श्री नन्दलालजी म के श्रावक थे। प्रौढवय मे रतनवाई का देहान्त हो गया। रतनलालजी के हृदय मे पहले से ही वैराग्य का अकुर जम गया था। पत्नी के वियोग से वह पल्लवित हो गया। एक दिन उनकी दुकान मे आग लग गई। लोग उसमे से सार-सार पदार्थ और वही-खाते के चोपडे निकालने लगे। उन्होने वहियाँ नही निकलने दी और कहा- 'जव मोह के निमित्त स्वय ही नष्ट हो रहे है, तो उन्हे क्यो वचाऊँ। मुझे किसी से कुछ नही लेना है।' उन्होने वहियाँ जल जाने दी। इस निमित्त से पल्लवित वैराग्य मे गृहसम्पति के त्याग-दान रूप पुष्प आ गये। घर मे जो पूञ्जी थी, उसे वॉटकर और घर का परित्याग करके, आपने श्री इन्दरमलजी म (पूज्य श्री ज्ञानचदजी म की परम्परा के प्रसिद्ध सन्त) के पास स १९८० के लगभग प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रशस्त भावो से सयम की आराधना की। सुगुरु की चरणोपासना मे जीवन को कृतार्थ किया और रत्नत्रय की आराधना पूर्वक स २००२ के लगभग आपने अपने नश्वर देह को त्याग दिया।

(१७) श्री केशरीमलजी महाराज

श्री केशरीमलजी म प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य थे। आपने वडी उम्र मे स १९८४ मे मु वई मे दीक्षा ली। दीक्षा के पूर्व आपका जीवन वडा अस्त-व्यस्त रहा। भग, तमाखू आदि के व्यसन भी थे। परन्तु वैराग्य आते ही समस्त व्यसनो को त्याग दिया। दीक्षा के वाद आपने कुछ वर्षो तक वेले-वेले की तपश्चर्या की। पूज्य श्री प्रवर्तक ताराचदजी म. आदि के सग आपने सुदूर दक्षिण प्रदेश मे भी विचरण किया। आपने थोकडो के माध्यम से सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त किया था। आप अन्यजनो को भी वडे प्रेम से अपनेको याद ज्ञान सिखाते थे। आपकी वहिन केसरवाई और भानजी गुलाबवाई ने भी दीक्षा ली।

प्रवर्तिनी श्री गुलाबकुँवरजी म आपकी भानजी हैं। स २०१० मे आपका रतलाम मे स्थिर-वास रहते हुए देहान्त हुआ।

आप श्री गृहस्थ-अवस्था मे भी बडे विचक्षण थे। प्रिय वक्ता श्री विनयचदजी म ने अपनी पुस्तक 'मैंने क्या देखा' मे आपके विषय मे एक घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है—

'केशरीमलजी की माँ और उनकी पत्नी मे बात-बात में कलह हो जाया करती थी। केशरीमलजी ने कुछ उपाय सोचा, कि—जिससे पत्नी माँ की सेवा मे लग जाय। एक दिन मौका देखकर केशरीमलजी ने अपनी पत्नी से कहा—'तुम और माँ रोज लडती हो, यह अच्छा नही है। इससे तो अलग हो जाना अच्छा है।' पत्नी प्रसन्न होकर बोली—'मैं तो कभी से यही कह रही हूँ।' कुछ चिन्तामग्न-से केशरीमलजी बोले—'सोच तो मैं भी कभी से यही रहा हूँ। पर एक कारण से सब्र कर रहा हूँ।' फिर इधर-उधर देखकर बोले—'देख, कोई सुन तो नही रहा है। मेरी माँ के पास एक सोने का डला है। यदि हम अलग हो जाएँगे तो वह हमे नही मिलेगा।' पत्नी बोली—'आप सच कह रहे है क्या ? आपने कभी देखा भी है, माँ के पास सोने का डला ?'

केशरीमलजी बोले—'तुझे विश्वास नही होता है ? मैंने वह डला कई बार देखा है।' यह बात सुनकर पत्नी बोली—'तो फिर अलग होने की ऐसी जल्दी क्या है ? इतने वर्ष सुख-दुःख मे इनके पास रही हूँ तो कुछ समय और सही। सासुजी अब अधिक समय के महमान नही है।'

अब माताजी की बराबर सेवा होने लगी। घर मे सुख-शांति रहने लगी। नौ महिने बाद माँजी चल बसे। सब लोग आकर चले गये। एक दिन पत्नी ने केशरीमलजी से पूछा—'वह सोने का डला कहाँ है ? मुझे भी तो बता दो।' केशरीमलजी ने कहा—'तू अभी समझी नही। वह सोने का डला तो मैं ही हूँ। मैं न होता तो तेरी क्या हालत होती ? मेरी माता के पास तो मैंने कभी पाँच रुपये भी नही देखे थे।'

इस युक्ति से उन्होंने गृह-कलह मिटाई।

—मैंने क्या देखा, पृष्ठ २८

(१८) शतावधानी पं. श्री केवलमुनिजी महाराज

आप जमनापार के ग्राम कुराना के निवासी थे। आप अग्रवाल जाति के रत्न थे। आप के माता-पिता का देहान्त बचपन मे ही हो गया था। अतः आप अपने काका नन्दूजी के पास रहते थे। नन्दूजी उनको प्यार से रखते थे। परन्तु नन्दूकाका गुस्से के तेज थे। जरा-जरा से अपराध पर बालक केवल की खूब पिटाई कर देते थे। पिटाई भी होती तो अच्छी तरह से बाँधकर। बालक रोते-रोते सोचता—'मेरे बाप भी नही है। मेरी माँ भी नही है। कौन छुडाए मुझे इस मार से ? यह काका है या कसाई ? मैंने सुना है, कि- भगवान है। वे बडे दयालु हैं। पर वे भी तो छुडाने नही आते !' बच्चे तो थे ही। मार से घबडा गये। मुक्ति का उपाय सोचने लगे। आखिर वे घर से भाग खडे हुए। इधर नन्दूकाका को भतीजा 'केवलचद' नही दिखाई दिया। वह आकुल-व्याकुल हो गया। अपने भतीजे को ढूँढने निकला और उसे ढूँढ ही लिया। बहुत देर तक केवल को प्रेमभरी दृष्टि से देखता रहा। केवल समझा, कि—अब मेरे दु ख के दिन विदा हुए। वह काका के सग आ गये। परन्तु कुछ दिन बाद काका की वही पुरानी रफ्तार चालु हो गई। केवल को अब काका का सदा के लिए सग छुटे तो अपनी पीडा से मुक्ति दिखाई दी। उसने सुन रखा था, कि—रेल बहुत दूर तक जाती है। उसमे यदि मैं बैठ जाऊँ, तो काका मुझे नही ढूँढ सकेगा। बस वह किसी प्रकार घर से भागा और रेल मे सवार हो गया। रेल दिल्ली की ओर जा रही थी। बालक को तो बस नन्दूकाका की पकड से बाहर होने की धुन थी। वह अपनी युक्ति मे सफल हो गया, इसकी उसे बडी खुशी थी। आगे कहाँ जाना है ? किसके यहाँ जाना है ? क्या खाऊँगा ? कहाँ रहूँगा ? इसका कुछ विचार ही नही था। आखिर बालक केवल दिल्ली पहुँच गया। भूख लग रही थी, पर क्या खाये ? कहाँ जाए ? वह दिल्ली की सडको पर डोल रहा था। दिल्ली मे एक लाला रहते थे—कबूलमल। उन्हे बालक केवल दिखाई दिया। लाला ने देखते ही भाँप लिया, कि—यह कोई देहाती बालक है और यहाँ भटक गया है। उसने बालक से बातचीत की। उसे खाना खिलाया और अपने साथ मे ले लिया। बालक को लगा, कि—मुझे अब अच्छा आश्रय मिल गया है।

प्रवर्तिनी श्री गुलाबकुँवरजी म आपकी भानजी हैं। स २०१० मे आपका रतलाम मे स्थिर-वास रहते हुए देहान्त हुआ।

आप श्री गृहस्थ-अवस्था मे भी बडे विचक्षण थे। प्रिय वक्ता श्री विनयचदजी म ने अपनी पुस्तक 'मैंने क्या देखा' मे आपके विषय मे एक घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है—

'केशरीमलजी की माँ और उनकी पत्नी मे बात-बात में कलह हो जाया करती थी। केशरीमलजी ने कुछ उपाय सोचा, कि—जिससे पत्नी माँ की सेवा मे लग जाय। एक दिन मौका देखकर केशरीमलजी ने अपनी पत्नी से कहा—'तुम और माँ रोज लडती हो, यह अच्छा नही है। इससे तो अलग हो जाना अच्छा है।' पत्नी प्रसन्न होकर बोली—'मैं तो कभी से यही कह रही हूँ।' कुछ चिन्तामग्न-से केशरीमलजी बोले—'सोच तो मैं भी कभी से यही रहा हूँ। पर एक कारण से सब्र कर रहा हूँ।' फिर इधर-उधर देखकर बोले—'देख, कोई सुन तो नही रहा है। मेरी माँ के पास एक सोने का डला है। यदि हम अलग हो जाएँगे तो वह हमे नही मिलेगा।' पत्नी बोली—'आप सच कह रहे है क्या? आपने कभी देखा भी है, माँ के पास सोने का डला?'

केशरीमलजी बोले—'तुझे विश्वास नही होता है? मैंने वह डला कई बार देखा है।' यह बात सुनकर पत्नी बोली—'तो फिर अलग होने की ऐसी जल्दी क्या है? इतने वर्ष सुख-दु.ख मे इनके पास रही हूँ तो कुछ समय और सही। सासुजी अब अधिक समय के मेहमान नही हैं।'

अब माताजी की बराबर सेवा होने लगी। घर मे सुख-शाँति रहने लगी। नौ महिने बाद माँजी चल बसे। सब लोग आकर चले गये। एक दिन पत्नी ने केशरीमलजी से पूछा—'वह सोने का डला कहाँ है? मुझे भी तो बता दो।' केशरीमलजी ने कहा—'तू अभी समझी नही। वह सोने का डला तो मैं ही हूँ। मैं न होता तो तेरी क्या हालत होती? मेरी माता के पास तो मैंने कभी पाँच रुपये भी नही देखे थे।'

इस युक्ति से उन्होंने गृह-कलह मिटाई।

—मैंने क्या देखा, पृष्ठ २८

भ्रमण के लिए अकेले ही पधारे थे। वहाँ ट्रेन-दुर्घटना से आपका देहान्त होगया। स १९८० से ट्रेन से प्रारम्भ हुई एक बालक की साधक-जीवनलीला स २०११ मे ट्रेन से ही समाप्त हो गई।

सम्प्रदाय के साधुओ की सारणा-वारणा और वैयावृत्य करने वाला एक यशस्वी साधक-रत्न इस धरा-धाम से अल्प आयु मे ही उठ गया।

(१९) तपस्वी श्री चन्दजी महाराज

श्री रूपचन्दजी म बदनावर के समीप के ग्राम मुलथान के निवासी वोरा गोत्रीय ओसवाल थे। आपको वृद्धावस्था मे दीक्षा लेने की इच्छा हुई। लोग उनकी इस वात पर राजी नही थे। परन्तु प्रवर्तक पूज्य श्री ताराचन्दजी म ने उन्हे दीक्षा देने की आज्ञा फरमा दी। लोग दवे स्वर मे विरोध व्यक्त करते हुए कहते थे—'महाराज! इन बुड्ढे को दीक्षा देकर क्या करोगे?' कोई कह देता—'महाराज को चेले का लोभ लगा है सो ऐसे बुड्ढे को भी मूँडते है।' कोई-कोई रूपचन्दजी को भी कह देता था—'क्या महाराज से सेवा करवानी है, जो बूढापे मे दीक्षा ले रहे हो!' परन्तु उन्होंने तो दृढ निश्चय कर लिया था, कि—'लोग चाहे जो कहे, पर मुझे दीक्षा अवश्यमेव लेना है।' उन्होने स १९८७ मे, पूज्य श्री ताराचन्दजी म आदि सन्तो के थाँदला के वर्षावास मे तपस्वी श्री भगवानदासजी म के तपश्चरण के पूर के दिन दीक्षा ग्रहण कर ली। आप प्र व्र श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य वने। आपने दीक्षा लेते ही यह नियम लिया, कि—सुख-समाधि रहते हुए मै जीवन भर वेले-वेले की तपस्या करूँगा। आप अपनी प्रतिज्ञा का जीवन भर तक निर्वाह करते रहे।

वृद्धावस्था होते हुए भी आप वरावर विहार करते थे। सुदूर दक्षिण प्रदेश तक विहार किया। सन्तो की सेवा करने मे पीछे नही रहते थे। आपको देखकर दशवैकालिक सूत्र की निम्नलिखित गाथा स्मरण हो आती—

पच्छा विते पयाया, खिप्प गच्छन्ति अमर–भवणाइ।
जेसि पिओ तवो सजमो य खती य वभचेर च॥

—जिन्हे तप-सयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है, वे पिछली अवस्था मे दीक्षित होने पर भी जल्दी अमर-भवनो को प्राप्त होते हैं।

आपने स १९९९ मे वदनवार चातुर्मास किया। चातुर्मास के वाद वखतगढ की ओर विहार किया। परन्तु स्वास्थ्य ठीक नही होने से वीच रास्ते से ही वापिस वदनावर लौट आये और कुछ समय वाद, लगभग वारह वर्ष और कुछ अधिक काल तक दीक्षा पर्याय पालकर देह का त्याग किया।

प्रभु वीतराग देव के मार्ग मे जो भी उत्साहपूर्वक उनके पथ पर चलता है, उसी का महत्त्व है।

(२०) श्री मोहनमुनिजी महाराज

आप कविवर्य प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी म के शिष्य थे। आप सौराष्ट्र मे जामनगर के निवासी थे। आपने शिक्षा प्राप्त करने के वाद अफ्रिका मे सेवा कार्य किया। फिर वहाँ से आकर, जामनगर जिले की विद्यालयो मे चार वर्ष तक अंग्रेजी के शिक्षक के रूप मे कार्य किया। वाद मे आप वम्वई आ गये। वहाँ भी व्यवहारिक और धार्मिक शिक्षण के कार्य मे यश प्राप्त किया। स १९८५ मे महाराज श्री का चातुर्मास वम्वई मे था।वही आप महाराज श्री के सम्पर्क मे आये।इस सत्सग से आपके हृदय मे वैराग्य जागृत हुआ। उस समय आपकीपत्नी का वियोग हो गया था। सन्तान मे एकाकी पुत्री अचरजवेन थी, जिसके लग्न हो चुके थे। इसलिए आपने विचार किया, कि—मेरे पीछेअव झझट जैसी कोई वात नही है। ससार का अनुभव ले ही चुका हू। अव मुझे आत्म-साधना के मार्ग पर अपने चरण वढाने चाहिए। अत. आपने स १९८६ ज्येष्ठ वि ८ को नीसलपुर मे दीक्षा ग्रहण की।

आपमे व्याख्याता आदि वनने की महत्त्वाकाक्षा नही थी। आपका आध्यात्मिक ज्ञान अच्छा था। परन्तु कभी–कभी सामान्य चर्चा मे

ही उस ज्ञान का चमत्कार दिखाई देता था। क्योंकि आपमे आत्म-प्रदर्शन की वृत्ति नही थी। आप अधिकतर रुग्ण ही रहे। अत कुछ वर्षो तक आप रतलाम मे स्थिरवास विराजमान रहे। स २०१८ मे आपका देहान्त हो गया।

(२१) प. श्री नगीनमुनिजी महाराज

झुम्बरलालजी चोरडिया उज्जैन या उज्जैन के समीप के ग्राम मे रहते थे। आपके तीन पुत्री और दो पुत्र थे। बडी पुत्री का नाम सुन्दरबाई और पुत्रो का नाम नगीनलाल और बाबूलाल था। आपकी पत्नी मैनाबाई का देहान्त हो गया। सुन्दरबाई ने ही अपने दोनो भाइयो को माँ का दुलार और वात्सल्य दिया। झुम्बरलालजी का भी देहान्त हो गया। कुछ दिन बाद सुन्दरबाई ने वैराग्य से प्रेरित होकर प्रवर्तिनी श्री टीबूजी म की शिष्या गुलाबकुँवरजी म के पास दीक्षा ले ली। अब दोनो भाई उज्जैन मे अपने काका के यहाँ रहने लगे। नगीनलालजी भी अपनी बहिन के पदचिह्नो का अनुसरण करना चाहते थे। उनकी दीक्षित होने की तीव्र इच्छा हो रही थी। आपने किसी तरह से कुटुम्ब के अग्रणी से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करके, स १९८८, वैशाख विदि १ सोमवार को करीकम्बा (नीमाड) मे दीक्षा अंगीकार की। आप प्र व श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य हुए।

आपने दीक्षा के बाद काफी अध्ययन किया। आपने प्राकृत भाषा मे अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली थी। आप अन्य जनो को प्राकृत भाषा सीखने की प्रेरणा दिया करते थे और केवल प्रेरणा देकर ही नही रह जाते थे, पर सिखाने के लिए स्वय भी तत्पर रहते थे। जो आप से प्राकृत भाषा सीखना चाहता, उसे आप बडे प्रेम से अध्ययन करवाते थे।

चित्र केवल परिचयार्थ

शास्त्रज्ञ स्व. पं. श्री नगीनचन्द्रजी म.

जन्म
उज्जैन

दीक्षा म १९८८
करोफस्वा (निमाड)

स्व म २०१९
इन्दौर
पृष्ठ १०८

मधुर व्याख्यानी—

स्व श्री माणकमुनिजी महाराज
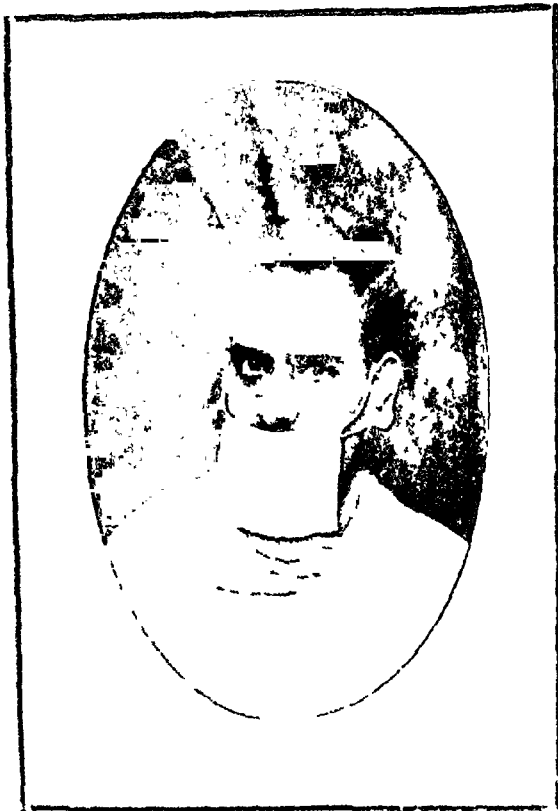
और चित्त को प्रसन्न कर देने वाले उत्तर देते थे। दुर्बल शरीर होते हुए भी आपने वहुत लम्बे-लम्बे विहार किये। कुछ समय तक आप पर हृदय रोग का प्रकोप रहा और इसी रोग से, मन्त्री श्री किशनलालजी म का देहान्त होने के कुछ समय बाद, आपका देहान्त हो गया। स २०१७ मे लगभग ३० वर्ष तक दीक्षा-पर्याय पालकर आप कालधर्म को प्राप्त हुए।

आप मिलनसार प्रकृति के सन्त थे। किसी भी सन्त के साथ आप निभ जाते थे या किसी भी सन्त को प्राय. आप निभा लेते थे। आप कहा करते थे—'महान् दुर्गुणी मनुष्य मे भी कोई न कोई गुण अवश्य होता है। कोई खोजने वाला चाहिए।' आपकी दीक्षा के कुछ समय बाद आपके छोटे भाई बाबूलालजी भी दीक्षित हो गये। वे प्रिय वक्ता विनयचन्दजी म के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(२२) श्री माणकमुनिजी महाराज

आपका जन्म पेटलावद मे हुआ था। स १९८७ मे जब पूज्य श्री ताराचन्दजी म आदि सन्तो का चातुर्मास थाँदला मे था, तब आप गुरुदेव श्री सूर्यमुनिजी म के पास लघुवय मे ही वैरागी रूप मे आ गये थे। स १९८८, वैशाख विदि १ सोमवार को कराही (करी कस्ब) मे आपकी दीक्षा हुई। आप कविवर्य श्री सूर्यमुनिजी म के शिष्य थे। आपका अधिकाश शिक्षण दीक्षा के वाद ही हुआ।

आप प्रतिभाशाली सन्त थे। आपने अल्प आयु मे ही अच्छा अध्ययन कर लिया था। थोडे ही समय मे आपने वक्तृत्त्व कला मे भी दक्षता प्राप्त कर ली थी। आपके प्रवचन मनोमुग्धकारी होते थे। जनता पर आपके प्रवचनो का अच्छा प्रभाव पडता था।

आपने गुरुदेव के सग-सग सुदूर दक्षिण प्रदेश मे भी विहार किया। आपका लातूर का चातुर्मास बहुत ही यशस्वी रहा। स १९९८ मे गुरुदेव का चातुर्मास इन्दौर मे था। इन्दौर की जनता भी आपके प्रवचनो से प्रभावित थी। इसके वाद आपने स १९९९ मे अपनी जन्म-भूमि पेटलावद मे चातुर्मास किया। इस चातुर्मास मे वहाँ की जनता आपसे काफी प्रभावित रही।

स २००० का चातुर्मास लीमडी का स्वीकृत हुआ। आपने रतलाम से लीमडी की ओर गुरुदेव के सग विहार किया। परन्तु रतलाम से लगभग चार मील दूर करेणी ग्राम मे आप अस्वस्थ हो गए। अत. वह चातुर्मास रतलाम मे ही हुआ। सवत् २००२ मे लीमडी (पञ्चमहाल) मे चातुर्मास हुआ। वहाँ श्रावण सुदी पूर्णिमा को आप पक्षाघात (लकवा) मे पीडित हो गये। रग मे भग हो गया। विकासशालिनी प्रतिभा अवरुद्ध हो गई। लीमडीसघ ने खूब सेवा की। फिर आपको थान्दला लाया गया। दो चातुर्मास वहाँ हुए। वहाँ से ज्यो-त्यो करके इन्दौर पधारे। वहाँ लगातार पाँच चातुर्मास हुए। स २०१० मे पुन थान्दला पधारे। उस वर्ष वही चातुर्मास हुआ। स २०११, आषाढ विदि ४ दोपहर मे आपकी अस्वस्थता वढ गई। आपने दोपहर के वाद गुरुदेव को अपने समीप बुलाकर सविनय कहा—'मुझे खाली हाथ मत भेजना। सथारा करवा देना।' परन्तु ऐसा नही लगता था, कि—आप आज ही देह त्याग देगे। पर क्रूर काल ने उसी दिन साँझ को आपका जीवन-दीप बुझा दिया।

दु खी जनो को देखकर आपका हृदय दयार्द्र हो उठता था। आप दु खियो को अपने आत्मीय के समान आश्वासन देते थे। आप वैयावृत्य करने मे भी प्रसन्नता का अनुभव करते थे। किसी के उत्तम कार्य मे सहयोग देने की आपकी वृत्ति रहती थी। किसी का कार्य करते हुए, उसे आत्म-निर्भर वनाने का भी आपको ध्यान रहता था। इस विषय मे श्री मथुरामुनिजी म ने एक ससमरण इस प्रकार सुनाया था। श्री मथुरा मुनि म को केशलुञ्चन करना था। वे इस चिन्ता मे थे, कि—मेरा केशलुञ्चन कौन करेगा? उन्होने श्री माणकमुनिजी म से इस विषय मे वात कही। तव श्री माणकमुनिजी म आपका केशलुञ्चन करने के लिए तैयार हो गये। उन्होने श्री मथुरामुनिजी म का आधे सिर का केशलुञ्चन कर दिया और फिर बोले—'बस अब मैं केशलुञ्चन नही करूँगा।' श्री मथुरामुनिजी बोले—'महाराज! यह क्या करते हो? आपको यदि पूरा लोच नही करना था तो पहले ही कहना था, तो मैं आपसे लोच करवाता ही नही। अब आधे सिर पर इन बालो को लेकर कहाँ फिरता फिरूँगा?' श्री माणकमुनिजी म हँसकर बोले—'यदि आप माथे पर आधे बालो

को लेकर फिर सकते हो तो फिरिये। नही तो कुछ साहस कीजिए।' यह कहकर वे वहाँ से चले गये।

अव श्री मथुरामुनिजी म वडे विचार मे पड गये। उनके कानो मे ये शब्द गूँजने लगे—'साहस कीजिए।' उन्होने अपने हाथो से लोच करना प्रारम्भ किया और लोच पूरा कर लिया। फिर श्री माणकमुनिजी म के पास आकर वोले—'लो, आपने लोच नही किया तो मैंने अपने हाथ से ही कर लिया।' वे हँसकर बोले—'इसीलिए तो मैंने तुम्हारा लोच अधबीच मे ही छोड दिया था। अव आप पराश्रित नही रहे। आप स्वय ही अपना केशलुञ्चन कर सकते है। यदि मैं बीच मे ही लोच नही रोकता तो क्या आप अपने हाथो से लोच करते?' श्री मथुरामुनिजी म बोले—'वाह! महाराज! आपने खूव उपकार किया।'

आपने व्याधि को वडी शान्ति से सहन किया और ऐसी व्याधि की स्थिति मे भी विहार किया। आप वडे साहसी थे। विकट स्थिति मे भी हिम्मत नही हारते थे।

× × × +

पूज्य श्री धर्मदासजी म की चारो मालवीय परम्पराओ मे अनेको ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी एव प्रभावशाली सन्त हुए है। परन्तु एक रतलाम-शाखा के सन्तो का भी पूरा परिचय प्राप्त नही हो सका। उपर्युक्त सन्तो के सिवाय कई ऐसे सन्त हुए होगे, जिनका तत्कालीन जनता पर महद् उपकार रहा होगा। पर परिचय का अभाव है।

(२)

साध्वी-समुदाय

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के समय का साध्वीवर्ग

पूज्य श्री धर्मदासजी म का अनुयायी साध्वीवर्ग भी विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न, चारित्र-समृद्ध और तपोनिष्ठ रहा है। पूज्य श्री का अनुयायी

साध्वीवर्ग कब अस्तित्व मे आया, इस विषय मे पुष्ट प्रमाण प्राप्त नही हुए है। किन्तु इतने महान् क्रियोद्धारक का साधु-परिवार तथा श्रावक और श्राविकाओ का परिवार विशाल था, तो उनका अनुयायी साध्वी समुदाय न रहा होगा, ऐसा विश्वास नही हो सकता है। जिन्होने इतने बडे पुरुष-समूह को प्रभावित करके, उन्हे दीक्षा प्रदान की, उनसे स्त्रीवर्ग प्रभावित होकर के उनके द्वारा दीक्षित न हुआ होगा— यह कैसे माना जा सकता है ? स्त्रियाँ सदा ही धर्ममार्ग मे पुरुषो से भी अधिक सख्या मे आगे बढने के लिए तत्पर रही है। अत आपने स्त्रियो को भी दीक्षा प्रदान की होगी। परन्तु पट्टावलियो मे इस बात का पूर्ण विवरण प्राप्त नही होता है। 'मालवा-पट्टावली' मे इतना उल्लेख मिलता है, कि—पूज्य श्री धर्म-दासजी महाराज ने लाडुजी, डायाजी आदि पाँच स्त्रियो को स १७१८ मे दीक्षा दी थी।

उपर्युक्त उल्लेख के सिवाय अन्य कुछ भी विवरण प्राप्त नही है। उपर्युक्त स्त्रियो को गुजरात मे ही दीक्षा दी या अन्य प्रान्त मे ? भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे साध्वीवर्ग भिन्न-भिन्न रूप से ही रहा या एक ही प्रवर्तिनी की नेश्राय मे रहा ? पूज्य श्री के विद्यमानकाल मे साध्वियो का कितना परिवार था ? आदि प्रश्नो के समाधान के लिए, एतद् विषयक सामग्री उपलब्ध नही है।

मालवा की साध्वी-परम्पराएँ

पूज्य श्री के शिष्य-परिवार विभिन्न प्रदेशो मे विचरने लगे। उनसे प्रतिबुद्ध पुरुषवर्ग उनका शिष्य बनता था और स्त्रियाँ उनकी अनुयायिनी साध्वियाँ बनती थी। इसलिए पूज्य श्री के विभिन्न परिवारो की साध्वियाँ विभिन्न काल मे अस्तित्व मे आई। साध्वियो के सगठन का कोई खास प्रयत्न नही हुआ। उनकी परम्पराओ का इतिहास न साध्वियो ने ही सुरक्षित रखा और न साधुओ की ओर से ऐसा कोई प्रयत्न हुआ। वस्तुत जो आगमिक परम्परा की ऐतिहासिक दृष्टि थी, वह भी क्रियोद्धार के उत्साह मे समाप्त हो गई थी और आज के युग जैसी ऐतिहासिक दृष्टि भी नही थी।

मालव-प्रदेश पर पूज्य श्री धर्मदासजी म की विशेष कृपा रही। अत इस प्रदेश मे आपके सन्तो के अधिक समुदायो का विचरण रहा। पूज्य श्री रामचद्रजी म के परिवार की विशेष प्रधानता रही। परन्तु जिस परिवार मे चारित्रवृद्ध और विशेष प्रभाववाले सन्त होते, उतने काल के लिए उस परिवार का महत्त्व हो जाता। अत किसी एक ही परिवार की अनुयायिनी साध्वियाँ यहाँ नही रही। सभी परिवारो को साध्वियाँ मान देती रही। दूसरी बात, उज्जैन, रतलाम और सीतमहू इन परम्पराओ का सगठन समय-समय पर होता रहा। अत इन तीनो परिवारो को मान देना वास्तविक था। परन्तु प्रतापगढ-शाखा के सन्तो के साथ सगठन का उल्लेख प्राप्त नही होता है। * अत उन सन्तो का अनुयायी साध्वीवर्ग भी अलग रहा था। इसके प्रमाणस्वरूप कोटा सम्प्रदाय के पूज्य श्री छगनलालजी म के द्वारा लिखित पन्ना उपस्थित किया जा सकता है। उन्होने लिखा है—

'परतापगढ लहूडा छोटा पृथ्वीराजजी की सप्रदाय का म्हासतीया श्री श्री कुनणाजी, श्री रतनाजी, श्री गुमानजी, श्री सिणगाराजी, ततशिषणी श्री सिरे कुँवरजी तपस्या ईण रित करि—' (स १९६०)।

यद्यपि सम्प्रति इस परिवार की साध्वियाँ मालवा मे कोई नही है। फिर भी स १९६० तक इस परिवार की साध्वियो का पता चलता है।

तीनो (उज्जैन शाखा आदि) शाखाओ मे से भी दो शाखाओ (उज्जैन और रतलाम शाखा) को मान्य करने वाली साध्वियो की भी विभिन्न परम्पराएँ थी। उन परम्पराओ मे भी कुछ परम्पराओ मे

---

* प्रतापगढ शाखा के साथ बिलकुल सम्बन्ध नही था, ऐसी बात नही है। क्योकि इस परम्परा की मालवा-शाखा के अन्तिम सन्त श्री लालचन्दजी म जब अकेले रह गये, तब आचार्यदेव पूज्य श्री नदलालजी म ने उन्हे अपने सग रहने के लिए कहा था। पर किसी कारण से यह सम्भव नही हो सका था। अर्थात् यत्किञ्चित् सम्बन्ध था। पर सगठन का उल्लेख अभी तक प्राप्त नही हुआ है।

परस्पर बारहवाँ सम्भोग ऐच्छिक था। कुछ परम्पराएँ, ऐसा प्रतीत होता है, विच्छिन्न भी हो गई है।

साध्वियो की प्रमुख पाँच परम्पराएँ थी। अभी चार परम्पराओ की साध्वियाँ मालवा मे है और एक परम्परा की मारवाड मे। मारवाड की परम्परा श्री नन्दकुँवरजी म की सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है। श्री नन्दकुँवरजी म बीकानेर की थी। मालवा-परम्परा की कुछ साध्वियाँ विचरण करते हुए, बीकानेर पहुँच गई। वे मालवा मे वापिस आई। तब इन्दौर मे उनके पास नन्दकुँवरजी म की दीक्षा हुई थी। अपनी गुरुणीजी के सग श्री नन्दकुँवरजी म भी मालवा मे रही। कुछ काल इधर विचरण किया और फिर अपनी गुरुणीजी की आज्ञा लेकर राजस्थान की ओर चली गई।* उधर उनकी कई शिष्याएँ हुई। आज उनकी परम्परा मे कई साध्वियाँ हैं और उनमे भी परम्परा-भेद है। इन साध्वियो का समूह श्री नन्दकुँवरजी म की सम्प्रदाय के नाम से प्रख्यात है। ये ज्ञानगच्छ (पूज्य श्री ज्ञानचन्द्रजी म की सम्प्रदाय) के अग्रणी बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म की आज्ञा मे विचरण करती है। इनमे कई साध्वियाँ विशिष्ट व्यक्तित्ववाली हो गई है और अभी भी कई विशिष्ट प्रभावशालिनी साध्वियाँ विद्यमान हैं।

मालवा मे विचरने वाली साध्वियो मे जो उपर्युक्त परम्परा मे अपने को सम्बद्ध मानती थी, ऐसा एक साध्वी वर्ग था। परन्तु उनकी परम्परा अब क्षीणप्राय हो गई है। इस परम्परा की एक साध्वी श्री मोहनकुँवरजी म रही हैं, सो बडे मेनकुँवरजी म की साध्वियो ने उन्हे सयम-पालन मे सहायता देकर, अपने सग रखा। फिर उनकी एक शिष्या हुई—रतनकुँवरजी म। ये दोनो बडे मेनकुँवरजी म की शिष्या

---

* एक लेखक ने एक पत्रिका मे श्री नन्दकुँवरजी म. का जीवनचरित्र लिखा था। वह किस पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था, यह मुझे बराबर याद नही है। पर उसमें बहुत सी अतिशयोक्ति पूर्ण बाते थी। पर उन बातों मे कितना तथ्य है और कितना [illegible] चरित्रनायिका का महत्त्व बढाने के लिए कहा गया है—इसका निर्णय [illegible]।

प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी म की आज्ञा मे विचरण करती हैं।

शेप चार परम्पराओ का भूतकाल का परिचय विशेष रूप मे प्राप्त नही होता है। यत्किञ्चित् प्राप्त परिचय आगे दिया जाएगा।

मध्यकाल की कुछ साध्वियां

पूज्य श्री धर्मदासजी म के द्वारा दीक्षित श्री लाडूजी, श्री डायाजी आदि पाँच आर्याओ के उल्लेख के सिवाय तत्कालीन अन्य आर्याओ के विपय मे कुछ भी ज्ञात नही है।

आर्या कर्माजी सुकड़जी

आर्या कर्माजी सुकडजी कव हुई—इस विपय मे विशेप प्रमाणिक परिचय उपलब्ध नही हुआ है। पर उन पर लिखी गई एक चिट्ठी से उनके व्यक्तित्व की झलक मिलती है। यह चिट्ठी कहाँ से किसने लिखी है, इस वात का उसमे उल्लेख नही है। उसमे चिट्ठी लिखने का दिन (मिति वैशाख विदि १) दिया गया है—सवत् नही है। पर उसमे उज्जैन शाखा के तृतीय आचार्य पूज्य श्री माणकचन्दजी म की आज्ञा का उल्लेख है और पूज्य श्री माणकचन्दजी म का आचार्यकाल स १८०३ से स १८५० के वीच पडता है। अत वह चिट्ठी भी इसी काल के वीच की होनी चाहिए। उसका अनुमानित सवत् गुरुदेव ने १८४६ लगाया है। परन्तु 'वीराजी' आर्या के विषय मे अभी-अभी एक 'सज्झाय' प्राप्त हुई है। उसमे उनके स १८२८ मे सथारा करने का उल्लेख है। ये वीराजी और इस पत्र मे उल्लिखित 'वीराजी' आर्या एक ही प्रतीत होती हैं। अत पत्र-लेखन-काल सवत् और पीछे जाता है। इसमे खुशालजी, ऊदाजी नाम के साधुओ का उल्लेख है। ये ऊदाजी श्री हरिदासजी म के परपरा के अर्थात् श्री धर्मदासजी म की दक्षिणी शाखा के आचार्य पूज्य श्री उदयचन्द्रजी म होने चाहिए और खुशालजी म उनके गुरु। श्री उदयचन्दजी म का स १८१६ तक दक्षिण मे रहने का उल्लेख प्राप्त होता है। श्री उदयचन्दजी म के शिष्य श्री मयाचन्दजी म के द्वारा स १८१७ मे खाचरोद मे 'नवतत्त्व-प्रकरण' की प्रतिलिपि की गई और श्री उदाजी म

के द्वारा स १८२० मे रतलाम मे 'लुद्धनरा' की प्रतिलिपि की गई थी। इस पत्र से ऐसा ध्वनित होता है, कि—इस मे उल्लिखित खुशालजी म तत्काल ही दक्षिण से इधर पधारे थे। अत इस पत्र का लेखनकाल स १८१७ या उसके और १८२० के बीच का ठहरता है।

उस चिट्ठी की प्रतिलिपि नीचे दी जा रही है—

(प्रथम पृष्ठ)

'सिद्धश्री इन्दौर मध्ये विराजमान आर्याजी करमाजी सुकडजी केमरजी आदि ठा ५, विराजीसामी, खुसाल रिप तुमने घणे-घणे मान सुखशाता पुछी जी और पुज मानकचन्दजी, मोतीचन्दजी, देवाजी छ ठाणे तुमने साता पुछी छे ओर तुमने पुजजी उजेण बुलाया छइ। तुमने चोमासो माजा पुरनो हुक(म) छे। पछे जिम तुमारो भाव हुवे तिम करो। ओर इन्दोर मध्ये विराजी खुसालजी ने मोकल्या छे चोमासा सारु। ते फतीया वाद मे छे। चोमासो इन्दोर नो भाव छे। तिण उपरान्त तुमारो भाव इन्दोर चोमासो करवानो होय तो तिसो मेहलज्यो। ढिल करज्यो मति। अथवा वीरा आर्या करे तो तिसो कहज्यो। समाचार जरूर मेल दिज्यो। मीति वेसाख वदि १ एकम।

(द्वितीय पृष्ठ)

ओर तुमने जेठाजी उदाजी घणे मान साता पुछी छे जी। श्रावक ओरंगाबादना जवेरसा माणकचन्द, सा बुलाखीदास हर्षचन्द कुसलचन्द आदि घणा भाया तुमने वन्दना १०८ वाचजो जी। जालणा ना भाया रूप-चन्दसा गनेसा लालचन्दसा कुसनासा रतनसा मथुरादास आदि भाया थाने घणे घणे मान वन्दना तिखुत्तोनो पाठ भणीने कहि छे ओर म्हारी विनती घणे मान किधी छे। तुमने घणा चितारे छे, विसारता नथी। पधारस्यो तो उपगार घणो थासी। थायानो घणो भाव छे। पण [illegible] रो जोग नहीं। तिण कारण तुमने घणे मान तेड्या छे। जरूर [illegible] छे। पछे तुमारी इच्छा थी

-इस पत्र मे सात साधु (पू श्री माणकचन्दजी, श्री मोतीचन्दजी, श्रीदेवाजी, श्री वीराजी, श्री खुशालऋषि, श्री जेठाजी और श्री ऊदाजी) और चार साध्वियो (श्री कर्माजी, श्री सुकडजी, श्री केसरजी और श्री-बीराजी) के नाम आये है। इस पत्र से यह पता लगता है, कि उपर्युक्त आर्याओ का प्रभाव दक्षिण प्रदेश मे भी था।

आर्या श्री वीराजी महाराज

आर्या वीराजी महाराज अपने समय की (सं. १७८५ से सं. १८२८ के बीच) एक विशिष्ट व्यक्तित्ववाली साध्वी हो गई हैं।

आपका जन्म धारा नगरी मे हुआ था। आपके पिता का नाम केलाजी चौधरी और माता का नाम राजीबाई था। आपका जन्म स. १७५४ के लगभग हुआ था और आपने स १७८६ के लगभग, उस समय की प्रसिद्ध साध्वी श्री नाथाजी म के पास परम वैराग्य से प्रव्रज्या अगीकार की थी। आपके विपय मे 'केसरबाई' नाम की किसी श्राविका ने 'स्वाध्याय' (-अनशन वर्णन की गीतिका) वनाई थी। उसका साराश नीचे दिया जा रहा है—

'पू श्री धर्मदासजी म की अनुयायिनी आर्या श्री वीराजी ने धारा नगरी मे तीन आहार के शूरता के साथ प्रत्याख्यान किये। आर्या वीराजी ने राजीवाई के उदर से जन्म लिया था और केलाजी चौधरी के कुल मे अवतार लेकर, उस कुल की शोभा वढाई थी। चौधरी भगवतीदासजी की बहिन आर्या वीराजी ने अपने परिणामो को शुभ वनाया। आर्या वीराजी की गुराणी का नाम नाथाजी था और गुरु वहिन आर्या अजवजी हैं, जिन्होने आपकी वहुत सेवा-भक्ति की। मैं कितनी प्रशसा करूँ ? [illegible] की सेवा करते हुए कर्मो की कोटि टूटती है और उत्कृष्ट रस आता है तो तीर्थंकर गोत्र वँधता है। वीराजी आर्या का सथारा करने के लिए तप करने का मन हुआ। अत. उन्होने एक पक्ष के एकान्तर [illegible] किये और फिर वेला किया। फिर तेला किया और चोला [illegible] भावना हुई। फिर भावना उत्कृष्ट हुई और माह सुदी [illegible] को मध्याह्न मे चारो तीर्थ की साक्षी से, मन, वचन और [illegible]

के साथ जीवन भर के लिये तीनों आहार का त्याग कर दिया। उस समय उन की आयु ६५ वर्ष के लगभग थी और तेतालीस वर्ष दीक्षा पर्याय के हो गये थे। रणक्षेत्र मे खांडा लेकर जाते हुए शूरवीर के समान आर्या जी अपने परिणाम मे शूर हुए। स १८२८, फागण विदी ९, गुरुवार को पदरह दिन का अनशन पालकर, तीसरे पहर मे देह त्याग दिया। आपके विषय मे केसर बाई ने निम्नलिखित रूप से स्तुति की है—

'धन्य दिन धन्य घड़ी वली, सामी धन थारो अवतार, सामीजी !
छेला सांस उसांस थी, राख्यो शुभ परिणाम, सामीजी ! १४
मन्दिर मे दीपक जिसो देवल देह वखाण, सामीजी !
ससिकला जिम सोभतो, तिम संथार सुजाण, सामीजी !
कीयोजी संथारो भावसुंजी !' १५

अन्य आर्याएँ

स १८६५ मे सयाजी, राजाजी आदि आर्याओ का अस्तित्व था। आप अपने ऊपर श्री दानाजी स्वामी (रतलाम शाखा के प्रसिद्ध सत) की विशेष कृपा मानती थी। स १८६८ मे आर्या श्री सजाजी का नाम प्राप्त होता है। आपने श्राद्ध प्रतिक्रमण की प्रतिलिपि की थी। आपने अपने आपको श्री दानाजी म की शिष्या लिखा है और अपने ऊपर उनकी कृपा का उल्लेख किया है। अर्थात् इन आर्याओं को ज्ञानादि की प्राप्ति मे दानाजी म का सहयोग प्राप्त हो रहा था।

तपस्वी श्री परसरामजी म के शिष्य श्री मूलचन्दजी म के द्वारा लिखित 'देवकी चौपाई' की प्रति (स १८३५, चैत सुदि ७) मे चार आर्याओ के नाम मिलते हैं—आर्या श्री चन्दाजी, श्री उमाजी, श्री नन्दूजी और श्री जोताजी।

है। यदि ये श्री देवीचन्दजी म पूज्य श्री धर्मदासजी म के शिष्य श्री देवीसिहजी म हो, तो आर्या श्री दलुजी का अस्तित्व-काल स १८०० के आसपास ठहरता है। क्योकि पूज्य श्री देवीसिहजी म की हस्तलिखित 'व्यवहार सूत्र' की स १७९६ नौरगावाद मे और 'परमात्म पुराण' की स १८०० देवास मे की हुई प्रतिलिपि प्राप्त होती है। अत इसी समय के लगभग आर्या श्री दलुजी ने उनके दर्शन राजगढ मे किये होगे। अन्यत्र हातोदवाला श्री गुमानीजी आर्या का भी नाम मिलता है। परन्तु इन सब का कुछ भी परिचय प्राप्त नही है।

आर्या श्री सूरजकुँवरजी महाराज

स १९५० के आसपास श्री सूरजकुँवरजी नाम की प्रखर व्यक्तित्ववाली साध्वी हुई है। वह अपने को उज्जैन शाखा से सम्बद्ध मानती थी। उनकी अनेक शिष्याएँ हुई। महिदपुर, झारडा, सोधवाड के ग्राम, उज्जैन आदि क्षेत्रो मे उनका विहार विशेष रूप से होता था। बखतगढ, बदनावर आदि क्षेत्रो मे भी आपका प्रभाव था। बखतगढ मे पुराने श्रावको के मुँह से आपके विपय मे कुछ चमत्कारिक किवदतियाँ सुनी थी। आपके देहान्त के बाद आपकी शिष्याओ का देह-विलय होता गया। नई साध्वियाँ अल्प हुई। उनकी एक शिष्या प्याराजी म थी। उन्हे सयम मे सहयोग देने के लिए श्री बडे मेनकुँवरजी म ने अपने आश्रय मे लिया। उन प्याराँजी म की स १९९६ मे थाँदला निवासिनी नानीबाई की मोहनकुँवरजी म के नाम से दीक्षा हुई और मोहनकुँवरजी म के पास स २०२१ मे थाँदला निवासिनी कन्चनबाई कुवाड की कन्चन-कुँवरजी के नाम से दीक्षा हुई। वर्तमान मे ये दोनो साध्वियाँ प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी म की नेश्राय मे विचरण करती है।

(३)

चार प्रवर्तिनियाँ और उनका परिवार

सवत् १९७८ तक का काल मध्यकाल समझना चाहिए। क्योकि इससे पूर्व के काल की साध्वियो का या प्रमुख साध्वियो का खास परिचय

प्राप्त नही होता है और पूज्य श्री माधवमुनिजी म को युवाचार्य-पद प्रदान करने के साथ ही चार साध्वियो—(१) श्री बडे मेनकुँवरजी म (२) श्री माणकजी म (३) श्री महतावकुँवरजी म और (४) श्री टीबूजी म को प्रवर्तिनी पद देने के बाद नवयुग का प्रारम्भ होता है। इन चारो समूह की साध्वियो का यथा प्राप्त परिचय दिया जा रहा है।

प्रवर्तिनी श्री बड़े मेनकुँवरजी महाराज

श्री बडे मेनकुँवरजी म पेटलावाद की उज्ज्वल मणिरत्न थी। पेटलावाद के निवासी सद्गृहस्थ श्री कस्तूरचन्दजी वोरा की धर्मपत्नी जडावबाई की कुक्षि से जन्म हुआ था—बालिका मेनकुँवर का। आपकी माता जडावबाई को उज्जैन शाखा के आचार्य श्री रामरतनजी म का उपदेश सुनकर, वैराग्य प्राप्त हुआ। उस समय आपकी उम्र मात्र आठ वर्ष की थी। माता के वैराग्य के कारण आप भी उस लघुवय मे ही आत्मसाधना के कठोर मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित हुई।* जिसने अभी ससार को चकित नयनो से देखा मात्र था, उस ससार की भयङ्करता या सौम्यता की झलक मात्र भी जिसने नही पाई थी और जिसकी बुद्धि मे जगत् के पदार्थो के प्रति अपार कौतुक भरा हुआ था, उस लघुवय की बालिका के हृदय मे वैराग्य का निमित्त पाकर, पूर्व की साधना के मानो सस्कार जागृत हुए।

ऊपर का मत आपके 'जीवन चरित' के अनुसार है। परन्तु आपके वैराग्य-प्रेरक निमित्त के विषय मे आपकी प्रशिष्या के द्वारा प्रदत्त प्रामाणिक जानकारी इस प्रकार है—

---

* प्रुफ सशोधन करते समय बडे मेनकुँवरजी म की प्रशिष्या श्री चादकुँवरजी म ने जब श्री मेनकुँवरजी म के वैराग्य की प्रेरणा के विषय मे सुना तो उन्होने इस विषय मे मतभेद व्यक्त करते हुए कहा, कि—आपने यह बात बडे महाराज के प्रकाशित जीवन चरित से ली है। पर उस पुस्तक मे कई त्रुटियाँ रह गई है। फिर उन्होने उनके वैराग्य की प्रेरणा के विषय मे विस्तृत घटना बताई।

व्या प — स्व. श्री सूरजकुँवरजी महाराज

प्रवर्तनी— स्व श्री बडे मेनकुँवरजी महाराज

विदुषी व्या — स्व श्री गुलाबकुँवरजी महाराज

जन्म स १९५३ दीक्षा स १९६५ स्व स २०२३ पृष्ठ २१७

जन्म स १९३३ दीक्षा स १९४० स्व स २००७ पृष्ठ २१०

दीक्षा स १०६९ स्व स २००० पृष्ठ २१८

'वालिका मैना को उसकी माता जडाववाई ने चूल्हे में जलाने के लिए लकडी लाने को कहा। वालिका मैना लकडी ला रही थी। अचानक ही लकडी हाथ से गिर गई। लकडी घुनवाली थी। लकडी के छिद्र मे से आटा नीचे गिर गया। वाल-सुलभ कौतूहल से मैंना ने उस आटे को चिमटी से हथेली पर लिया। उस लकडी के आटे मे घुण कुलबुलाने लगे। यह दृश्य देखकर मैंना का वाल हृदय कॉप उठा। मैंना सोचने लगी—'अरे ! ये सभी जीव अग्नि मे लकडी डालने से जल जाएँगे। हम जरा से जल जाते है तो कितनी पीडा होती है। तो फिर आग मे वेचारे इन जीवो की क्या दशा होगी ! नही, मैं लकडी नही ले जाऊँगी।' उधर देर हो रही थी। माँ ने मैना को पुकारा—'अरी मैंना ! अभी तक लकडी नही लाई !' मैंना ने वही खडे-खडे उत्तर दिया—'माँ ! मै लकडी नही लाऊँगी।' माँ ने कडक कर कहा—'लकडी लाती है कि नही ? जल्दी ला लकडी।' मैंना ने हठ पूर्वक कहा—'नही, मै कभी नही लाऊँगी लकडी।' लडकी की ढीठता पर माँ खीझ उठी वह क्रुद्ध होकर प्रहार करने की मुद्रा मे तेजी मे मैंना की ओर लपकी—'कैसी ढीठ लडकी है ?' मैना माँ को अपनी ओर आती हुई देखकर वहाँ से भाग गई।

कस्तूरचन्दजी घर आये। भोजन वन चुका था। जडाववाई भोजन की थाल सजाने लगी। कस्तूरचन्दजी ने पूछा—'मैंना कहाँ है ?" जडाववाई रोष भरे स्वर मे वोली—"आपने उसे खूब सिर पर चढा रखा है। पराये घर जाएगी तो मेरा नाम उज्ज्वल करेगी। आपकी लाडली वेटी को लकडी लाने का कहा तो 'मै अव कभी लकडी नही लाऊँगी' यह कहकर न जाने कहाँ भाग गई सो अभी तक नही आई।" कस्तूरचन्दजी का मैंना पर वहुत ही प्रेम था। क्योकि उनकी एकमात्र वही सन्तान थी। वे उसके विना भोजन नही करते थे। उन्होने पत्नी से कहा—'ठहरो, अभी थाल मत परोसो। मैं अभी उसे ढूंढकर लाता हूँ।' यह कहकर कस्तूरचन्दजी वाहर निकल गये।

वे मैंना को इधर-उधर ढूंढने लगे। ढूंढते हुए वे स्थानक पहुँच गये। मैंना वही वैठी हुई थी। इधर श्री वालीजी म भी थाँदला मे पेटलावद पधारे ही थे। श्री वालीजी म को कस्तूरचन्दजी ने वन्दना की

और मैना को कहा बेटी घर चलो।' मैना ने कहा—'मैं अब घर नहीं आऊँगी।' पिता ने पूछा—'क्यों ?' मैना ने सारी घटना सुनाई और कहा—'मैं ऐसा पाप का काम करना नहीं चाहती।' उस समय श्री साध्वीजी म. ने कहा—'हमने इस लड़की को कुछ नहीं सिखाया है। यह अभी से यहाँ आकर बैठी है और घर नहीं जा रही है।' कस्तूरचन्दजी ने साध्वीजी से सविनय कहा—'आप भयभीत क्यों हो रहे हैं ? मैं आपको कुछ भी उपालम्भ देने वाला नहीं हूँ और आपकी सिखावट में कौन आएगा ? जो आसन्न भव्य होगा और जिसका संसार परिमित होगा वही तो ? आप सीखाकर क्या सिखाएंगे संसार-सागर से तैरना ही न !' साध्वीजी महाराज श्रावक की समझदारी देखकर बहुत ही प्रभावित हुई। फिर कस्तूरचन्दजी ने मैना से कहा—'बेटा ! घर चलो।' मैना ने कहा—'मैंने कहा न—मैं अब कभी घर नहीं आऊँगी।' पिता ने कहा—'तो क्या करोगी ? साध्वी बनोगी ?' मैना—'हाँ ! पिताजी !' पिता ने प्रेम से कहा—'अच्छा, साध्वी बनना। पर अभी तो घर चलो। तुम्हें अभी महाराज रोटी नहीं खिलाएंगे।' मैना बोली—'मैं भी गोचरी कर लूंगी।'

कस्तूरचन्दजी बड़े असमञ्जस में पड़ गये। उनके मोह और विवेक में द्वन्द्व मच गया। उनका प्रेम-वात्सल्य ऐसे स्तर का था, जो प्रीतिपात्र के लिए सर्वस्व समर्पण करने के लिए प्रेरित करता है। उन्होंने क्षण भर में ही निर्णय कर लिया और मैना से कहा—'जिसमें तुझे सुख है उसमें मुझे भी सुख है।' उस आदर्श पिता ने अपनी लाडली की इच्छा के अनुसार, भिक्षाचर्या के लिए कटोरियाँ आदि की व्यवस्था कर दी। साध्वीजी यह दृश्य देखकर चकित रह गई।

जब मैना की माता को यह बात विदित हुई, तब वह पति से बोली—'आपने यह क्या किया ? कहाँ अपने चार-पाँच बेटे-बेटी हैं।' कस्तूरचन्दजी ने कहा—'जो कुछ किया, अच्छा ही किया है।' पत्नी बोली—'आप तो बिलकुल निर्मोही हैं।' कस्तूरचन्दजी बोले—'कहाँ ऐसा हूँ ! निर्मोही होता तो बहुत ही अच्छा रहता। पर मेरा प्रेम ऐसा नहीं कि—मैं किसी के उत्थान में बाधक बनूँ।' पत्नी—'मैं दीक्षा लूँ तो मुझे

भी आप नही रोकेंगे।' पति—'हाँ, नही रोकूगा।' पत्नी—'फिर आपका क्या होगा?' पति—'मेरी चिन्ता क्यो करती हो? तुम भी बेटी के साथ जाओ तो हमारा नाम उज्ज्वल ही होगा।'

आखिर मे माता-पुत्री दोनो श्री वालीजी म के सग हो गई। आपकी माता ने आपको सग लेकर स. १९४० मे श्री वालीजी म के पास उज्जैन मे दीक्षा ग्रहण की। आपका जन्म स १९३३ मे हुआ था। अत दीक्षा के समय आपकी आयु लगभग आठ वर्ष की ही थी। लघु साध्वी मेनकुँवरजी लोगो के हृदय मे कौतूहल जगाती थी। परन्तु जब व्यक्ति उन की साधनामयी प्रवृत्ति देखते तो उन्हे लगता था, कि—ये सयम के सस्कार पूर्व से ही लाई है।

आपको बचपन से ही ज्ञानाभ्यास की तीव्र रुचि थी। मात्र सोलह वर्ष की आयु मे आपने सात शास्त्र कण्ठस्थ कर लिये थे और छोटी उम्र मे ही चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति इन दो शास्त्रो को छोडकर, तीस शास्त्रो का अध्ययन कर लिया था। आपको सिद्धान्त के रहस्य रूप दो सौ थोकडे कण्ठस्थ थे और एक हजार के लगभग श्लोक, सवैया, दोहे आदि भी आपके स्मृति-कोष मे सञ्चित थे। आपने छोटी आयु से ही (चौदह वर्ष की आयु से) शास्त्र-सम्मत प्रवचन देना प्रारम्भ कर दिया था। आपके प्रवचन तात्त्विक, मधुर, सारगर्भित और प्रभावशाली होते थे। आपके मनोरम प्रवचनो से प्रेरित होकर, कई जन नैतिक एव धार्मिक नियमो को ग्रहण करते थे।

आपको स्वावलम्बन बहुत ही प्रिय था। आपने पन्द्रह वर्ष की वय से ही अपने हाथो से केश-लुञ्चन करना प्रारम्भ कर दिया था। अन्य कार्य भी स्वय करने को तत्पर रहती थी। आपका व्यवहार श्रावक-श्राविकाओ के प्रति भी वात्सल्य से परिपूर्ण रहता था।

आपके उपदेश से प्रभावित होकर, कई स्त्रियाँ महाव्रतधारिणी बनी और अनेको स्त्री-पुरुष अणुव्रती, सम्यक्त्वी और सप्त कुव्यसन के त्यागी बने। सैलाना मे भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने सपरिवार आपके दर्शन करके, प्रवचन का लाभ लिया था।

आपने राजस्थान, मालवा, और पचमहाल (गुजरात) प्रदेश मे विचरण किया। इन्दौर, रतलाम, खाचरोद, सैलाना, धामनोद, जावरा, उज्जैन, धार, नागदा, टोंक, बूँदी, कोटा, रायपुर, आगर, थान्दला, पेटलावाद, लीमडी आदि ग्रामो मे चातुर्मास व्यतीत किये। आपने सबसे अधिक चातुर्मास (१५) खाचरोद मे किये और चौदह इन्दौर मे।

स १९६८ मे, जब सैलाना-नरेश के वर्षगाँठ का उत्सव चल रहा था, तब आपको सैलाना के तत्कालीन दीवान श्री प्यारेकृष्णजी कौल ने आपको सैलाना पधार ने की विनती की और आप उस विनती को मानकर, वहाँ पधारी। वहाँ आपने सत्ताइस सार्वजनिक प्रवचन दिये थे। जिनमे पाँच प्रवचनो मे स्वय सैलाना-नरेश उपस्थित हुए थे और उसी काल मे लार्ड इरविन ने भी आपसे धर्मोपदेश सुना था। सैलाना-नरेश ने चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन अपने राज्य भर मे अमारिकी घोषणा की थी। वह दिन अहिसा-दिवस के रूप मे मनाया जाता था। २७ गाँवो के ठाकुरो ने भी आपके प्रवचनो का लाभ लिया था। ऐसे छोटे-बडे कई रजवाडो मे अमुक तिथियो पर अहिसा पालन की घोषणाएँ हुई थी। ऐसा था आपका प्रभावपूर्ण उपदेश।

आपको स १९७८ मे प्रवर्तिनी पद प्रदान किया गया था। आपने कुशलता से इस पद का निर्वाह किया।

स २००० मे जब आपका शारीरिक बल अल्प हो गया, तब आपने इन्दौर मे शास्त्रीय मर्यादानुसार स्थिरवास स्वीकार कर लिया। लगभग सात-आठ वर्ष तक आप वहाँ विराजमान रही। स २००७, कार्तिक शुक्ला ११ को आपने कुछ समय के अनशन पूर्वक देह त्याग दिया।

आपकी पाँच गुरु बहिने (वालीजी महाराज की शिष्याएँ) थी—(१) श्री दोलाजी म (२) श्री माणकजी म (३) श्री जडावकुँवरजी म (आपकी ससार पक्ष की माता), (४) श्री रतनकुँवरजी म और (५) श्री गेन्दाजी म। श्री जडावकुँवरजी म को ११ दिन का, श्री रतनकुँवरजी म को ५ दिन और श्री गेन्दाजी म की २२ दिन सथारा आया था।

आपकी १४ शिष्याएँ हुई और आपकी विद्यमानता मे ही आपकी २० प्रशिष्याएँ और दो प्रशिष्याएँ हुई। आपकी बडी शिष्या स १९५४ मे दीक्षित हुई थी, जिनका नाम था श्री गुलाबकुँवरजी म । आपने दो दिन के अनशन पूर्वक देह का त्याग किया। वर्तमान मे सबसे बडी शिष्या प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी म विद्यमान है। आपकी दीक्षा स १९५८ मे हुई। आप स्थविरा सती है।

इस प्रकार प्र० श्री मेनकुँवरजी म ने ८ वर्ष की आयु में दीक्षित होकर, लगभग ६७ वर्ष की चारित्र पर्याय मे अनेक उपकार के कार्य करने के साथ-साथ आत्म-साधना की।

श्री मेनकुँवरजी महाराज के परिवार की साध्वियाँ

(१) श्री रतनकुँवरजी महाराज

आप रतलाम-निवासिनी थी। मुणत श्रीमान् घासीरामजी की धर्म-पत्नी थी। आपने स १९५४ मे अपने पुत्ररत्न श्री वृद्धिचन्दजी म के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। आप श्री बालीजी म की शिष्या थी। आप तपस्विनी साध्वी थी। आपने दीर्घ तपस्या भी की थी। पाँच दिन के अनशन पूर्वक आपने देह त्याग किया।

(२) श्री फूलकुँवरजी महाराज

आप श्री बडे मेनकुँवरजी म की द्वितीय शिष्या थी। खाचरोद के समीपस्थ धानासुता ग्राम आपका निवास स्थान था। आपकी दीक्षा स १९५४ मे हुई थी।

आप बडी साहसी सती थी। आपने भय पर जय प्राप्त की थी। आपका रतलाम के समीप शिवगढ ग्राम मे चातुर्मास था। आप सदा अपने नियम के अनुसार छन्द-स्तोत्रादि कुछ उच्च स्वर मे गिनती थी। एक समय एक सर्प भी वहाँ आ गया और वह चुपचाप स्तोत्रपाठ श्रवण करने लगा। सतीजी का स्तोत्रपाठ समाप्त होते ही वह वहाँ से चला

गया। सतीजी ने यह दृश्य देखा, पर उन्हे कुछ भी भय नही हुआ। अब नित्य का यही क्रम हो गया। साध्वीजी म निर्भयता से स्तोत्र पाठ करती रहती थी। चातुर्मास का अधिकाँश काल बीत गया। अकस्मात् सतीजी को बुखार आ गया। परन्तु उनका नियम चलता रहा। एक दिन सतीजी का बुखार बहुत तेज हो गया। सतीजी उठ नही पाई। समय बीत रहा था। स्तोत्र पाठ का समय हो गया था। उधर सर्प आ गया। वह फण फटकार कर ठक ठक की आवाज करने लगा और मानो स्तोत्र पाठ श्रवण करने की रुचि प्रकट करने लगा। श्री फूलकुँवरजी म ने अन्य सती जी म से कहा 'सर्पराज सुनने आये है। उन्हे अमुक-अमुक छन्द-स्तोत्र सुना दो।' वे सतीजी बोली—'मुझे डर लगता है।' श्री फूलकुँवरजी म ने कहा—'डरने की कोई बात नही है। वे तुम्हे कुछ नही कहेगे। जाओ, उन्हे सुना दो। दूसरी महासतीजी डरती हुई वहाँ गईं और उन्हे जो कुछ याद था, वह सुना दिया। पाठ समाप्त करने के बाद वे महासतीजी सर्पराज को सम्बोधन करके बोली—'श्री फूलकुँवरजी म को बुखार आता है और मुझे आपसे डर लगता है। अब आपको सुनाएगा कौन ? दूसरी सतियाँ भी तो आपसे डरती हैं। अब आप न आया करें।' उस दिन से सर्पराजका वहाँ आना या दिखाई देना बन्द हो गया।

स २००१ मे महासती श्री फूलकुँवरजी म अस्वस्थ हो गई। आपने आजीवन अनशन ग्रहण कर लिया। अनशन (सथारा) करने के बाद आप बिल्कुल स्वस्थ हो गयी। लोगो ने आग्रह किया—'आपके सथारे मे श्रीसघ का और गुरुदेव का आगार है, अब आप अनशन खोल दीजिए।' सतीजी म बोले—'नही मैं अनशन नही तोड़ू गी। भले ही आगार रखे गये हो, पर जिसके लिए मैंने जिन्दगी भर मनोरथ सेवन किया, उसे क्या यो ही सहज मे छोड दूँ !' इसप्रकार सतीजी ने दृढता पूर्वक अनशन त्यागने से इन्कार कर दिया। आपके अनशन के विषय मे जैनेतर जनता मे भी बहुत ऊहापोह होने लगा। परन्तु आप किञ्चिन्मात्र भी विचलित नही हुई। कभी-कभी रात्रि मे सतीजी बोल उठती—'मैं नही खाऊँगी, मैं नही खाऊँगी।' पास वाली सतियाँ पूछती—'क्यो महाराज ! क्या हुआ है ?' सतीजी कहती—'ये प्रकाशमान शरीर

वाले लोग थाल में लड्डू लाकर, मुझे बारबार तङ्ग करते हैं—'लो खाओ, लो खाओ!' पर मुझे खाना नही है और ये मुँहतक लड्डू ले आते हैं।' सतियाँ बोली—'आपको स्वप्न आया होगा।' फूलकुँवरजी म. बोली—'हो सकता है, स्वप्न आया होगा। पर मुझे नीद आई हो, ऐसा तो नही लगता।' इस प्रकार दिन बीतने लगे। कोई आपसे पूछता—'आपको क्या अनुभव हो रहा है?' तो आप उत्तर देती—'मुझे भूला हुआ ज्ञान सब याद आ गया है। वह ज्ञान मुझे बहुत स्पष्ट हो गया है।' उस समय इन्दौर मे गुरुदेव (प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी म.) भी वही विद्यमान थे। गुरुदेव ने आपके समाधि-भाव की वृद्धि मे बहुत सहयोग दिया और आप नित्यप्रति उस समय के योग्य श्रुत श्रवण कराते रहते थे। पूरे एक मास तक आपका अनशन चला। तीस दिन मे आपका अनशन सिद्ध हुआ। लोग बोले—'शास्त्रो मे हमने साठ भक्त (तीस दिन) के अनशन की बात सुनी है। पर आज हमने प्रत्यक्ष देखी है।' आपकी दो शिष्याएँ हुई श्री मानकुंवरजी म. आदि।

(३) पण्डिता श्री सूरजकुंवरजी महाराज

रतलाम के निवासी श्री केसरीमलजी सचेती की धर्मपत्नी श्री चाँद-बाई की कुक्षि से स १९५३ मे आपका जन्म हुआ था। जब आप बालिका थी, तभी आपकी सगाई हो गई थी। आपकी माता चाँदबाई को श्री बडे मेनकुँवरजी म के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ। माता को बालिका सूरजबाई ने जब दीक्षा लेने को तत्पर देखा, तब उन्हे भी दीक्षा लेने की इच्छा हुई और आखिर मे सगपन छोडकर, लगभग तेरह वर्ष की आयु मे, अपनी माता के सग, पू श्री नन्दलालजी म के मुखकमल से, सवत् १९६५ मे आपने दीक्षा ग्रहण की। आपने अच्छा अध्ययन किया। दूर-दूर तक विचरण किया। आपकी छह शिष्याएँ हुई।

आप पिछली वय मे अस्वस्थ हो गई थी। अत कुछ साल तक खाचरोद मे स्थिरवास रही। स २०२३ मे उज्ज्वल परिणामो से देह त्याग दिया।

आप अधिकतर शास्त्र-स्वाध्याय मे तल्लीन रहती थी। धर्मकथा के द्वारा लोगो को भी धर्मप्रेरणा देती रहती थी। आपको प्राय असातावेदनीय का उदय रहता था। फिर भी आप शक्ति के अनुसार सेवाकार्य करती थी और दूर प्रदेशो मे भी विचरण करती रही। विशेष रुग्णता होने के कारण आप कुछ समय तक रतलाम मे रही और स २०२५ मे असाता-वेदनीय को सहन करते हुए समाधि-पूर्वक दिवगत हुई।

(६) भद्रस्वभावी श्री दाखाजी महाराज

निमाड के सिमरोढ गाँव के निवासी श्री वख्तावरमलजी की धर्मपत्नी श्री हेमबाई के गर्भ से एक बालिका का जन्म हुआ, स १९४२ मे। उसका नाम रखा गया—दाखाबाई। आपको श्री मेनकुँवरजी म की शिष्या श्री राजकुँवरजी म की प्रेरणा से दीक्षा लेने की इच्छा हुई। स १९६५ मे उनकी शिष्या के रूप मे आपने दीक्षा ले ली। आपका जीवन वीतराग-वाणी के रग से रग गया था। आप थोकडे के ज्ञान की भण्डार थी। आप प्रवचन नही देती थी। परन्तु आपका धर्मकथाएँ कहने का ढग बडा सुन्दर था। मैंने भी बचपन मे आपकी धर्मकथाएं सुनी है। आप सरल हृदया थी और आपका जीवन सेवामय था। आप बहिनो को ज्ञान सिखाने मे तत्पर रहती थी और कही किसी से सीखने जैसा लगता तो सीखती भी थी। आप वृद्धावस्था मे अस्वस्थ रही। स २०२४, पौष विदि १३ शुक्रवार को आपने २१ घण्टे के सथारे सहित प्रात पौने नौ बजे के लगभग चार शरण को स्वीकार करते हुए देह छोड दिया।

(७) श्री आनन्दकुंवरजी महाराज

आप नागदा (धार) के नाहर परिवार की पुत्री थी। आपके लग्न मुलथान मे हुए थे। पति का वियोग हो जाने के बाद धर्म भावना की वृद्धि हुई। आपने प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी महाराज के पास दीक्षा ली और यथायोग्य धर्म-आराधना की। आप कुछ समय तक इन्दौर मे बीमार रही। स २०२९ मे समाधि पूर्वक देह त्याग किया।

(८) श्री गेंदकुंवरजी महाराज

आप व्यावरा राजगढ के पास स्थित ग्राम छापीहेडा के निवासी श्री रतनलालजी (रामसेना) की पुत्री थी। आपके लग्न आगर-निवासी पुरालालजी वालवेचा से हुए थे। आपके तीन सन्ताने हुई—दो पुत्र और एक पुत्री। पुत्र के नाम क्रमश सरदारमलजी और रूपचन्दजी तथा पुत्री का नाम कमलाबाई। ये तीनो छोटी अवस्था मे थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। श्री गेदीवाई ने ऐसी अवस्था मे वडे धैर्य से काम लिया। वे धार्मिक प्रवृत्तियो मे अपना मन रमाने लगी। उन्हे श्री गुलाबकुंवरजी म के निमित्त से वैराग्य उत्पन्न हुआ। परन्तु उनके मार्ग मे बडी कठिनाइया थी। वच्चे सव छोटी उम्र के थे और श्वसुर तथा पिता दोनो के कुल मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्हे दीक्षा की आज्ञा प्राप्त होना सरल नही थी। परन्तु उनका निश्चय दृढ था। उन्होने अपने पुत्रो एव पुत्री को भी दीक्षा दिलाने का निर्णय कर लिया। पहले बडे पुत्र को कुछ समझाया और गुरुदेव की सेवा मे भेज दिया। जब इस बात का पता कुटुम्ब को चला, तब उनमे तहलका मच गया। विविध प्रकार से विरोध हुआ। परन्तु विरोध की प्रबल आँधी मे भी वह दृढ निश्चया नारी अडिग रही। कुटुम्बीजनो ने आपके वडे पुत्र सरदारमलजी को गुरुदेव के पास से बुलवा लिया और उनकी कठोर कसौटी की। आखिर कुटुम्बियो को हारना पडा। श्री गेदीबाई स १९९६, कार्तिक सुदी १२ गुरुवार को हैदरावाद मे श्रीसरदारमलजीको दीक्षा दिला दी, जिनका दीक्षित अवस्था का नाम है श्री सुरेन्द्रमुनिजी महाराज। अब आप स्वय, अपने एक पुत्र और पुत्री तथा अपनी बहिन की पुत्री चाँद वाई के सग दीक्षा की भावना से धर्म-साधना मे समय व्यतीत करने लगी। इस बीच मे आपकी धर्म-प्रेरिका श्री गुलाबकुंवरजी म का देहावसान हो गया।

सवत् २००३, वैशाख सुदी ११ को आपने, श्री रूपचन्दजी ने (पुत्र) चाँदवाई (वहिन की पुत्री) ने और श्री कमलाबाई (पुत्री) ने, दाहोद के

समीप कतवारा ग्राम मे प्रव्रज्या अङ्गीकार की। आपके दीक्षित अवस्था के क्रमश नाम श्री गेदकुँवरजी म, श्री रूपेन्द्रमुनिजी म, श्री चाँद कुँवरजी म और श्री कमलाकुँवरजी म है। दीक्षा के बाद आपने वम्वई से लगाकर दिल्ली तक के प्रदेशो मे विचरण किया। आप अपना नियमित स्वाध्याय आदि करती रहती थी।

कुछ वर्ष तक आपके असातवेदनीय का प्रवल उदय रहा। स २०२७ मे आप विशेष रुग्ण हो गई। उस समय आप इन्दौर मे थी। इन्दौर के वन्धुओ ने और श्री चतरकुँवरजी म. ने आपकी काफी सेवा की। गुरुदेव भी आपको दर्शन देने हेतु इन्दौर पधारे। प्रियवक्ता श्री विनयचन्दजी म ठा ४ भी सग थे। गुरुदेव चातुर्मास हेतु शुजालपुर की ओर विहार कर रहे थे। अत. स्नेहलतागञ्ज मे विराजमान थे। सतीजी की ओर से आपकी विशेष रुग्णता के समाचार पहुँचे। अत' गुरुदेव आपको दर्शन देने के लिए पीपली बाजार-स्थानक मे पधारे। सतीजी ने गुरुदेव के समक्ष स्वय आलोचना की और आजीवन अनशन लेने की भावना प्रकट की। गुरुदेव ने आगार सहित मर्यादित प्रत्याख्यान दे दिए और स्नेहलता गञ्ज पधार गये। दूसरे दिन प्रात काल समाचार आये, कि—सतीजी ने सन्थारा कर लिया है। गुरुदेव चारो सन्त और प्रियवक्ताजी म चारो सन्त राजमोहल्ले से वहाँ पधारे। सतीजी उस समय वेहोश थी। परन्तु आसपास का वातावरण समाधि-मरण के अनुकूल वनाया गया। धीमे मधुर स्वर मे शरणदान, समाधि भावना के भजन आदि चल रहे थे, जिससे सतीजी का अवचेतन मन उस भावना से प्रभावित होता रहे। सतीजी के नयन मुँदे हुए थे। वह निश्चेष्ट थी। ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को तीसरे पहर मे आपने देह त्याग दिया। मृत्यु के पूर्व आपके नयन खुल गये। जव आपको विठाया गया, तव ऐसा लगता था, कि—मानो आप सजीव अवस्था मे ध्यानलीन हैं। आपके मुख पर उस समय भी प्रभा थी।

प्रवर्तिनी श्री माणकजी महाराज और उनका साध्वी-समुदाय

रतलाम के रामगढ मोहल्ले मे एक धर्मप्रेमी मुणत परिवार रहता था। श्री मोतीलाल जी मुणत उस परिवार के मुखिया थे। उनके बडे पुत्र की पत्नीका नाम था—माणकवाई। माणकबाई के पति का भर यौवन मे वियोगहो गया। माणकवाई का मन इससे बहुत सतप्त हुआ। इधर आपकी सासू नानूबाई भी पुत्र-वियोग से दु खी थी। इन्होने अपनी पुत्रवधू का मन धर्म की ओर मोडा और आप भी धर्म-भावना मे ओतप्रोत हो गयी। नानूबाई का मन वैराग्य-वासित हो गया। नानूबाई ने अपनी पुत्रवधू माणकबाई, पुत्री प्रेमाबाई और पुत्र ताराचन्दजी के सग, पूज्य श्री मोखमसिंहजी म के मुखारविन्द से स. १९४६, चैत्र शुक्ल ११ को दीक्षा ग्रहण की।

श्री माणकजी म ने विशिष्ट ज्ञान आराधना की। आपकी पूर्वज सतियो मे हीराजी—दौलाजी विशिष्ट सतियाँ हो गई है। उनसे आपको उत्तराधिकार मे ज्ञान—सम्पन्नता प्राप्त हुई। आपको श्रीमान् माधवमुनिजी म के युवाचार्य पद—प्रदान के समय (स १९७८) प्रवर्तिनी—पद प्रदान किया गया। परन्तु कुछ वर्ष बाद आपका देहान्त रतलाम मे स १९८२, फागुन सु० ८ शनिवार को हो गया।

आपकी पूर्वगामिनी एव पश्चाद्वर्ती साध्वियो मे से हमे परिचय प्राप्त न हो सका। शिष्या-प्रशिष्यायो की नामावली मात्र विद्यमान प्रवर्तिनी श्री सज्जनकुवरजी म से मिल सकी है, जो नीचे दी जा रही है।

आप (श्री माणकजी म.) की पूर्ववर्ती साध्वियो मे श्री हीराजी म और श्री दौलाजी म की जोडी प्रख्यात थी। आप श्री हीराजी म की

शिष्या थी। आपके सिवाय श्री हीराजी म की दो अन्य शिष्याएँ और थी —श्री नानूजी म (समारपक्ष मे श्री माणकजी म की सासू थी) और श्री सरदारजी म ।

श्री माणकजी म की चार शिष्याएँ—(१) श्री भुरीजी म, (२) श्री मेतावजी म. (३) श्री फूलकुँवरजी म और (४) श्री श्यामकुवँरजी म श्री भुरीजी म की शिष्या श्री धनकुवँरजी म । श्री धनकुवँरजी म की शिष्या श्री सोहनकुँवरजी म, जो अभी रतलाम मे विराजित है।

श्री दौलाजी म. का परिवार

श्री दौलाजी म की पाँच शिष्याएँ—(१) श्री मानकुँवरजी म (२) श्री प्रेमकुँवरजी म (३) श्री प्याराजी म, (४) श्री सिरेकुँवरजी म और (५) श्री पानकुँवरजी म ।

श्री मानकुँवरजी म की ग्यारह शिष्याएँ—(१) श्री जडाव-कुवरजी म, (२) श्री छोटे मेनकुवरजी म, (३) श्री सूरजकुवरजी म, (४) श्री पानकुवरजी म, (५) श्री रतनकुवरजी म, (६) श्री नोजाजी म (७) श्री वदामजी म, (८) श्री चाँदकुवरजी म., (९) श्री केशरजी म, (१०) श्री जसकुवरजी म, (११) श्री सज्जनकुँवरजी म ।

इन साध्वियो मे से कई साध्वियाँ—जैसे छोटे मेनकुँवरजी म आदि—विशिष्ट व्यक्तित्ववाली एव ख्यातिप्राप्त थी। परन्तु हमे उनका परिचय प्राप्त नही हो सका। इनमे श्री जडावजी म, श्री मेनकुँवरजी म, श्री सूरजकुँवरजी म, श्री चाँदकुँवरजी म. और श्री सज्जनकुँवरजी म. की शिष्याए और प्रशिष्याए हुई है।

श्री जडावजी म की एक शिष्या श्री धनकुँवरजी म.।

श्री मेनकुँवरजी म की चार शिष्याए और तीन प्रशिष्याए। चार शिष्याए—(१) श्री सुगनकुँवरजी म, (२) श्री राजकुवरजी म, (३) श्री सणगाराजी म और (४) श्री मदनकुवरजी म ।

प्रथम शिष्या श्री मुगनकुवरजी म की तीन शिष्याए—(१) सरदारजी म, (२) श्री गुलाबकुवरजी म, और (३) श्री हसकुवरजी म।

श्री मानकुवरजी म की तृतीय शिष्या श्री सूरजकुवरजी म की दो शिष्याए और एक प्रशिष्या।

(१) श्री रतनकुवरजी म., (२) श्री सुन्दरकुवरजी म और प्रशिष्या [श्री सुन्दरकुवर म की शिष्या] श्री केशरकुवरजी म.।

श्री मानकुवरजी म की आठवी शिष्या श्री चाँदकुवरजी म. की एक शिष्या—श्री जतनकुवरजी म।

श्री मानकुवरजी म की ग्यारहवी शिष्या वर्तमान मे प्रवर्तिनी पडिता श्री सज्जनकुवरजी म की बारह शिष्याएँ और पाच प्रशिष्याए हुई। जिनमे से आठ शिष्याओ और तीन प्रशिष्याओ का नाम अगले अध्याय मे दिये गये है। शेष शिष्याओ-प्रशिष्याओ के नाम—(१) श्रीमोहनकुवरजी म (२) श्री हेमकुँवरजी म (३ श्री शान्तिकुँवरजी म और (४) श्री लीलाकुँवरजी म। दो प्रशिष्याएँ (श्री टीबूजी म की शिष्या) श्री विमल कुँवरजी म और (श्री शान्तिकुवरजी म. की शिष्या) श्री प्रभा कुवरजी म।

श्री दौलाजी म की द्वितीयशिष्या श्री प्रेमकुवरजी म की तीन शिष्याए, तीन प्रशिष्याए और दो प्रप्रशिष्याएँ।

तीन शिष्याएँ—(१) श्री रतनकुँवरजी म, (२) श्री झमकूजी म और (३) श्री रूपाजी म।

तीन प्रशिष्याए (श्री रतनकुँवरजी म, की शिष्याए)—(१) श्री मोहनकुँवरजी म, (२) श्री कञ्चनकुँवरजी म और (३) श्री भुरीजी म।

एक प्रप्रशिष्या (मोहनकुँवरजी म की शिष्या)—श्री विनय कुँवरजी म। श्री कचनकुवरजी म के पास तीन वीर बाल बहिनो की दीक्षा उनकी शिष्या के रूप मे हुई थी।

श्री मोहनकुँवरजी म. और श्री कञ्चनकुँवरजी म प्रवर्तिनी श्री सज्जनकुँवरजी म की आज्ञानुवर्तिनी है।

(५)

प्रवर्तिनी पं व्याख्यात्री श्री महताब कुँवरजी महाराज

राजस्थान के दक्षिण के किनारे पर दक्षिण-पश्चिम मध्य प्रदेश की सीमा के समीप, एक कुशलगढ नाम का ग्राम है। वहाँ स १८३० के लगभग वहाँ के ठाकुर के दीवान श्रीमान् दिलीपसिहजी चौपडा रहते थे। श्री दिलीपसिहजी के चार विवाह हुए थे। चौथी पत्नी का नाम प्यारावाई था। स १९३९ मे, उनकी कुक्षि से एक पुण्यशालिनी बालिका का जन्म हुआ। जिसका नाम रखा गया– 'महताव'। बालिका महताव शुक्लपक्ष की द्वितीया के चन्द्र के समान वृद्धि पाने लगी। कुछ काल बाद बालिका के पिता का देहान्त हो गया। प्यारावाई को श्री श्रेय (सिरे) श्री कुँवरजीम और उनकी शिष्या श्री रतनकुवरजी म. का सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। अब प्यारावाई के हृदय मे ससार से विरक्ति उत्पन्न हो गई। उन्होने अपनी लघु बालिका के हृदय मे वैराग्य के बीज वो दिये और पूर्व के सस्कारो से वैराग्य-बीज अकुरित और वर्तमान सस्कारो से पल्लवित हो गये।

स १९४७ मे, माँ-बेटी दोनो ने इन्दौर मे पौष सुदी दसमी के दिन श्री रतनकुवरजी म की शिष्या के रूप मे साधिका-जीवन स्वीकार किया। माताजी का नाम श्री प्रेमकुवरजी म और बालिका का नाम श्री महतावकुँवरजी म रखा गया। आठ वर्ष की बालिका साध्वी-वेश मे आत्म-साधिका के गौरवपूर्ण मार्ग पर दृढतापूर्वक चलने के लिए तत्पर हो गई। श्री महतावकुँवरजी म ने यथायोग्य अध्ययन किया और वे गम्भीरता से शास्त्रो का स्वाध्याय करने लगी। उन्हे अनुशासन की कठोर कसौटी पर भी चढना पडा। अत कुछ काल तक गुरुणी की

कठोर आज्ञा के अनुसार, माता-पुत्री को साध्वीवृन्द से पृथक् रहना पडा। ऐसी स्थिति मे भी अपनी माता साध्वीजी के सहयोग से गम्भीरता पूर्वक अध्ययन और साधना मे आप तल्लीन रही और कुछ ही समय मे वे विदुषी साध्वियो की पक्ति मे आ गयी।

आपके कण्ठ का माधुर्य विशिष्ट था। यदि आपको 'मालव-कोकिला' कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी। आपकी वक्तृत्व-कला कण्ठ-माधुर्य का मणि-काञ्चन-सा सयोग पाकर दिन-प्रतिदिन निखार पाने लगी। लोग आपके प्रवचनो को श्रवण करके, भाव-विभोर होकर झूम उठते थे। आपने अनेक प्रदेशो मे विचरण किया। मारवाड, मेवाड, मालवा, दिल्ली, आगरा, ढूँढाड आदि प्रदेशो की भूमि आपके चरणो का स्पर्श पाकर धन्य हो उठी। झोपडियो से लगाकर महलो तक, जन-जन के हृदय मे आपकी प्रवचन-धारा प्रवाहित होने लगी। आपने कई आत्माओ को लक्ष्य-बोध दिया, सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित किया और आत्म-साधना के मार्ग पर गतिशील बनाया।

आपका स १९८५ मे चैत्र सुदी तीज शनीवार को ३८ वर्ष और ३ महिने मे कुछ कम चारित्रपर्याय और मात्र लगभग ४६ वर्ष की आयु मे इन्दौर मे देहान्त हो गया। अल्पायु मे ही जैन-जगत का एक उज्ज्वल आकर्षक, प्रेरक, धर्म-प्रभावक और उद्बोधक व्यक्तित्व विलुप्त हो गया। आपका इतना-सा अल्प जीवन भी गौरव-गरिमा से मण्डित और तेजोदीप्त रहा।

आपकी सत्रह शिष्याएँ और कई प्रशिष्याएँ हुईं। आपका साध्वी-परिवार विभिन्न प्रदेशो का था।

आपकी माताजी महाराज श्री प्रेमकुँवरजी म का देहान्त स १९९९, वैशाख सुदी बीजको रतलाम मे हुआ। आपकी चार शिष्याए हुई।

श्री नानूजी महाराज - धरियावद ग्राम की निवासिनी थी। आप हुम्मड (दिगम्बर वागड्या) परिवार की थी। स १९५३ चेत सुदी १३ को धरियावद मे ही दीक्षा हुई। आप शान्त स्वभाव की आत्म-साधिका थी।
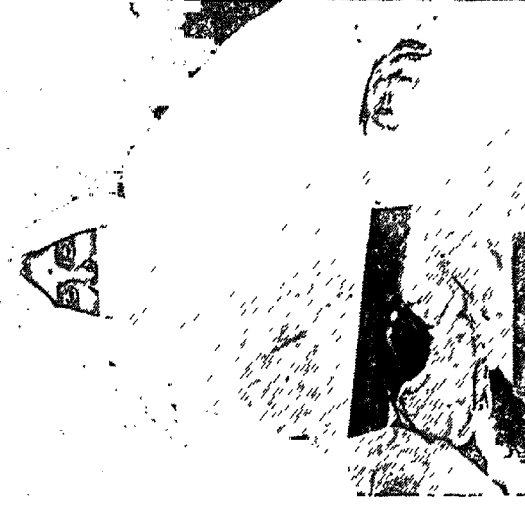
स्व श्री प्रेमकुंवरजी महाराज

दीक्षा सवत् १९४७ (इन्दौर) — स्व सवत् १९९९ रतलाम

पृष्ठ २२५

प्रवर्तिनी मधुर-व्याख्यात्री

स्व. श्री मेहताबकुंवरजी महाराज

जन्म १९३९ कुशलगढ़ — दीक्षा १९४७ इन्दौर — स्व १९८५ इन्दौर

पृष्ठ २२५

तपस्विनी श्री चम्पाजी महाराज—अकोदडा ग्राम की निवासिनी थी। वही स १९५८, ज्येष्ठ सुदी ११ को आपकी दीक्षा हुई। आप तपस्विनी थी। २१ या २२ मासक्षपण और अन्य कई फुटकर तपस्याएँ की।

श्री मोताजी महाराज—निम्बोद निवासिनी थी। वही स. १९६८, वैशाख सुदी ११ को दीक्षा हुई।

बालब्रह्मचारिणी श्री आनन्दकुँवरजी महाराज—आप जोधपुर-निवासी जाट लक्ष्मणसिंहजी और स्वरूपाबाई की पुत्रीरत्न थी। ९ वर्ष की आयु मे लीमडी (पचमहाल) मे स १९८०, मार्गशीर्ष पूर्णिमा को आपने दीक्षा स्वीकार की। आप वडी तेजस्विनी वक्तृत्त्वकला मे निष्णात साध्वी थी। परन्तु आपका अल्पायु मे ही देहान्त हो गया। आपने इस अल्प-काल मे अपनी गुण-सौरभ से जनता के हृदय मे स्थान बना लिया था।

प्रवर्तिनी श्री महताबकुँवरजी महाराज का शिष्या-परिवार

पडिता श्री महतावकुँवरजी महाराज की सत्रह शिष्याएँ हुई।

(१) व्याख्यात्री श्री पानकुँवरजी महाराज—झालावाड छावनी की निवासिनी थी। विवाह के कुछ समय बाद पति का वियोग हो जाने पर ससार से विरक्ति उत्पन्न हुई और स १९६०, चेत सुदी ५ को, १४ वर्ष की आयु मे श्री महतावकुँवरजी महाराज की प्रथम शिष्या के रूप मे, दीक्षा ग्रहण की। वहुत समय तक आप धर्म-प्रचार करती रही।

आपकी तीन शिष्याएँ हुई—(१) तपस्विनी श्री तेजकुवरजी म झालोद-निवासिनी। तीस वर्ष की आयु मे स १९६७, माघ शुक्ल ६ को वखतगढ मे दीक्षा। (२। श्री गुलावकुवरजी म —गेता (हाडोती) निवासिनी। ३५ वर्ष की आयु मे स १९८३, कार्तिक वि. तेरस बुधवार को दीक्षा और (३) तपस्विनी श्री जोरावरकुवरजी म —सायपुरा निवासिनी। स २००२, उज्जैन मे माघ शुक्ल ५, बुधवार को दीक्षा। इन सतियो का देहान्त हो चुका है

(२) व्याख्यात्री श्री हंसकुँवरजी महाराज—राणापुर (झाबुआ) ग्राम-निवासिनी। स १९६१, ज्येष्ठ सु० ६ को दीक्षा। आपकी तीन शिष्याए

हुई—(१) श्री गुलाबकुँवरजी—स्थान चडावाल। ३५ वर्ष की आयु मे स १९६६ मे दीक्षा। (२ श्री धनकुँवरजी म —स्थान करजू। दीक्षा—स १९६८, कार्तिक सु० ११। (३) श्री उम्मेदकुँवरजी म —लाब्या-निवासिनी। स १९७१ माघ शुक्ल ५ को दीक्षा। तीसरी शिष्या श्री उम्मेदकुँवरजी म. की दो शिष्याए हुई—श्री सौभाग्यकुँवरजी म और श्री जतनकुँवरजी म। ये दो सतियाँ विद्यमान है।

(३) **बालब्रह्मचारिणी श्री सुगनकुँवरजी महाराज**—निवास स्थान—माङ्गरोल (हाडोती)। दीक्षा स १९६४ माघ शुक्ल ५, माङ्गरोल मे। आप भजनानन्दी सती थी। आपकी दो शिष्याएँ हुई—(१) सेवाभाविनी श्री मैनकुँवरजी म —जन्मस्थान काटपाडी (दक्षिण) या धुलेट। १५ वर्ष की आयु मे स २००१, माघ शुक्ल ५ को खाचरोद मे दीक्षा। (२) विदुषी श्री कौशल्याजी म —आप मैनकुँवरजी म की लघु भगिनी है। १४ वर्ष की आयु मे स २००५ कार्तिक सु० ४ शुक्रवार को दीक्षा। आप दोनो धर्म प्रचार करती हुई विचरण कर रही हैं। इनकी भी कुछ शिष्याएँ हुई है।

(४) **श्री सूर्यकुँवरजी म.**—ताल ग्राम। मेहता परिवार। स १९६५, कार्तिक सु० १२ को दीक्षा ताल मे।

(५) **व्याख्यात्री श्री मानकुँवरजी महाराज**—ताल ग्राम। श्री खूबचन्दजी भरगट की सुपुत्री। स १९६५, अगहन वि० ४ को, (६) **श्री लौजांजी महाराज** के सग, गङ्गधार मे दीक्षा।

(७) **बा० ब्र० प० श्री चाँदकुँवरजी महाराज**—आपका परिचय आगे दिया गया है। आपकी तृतीय शिष्या श्री गुमानकुवरजी म (जोधपुर दी स २००८) होनहार साध्वी थी। पर मोटर एक्सीडेंट से देहान्त हो गया।

(८) **तपस्विनी श्री सुन्दरकुँवरजी महाराज**—जन्म स्थान—कुशलगढ। सुसराल—खवासा। पति का वियोग हो जाने से ससार से विरक्ति। पञ्चवर्षीय पुत्र रखबचन्दजी वागरेचा की ममता छोडकर, स १९६८ पौष विदी आठम को, लगभग २५ वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की—

खवासा मे। २४ या २५ मासक्षपण किये तथा और भी अनेक तरह की तपस्याएँ की। स २००३ मे गुरुदेव प श्री सूर्यमुनिजी म के सान्निध्य मे संथारापूर्वक थान्दला मे देहत्याग किया। आपकी तीन शिष्याएँ—(१) व्या० श्री फूलकुँवरजी म, २) श्री सरसकुवरजी म, (३) श्री दीपकुँवरजी म।

(९) क्षमाशीला श्री राजकुँवरजी महाराज—जन्मस्थान—कुशलगढ। २८ वर्ष की आयु मे, स १९६९ अगहन वि० १ सोमवार थान्दला मे दीक्षा।

(१०) श्री केशरजी महाराज—डग ग्राम। ४० वर्ष की आयु मे स १९७२ पौष सु० १० को झालावाड मे दीक्षा। भद्र परिणामी।

(११) व्या० श्री कस्तुराजी महाराज—जन्मस्थान इन्दोक। निवास—डग। ३० वर्ष की आयु मे स १९७२, पौष सु० १० को दीक्षा। आपकी चार शिष्याए—(१) श्री कञ्चनजी म (डग) (२) श्री सूरजकुवरजी म (डग), (३) श्री सूरजकुवरजी म (आगर) और (४) श्री छोटे केसरजी म (आगर)।

(१२) श्री नजरकुँवरजी महाराज—स्थान उज्जैन। भटेवरा जातीय। दीक्षा—२५ वर्ष की आयु मे स १९७२, पौष सु० १०। सेवाभावी।

(१३) तपस्विनी श्री अचरजकुँवरजी महाराज—जयपुर-निवासिनी। वि स १९७६, माघ वि ११ को दीक्षा २४ वर्ष की आयु मे।

(१४) व्या. श्री वल्लभकुँवरजी महाराज—जोधपुर-निवासिनी। चार शिष्याएँ।

(१५) व्या. सेवाभावी श्री छोटे वल्लभकुँवरजी महाराज।

(१६) सेवाभावी श्री कुन्दनकुँवरजी महाराज—बाँसवाडा। पिता—कस्तूरचन्दजी नगावत, माता चुन्नीबाई। शादी बाजना के नाहर परिवार मे। दीक्षा—२४ वर्ष की आयु मे स १९८१, चैत सुदी १०।

(१७) श्री यशकुँवरजी महाराज—जन्म—देवास। स्थान—उज्जैन। स १९८४ चेत विदी इग्यारस को ३२ वर्ष की आयु मे दीक्षा।

(१८) श्री सागरकुँवरजी महाराज—आप सुखेडा निवासिनी थी। चार पुत्रो को छोडकर दीक्षा ली थी।

इन मे से कई साध्वियो का देहान्त हो गया है।

(६)

श्री टीबूजी महाराज और उनका साध्वी-समुदाय

टीबूजी महाराज का रतलाम-निवासी सुराना कुटुम्ब मे जन्म हुआ था। पिता श्री माणकचन्दजी जैन और माता हीराबाई थी। आपके लग्न पिपलोदा के प्रसिद्ध एव समृद्ध घराने मे, १४ वर्ष की आयु मे हुआ था। आपके पति का नाम बालचन्दजी था। टीबूबाई उमङ्गो से भरा दिल लेकर, श्वसुर-गृह गई। परन्तु कुछ ही समय मे उनकी आशाएँ निराशा के आँसुओ मे बदल गई। सासू को आप न जाने क्यो अप्रिय हो गई। टीबूबाई के पति ने सासू के बहकाने से उनका परित्याग कर दिया। टीबूबाई रतलाम मे अपने भाई के यहाँ परित्यक्त जीवन बिताने लगी। पति से परित्यक्ता होने पर भी आपका जीवन गौरवमय रहा। आपने अपने भविष्य का जीवन बनाने के लिए श्रम का सहारा लिया। आप 'चुनडियाँ' बाँधने का कार्य करने लगी और अपने भाई के सन्तान सौभाग्यमलजी सुराना आदि को मातृत्व का दुलार देने लगी। भाई की भी बहिन के प्रति पूरी प्रीति थी। टीबूबाई ने इन दु ख के क्षणो को दु खमय माना ही नही। वह कर्मठ श्रम मे रत रहने वाली साहसी महिला थी।

टीबूबाई कभी-कभी स्थानक भी जाती थी। वहाँ कभी उनके दौर्भाग्य की चर्चा छिड जाती तो कोई चतुर बहिन उन्हे सलाह दे देती—'बहिन! ऐसे जीवन से तो साध्वी-जीवन अपनाकर आत्मकल्याण की साधना करना क्या बुरा है?' टीबूबाई को ये वचन बहुत कडवे लगते। वे मन ही मन ऐसी बातो से अकुला जाती। किसी-किसी को उत्तर भी दे

प्रवर्तनी—
पं. श्री सज्जनकुवरजी महाराज

जन्म — स्व २०३०
जावरा — इन्दौर
पृष्ठ २९३

प्रवर्तिनी स्व श्री टीबूजी महाराज

जन्म सवत् १९४१ — दीक्षा सवत् १९५९
स्व सवत् २००१ — पृष्ठ २३०

देती—'क्यो दीक्षा लेलूँ ? पति ने परित्याग कर दिया, क्या इतनी सी बात मात्र से मै अनाथ हो गई ! क्या मेरे हाथ श्रम नही कर सकते है ! मुझ मे शक्ति है—मेहनत-मजदूरी करके भी अपना जीवन गुजार सकती हूँ ।' वे स्थानक जाना भी कम कर देती ।

टीबूबाई साहसी नारी थी । फिर भी, कभी-कभी उनके हृदय मे टीस अवश्य उठती थी । धर्म-आराधना से ही उनकी वह टीस कम होती थी । अत. कुछ दिन बाद पुन. धर्म-स्थान मे उन्हे आना ही पडता था । उन्हे ज्ञान सीखना अच्छा लगता था । भगवान की वाणी प्रिय लगती थी । पर दीक्षा की बात उन्हे अच्छी नही लगती थी । पर ज्ञानाभ्यास से यह ग्रन्थि भी विच्छिन्न हो गई । अब उन्हे लगने लगा, कि—दीक्षा अनाथ, दुर्बल या श्रमचोर व्यक्ति नही लेता, परन्तु चक्रवर्ती भी छह खण्ड का राज्य त्याग करके, आत्म-साधना के मार्ग पर चलते है । तीर्थकर भी अनुपम दिव्य वैभव का त्याग कर और सयम के पुनित मार्ग पर चलकर, स्व-पर का कल्याण करते हैं । अब टीबूबाई को सयम मार्ग आत्म-गौरव का मार्ग प्रतीत होने लगा और आखिर उन्होने दीक्षा लेने का निर्णय कर ही लिया ।

स १९५९ मे श्री लच्छीजी म की शिष्या श्री सिरेकुँवरजी म के पास आपने उत्साह से १८ वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की । वे ज्ञानाभ्यास करने लगी । एक बार वे किसी विद्वान् श्रावक से अभ्यास कर रही थी । किसी बात पर आपने हँस दिया । श्रावक नाराज होकर बोले—'क्या ही-ही कर के हँसती हो ! कुछ अपने साधु जीवन का भी ध्यान है कि नही ।' आपकी उन्होने बहुत कठोर शब्दो मे भर्त्सना की । परन्तु आपने चुपचाप शान्ति से उनकी बात सुन ली और मन मे विचार किया कि—फिर कभी ऐसी त्रुटि न हो, इस बात का ध्यान रखूँगी । श्रावक अध्ययन करवा कर, जब जाने लगे तब उनसे क्षमा मागते हुए बोले—'आर्ये ! क्षमा करना । मैने आपकी आशातना करने के लिए बात नही कही । परन्तु मुझे अपना कर्तव्य निभाना था । अत आपको कुछ कठोर बात कह गया । फिर भी आपका पद ऊँचा है ।' तब सतीजी बोली—

'कोई बात नही। आपने हमारे हित के लिये ही कहा था और अभी तो आप ज्ञानदान कर रहे हैं।'

आपने अच्छा सैद्धान्तिक-अभ्यास किया। अपने समूह मे आप विशिष्ट साध्वी मानी जाने लगी। आप प्रवचन कला मे भी पटु हो गई। आपके प्रवचनो का अच्छा प्रभाव होने लगा। राह चलते व्यक्ति भी आपके प्रवचनो मे आ बैठते थे। आपको प्रवर्तिनी-पद भी प्राप्त हो गया। आपका सम्प्रदाय मे विशिष्ट स्थान था। आपने दक्षिण-प्रदेश मे भी विचरण किया। आपकी कई शिष्याएँ एव प्रशिष्याएँ हुई।

आपका स्वभाव विनीत था। जब आचार्य श्री माधवमुनिजी म की कारणवशात् यह आज्ञा हुई, कि—रतलाम मे सतियाँ व्याख्यान दे, तब कोई भी सतियाँ इसके लिए तैयार नही हुई। क्योकि उस समय गाँव मे किन्ही सन्त के विद्यमान होने पर, सतियाँ कही भी व्याख्यान नही दे सकती थी—ऐसी पद्धति थी और उस समय अन्य स्थानको में अन्य सम्प्रदाय के सन्त विराजमान थे। अत. बडी-बडी सतियो को भी उस पद्धति से प्रतिकूल जाने का साहस नही हुआ। परन्तु जब श्री टीबूजी म को आचार्य श्री की आज्ञा का पता चला, तब वे बिना किसी हिचकिचाहट के पूज्य श्री की आज्ञा का पालन करने के लिए तत्पर हो गई और उन्होने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा का पालन किया। परन्तु उनके इस कार्य से सम्प्रदाय के कुछ प्रमुख श्रावक असन्तुष्ट हो गये और उन्होने सतीजी के प्रति वन्दना-व्यवहार बन्द कर दिया। पर सतीजी ने इसकी परवाह नही की। इस बात का पता श्री सौभाग्यमलजी ललवानी को लगा। उन्होने उन श्रावको से पूछा—'दण्ड आज्ञा पालने का होता है या नही पालने का?' अन्य श्रावको ने उत्तर दिया—'दण्ड तो आज्ञा नही पालने का ही दिया जाता है।' तब ललवानीजी ने कहा—'श्री टीबूजी महाराज ने व्याख्यान देकर पूज्य श्री की आज्ञा का पालन किया है न! फिर आपने उनके प्रति वन्दना-व्यवहार क्यो बन्द किया।' आखिर वे श्रावक लज्जित हो गये और उन्होने अपनी त्रुटि सुधार ली।

आप पिछली आयु मे तीव्र रोग से आक्रान्त हो गई। अत दो

तीन वर्ष तक आप रतलाम मे विराजमान रही। वि स २००१ पौ वि ८ को आप ने दो घण्टे के अनशनपूर्वक इस नश्वर देह का परित्याग कर दिया। आपको कई थोकडे, शास्त्र, स्तवन-सज्झाय, कवित्त-दोहे, श्लोक आदि कण्ठस्थ थे। आपको आगमो का स्वाध्याय करना अति प्रिय था।

आपकी आठ शिष्याएँ और कई प्रशिष्याएँ हुई—

(१) **प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी महाराज** आपका जन्म जावरा मे हुआ। पिता का नाम श्री मूलचन्दजी और माता का नाम श्री धापीवाई था। विवाह के वाद तरुणवय मे ही आपके पति का देहान्त हो गया। प्रवर्तिनी श्री टीवूजी म. के उपदेश से प्रेरित होकर, आपने प्रव्रज्या अगीकार की। आप विचारशीला एव चारित्रसम्पन्न साध्वी थी। आपने यथाशक्ति ज्ञानार्जन किया। श्री टीवूजी म के देहान्त के वाद रतलाम-सघ ने आपको प्रवर्तिनी पद पर स्थापित किया। कुछ वर्षो तक आप विचरण करती रही। कुछ घण्टो के सथारे सहित आपने रतलाम मे देह त्याग दिया।

आपकी एक शिष्या शृङ्गारकुवरजी म (सरसी) का देहान्त हो चुका है और दो शिष्याएँ एव कुछ प्रशिष्याएँ है। शिष्याएँ—(१) थान्दलावाले श्री गुलावकुँवरजी म और (२) सेवाभावी व्याख्यात्री श्री केसरकुँवरजी म.। इनकी क्रमश एक और तीन शिष्याएँ हैं—(१) श्री सज्जनकुँवरजी म, (२) श्री दिलमुखकुँवरजी म, (३) श्री गुलाव कुँवरजी म और (४) श्री प्रमोदकुँवरजी म।

(२) **तपस्विनी श्री चांदकुंवरजी महाराज**—शिवगढ-निवासिनी। मासक्षपण, पदरह अठाइयाँ आदि कई तपश्चर्याएँ की। रतलाम मे प्रत्याख्यानपूर्वक शरीर त्यागा। आपकी तीन शिष्याएँ हुई—(१) श्री सुन्दरकुँवरजी म—सैलाना की थी और सैलाना मे ही दीक्षा ग्रहण की थी। रतलाम मे आपका देहान्त हुआ। इनकी भी एक शिष्या थी—श्री सुगनकुँवरजी म (लुणारवाला)। (२) सेवाभावी श्री भुरजी म—रामपुरा-निवासिनी। शुजालपुर मे दीक्षा।

(३) **श्री तेजकुँवरजी महाराज**—आप श्री टीबूजी म की तृतीय शिष्या थी। आपकी दो शिष्याएँ—(१) श्री ताराकुँवरजी म. और (२) श्री सुन्दरकुँवरजी म (दक्षिण)। श्री ताराकुँवरजी की एक शिष्या थी—श्री सुन्दरकुवरजी म (दक्षिण)।

(४) **सेवाभावी श्री केसर ु रजी महाराज**—जन्मस्थान-पचेड। पिता—करमचन्दजी नवलखा। माता—नाथीबाई। विवाह पचेड मे ही रखबचन्दजी के साथ हुआ। एक कन्या गुलाबबाई का जन्म हुआ। योग्यवय मे गुलाबबाई के लग्न किये। परन्तु कुछ काल बाद ही पुत्री विधवा हो गई। माता को आघात लगा। श्री टीबूजी म. के उपदेश से प्रेरित होकर, स १९७४, ज्येष्ठ सु० ९ को पचेड मे ही माता-पुत्री दोनो ने, श्री टीबूजी म की शिष्या के रूप मे प्रव्रज्या अगीकार की। प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमलजी म के ज्येष्ठ शिष्य श्री केशरीमलजी म आपके भ्राता थे। आप भद्र परिणाम वाली साध्वी थी। आप तपस्विनी भी थी। आपने ८, ९, १९ आदि तपश्चर्या भी की थी। सम्वत् २०१३, कार्तिक सु० २ को ताल मे सोलह घण्टे के सन्थारे सहित देह त्याग किया।

(५) **प्रवर्तिनी श्री गुलाबकुंवरजी महाराज**—आप श्री टीबूजी म की पाँचवी शिष्या है। आपका परिचय आगे दिया गया है।

(६) **शान्त स्वभावी श्री गुलाबकुवरजी महाराज**—श्री टीबूजी म की छट्टी शिष्या। खाचरोद निवासिनी। पति का नाम पन्नालालजी लोढा। पति के देहान्त के बाद दीक्षा। उज्जैन मे देहत्याग। आपकी एक शिष्या थी—श्री वल्लभकुँवरजी म। श्री वल्लभकुँवरजी म का थाँदला के गादिया परिवार मे जन्म हुआ था और लोढा परिवार मे विवाह। पति की विद्यमानता से दीक्षा और रतलाम मे देह त्याग।

(७) **सेवाभावी श्री सम्पतकुंवरजी महाराज**—जन्मस्थान थाद-ला। पिता सागरमलजी बोथरा। माता माणीबाई। स. १९८८ के फागुन मे दीक्षा। आपके पास काफी सम्पत्ति थी। आपने अपना एक

मकान, दीक्षा लेते समय थान्दला सघ को अर्पित किया था। आप सरल प्रकृतिकी साध्वी थी। सं २०२८ मे आपका रतलाम मे देहान्त हो गया।

(८) **शान्त स्वभावी श्री रामकुंवरजी महाराज**—श्री टीवूजी म. की लघु शिष्या। दवाडी निवासिनी। गृहवास मे श्राविका-धर्म का सुन्दर पालन। गुरुदेव पण्डित श्री सूर्यमुनिजी म. के उपदेश से वैराग्य प्राप्ति। स १९९२ दवाडी मे ही दीक्षा ग्रहण की। आप वहुत ही सहिष्णु स्वभाव की साध्वी थी। आपने धार के समीप नागदा ग्राम मे सन्थारा-पूर्वक समाधि की आराधना करते हुए, देह-त्याग किया।

श्री टीबूजी महाराज की अन्य साध्वियाँ

सेवाभावी श्री सुन्दरकुंवरजी महाराज—आपका जन्म उज्जैन के समीपस्थ ग्राम मे हुआ था। पिता का नाम श्री झुम्बरलालजी और माता का नाम मैनावाई था। मौजीलालजी जैन के साथ सुन्दरवाई के लग्न हुए थे। पति-पत्नी दोनो धर्म-प्रेमी थे। लग्न के कुछ समय पश्चात् दम्पति के हृदय मे वैराग्य-भावना जागृत हुई। परन्तु कुटुम्बीजनो से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त नही हो सकी। सुन्दरवाई के माता-पिता का देहान्त हो गया था। अत अपने भाई-वहन (नगीनलालजी, वावूलालजी आदि) की देखभाल भी आप ही करती थी। परन्तु स १९८४ मे आपके पति का देहान्त हो गया। आपकी वैराग्य-भावना अति प्रवल हो गई। पति के देहान्त के दो माह वाद ही आपने स १९८४, मृगसर वदी ७ को थान्दला मे श्री टीवूजी म की शिष्या श्री गुलावकुंवरजी म. (पचेट वाले) के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। वाद मे आपने अपने वडे भाई को भी इस मार्ग की ओर वढने की प्रेरणा दी। दोनो भाई दीक्षित होकर पण्डित श्री नगीनचन्द्रजी म और प्रियवक्ता श्री विनयचन्द्रजी म. के रूप मे प्रसिद्ध हुए।

आपमे वैयावृत्य का गुण विशिष्ट था। आप विना किसी भेदभाव से सतियो की सेवा करती थी। स २०१३ के वाद आप अपनी गुरानीजी के सग विहार करती हुई मालवा से खानदेश की ओर पधारी कुछ वर्षो

तक उधर विचरण किया। फिर सम्यग् चारित्र की आराधना करते हुए सं. २०२३ मे देह त्याग दिया।

क्षमामूर्ति श्री सोहनकुवरजी महाराज—बडनगर के समीपस्थ ग्राम मे जन्म। पिता नन्दरामजी। माता मैनाबाई। श्री गुलाबकुँवरजी म. के उपदेश से वैराग्य। दीक्षा लेने के कुछ समय पहले आप पूज्यपाद श्री ताराचन्द्रजी म. के दर्शनार्थ गई, तब आपने महाराज श्री से सविनय कहा—'गुरुदेव! मुझे एक त्याग करा दो।' महाराज श्री—किसका त्याग करना है?' आपने कहा—'जिन्दगी भर क्रोध करने के त्याग करा दीजिए।' महाराज श्री ने कहा—'बहिन यह त्याग सहज नही है। एक दिन के लिए तो ऐसा निभ सकता है। पर जीवन भर के लिए ऐसा नियम कैसे कराया जा सकता है! तुम इसमे मानसिक विवेक रखा करो।' फिर आपकी दीक्षा स १९९० वै शु मे कराही कस्बा (निमाड) मे हुई। आपने जीवन भर क्रोध-त्याग का नियम निभाया। किसी के संग ऊँचे स्वर मे बोली तक नही। स २०१७, वैशाख मे चिखल वाड से मालेगाँव जाते हुए, माल ट्रक से दुर्घटना हो गई। ६ घण्टे बाद मालेगाँव मे सन्थारापूर्वक देह त्याग दी।

षष्ठ अध्याय

रतलाम शाखा के
विद्यमान मुनि एवं साध्वियाँ

– मालव केसरी प्रसिद्ध-वक्ता पं. श्री सौभाग्यमलजी म.

जन्म मवत् १९५५
सरवाणिया (नीमच)

दीक्षा मवत् १९६७
खाचरोद

रतलाम शाखा मे अभी २२ सन्त विद्यमान हैं।* गण मे १७ सन्त है और गण के बाहर ५ सन्त। गण के बाह्य सन्तो मे ४ सन्त एक साथ विचरते है और एक सन्त प मथुरामुनिजी सुखेडा गॉव मे स्थिरवास हैं। गणस्थित मुनियो मे तीन मुनि प्रमुख हैं—प्रसिद्ध वक्ता मालवा केसरी श्री सौभाग्यमलजी महाराज, प्रवर्तक प श्री सूर्यमुनिजी महाराज और प्रिय वक्ता श्री विनयचन्दजी महाराज। इनकी सक्षिप्त जीवनगाथा क्रमश दी जा रही है।

प्रसिद्ध वक्ता पण्डित श्री सौभाग्यमलजी महाराज

मालव केसरी प्र वक्ता प श्री सौभाग्यमलजी म इस काल के प्रसिद्ध जैनसन्तो मे से एक है। आप प मत्री मुनि श्री किशनलालजी म के ज्येष्ठशिष्य है। आपका जन्म, नीमच के समीप स्थित सरवाणिया ग्राम के निवासी चौथमलजी फाँफरिया की धर्मपत्नी केशरबाई (मोतीबाई) की कुक्षि से स १९५५ मे हुआ था। आपके दो बडे भाई-नानालालजी और गेदमलजी क्रमश मोरवणग्राम और रतनपुर की खेडी मे गोद गये थे। बालक सौभाग्यमलजी की छोटी अवस्था मे ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। श्री चौथमलजी ने अपनी पूँजी सट्टे मे गँवा दी। अत वे लघु बालक सौभाग्य को सग लेकर, आजीविका की खोज मे मन्दसोर आये। परन्तु वहाँ उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। इसलिए वे जावरा आये। यहाँ भी उन्हे निराश होना पडा। अब चौथमलजी रतलाम आये। वहाँ पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म की सम्प्रदाय के प्रभावशाली आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म चातुर्मासार्थ विराजमान थे। अत वहाँ दर्शनार्थियो के लिए भोजन शाला खोली गई थी। चौथमलजी को वहाँ नौकरी मिल गई। पिता-पुत्र आनन्द से रहने लगे। परन्तु अभी दुर्भाग्य ने उनका पीछा नही छोडा था। चौथमलजी रोग से पीडित हो गये। वहा के साधर्मी बधुओ ने उनका उपचार करवाया। वे स्वस्थ हुए। पुन कार्य मे लग गये। परन्तु कुछ समय बाद ही रोग ने पुन आक्रमण किया। इस बार चौथमलजी

---

* अब रतलाम शाखा के २१ सत ही विद्यमान है। क्योंकि एक सन्त प श्री विनयचन्दजी महाराज का देहान्त हो चुका है।

स्वस्थ न हो सके और अपने लघु पुत्र को असहाय छोडकर, इस जगती से सदा के लिए रवाना हो गये। अबोध सौभाग्य मे अभी यह समझने की शक्ति नही थी, कि—मैं निराधार हो गया हूँ। बालक को रतलाम के प्रसिद्ध श्रावक इन्दरमलजी कावडिया ने अपने यहाँ रखा। परन्तु एक दिन बालक को, एक ब्राह्मण ने फुसलाकर अपने सग ले लिया। वह बालक को लेकर खाचरोद आया और बालक को वही छोडकर, अचानक न जाने कहा पलायन कर गया।

बालक को भूख लगी। वह इधर-उधर देखने लगा। ऐसी स्थिति मे उसे खाचरोद के प्रतिष्ठित गृहस्थ मियाचन्दजी खीवसराने देखा। उन्होने परिस्थिति को जाना और बालक सौभाग्य को अपनी छत्रछाया मे ले लिया।

वे उन्हे अपने घर ले आये। उनके घर के बालको मे सौभाग्य मलजी का पालन-पोषण होने लगा। सौभाग्यमलजी बचपन मे बडे नटखट थे और पढने की रुचि भी नही थी। वे प्राय. अपने नटखटपन के चमत्कार दिखाया करते थे। अत उसके परिणाम स्वरूप दण्ड भी मिलता था। आप बारह वर्ष के लगभग की आयु के थे, तब आपको पूज्य श्री नन्दलालजी म के दर्शन हुए। आप श्री किशनलालजी म के द्वारा स १९६७, वैशाख कृष्णा ३ को श्री मियाचन्दजी खीवसरा की अनुज्ञा से दीक्षित हो गये। सेठजी के सुपुत्र चान्दमलजी आदि का आप पर अति प्रेम था। अत दीक्षा गुप्त रूप से ही हुई। दीक्षा के बाद ही आपको विद्याध्ययन की रुचि हुई। आपने जो भी शिक्षा पाई, वह दीक्षित अवस्था मे ही पाई।

आपने दीक्षा के बाद अनेक प्रदेशो मे विहार किया। आपने वक्तृत्व-कला मे दक्षता प्राप्त की। आप वाणी के जादूगर है। जनता पर आपके प्रवचनो का जादुई प्रभाव होता है। इसलिए लोग आपको प्रसिद्ध वक्ता, मालव केशरी, महाराष्ट्र-विभूषण आदि विशेषणो से युक्त स्मरण करते है। आपकी पुण्य-प्रकृति विशिष्ट है। आपकी व्यवहार-नीति या पीठ पीछे विरोध करने वाले आपके सामने आने पर विरोधी-रुख

व्यक्त नही कर पाते हैं। आपकी गुरुभक्ति तीव्र रही। आप अपने गुरुदेव को 'ईश्वर' सम्बोधन से पुकारते थे। आपके समान गुरुभक्ति करने वाले विरले सन्त मिलेगे। आपने स्थानकवासी जैन श्रमणो के सगठन के लिए भी विशेष परिश्रम किया। पर आपने कोई पद नही लिया। आपकी वाणी और स्वभाव मधुर है। आप जहा कही जाते है, आपके भक्त आपके पास जुटे ही रहते हैं। आप लोगो की दानवृत्ति को उत्तेजित करते रहते है। लोगो के पारस्परिक कलह-प्रसगो को सुलझाने के क्षण प्राय: आपके पास आते ही रहते है। कभी आपमे वकील का व्यक्तित्व दिखाई देता है तो कभी जज का।

आपके २१ या २२ शिष्य हुए। श्री केशरीमलजी म, शतावधानी प श्री केवलमुनिजी म, तपस्वी रूपचन्दजी म, श्री कुन्दनमलजी म. तथा श्री नगीनमुनिजी म आपके ही शिष्य रत्न थे। श्री सागरमुनिजी श्री मथुरामुनिजी, श्री हुकममुनिजी, श्री मगनमुनिजी, श्री महेद्रमुनिजी और श्री प्रदीपमुनिजी म आपके विद्यमान शिष्य है। आपके तीन शिष्य तपस्वी श्री लालचन्दजी म श्री मानमुनिजी म, श्री कानमुनिजी और प्रशिष्य श्री पारसमुनिजी म सम्प्रदाय से अलग विचर रहे है। श्री लालचन्दजी म पिता है शेप तीन मुनि पुत्र। श्री लालचन्दजी म की दो पुत्रियाँ—(मैंनाकुँवरजी और कौशल्या कुँवरजी म)

श्री सौभाग्यमलजी म का विस्तृत जीवन चरित्र 'जीवन और विचार' नाम की पुस्तक मे प्रकाशित हो चुका है। श्रेणिक चरित्र, चन्द चरित्र आदि आपकी पद्य कृतियाँ और 'सौभाग्य सुधा' व्याख्यान-सग्रह है। आपके तत्वावधान मे लिखित 'आचाराग सूत्र-विवेचन' भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

आपकी प्रेरणा से कई सस्थाए स्थापित हुई है। गाँधीजी, राजाजी जवाहरलाल नेहरू आदि राजनेताओ से आपका समय-समय पर समागम भी होता रहा है। यो आपको सघ-ऐक्य के पुरस्कर्त्ता के रूप मे भी याद किया जाता है।

कवि प्रवर्तक पण्डित श्री सूर्यमुनिजी महाराज

आलोट प रे के सन्निकट नागदा ज और कोटा के बीच स्थित एक बडी बस्ती है। वह पहले देवास रियासत का ग्राम था। वहाँ वच्छराजजी पीपाड़ा नामके एक श्रावक रहते थे। उनकी पत्नी का नाम फूलाँबाई था। दम्पति के कई सन्ताने हुई। पर जीवित नही रही। स १९५८, वैशाख पूर्णिमा को एक बालक का जन्म हुआ। बालक का नाम रखा गया—भेरुलाल। माता-पिता को बालक बडा प्यारा था, लाडला था, क्योकि इस बालक ने बच्चे के लालन-पालन की उनकी इच्छा पूर्ण की थी। इस बच्चे के बाद उन दम्पति के एक-दो सन्तान और हुई। पर वे जल्दी ही चल बसी। भेरुलाल पाच-छह बरस के हो चुके थे।

मातृ-वियोग—भेरुलाल शैशव को पार कर चुके थे और बाल अवस्था से गुजर रहे थे। बालक की समझ कुछ-कुछ विकसित हो चुकी थी। उनमे बाल-सुलभ नटखटपन भी था। जैसे बच्चो की माता पर निर्भर रहने की विशेष वृत्ति रहती है, वैसे ही भेरुलाल के बाल हृदय मे भी माता के प्रति विशेष प्रीति थी। माता का तो उनके प्रति विशेष दुलार था ही। क्योकि उसके वे नयनतारे जो थे। परन्तु बालक के भाग्य मे माता का प्रेम बदा नही था। फूलकुँवरबाई अकस्मात् अस्वस्थ हो गई। उस बीमारी से वह उठ न सकी। अपने हृदय मे पुत्र के दुलार की अपूर्ण कामनाए लेकर वह इस समार से चल बसी। सात साल का पुत्र यह तो जानता था, कि जन्म के समान मरना भी एक क्रिया है और मरने के बाद उस मरनेवाले को न जाने क्यो जला देते है या गाढ देते हैं। अत वह मरने वाला वापिस आ नही सकता है। बालक को माता के वियोग से बडा दु ख हुआ। वह कभी-कभी समसान तक चले जाते थे और वहाँ बैठकर, न जाने क्या सोचते थे।

अब बालक के लिए माता या पिता सब कुछ पिता ही थे। वच्छराजजी बालक का बडा ध्यान रखते थे।

पिता की विरक्ति—पत्नी के वियोग के समय वच्छराजजी की उम्र लगभग अडतीस वर्ष की थी। उन्होने अपनी सन्तानो को भी जाते देखा

प्रवर्तक कविवर्य—

प श्री सूर्यमुनिजी महाराज
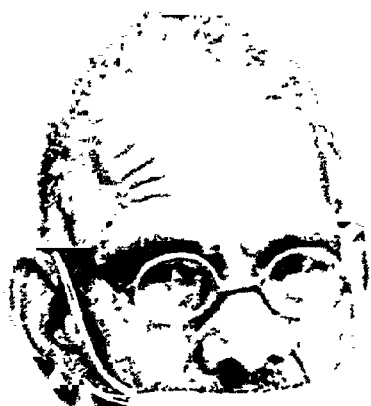
जन्म संवत् १९५८
(आलोट)

दीक्षा संवत् १९६८
(उज्जैन)

पृष्ठ २४२

था और अपनी पत्नी को भी जाते हुए देखा। उन्हे मानव–शरीर पानी के वुद्‌वुदे जैसा लगा। पानी का वुद्‌बुदा बना और फूटा। क्या विश्वास इस वुद्‌बुदे जैसे शरीर का? क्या पता कव फूट जाय? बिजली के चमत्कार जैसे क्षणिक इस मानव-तन से शाश्वत सुख के स्थान की नीव डाल लेने मे ही वुद्धिमानी है। वच्छराजजी की विरक्ति के पोषक के रूप मे सन्त-समागम भी प्राप्त होता रहता था। सन्तो का आगमन आलोट मे प्राय होता रहता था। उन्हे विरक्त जान कर, सन्तो ने उन्हे अपना शिष्य बनाने के लिए कुछ प्रलोभन भी दिये। परन्तु आपका झुकाव पूज्य श्री नन्दलालजी म की ओर विशेष था। आपके पिता जवरचन्दजी ने पूज्य श्री मोखमसिंहजी म से धर्मज्ञान पाया था और आपने पूज्य श्री नन्दलालजी म से। अत आपका उन्ही के परिवार के सन्तो के प्रति विशेप अनुराग था। उन्होने अभी तक किसी के सामने अपना निर्णय प्रकट नही किया था। पर वच्छराजजी ने पक्का निर्णय कर लिया था गृहत्याग का। वालक भेरुलाल को भी अपने सग साधना–मार्ग पर ले जाना चाहते थे और जैसे की वालको की प्रकृति होती है, कि वडो के कार्य का अनुसरण करना, वैसे ही वालक भेरुलालजी भी सहज धर्मभाव से पिता के सग साधु वनने के लिए राजी हो गये। यह वात फैलने लगी। वच्छराजजी की तीन बहिने थी। तालवाली वहिन चम्पाबाई के पास ये समाचार पहुँचे और वह तुरन्त भाई के पास आई। वह वच्छराजजी को उपालम्भ देने लगी।

जव वच्छराजजी ने उसकी वात पर ध्यान नही दिया तव वह नाराज होकर वोली—'मेरी वात नही सुनते हो! इस छोटे से वच्चे को छोड कर कैसे साधु वनोगे?' वच्छराजजी ने शाति से कहा—'यह भी मेरे साथ ही आयेगा।' वहिन को वडा गुस्सा आ गया। वह आक्रोश मे वोली—'क्या तुम मेरे पिता का नाम डुवाना चाहते हो?' वच्छराजजी वोले—'नही, मैं तो नाम रखना चाहता हू और यो देखो तो किसका नाम रहा है!' वच्छराजजी की इच्छा अपने मकान को स्थानक के रूप मे वना देने की थी। उनकी वहिन ने 'मैं नाम रखना चाहता हू'-इस वात से उनका इरादा जान लिया। उसके कान पर पहले भी इसकी भनक पड

चुकी थी। चम्पाबाई ने एक चतुराई की। वह वहाँ रह गई। अपने भतीजे पर लाड-प्यार पहले से ही वह दिखाती थी और अब उसने भतीजे पर प्रेम की वर्षा कर दी। फिर भतीजे से इधर-उधर से ढुंढवा कर मकान का कबाला (पट्टा) अपने अधिकार मे कर लिया। जब वच्छराजजी ने यह बात जानी, तब भेरुलालजी से कहा—'अरे तुमने यह क्या किया ?' फिर बहिन से कहा—'बहिन ! मुझे वह कबाला दे दो। मुझे मकान स्थानक मे देना है।' बहिन गुस्सा दिखाकर बोली—'नही, मैं इस प्रकार अपने बापका नाम बिल्कुल डूबते हुए नही देख सकती। मकान का तुम स्थानक बनाना चाहते हो ? यह मैं नही होने दू गी।' उन्होने बहिन को समझाया, पर वह टस से मस न हुई। इस घटना से वच्छराजजी का वैराग्य और पुष्ट हो गया।

गुरुदेव के पास—वच्छराजजी की अपने मकान को स्थानक के रूप मे दान मे देने की इच्छा पूर्ण न हुई। उन्होने अब अपने गुरुदेव के समीप जाना उचित समझा। वे स १९६७ मे अपने पुत्र भेरुलालजी तथा अपने मित्र जीतमलजी और उनके दो पुत्रो (कन्हैयालालजी और हीरालालजी) के सग पूज्य श्री नन्दलालजी म के समीप खाचरोद आये। उस वर्ष का श्री ताराचन्दजी म आदि सन्तो का चातुर्मास बदनावर था और जीतमल जी उनके शिष्य बनना चाहते थे। इसलिए पाँचो वैरागी बदनावर मे उनके पास रहे। वहा उस वर्षावास मे वैरागियो की खूब धूम रही और लोगो मे अच्छा उत्साह रहा। वैरागी श्रमणोचित क्रियाओ का ज्ञान और आवश्यक ज्ञान का उपार्जन करने लगे। वर्षावास के बाद बखतगढ मे उनकी दीक्षा स १९६७ महासुदी ५ को करने का निर्णय लिया गया।

दीक्षा की तैयारी और विघ्न—दीक्षा के इस निर्णय से आसपास के क्षेत्रो मे प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गई। पूज्य श्री और अन्य सन्त-सतीवर्ग बखतगढ मे पधार गये थे। लोगो मे अपूर्व उत्साह था। परन्तु कुछ विघ्न सतोषियो को यह उत्साह का प्रसग रुचा नही। उ होने वहाँ के ठाकुर के कान भरे। दीक्षा-काय मे आगेवान श्री नन्दरामजी डागी थे। ठाकुर ने उन्हे बुलाकर डाँटा। आगेवानो की चतुराई नही चली। दीक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। तीनो बच्चो (भेरुलालजी, कन्हैयालालजी और

हीरालालजी) को महल मे रख लिया गया। सघ मे उदासीनता छा गई। ठाकुर ने उन वच्चो के मामाओ के पास सूचना भेजी। कन्हैया लालजी और हीरालालजी के मामा आये और वे उन्हे ले गये। परन्तु भेरु लालजी के मामा नही आये। वे महल मे एक महीने तक रहे। पर उन्हे वहा अच्छा नही लगा। भोजन मे दूध और रोटी मिलती थी। श्री नदरामजी डाँगी आप पर पुत्रवत् स्नेह करते थे। महल से छुटने पर बालक भेरुलालजी वही रहे। इस प्रसग से वालक के मन की मामा के प्रति रही हुई ममता भी धूल-पुँछ गई। किन्तु नदरामजी डाँगी ने जो स्नेह दिया, वह आप अभी तक याद करते है और श्री नन्दरामजी ने भी वह स्नेह अपने अन्तिम समय तक निभाया तथा उनके पुत्र श्री मूलचदजी डाँगी आदि की भी आपके प्रति वैसा ही भक्ति है।

दीक्षा और प्रथम चातुर्मास—इस घटना के वाद पूज्य श्री धार की ओर पधार गये। वहाँ जीतमलजी ने दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके वाद पूज्य श्री उज्जैन पधारे। वहाँ सवत् १९६८, ज्येष्ठ सु ५ को वच्छराजजी ने अपने पुत्र भेरुलालजी के सग प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। वालमुनि का नाम श्री सूर्यमुनिजी म (या सूरजमलजी म) रखा गया। दस वर्ष की आयु वाले वालमुनिजी श्री सूर्यमुनिजी म अनायास ही लोगो का मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। उस समय श्री सौभाग्यमलजी म आपसे लगभग एक वर्ष वय मे वडे होते हुए भी वाल्यकाल मे ही थे। अत आप दोनो मे खूब पटती थी। वाल मुनियो का यथोचित अध्ययन चलने लगा।

शाजापुर-सघ की ओर से पूज्य श्री के उधर पदार्पण के लिए आग्रहभरी विनती थी। अत पूज्य श्री बालमुनियो और अन्य मुनियो के साथ उधर पधारे। चातुर्मास शाजापुर मे ही व्यतीत करने की स्वीकृति हो गई। पूज्य श्री ने शाजापुर मे प्रवेश किया। जन-जन का मन–मयूर हर्षविभोर होकर नाच उठा। चातुर्मास प्रारम्भ हो गया।

बालमुनि श्री सूर्यमलजी म. का वह प्रथम चातुर्मास था। अभी वच्चे तो थे ही। अभी साधुत्व की पूरी समझ भी नही आई थी। फिर

भी साधु-मर्यादा मे बहुत कुछ समझते थे। पर बाल्य अवस्था अपना प्रभाव दिखा ही देती थी। आप बालसुलभ क्रीडा मे लग जाते थे। उस समय अन्य स्थविरमुनि आपको समझाते—'भाई! आप साधु हैं। अपने को ऐसा नही करना चाहिए।' तब हँसते हुए कहते—'अच्छा, नही करना चाहिए' और आप चुप हो जाते थे।

वहाँ के मुखिया श्रावक थे-सेठ सूरजमलजी पोरवाड। वे सम्पन्न थे परन्तु जो गुण सम्पन्न व्यक्तियो मे विरले ही मिलते हैं, वे गुण आपमे थे। आप दृढधर्मी और उदार हृदय वाले थे। आप मे दान गुण बहुत अधिक विकसित हुआ था। आप बहुत ही गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। आपके पुत्र का नाम राजमलजी था। उस समय वे भी बालक थे। वह इन मुनियो के पास आ जाता था और उनकी बाल-क्रीडा मे सम्मिलित हो जाता था। एक बार बालमुनि और उनमे तकरार हो गई। नौकर ने यह दृश्य देखा। उसने जाकर सेठजी से शिकायत की—'सेठ साहब! बाबूसा छोटे महाराज से कुश्ती लड रहे हैं।' सेठजी ने हँस कर कहा—'अच्छा, महाराज से ही कुश्ती लड रहा है न! कोई बात नही। जाओ तुम अपना काम देखो।' वे श्रावक इतने गभीर प्रकृति के थे, उन्होने इस बात को कुछ भी महत्त्व नही दिया।

स्थविर मुनियो के सिखाने-समझाने पर बालमुनि उसी चातुर्मास मे अपने पद का गौरव समझ गये।

विद्याध्ययन और शास्त्राध्ययन—अब बालमुनि विद्याध्ययन मे लगे। हिन्दी का सामान्य ज्ञान किया। फिर कातन्त्र व्याकरण का कुछ समय तक अध्ययन करने के बाद, लघु-सिद्धांत कौमुदी का अभ्यास प्रारम्भ किया। पर उसका पूरा अध्ययन न कर सके। 'दसवेयालिय' और 'उत्तरज्झण' सूत्र आपने कण्ठस्थ कर लिये और कई थोकडे भी। धीरे-धीरे समस्त सूत्रो के अर्थ का अध्ययन किया। थोकडे सीखने की इतनी लगन थी, कि—रतलाम मे रात्रि मे देर तक सीखते रहते थे और जब भी निद्रा खुलती दुहराना और सीखना प्रारम्भ कर देते थे। पिङ्गल (कविता सम्बन्धी नियम) का अध्ययन तो बाद मे किया, परन्तु तुकबदी करने का बचपन से ही शौक था।

आपका जीवन अध्ययनशील रहा है। अभी भी कुछ न कुछ अध्ययन और नूतन साहित्य-निर्माण चलता ही रहता है।

उग्र विहार और अगले चातुर्मास -आपको लगभग ग्याह् वर्ष की आयु मे ही उग्र विहार का अनुभव हो गया। आपकी दीक्षा को पूरा एक वर्ष भी नही हुआ था, कि—पूज्य श्री ने मारवाड की ओर विहार कर दिया। आप पर पूज्य श्री का वरद हस्त था। पूज्य श्री स्वय अपने हाथों से आपका लोच करते थे और कहानियाँ सुनाते जाते थे। इस प्रकार पूज्य श्री का वात्सल्य समय-समय पर प्रकट होता रहता था। आपका दूसरा चातुर्मास जोधपुर मे हुआ। वहाँ कुछ विशेष अनुभव हुए। उस चातुर्मास के वाद राजस्थान मे ही विचरण हुआ। तीसरा चातुर्मास किसनगढ (राजस्थान) मे हुआ। वहाँ चातुर्मास के पूर्व शास्त्रार्थ का दृश्य देखने को मिला, जिससे आपके हृदय मे ज्ञान की महिमा अंकित हो गई। जव सवेगी साधु, स्थानकवासी सन्तो को रास्ते मे रोक कर प्रश्न करने लगे, तब आपने कह दिया—'यो रास्ते मे क्या पूछते है आप ? वहाँ स्थान पर आकर पूछो तो सब पता चल जाएगा।' इस प्रकार शास्त्रार्थ का वीज पड गया था। जिसके परिणाम स्वरूप शास्त्रार्थं हुआ। इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

किशनगढ-चातुर्मास के पश्चात् पूज्यश्री ने मालवा की ओर विहार किया और स १९७१ का चातुर्मास इन्दौर मे किया। फिर मालवा मे विचरण करते हुए, डूँगर प्रदेश मे पधारे। पाँचवाँ चातुर्मास थादला मे हुआ। बालमुनियो के पास बालमण्डली खूब जमती थी। उस बालमण्डली मे कुछ सुरीले कण्ठवाले बालक भी थे। वे प्रतिक्रमण के वाद भजनो का रग जमाते थे। देर तक भजन होते रहते थे। बालमुनि भी भजनो मे सम्मिलित होते थे। यो तो श्री सूर्यमुनिजी म किशनगढ से ही भजन बनाने लग गये थे। परन्तु थाँदला मे भजनमण्डली के निमित्त से इस प्रवृत्ति मे विशेष वेग मिला और कवि नाम से पुकारे जाने लगे। बालमुनियो को देखकर, अन्य वालको का मन भी मुनि बनने का होता था।

पुन राजस्थान मे—थांदला का चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। पूज्यश्री ने मालव-प्रदेश मे विहार किया। वहा व्याख्यान-वाचस्पति श्री चम्पालालजी म को सम्मिलित किया। फिर विहार करते हुए मेवाड़ पधारे। वहाँ उदयपुर मे चातुर्मास की विनती मानी और श्री चपालालजी म के शिष्य श्री नानचदजी म, श्री किशनलालजी म, जीतमलजी म आदि ठा ५ का चातुर्मास कानोड मे हुआ। कानोड मे श्री नानचदजी म को लकवा हो गया। आसोज महिने मे श्री जीतमलजी म के दोनो पुत्र हीरालालजी और कन्हैयालालजी की दीक्षा हो गई। इधर उदयपुर मे पूज्यश्री, श्री चपालालजी म, श्री पूरणमलजी म आदि ठा ८ का चातुर्मास था। वही पञ्जाबी सन्त (श्री छोटेलालजी) श्री नाथुलालजी म आदि ठा ४ का भी चातुर्मास था। सम्प के साथ सानन्द चातुर्मास समाप्त हुआ।

पूज्यश्री चातुर्मास के बाद कानोड पधारे। श्री नानचदजी म की सेवा मे कौन रहे—यह प्रश्न पैदा हुआ। तब बालमुनि (श्री सूर्यमुनिजी म) ने कहा—'हम सेवा मे रहेगे।' श्री वच्छराजजी म और आप वहाँ सेवा मे रहे और अन्य सन्तो ने वहाँ से विहार कर दिया। आप वहाँ लगभग तीन-चार महीने तक सेवा मे रहे। बाद मे श्री नानचदजी म. का देहान्त हो गया। पूज्यश्री भी अन्य ग्रामो मे विचरण करते हुए, कजारडा मे पिता-पुत्र गुलाबचन्दजी और सुखलालजी भण्डारी को दीक्षा देकर पुन कानोड पधारे और फिर सभी साधुओ के साथ नाथद्वारा की ओर विहार कर दिया।

सकट के क्षण मे—स १९७४ का चातुर्मास पू श्री ने सादडी (मारवाड) का स्वीकार किया। पू. श्री विहार करते हुए बिलाडा पधारे। वहाँ पू श्री ज्ञानचदजी म की परम्परा के सत श्री केवलचन्दजी म, श्री रतनचन्दजी म आदि (जिनके साथ स १९७१, ब्यावर मे ऐक्य सम्बन्ध स्थापित हो चुका था) से मिलाप हुआ। श्री रतनचदजी म विहार मे पूज्यश्री के सग रहे। श्री रतनचदजी म को जेतारण मे चातुर्मास करना था। उनके साथ कौन रहेगे—यह प्रश्न उठा। यहाँ पर भी बालमुनिजी ने स्वीकृति दे दी। यद्यपि पूज्यश्री की आपको अपने से अलग करने की

इच्छा नही थी। परन्तु आपके द्वारा स्वीकार कर लेने के कारण, पूज्यश्री ने श्री वच्छराजजी म और आपको श्री रतनचदजी म. के सग जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। पूज्यश्री आठ सन्तो के साथ चातुर्मास के लिए सादडी पधारे और श्री रतनचदजी म, श्री वच्छराजजी म और बालमुनिजी तीनो जेतारण।

उस चातुर्मास मे अकस्मात् ही मरुधरा मे रोग का प्रकोप हो गया। जेतारण मे बालमुनिजी को भी बुखार आने लगा। उधर विलाडा मे पूज्यश्री केवलचदजी म ने सथारा कर लिया। अत श्री रतनचदजी म विलाडा पधारे। वहाँ सथारा सीझ गया। वहाँ सेवा मे रहे हुए सन्त श्री रूपचदजी म को साथ लेकर, वे पुनः जेतारण पधारे। पर पुन· अशुभ समाचार आये। कालुकेकिन मे श्री रतनचदजी म के सत (श्री समर्थमलजी म.)बीमार हो गये। उनकी सेवा मे जाना आवश्यक था। अत श्री रूपचन्दजी म को वही छोड कर, श्री रतनचदजी म उन सन्तो की सेवा मे पधारे। जेतारण मे रोग का विकराल रूप प्रकट हो रहा था। मनुष्य तडातड मर रहे थे। शव को श्मसान तक लेजाकर जलाना भी सम्भव नही हो रहा था। एक साध्वीजी की मृत्यु हो गई। उनके अग्नि-सस्कार मे बडी कठिनाई हुई। स्थानक के पास के घर मे ही एक होनहार युवक की मृत्यु हो गई। उसे मकान के चौक मे ही जलाया गया। यह सारी स्थिति देख कर, मुनियो का हृदय भी कम्पित हो गया। बडी हृदय-द्रावक स्थिति थी। लोग गाँव छोड-छोड कर अन्यत्र जाने लगे। जैनो के घर भी अन्यत्र चले गये। आखिर सन्तो को भी वहाँ से विहार करना पडा। जेतारण से दो कोस दूर ग्राम मे सन्तो ने चातुर्मास पूरा किया। चातुर्मास समाप्ति के बाद पूज्यश्री को सन्त पाली मे मिले। अभी बालमुनिजी के शरीर की ज्वर के कारण आई हुई दुर्बलता पूर्णत गई नही थी। पर पूज्यश्री के दर्शन पाकर चित्त मे शान्ति आई।

उस रोग–प्रकोप के काल मे सतो का विचरण बडा कठिन हो रहा था। किसी गाँव से पूज्यश्री से पहले चार सन्तो—श्री किशनलाल जी म, श्री वच्छराजजी म श्री सूर्यमुनिजी म और एक और लघुमुनि ने सोजत की ओर विहार किया। सन्त रास्ता चूक गये। वे अन्य मार्ग

पर चल पडे। एक गाँव मे पहुँचे। सायकाल होने आया था। लोगो ने सन्तो का स्वागत किया। सन्त समय की अल्पता देखकर, जल्दी ही आहार-पानी के लिए निकले। लोग कहने लगे—'महाराज! आहार-पानी जल्दी ले लीजिए। आपको गाव के बाहर बङ्गले पर ठहरना है।' सन्तो ने योग्य आहार-पानी लिया और भाइयो से कहा - 'भाई! हम आहार-पानी यही चुका ले और बाद मे बङ्गले पर चले चलेंगे।' श्रावको ने अनुनय करते हुए कहा—'नही महाराज! यहाँ नही, आहार-वही करना ठीक रहेगा।' सन्तो ने कमरे कसी और आहार-पानी के पात्र लेकर गाव के बाहरे आये। कुछ श्रावक भी सग थे। वे एक ऐसे स्थान पर आकर ठहर गये, जहाँ पर मरे हुए ढोर चीरे जाते थे। बङ्गले के नाम पर कुछ दीवारे मात्र खडी थी। दीवारो पर छत नही थी। श्रावको ने कहा—'महाराज! यही ठहरना है।' चारो ओर देखते हुए प्रमुख सन्त ने आश्चर्य से पूछा—'हमे यहाँ ठहरना है? क्या यही बङ्गला है?' श्रावक बोले—'हा महाराज!' सन्त ने गम्भीर स्वर मे कहा—'अरे भाई! यह तो ढोरो का मसान दिखाई दे रहा है। ये चारो तरफ हड्डिया बिखरी हुई है। दुर्गन्ध आ रही है। यहाँ आहार-पानी कैसे करेगे? यहाँ रात मे ठहरेंगे कैसे? दीवारो पर छत तो है नही। कही आस-पास बडे वृक्ष भी तो दिखाई नही देते है, शीतकाल है।' श्रावक बोले—'महाराज! अभी आप यही ठहर जाऐ। समय आ गया है। एक तरफ बैठकर आहार-पानी कर लीजिए। थोडी देर बाद हम आयेंगे। दीवारो पर कपडा तान देगें। रात मे हम भी यही रहेंगे।' ज्यादा बात करने का समय था नही। सन्तो ने कहा—'अच्छा भाई!' श्रावक वहाँ से यह कहकर चले गये—'महाराज! चिन्ता मत करना। हम वापिस आऐंगे।'

श्रावको के जाने के बाद सन्त एक तरफ बैठकर, ज्यो-त्यो आहार-पानी से निवृत्त हुए। सूर्य क्षितिज पर लगने से पूर्व ही अदृश्य होने जा रहा था। सन्त श्रावको की राह देखने लगे। सूर्य अदश्य हो गया। ठण्ड बढने लगी। प्रतिक्रमण का समय था। आसपास कही छाया वाला स्थान नही था। सतो ने अपने सिर ढँक लिए। वे उन दीवारो के

पास बैठ गये। वह मनुष्यों के बैठने योग्य स्थान नही था। पर थोडा स्थान ठीक करके और अपना सामान पास मे रखकर, सन्त प्रतिक्रमण करने लगे। चित्त चञ्चल हो रहा था। प्रतिक्रमण पूरा हुआ। सभी सन्त चिन्तित थे। श्रावक अभी तक नही आये थे। वे आपस मे वार्तालाप करने लगे। एक सन्त बोले 'गृहस्थ है, बेचारे किसी झञ्झट मे फँस गये होगे।' अब आएँगे-अब आएँगे-यो करते हुए एक पहर रात बीत गई। उस सुनसान स्थल मे चारो सन्त बैठे हुए थे। कभी बाते करते तो कभी मौन हो जाते। उन्हे पुराने सतो के ऊपर आये हुए उपसर्गों के प्रसङ्ग याद आ रहे थे। वे अपने महान् पूर्वजो को मन ही मन धन्यवाद देते जा रहे थे। उनके गुणो का स्मरण करते हुए विचार करते थे-"धन्य है उन महापुरुषों को! उन्होंने घोर उपसर्गों के क्षणो मे अपने परिणामो को निर्मल कैसे रखा होगा?" वे इन विचारो से अपने मन को शान्त रखने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु ज्यो-ज्यो समय बीत रहा था, त्यो-त्यो शाति का स्थान अशान्ति लेती जा रही थी। कुछ आवेश भी आ रहा था। एक सन्त बोल उठे—'कैसे श्रावक है ये। यदि हम गाँव मे रह जाते तो उनका क्या बिगड जाता था?' दूसरे सन्त बोले—'और फिर देखो बात कैसी मीठी-मीठी कर गये! 'महाराज! चिन्ता मत करना!' विश्वास देकर भी धोखा दे गये।' यो आवेश-चिनगारी दहकने लगी। यह देखकर एक सन्त बोले—'होगा भाई! श्रावक हमारे दुश्मन तो है नही। ऐसा श्रद्धालु यदि ऐसा कार्य करता है तो अवश्य कोई न कोई कारण होगा। और भैया! जीवन है तो कष्ट भी है। सन्त-जीवन मे तो कष्ट आते ही रहते है।' उस समय श्री सूर्यमुनिजी म की वय लगभग १५, १६ वर्ष की थी और छोटे मुनिजी और भी छोटे थे। माघ-पौष का महिना था। ठण्ड कड़ाके की पड रही थी। ऐसी सकटपूर्ण स्थिति थी। कसौटी के क्षण थे। छोटे सन्तो की आँखो मे भी नीद नही थी। अपने अपने पास के वस्त्र एक-दूसरे को देने का आग्रह चल रहा था। पर कोई किसी से वस्त्र लेने को तैयार नही थे। सन्त दीवारो के पास और सटे। उन्होने वहाँ कपडो से छाया करने का प्रयास किया। पर इस योग्य वस्त्र थे ही कहाँ? और ऐसी ठण्ड मे अपने शरीर से वस्त्र अलग करने का साहस भी नही हो रहा था। परिमित वस्त्र और दारुण शीत?

नहीं पा रहे हैं। सेठजीने पूछा—'महाराज ! क्या हुआ है ? आप अकेले क्यो पधारे है।' सेठजी भी आशका से घिर गये। सेठजी का यह कहना था, कि—'मुनिजी के धैर्य का बाध टूट गया। आखो से झर-झर आँसू वहने लगे। हिचकियाँ बँध गई। कण्ठ से स्वर नही निकल पा रहा था। सेठजी की समझ मे कुछ नही आया। वे प्रेम से बोले—'पर महाराज ! हुआ क्या ? शाँति से बोलो तो सही।' मुनिजीने बडी कठिनाई से अपने पर नियत्रण पाया और धीमे-धीमे कहा—'हमसे पहले अमुक गाँव से चार सतो ने विहार किया था। उनका पता नही है। लोग कहते हैं—वे कीचड मे डूब गये होगे। पूज्यश्री यहाँ से चार कोस दूर है। उनसे चला ही नहीं जाता है। उनकी कमर मे दर्द है।' यह बात सुनकर सेठजी को भी शान्ति आई। वे बौले—'बस यही बात है न ! अभी सन्तो का पता लगावाएगे। पूज्यश्री से कहना—'अब चिन्ता की कोई बात नही है। अभी सन्तो का पता लग जाएगा। आप शान्त होइए और पूज्यश्री के पास पधारिए। सेठजी ने मुनिजी को आश्वासन दिया और यथायोग्य सेवा की।

वहाँ सौभाग्यमलजी म. पूज्यश्री के पास आये और जो सेठजी ने कहा था, वह पूज्यश्री से कह सुनाया।

इधर सेठजी ने सन्तो की तलाश करने के लिए आदमी भेजे। किशनलालजी म आदि सन्त एक ग्राम मे ठहरे हुए थे। किशनलालजी म. स्थडिल पधारे। वे शौच के लिए बैठे ही थे, कि एक भयकर सर्प फुँफकारता हुआ झपटा। महाराज श्री भयभीत होकर वहाँ से अलग हट गये। न जाने क्या हुआ, कि—उसी दिन से किशनलालजी म के पेशाव के साथ खून जाने लगा। वडी विषम परिस्थिति हो गई। पूज्यश्री का भी कुछ पता नही था। ऐसी स्थिति मे भी सन्त विहार करते रहे। वही एक गाव मे सेठजी का भेजा हुआ एक आदमी उन्हे मिला। उन्होने सारी परिस्थिति जानी। चिन्ता कुछ मिटी तो कुछ वढ गई। आदमी मुनियो की खबर लेकर, सोजत रवाना हो गया और मुनियो की सकुशलता के समाचार पूज्यश्री के पास जल्दी ही पहुँच गये। उन्हे कुछ शान्ति

हुई।

पूज्यश्री के चरणो में-इधर अब श्रीकिशनलालजी म आदि सन्तों के सामने समस्या पैदा हो गई, कि—पूज्यश्री के पास कौन जाए ? कैसे जाएँ ?' श्री किशनलालजी म बोले-'वच्छराजजी ! आप इन बाल मुनियो को लेकर सोजत जाओ और मैं पूज्यश्री के पास जाता हूँ । पूज्यश्री जिस गाँव मे विराजमान है, वह गाव यहाँ से ज्यादा दूर नहीं है।' श्री वच्छराजजी म बोले-पर आपकी तबीयत ठीक नही है न। सभी साथ चले।' बाल-मुनियोने भी यही कहा। आखिर मे विचार-विमर्श के बाद यही निर्णय हुआ, कि—दोनो बालमुनि सोजत की ओर जाए और शेष दोनो पूज्यश्री की सेवा मे। दोनो बालमुनियो से अलग होते समय प्रौढ मुनियो ने कहा— 'बहुत करके आज या कल तक हम भी पूज्य महाराज को लेकर सोजत आ जाएँगे।'

दोनो मुनि पूज्यश्री के पास पहुँचे। पूज्यश्री ने भी वहाँ से विहार कर दिया था। रास्ते मे ही समागम हो गया। मुनियो को देख कर पूज्यश्री की चिन्ता दूर हो गई। मुनियो का सहारा लेते हुए पूज्यश्री बडी कठिनाई से, बालमुनियो के सोजत पधारने के कुछ घण्टे बाद, सोजत पधार गये। पूज्यश्री के चरणो मे बालमुनि नतमस्तक हो गये। पूज्यश्री ने उनके सिर पर हाथ फेरा और वात्सल्य भरी दृष्टि से कुछ देर तक उनकी ओर देखते रहे। उस अमृत दृष्टि से सभी ताप दूर हो गये।

पूज्यश्री कुछ काल तक सोजत विराजमान रहे। पूज्यश्री और श्री किशनलालजी म को शनै शनै स्वास्थ्य-लाभ हुआ।

जोधपुर से मालवा की ओर—पूज्यश्री का मन वापिस मालवा की ओर लौटने का हो रहा था। जोधपुर मे वयोवृद्धा तपस्विनी श्री नानूजी म विराजमान थी। आप श्री नन्दकुँवरजी म की परम्परा की एक प्रमुख सती थी। आपकी इच्छा पूज्यश्री के दर्शन करने की थी। पूज्यश्री को यह बात ज्ञात हुई। तब पूज्यश्री ने जोधपुर की ओर विहार किया। सतीजी दर्शन का लाभ पाकर बडी प्रसन्न हुई। आपने पूज्यश्री और उनके सन्तो के

प्रति पूर्ण भक्ति व्यक्त की। जोधपुर मे श्री किशनलालजी म के व्याख्यानो का बडा प्रभाव पडा। पूज्यश्री वहाँ कुछ काल तक विराजे। लोगो का आग्रह उधर विचरने का हो रहा था। परन्तु कुछ कारणो से पूज्यश्री को मालवा की ओर जाना ही उचित प्रतीत हुआ। अत अपने मालवा की ओर विहार कर दिया। मालवा मे आते हुए, रास्ते मे कष्टो के अनेक प्रसग आये। इस प्रकार विविध रगी घटनाओ के शाण पर चढ कर, वालसत श्री सूर्यमुनिजी म का जीवन-हीरक उज्ज्वलता के साथ सुन्दर आकार पा रहा था।

पूज्यश्री का देह-विलय—पूज्यश्री मालवा मे पधार गये। स १९७५ और स १९७६ के चातुर्मास आपने क्रमश रतलाम और धार मे व्यतीत किये। पूज्यश्री के चरणारविदो मे श्री सूर्यमुनिजी म का व्यक्तित्व विकसित हो रहा था।

स १९७७ मे पूज्यश्री के शरीर मे रोग का प्रकोप हुआ। अत आप रतलाम पधारे। सभी सन्त आपकी सेवा मे थे। वर्षावास भी वही हुआ। पूज्यश्री ने इसी कालावधि मे पूज्यश्री माधवमुनिजी म. को अपने उत्तराधिकारी घोषित कर दिये। इधर श्री सूर्यमुनिजी म स्वय पढते थे और अन्य वालको को भी धर्म-प्रेरणा देते रहते थे। पूज्यश्री की आज्ञा से गुरुदेव ने स १९७८ का चातुर्मास खाचरोद मे विताया और चातुर्मास उठते ही पुन पूज्यश्री की सेवा मे पधार गये।

पूज्यश्री की शारीरिक स्थिति दिन-प्रति दिन गिरती जा रही थी। एक दिन पूज्यश्री को स्वप्न आया, कि—'उन्हे मकान वदलना है।' यह वात आपने सन्तो मे कही और मकान वदलने की इच्छा प्रकट की। उस समय कुछ विचार करके, श्री किशनलालजी म ने निवेदन किया—'पूज्य महाराज! यह इस मकान के वदलने की वात नही, पर देह रूपी मकान के वदलने की वात प्रतीत होती है।' पूज्यश्री कुछ क्षण मौनरहे और फिर वोले—हाँ! ऐसी ही वात है।' पूज्यश्री अपनी तैयारी मे लग गये। गुरुदेव श्री सूर्यमुनिजी म ने जव यह वात सुनी तव उन्हे न जाने कैसा लगा! वे पूज्यश्री के समीप ही रहने लगे। उनके पास मे

वैठे हुए कुछ न कुछ लिखते रहते थे। पूज्यश्री ने एकबार आपसे कहा—'सूरज! लिखने को तो पूरी जिन्दगी पडी है।' शायद पूज्यश्री का सकेत समाधि-साधना के योग्य कुछ श्रवण कराने की ओर था।

स १९७९ वैशाख वि १० को पूज्यश्री ने अनशन ग्रहण किया। लगभग इक्कीस वर्ष की आयु मे दीक्षा पर्याय के ग्यारह वर्ष वाद आपको अपने गुरुदेव का वियोग सहन करना पडा। मन मे मर्मान्तिक पीडा हुई। परन्तु ज्ञानवल से अपने आपको आश्वस्त किया।

एक विचित्र संकट—रतलाम से कुछ दिन वाद आचार्य महाराज की आज्ञा लेकर, स्थविर पू श्री ताराचन्दजी म., श्री पूरणमलजी म आदि सन्तो ने सैलाना होते हुए, वाँसवाडा की ओर विहार किया। गुरुदेव भी साथ ही थे। सन्त सैलाना से विहार करने के वाद सरवण मे कुछ घण्टे ठहर कर आगे वढे। सूर्य ढल रहा था। एक गाँव आया। सन्त ठहरने के लिए स्थान खोजने लगे। लोग अपने ओटले पर भी सन्तो को ठहराने के लिए राजी नही हो रहे थे। सन्त निराश हो गये। आगे जाने जितना समय नही था। गाँव के वाहर किसी वृक्ष के नीचे डेरा डालने का विचरा किया। सूर्य आधा छिप चुका था। कुछ सन्तोने कदम आगे वढाए और कुछ वही ठहरे हुए थे। देखते ही देखते सूर्य छिप गया। इतने मे एक तांगा आया। उसके साथ दो तीन ऊँट थे, जिन पर सिपाही सवार थे। तांगे से एक व्यक्ति उतरा। वह वेश-भूषा से कोई उच्च घरानेका व्यक्ति लग रहा था। उसने सतो को नमस्कार किया और पूछा—'महाराज! अव तो रात होने आई है, आप कहाँ जा रहे है?' एक सन्त बोले—'आये तो थे इसी गाँव मे रहने के लिए। पर यहाँ स्थान नही मिल रहा है। अव इस विचार मे है, कि—कही वडा गहरा वृक्ष मिल जाए तो उसके नीचे डेरा डाले।' वह महानुभाव सरवण के ठाकुर साहव थे। जैन सन्तो की चर्या को थोडा-वहुत जानते थे। उन्होने कहा—'अरे! गाँव मे इतने घर है और सन्तो को एक रात ठहरने के लिए भी स्थान नही मिल रहा है?' फिर सिपाही से सन्तो को योग्य स्थान दिलाने का कहा। सिपाही ने लोगो को समझाया। अत सन्तो को रात्रिवास के लिए एक योग्य स्थान मिल गया।

सन्त दूसरे दिन दाणी प्रिपलिया पहुँचे। वहाँ जैनो के कुछ घर है। केसरीमलजी वहाँ के आगेवान व्यक्ति थे। सन्तो ने बीते दिनो की परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए विचार किया, कि –आगे विकट रास्ता है (उस समय बाँसबाडा की सडक नही बनी थी)। यदि साथ मे कोई इस प्रदेश का परिचित मार्गदर्शक रहे तो अच्छा। उन्होने अपने विचार केसरीमलजी से कहे। साँझ को विहार के समय केसरीमलजी स्वय साथ हो गये। अगले किसी गाँव मे रात को रहना था। सन्तो ने, जिस गाँव मे रात को ठहरना था, वहा से कुछ दूर ठहर कर, पानी आदि चुकाया। केसरीमलजी भी वही ठहर गये। वे बोले—'महाराज! चिन्ता जैसी कोई बात नही है। यह गाँव है तो भीलो का। पर यहाँ मेरे परिचित हैं। रात बिताने के लिए रहने योग्य जगह मिल ही जाएगी।'

कुछ देर बाद केसरीमलजी के साथ सन्तो ने उस गाँव मे प्रवेश किया। वह भीलो की ही बस्ती थी। गाँव मे एक भी आदमी दिखाई नही दे रहा था। घरो के दरवाजे खुले थे। ढोर बँधे हुए थे। चूल्हे जल रहे थे। कही एक रोटी कडेली (रोटी सेकने का मिट्टी का पात्र) मे पडी थी तो आधी घडी हुई रोटी कछौटी मे। कही कोई रोटी खाते-खाते आधी रोटी तावडी मे छोड गया था। कोई चक्की पर आटा पीसते-पीसते ही उठकर भाग गया था। कही बीच मे पानी का बेडा पडा था तो कही अधवँटी रस्सी का पिंडा। कोई दूध निकालते हुए वर्तन को छोडकर भाग खडा हुआ था। मालूम पडता था, कि लोग अभी ही भागकर गये थे। वहा बच्चा या बूढा कोई नही था। जैसे कथाओ या चरित्रो मे किसी कारण से शून्य बनी हुई नगरियो का वर्णन आता है, वैसा ही वहाँ दृश्य दिखाई दे रहा था। सन्त और केसरीमलजी आश्चर्य-चकित थे। केसरीमलजी बडबडाते जा रहे थे—'न जाने क्यो, सब न जाने कहाँ चले गये हैं।' केसरीमलजी के कहने पर एक डागले के नीचे सन्तो ने डेरा डाला।

कुछ क्षणो के बाद एक भील आया। उसकी पीठ पर तीरो का भाथा था और दूसरी और ढाल थी। एक हाथ मे धनुप था। कमर में तलवार लटक रही थी। आंखे लाल हो रही थी। केसरीमलजी ने उसे

पहचाना और नाम लेकर पुकारा। फिर उसे कहा—'भाई! तुम आ गये। कहाँ गये हैं सब?' उसने आँखें तरेर कर सिर्फ 'हूँऽऽ' कहा। वह केसरीमलजी की ओर घूर रहा था। मानो अभी सबको निगल जाएगा। केसरीमलजी को स्थिति कुछ विपरीत लगी। इसलिए उसकी मिन्नत करते हुए से बोले—'भाई बोलो तो सही। हुआ क्या है? ऐसे घूर क्यो रहे हो।' वह नाराजी बताता हुआ अपनी भाषा मे बोला—'सेठ? तुझे ऐसा नही जाना था, कि—तू यो विश्वासघात करेगा!' केसरीमलजी उसकी ओर ताक रहे थे। वह सन्तो की ओर सकेत करके बोला—'बताओ, ये कौन हैं? सच-सच बताना।' केसरीमलजी बोले—'ये तो अपने महाराज हैं। हमारे गुरु हैं।' उसने अविश्वास से कहा—'क्या कहा—'ये साधुबाबा हैं? तुम झूठ तो नही बोल रहे हो? यह खुफिया पुलिस तो नही है?' बात यह थी, कि—उस गाँव मे कुछ लुटेरे भी रहते थे। अत उन भीलो को सतर्क रहना पडता था। सन्तो ने उसकी बात समझी। सतो ने उसका भ्रम मिटाना आवश्यक समझा। अत उसे समझाते हुए बोले—'भाई! हम पुलिस नही हैं। हम तुम्हे पकडने के लिए नही आये है। हम जैन साधु हैं। हम पैसा-कौडी, शस्त्र आदि कुछ भी नही रखते है। पैदल ही चलते हैं। हमे बाँसवाडा जाना है। रात भर यहाँ ठहरेगे और सुबह मे यहाँ से चले जायेगे। क्या कभी तुम सैलाना हाट करने जाते हो? वहाँ हमारे जैसे जैन साधुओ को तुमने नही देखा?' गुरुदेव भी उसे समझाने मे भाग ले रहे थे। उस भील को सैलाना के नाम से कुछ याद आया! वह कुछ नरम पडा। फिर वह बोला—'आपने ये क्या बाँध रखे है?' उसने शास्त्रो के डिब्बे और पात्रो की ओर इशारा किया।

सतो ने कहा—'ये हमारे पात्र है—भोजन और पानी रखने के लिए और ये पढने को पोथियाँ है।' डिब्बे और झोलियाँ खोलकर उप शास्त्र और पात्र बताये। अब उसे विश्वास हुआ। वह बोला—'सेठ! मैं नही आता तो गजब हो जाता। आज रात मे हम आप सबके टुकडे-टुकडे कर डालते। हमने तो यही समझा था, कि—सेठने हमारे साथ धोखा किया है। तुम हमे पकडवाने के लिए छुपे वेश मे पुलिस को ले आये हो। हमारे एक आदमी ने यह खबर दी और जब हमने आपको

इधर आते हुए देखा, तब हम जैसे खडे थे, वैसे ही भाग गये। बीमार, बच्चे और वृद्धो तक को उठा कर ले गये। अब मेरा भ्रम मिट गया। अभी लोगो को बुलाता हूँ।' उसकी बात सुनकर सबके रोगटे खडे हो गये। वह बाहर गया और लोगो को पुकारने लगा। वह कह रहा था—'कोई भय नही है। आजाओ।' पर लोग उलटा ही समझे, कि वह पकड लिया गया है और पुलिस के दबाव से ऐसा बोल रहा है या वह भी उनसे मिल गया है। लोग और दूर भाग गये। जब भील ने देखा, कि—कोई भी नही आ रहा है, तब उसे साधुओ की सुरक्षा की चिंता हुई। पर उसने कहा—'आप कुछ भी चिंता न करें। आपका बाल भी बाँका न होगा।' वह चारो ओर घूमते हुए पहरा देने लगा। सन्त अपनी क्रिया करते रहे। ऐसी आतङ्क की घडियो मे नीद किसे आती ?

रात बीती। सूर्योदय हुआ। सन्त कमर कस कर चल दिये। रास्ते मे गाँव की ओर आते हुए स्त्री-पुरुष मिल रहे थे। कोई खटिया मे बीमार और वृद्ध को उठाकर ला रहे थे तो कोई बच्चो को कधो पर उठाए हुए थे और कोई पीठ पर लादे हुए थे। वे सन्तो को देख-देख कर हैरान हो रहे थे। कोई कोई तो अपन भ्रम पर खिलखिलाकर हँस पडते और कहते थे—'भारी आये महाराज ! सारी रात हम मारे-मारे फिरते रहे।'

श्री माधवाचार्यजी म. का वियोग—सन्त कुछ काल तक बाँसवाडा मे रह कर वापिस लौट आये और आचार्य श्री माधवमुनिजी म के सग ही चातुर्मास व्यतीत किया। इसके पश्चात् सभी सत मालवा के बाहर निकल गये। स १९८० का चातुर्मास श्री माधवाचार्यजी म ने आगरे मे और श्री ताराचन्दजी म आदि सतो ने दिल्ली मे बिताया। जमनापार के प्रदेश मे भी सतो ने विहार किया। गुरुदेव को अभी भी जमनापार के गाँवो के नाम ज्यो के त्यो याद हैं। गुरुदेव स १९८१ के चातुर्मास मे सभी सतो के साथ आचार्यश्री के पास जयपुर मे ही रहे। आचार्य श्री की सभी सतो पर बडी कृपा रही। आचार्य श्री स्वय सतो का अध्यापन कार्य भी, समय निकाल कर करते थे चातुर्मास के बाद विहार करते हुए, आचार्य श्री का अकस्मात् देहात हो गया। उनके वियोग से जैन समाज मे एक बहुत

बड़े आघात का अनुभव हुआ। उस वियोग को गुरुदेव ने करुण वाणी मे इस प्रकार व्यक्त किया—

> हरी पेखी हरिण भाजे, त्यो ही पाखड लख लाजे।
> ज्ञानमय कर भानु आजे, गयो हा! जैन को हीरो .
> भरोसा सर्व का थे वे, दिलासा सर्व का थे वे।
> उजासा सर्व का थे वे, गयो हा! जैन को हीरो .
> गयो हा! जैन को इन्दू, गयो हा! जैन को भास्कर।
> गयो हा! जैन को वल्लभ गयो हा! जैन को आकर॥

एक दशाब्दि और—जयपुर से सतो ने विहार किया। राजस्थान मे कुछ समय तक विचरे और फिर प्रवर्तक पूज्य श्री ताराचदजी म आदि सतो ने सौराष्ट्र की ओर विहार किया। गुरुदेव भी सग ही थे। आबू जाते हुए मार्ग मे क्षुधा-तृषा के परीषह विशेप सहन करने पडे। स १९८२ और ८३ के चातुर्मास क्रमशः मोरवी और पालनपुर मे किये। इसके बाद सन्तगण बम्बई पधार गये। वहाँ स १९८४ का चातुर्मास काँदावाडी और स १९८५ का माटुगा मे हुआ। वहाँ गुरुदेव को प्रथम शिष्य की वैरागी के रूप मे प्राप्ति हुई। फिर गुरुदेव मालवा मे पधार गये। स १९८६ मे वैरागी मोहनभाई की आपके प्रथम शिष्य के रूप मे दीक्षा हुई। इस वर्ष का वर्षावास गुरुदेव ने अपने पिताजी महाराज और शिष्य श्री मोहनमुनिजी म सहित खाचरोद मे किया। स १९८७ का चातुर्मास प्रवर्तक पूज्य श्री ताराचन्दजी म का थाँदला हुआ। उस वर्ष आप भी उन्ही के सग रहे। चातुर्मास के लिए थाँदला जाते हुए, पेटलावद मे द्वितीय शिष्य की प्राप्ति हुई, जिनकी दीक्षा स १९८८ वैशाख विदि १ को हुई और जो श्री माणकमुनिजी म के नाम से प्रसिद्ध हुए। स १९८८ मे आपने अपने पिताजी म के सग अपने दोनो शिष्यो सहित रतलाम मे चातुर्मास हुआ। स १९८९ का चातुर्मास उज्जैन करने के बाद सन्तो का अजमेर मे साधु-सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए, वहाँ पदार्पण हुआ स १९९० मे श्री वच्छराजजी म, आप व श्री माणकमुनिजी म ने टोक मे चातुर्मास किया। फिर स १९९१ मे आप बम्बई पधार गये। स १९९२ मे आप, श्री केवलमुनिजी म, श्री रूपचन्दजी म. और

श्री माणकमुनिजी म ने जालना मे चातुर्मास किया। वहाँ से आपकी इच्छा सुदूर दक्षिण मे विचरण करने की हुई। अत आपने बम्बई अपने पिताजी महाराज (आपका चातुर्मास बम्बई था) के पास सूचना भिजवा दी। बडे महाराज (पिताजी म.) और श्री मोहनमुनिजी म चातुर्मास के बाद आकर आपसे मिल गये। आपने फिर हैदराबाद की ओर विहार किया। उधर से बम्बई से विहार करके पूज्य श्री ताराचन्दजी म आदि सन्त भी आपको मार्ग मे मिल गये। इस प्रकार चौदह सन्तो के चरण सुदूर दक्षिण की ओर बढ चले।

एक साहस—स १९९३ की बात है। गुरुदेव विचरण करते हुए रायचूर पधारे। चार सत थे—बडे महाराज (श्री वच्छराजजी म), गुरुदेव, श्री केसरीमलजी म और श्री माणकमुनिजी म। लोगोने सतो का भाव भीना स्वागत किया। सतो ने प्रवचन दिया। सन्त यथासमय आहार लाये। आहार करने के लिए बैठ ही रहे थे, कि— बकरे की करुण चीत्कारो से वातावरण करुणार्द्र बन गया। बात यह थी, कि—वहाँ कोई उत्सव था। उस उत्सव मे हर चौराहे पर बकरे की बलि चढाई जाती थी। स्थानक के समीप ही चौराहा था। वहाँ बकरे की वलि चढाने के लिए, उसे खीचकर ले जाया जा रहा था और वह चीत्कार कर रहाथा। उसकी चीत्कारो मे करुण क्रन्दन था। सन्तो को उन चीत्कारो ने हिला दिया। उनका हृदय करुणा से भर गया। सभी सन्तो के मन मे यह भाव व्याप्त हो गया—'ऐसे समय मे क्या आहार करना ?'

सभी सन्त बाहर आ गये। बकरे को घसीट कर ले जाया जा रहा था। यह करुण दृश्य गुरुदेव से नही देखा गया। वे स्थानक से नीचे उतरे। भीड को चीरते हुए, उस बकरेवाले के समीप चले गये। लोग कौतूहल से ताक रहे थे। गुरुदेव ने कहा—'यहाँ तुम बकरे की बली नही चढा सकते हो।' उन्होने बकरे वाले के हाथ से बकरा छुडा लिया और स्थानक की ओर चल दिये। बकरा भी निर्भय होकर, दौडता हुआ सग चला आया। लोग देखते रह गये। 'क्या हुआ'—थोडी देर तक यह समझ ही नही सके। बकरे को स्थानक के भीतर लाकर छोड दिया। लोगो की भीड स्थानक के आस पास जमा हो गई।

सत वाहर खडे थे। वलि चढाने वाले लोग भी वहाँ आ पहुँचे। वे वकरे की मांग करने लगे। गुरुदेव ने कहा 'अव वकरा नही मिल सकता है।' लोग वोले-'यह हमारे धर्म का कार्य है। आप इसे कैसे रोक सकते है?' गुरुदेव वोले 'सच्चा धर्म जीव की हिसा करना नही सिखलाता है। किसी जीव की हिसा करना धर्म नही है।' इधर यह वाद-विवाद हो रहा था। उधर जैन लोगो को भी इस वात का पता लग गया। वे भी वहाँ आ गये। लोग कह रहे थे-'आप हमे वकरा दे दीजिए। सदा ही हम वलिदान करते आये है' यह कार्य रोकने वाले आप कौन होते है? यदि आप वकरा नही देगें तो आपके ऊपर देव का कोप उतरेगा।' गुरुदेव वोले-'देव-कोप की चिन्ता तुम मत करो। हम कौन है? हम भी तुम्हारे जैसे मनुष्य हैं और मनुष्यता के नाते हमे हिसा रोकने का अधिकार है।' लोगो मे तनाव वढ रहा था। जैन-जनता मे घवराहट व्याप्त हो रही थी। पर वे ऐसा कह नही सकते थे, कि-वकरे को लौटा दीजिए। अत. वे लोगो को समझाते हुए वोले—'तुम्हे हम वकरे के वदले मिठाई दे देते है। अव यह झगडा समाप्त करो।' गुरुदेव ने कहा—'आप वीच मे मत वोलिए। हम इनसे निवट लेगें।' लोगो को भय था, कि—कही कुछ अनिष्ट न हो जाय।

मुस्लिम राज्य था। मुसलमान भाई भी उस भीड मे जमा हो गये थे। वे वोले—'आप इनके धर्म के काम मे वाधा क्यो डाल रहे हैं? इनका माल इन्हे दे दीजिए।' गुरुदेव ने मुसकराते हुए कहा-'अच्छा भाई! मैं तुम से एक वात पूछूँ—वाजे वजाना हिंदू धर्म से सम्मत है। यदि कोई वाजे वजाते हुए, तुम्हारी मस्जिद के सामने से निकले तो उन्हे निकलने दोगे।' मुस्लिम भाई वोले—'नही, हम ऐसा नही होने देगें'। गुरुदेव ने कहा—'तो भाई! यह हमारा धर्म स्थान है। यहाँ हम हिसा कैसे होने दे सकते है। मुस्लिम भाई निरुत्तर हो गये।

आखिर जनता विखर गई। वकरे को अभयदान मिल गया। सुना है, कि—उस चौराहे पर फिर कभी वलि नही हुई। गुरुदेव की वहाँ चातुर्मास करने की इच्छा हो गई थी। पर ऐसे महाराज की विनन्ती करके, कौन भय पल्ले बांधे?

लातूर का चातुर्मास.—आपने क्रमश सिकन्दराबाद, मद्रास, बेगलोर और हैदराबाद मे चातुर्मास किये। विहार मे कई घटनाएँ घटित हुई और कडवे-मीठे कई अनुभव हुए। स १९९६ मे आपके तृतीय शिष्य श्री सुरेन्द्रमुनिजी म की हैदराबाद मे दीक्षा हुई।

हैदराबाद चातुर्मास मे लातूर के कुछ भाई दर्शनार्थ आये थे। उन्होने गुरुदेव को लातूर पधारने की विनती करते हुए निवेदन किया, कि—'महाराज! चातुर्मास के बाद आप हमारे गाँव को पावन करियेगा। श्री रामचन्द्रजी म (पू श्री चम्पालालजी म के शिष्य) ने लातूर मे अट्ठाईस-उन्तीस वर्ष पूर्व चातुर्मास किया था। इसके बाद किसी का भी चातुर्मास नही हुआ। सतो का पधारना ही बहुत अल्प होता है। आप वहाँ पधारेगे तो बडा उपकार होगा।' आपने कहा—'भाई! जैसी अवसर-स्पर्शना!'

गुरुदेव ने चातुर्मास के बाद हैदराबाद से विहार किया। विचरते हुए नादेड पधारे। गुरुदेव के ध्यान मे लातूर के श्रावको की बात थी। अत गुरुदेव ने लातूर की ओर विहार करने की सन्तो के समक्ष भावना प्रकट की। सन्त भी सहमत हो गये। लोगो ने यह सूचना लातूर दे दी। इधर गुरुदेव ने लातूर को ओर विहार कर दिया। लातूर के लोगो के पास, जब गुरुदेव के उधर पदार्पण की खबर गई, तब उन्होने तार द्वारा समाचार भेजे, कि—'महाराज श्री अभी इधर न पधारे।' परन्तु गुरुदेव को ये समाचार मिले ही नही। आप आगे बढते गये। लातूर के बन्धुओ को इस बातका पता लगा। कुछ भाई उधर आये। गुरुदेव को मार्ग मे मिले और वे वन्दना करके बोले—'महाराज! आप इधर क्यो पधारे? हमने तो आप इधर न पधारे-इस आशय का तार दिया था और अब भी हमारी यही प्रार्थना है, कि-आप अभी इधर न पधारे।'

यह विचित्र प्रसग था। अपने गाँव मे पधारने के लिए विनती करने हेतु तो प्राय श्रावक आते है, पर वे आये थे-अपने गाव मे मुनि न पधारे-यह विनती करने के लिए। गुरुदेव को बडा आश्चर्य हो रहा था। आपने उत्तर दिया—'भाई! हमे तो इस विषय मे कुछ समाचार

नही मिले है। आप लोग हैदराबाद मे लातूर आने की विनती कर आये थे न! इसी बात को ध्यान मे रखकर हम इधर आये है।' लोगो ने सविनय कहा —'आपका फरमाना सत्य है। परन्तु गुरुदेव! अभी अवसर ऐसा ही है। इसीलिए हम यह अर्ज कर रहे है। नही तो ऐसा कौन हतभागी होगा, जो सन्तो को अपने आगनमे पदार्पण से रोकेगा?'

गुरुदेव बोले—'जब आप इनकार करते है, तो हम दूसरी तरफ भी जा सकते है। पर ऐसा क्या कारण है, कि जो आपको ऐसा करने के लिए विवश होना पडा? यह मुझे कुतूहल हो रहा है? यदि कहने मे कुछ बाधा न हो, तो मुझे वह कारण जानने की इच्छा हो रही है।' श्रावक बोले—'और कोई कारण नही है। वहाँ रोग का प्रकोप हो रहा है। प्लेग फैल रहा है।' तब गुरुदेव ने हँसकर कहाँ— 'बस यही कारण है न! जब हम इतनी दूर आ चुके है, तब मात्र एक इसी कारण स हमे पुन लौटने की आवश्यकता नही है। यदि वहाँ विशेष ठहरने जैसा नही होगा तो हम वहाँ एकाध रात्रि ठहर कर, बार्शी-करमाला की तरफ आगे बढ जाएगे।' यह बात सुनकर श्रावक भी प्रसन्न हुए।

गुरुदेव लातूर पधारे। लोग गाँव के बाहर केम्प डालकर रहते थे। सन्तो को ठहराने के लिए लोग उन्हे गाँव मे ले गये। स्थानक मे गये तो वहाँ देखा, कि—मरे हुए चूहे पडे है। गुरुदेव को वह स्थान अनुकूल नही लगा। अत उन्होने पूछा—'क्या यहाँ कोई दूसरा स्थान भी ठहरने योग्य है?' उत्तर मिला— 'हाँ! पापनाशनी पर (कु ड के पास) है।' गुरुदेव वहाँ पधारे और स्थान अनुकूल देखकर, वही ठहर गये। दिन-दिन मे श्रावक लोग गाँव मे आ जाते थे और रात मे केम्प मे चले जाते थे। गुरुदेव ने कुछ दिन वहाँ ठहरकर विहार किया। आप केम्प के पास होकर गुजर रहे थे। सेठ चापसी धर्मसी भाई ने (आप मूर्तिपूजक कच्छी थे) सन्तो को उधर से गुजरते हुए देखा। वे सन्तो के पास आये। उन्होने भक्ति-पूर्वक वन्दना की और गुरुदेव से निवेदन किया—'महाराज! हमे वहराने का कुछ लाभ दीजिए।' गुरुदेव ने कहा—'हमने पर्याप्त आहार-पानी साथ ले लिया है। अभी कुछ आवश्यकता नही है।' भाई ने

आग्रह किया—'आप केम्प मे पधारो। हमें कुछ उपदेश ही दे दीजिए।' गुरुदेव ने कहा—'अभी हम विहार कर रहे हैं। अभी उपदेश कैसा ?' भाई ने रास्ता रोकते हुए हँसकर कहा—'नही, आपको पधारना ही पडेगा। और कुछ न कुछ सुनाना ही पडेगा।' उनका अत्याग्रह देखकर महाराज श्री केम्प पधारे। वहाँ वे भाई एक स्थान बताते हुए बोले—'आप यहाँ अपना सामान उतार दीजिए।' गुरुदेव ने उन्हे समझाते हुए कहा—'हमे दूर जाना है और आप देर करा रहे है। मै खडा-खडा ही आपको कुछ सुना दूँगा।' चापसी भाई ने कहा—'आपको कष्ट मे डालकर सुनना नही चाहते है और सुने बिना आपको आगे बढने भी नही देगे।' वहा उनके कई कुटुम्बीजन और अन्य भाई इकट्ठे हो गये। सब उनके स्वर मे स्वर मिला रहे थे। गुरुदेव समझ गये, कि—ये लोग आज यहाँ से जाने नही देगे और विचार किया कि—'इनके शुभभावको भङ्ग करना ठीक नही है। इनकी इच्छा है तो उपदेश सुना देना चाहिए। कुछ न कुछ लाभ ही होगा।' सन्तो ने अपना सामान उतार दिया।

लोग बडे प्रसन्न हो गये। भाई-बहिन व्याख्यान सुनने के लिये बैठ गये। गुरुदेव और श्री माणकमुनिजी म ने व्याख्यान फरमाये। लोगो ने महाराज श्री को विहार नही करने दिया और आग्रह पूर्वक कुछ दिन वही रोके। गुरुदेव की दृष्टि मे एक विशेषता आई, कि—वहाँ पन्दरह मे इक्कीस-बाईस वर्ष के युवक व्याख्यान और रात्रि-चर्चा मे काफी सख्या मे भाग ले रहे है। गुरुदेव को उनसे चर्चा करने पर उनकी धर्म-विषयक अज्ञता का पता चला। गुरुदेव ने पूछा—'तुम्हे नमोक्कार मत्र आता है। कभी उसका स्मरण करते हो।' उत्तर मिला—'हाँ आता है और जब शकर-मन्दिर मे जाते है, तब घण्टा बजाते हुए बोल लेतेहै।' उनसे नमोक्कार मत्र सुना तो उनके उच्चारण मे अशुद्धियाँ थी। गुरुदेव के मन मे विचार हुआ, कि—यदि यहाँ एक चातुर्मास हो जाय तो ठीक रहे। जब गुरुदेव के विहार का समय आया, तब लोग चातुर्मास के लिए भावभीना आग्रह करने लगे। गुरुदेव ने फरमाया—'भाई! अभी फागुन की पूर्णिमा नही हुई है। अत अभी इस विषय मे आपको वचन नही दे

सकते है। यदि हमे यहा चातुर्मास करना होगा तो आपको चातुर्मास की स्वीकृति की सूचना मिल जाएगी।' लोगो को इन शब्दो मे स्वीकृति की झलक दिखाई दी। उनमे आनन्द की लहर छा गई।

गुरुदेव ने वहाँ से विहार किया। बार्शी, करमाला आदि ग्रामो मे विचरण किया। योग्य समय पर गुरुदेव ने लातूर मे चातुर्मास व्यतीत करने की स्वीकृति दे दी। वार्शी के निवासी सेठ धारशीभाई ने कहा-'आपने कहाँ गड्ढे मे चातुर्मास करने की विनती स्वीकार कर ली।' गुरुदेव ने वर्षावास के लिए वार्शी से लातूर की ओर विहार किया। लगातार लगभग अठारह मील का विहार हुआ। धारशीभाई भी साथ-साथ पैदल चल रहे थे। पीछे-पीछे उनकी कार चल रही थी। मुनि थक कर चूर हो गये थे। एक ग्राम मे रात्रि-निवास के लिए ठहरे। धारशीभाई ने वहाँ के लोगो से कहा—'रात को आना, तुम्हे महाराज प्रवचन सुनाएगे।' गुरुदेव ने उनसे कहा-'सभी सन्त थके हुए है। क्या प्रवचन देगे?' धारशीभाई ने कहा—'आप इसकी चिंता मत करिये। सब ठीक हो जाएगा।' रात्रि मे बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। जैनोतरो की बस्ती थी। गुरुदेव और श्री माणकमुनिजी म ने थोडी-थोडी देर प्रवचन दिये। बाद मे सेठ धारशीभाई ने शिक्षाप्रद हेतु-उदाहरण देते हुए बहुत देर तक लोगो का अनुरञ्जन किया।

गुरुदेव ने क्रमश विहार करते हुए, चातुर्मास के लिए उत्साहपूर्ण वातावरण मे लातूर मे प्रवेश किया। लातूर मे आनद ही आन्नद हो गया। जैन के थोडे घरो की सख्या मे खूब तपस्या हुई। तीन मासक्षपण हुए। व्याख्यान मे लोगो की उपस्थिति भी खूब रहती थी। जब सेठ धारशीभाई वहाँ दर्शनार्थ आये तब वहाँ का दृष्य देखकर आश्चर्य-चकित रह गये। उनके मुँह से बरबस निकल पडा, कि—'महाराज! आपने यहाँ चातुर्मास करके अच्छा किया।' वहाँ जैन-जैनतर सभी लोगो ने धर्म-प्रवृत्ति मे अच्छा भाग लिया।

मैं व्याख्यान मे नहीं आऊँगी–श्री चापसी-धर्मसीभाई की बहिन कच्छ से या अन्यत्र कही से वहाँ आई थी। उनके परिवार वाले व्याख्यान श्रवण

करने आरहे थे। बहिन ने पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?' 'व्याख्यान सुनने के लिए' 'यहाँ कोई साधु है क्या ? कौन साधु हैं।' 'स्थानकवासी सन्त हैं।' बहिन ने तुनककर कहा—'हू ! ढूँढिये है !' 'बहिन ! व्याख्यान सुनने चलो तो सही !' बहिन ने मुँह मोडकर कहा—'ना, ना, मैं ढुँढियो का व्याख्यान सुनने नही आऊँगी।' बहिन घर पर बैठी रही और सभी पारिवारिक जन व्याख्यान मे आ गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। बहिन को कौतूहल हुआ कि—'इन ढूँढियो के व्याख्यान मे ऐसा है क्या? जो ये मुझे छोड कर वहा चले जाते है !' एक दिन वहिन ने कहा—'चलो, देखे आज मैं भी चलूँ। ऐसा क्या है उनके व्याख्यान मे !' वह व्याख्यान मे आई। पहले तो अनमनी सी बैठी रही। पर व्याख्यान समाप्त होते-होते तो उसकी अरुचि और घृणा सब समाप्त हो गई। अब वह नित्य व्याख्यान मे आने लगी। एक दिन वह महाराज श्री के पास आई और बोली—'महाराज ! मुझे क्षमा करना ! मैंने आपकी बहुत आशातना की है। मैंने आपको धर्म से भ्रष्ट करने वाला माना था और मैंने ऐसा ही सुना था। परन्तु आपके व्याख्यान सुनकर मेरा सब भ्रम मिट गया।' इसके वाद उस बहिन ने ज्ञान-श्रवण का बहुत लाभ लिया।

मालवा मे विचरण—लातूर का चातुर्मास पूर्ण करके, गुरुदेव मालवा की ओर पधार गये। सवत १९९८ का चातुर्मास इन्दौर मे किया। फिर १९९९, २००० और २००१ के चातुर्मास क्रमश पेटलावद, रतलाम और इन्दौर हुए। शेष काल मे मालवा के कई ग्रामो मे विचरण किया स १९९८ मे आप थाँदला पधारे, तब मुझे आपके प्रथम वार दर्शन प्राप्त हुए थे। वहाँ आपकी प्रेरणा से जैन पाठशाला की स्थापना हुई। क्योंकि 'धर्मदास जैन विद्यालय' वद हो चुका था। ऐसे ही अन्य गाँवो मे भी कई उपकार के कार्य हुए।

स २००२ का चातुर्मास लीमडी हुआ। उसमे श्रावण मास तक खूब उत्साह रहा। यहाँ 'जैन रामायण' की रचना चल रही थी। रामायण की रचना उज्जैन से प्रारम्भ हुई थी। लीमडी मे प्रवचन मे 'जैन रामायण' का विषय चल रहा था। वच्चो के मुँह पर भी 'जैन रामायण' की स्थायी कडी (टेर) खेल रही थी—

पावन पुरुषोत्तम भगवान् राम की कथा सुनाते हैं।

कथा सुनाते हैं राम-गुण-गौरव गाते हैं।

इस उत्साह पूर्ण वातावरण मे, आपके शिष्य श्री माणकमुनिजी म को पक्षाघात हो जाने से, एकदम रग मे भग हो गया। सतो और सघ मे खिन्नता व्याप्त हो गई। लीमडी के श्रावकसघ ने मुनि श्री की सराहनीय सेवा की। ऐसी स्थिति मे भी गुरुदेव का रचना-कार्य चलता रहा और वही लीमडी मे 'जैन रामायण' की रचना पूर्ण हुई। चातुर्मास के वाद प. श्री किशनलालजी म, प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्य-मलजी म आदि सत पधारे और आपके सहयोग से श्री माणकमुनिजी म को दोहद लाये। वहाँ कुछ काल गुरुदेव विराजे। फिर कतवारा ग्राम मे स २००२, वै. शु ११ के दिन आपके चतुर्थ शिष्य श्री रूपेन्द्रमुनिजी म और उनकी माताजी व वहिने आदि चार जनो की दीक्षा हुई। वहाँ से झाबुआ, मेघनगर होते हुए थाँदला पधारे।

स २००३ और ४ के चातुर्मास थादला मे हुए। वहाँ 'पूज्य नन्द जैन साहित्य समिति' की स्थापना हुई। इसके वाद श्री नगीनमुनिजी म श्री विनयमुनिजी म. आदि के सहयोग से श्री माणकमुनिजी म को धार तक ले गये। फिर इन्दौर पधारे। वहाँ स २००५ से स २००९ तक सकारण विराजना हुआ और चातुर्मास भी वही हुए। शेष काल मे गुरुदेव कभी-कभी अन्य ग्रामो मे विचरण करने के लिए पधार जाया करते थे। इस वीच मे गुरुदेव के पिताजी म. (वडे महाराज) का देहान्त हो चुका था और गुरुदेव सादडी-सम्मेलन मे सम्मिलित होकर, पुन इन्दौर पधार गये थे।

स २००९ के चातुर्मास के वाद गुरुदेव के पाँचवें शिष्य (लेखक) की दीक्षा, थादला मे होने की वात चल रही थी। क्योंकि उनके परिवार वाले अपने गाव मे ही दीक्षोत्सव करना चाहते थे। तथा थादला-सघ की ओर से श्री माणकमुनिजी म को थादला मे विराजमान कराने की विनती चल रही थी। इन सब वातो को लक्ष्य मे रखकर, गुरुदेव ने

थादला की ओर विहार किया। श्री माणकमुनिजी म को थादला लाने मे श्री समीरमुनिजी म 'सुधाकर' का बहुत सहयोग रहा। स २०१० का चातुर्मास थाँदला हुआ। स २०११, चैत्र शु १३ को पाचवे शिष्य की दीक्षा हुई। आपाढ मास मे अकस्मात् श्री माणकमुनिजी म का स्वास्थ्य ज्यादा गिर गया और आषाढ विदि ४ को उनका देहान्त हो गया।

स २०११ का चातुर्मास सैलाना-सघ के अत्याग्रह से सैलाना मे हुआ। वहा उस चातुर्मास मे गुरुदेव से श्रावक मागीलालजी वोरा, रतनलालजी भडारी आदि श्रावको ने सैद्धान्तिक ज्ञान उपाजन किया और व्रतादि अगीकार किये। जिनमे से दो श्रावक मोतीलालजी माडोत और मागीलालजी वोरा, बहुश्रुत प श्री समर्थमलजी म के पास दीक्षित होकर, श्रीमोतीलालजी मुनि और श्री हुकुममुनिजी के रूप मे आत्म-साधना कर रहे है।

अन्य और चातुर्मास—स २०१२ मे गुरुदेव ने मालवा के बाहर विहार किया। स २०१२ का चातुर्मास माटु गा (वम्वई) मे और स २०१३ का कान्दावाडी (वम्बई) मे किया। २०१४ मे मत्रीमुनि श्री किशनलालजी म की सेवा मे इदौर मे वर्षावास विताया। मत्रीमुनिजी के स्वास्थ्य को दृष्टि मे रखते हुए, गुरुदेव ने आसपास के प्रदेश मे ही विहार किया। स २०१५ और स २०१६ के चातुर्मास क्रमश थादला और सैलाना मे हुए। स २०१५ के चातुर्मास के पूर्व गुरुदेव के पदार्पण के निमित्त से थादला मे 'महावीर जैन छात्रावास' की स्थापना हुई, जो कुछ समय तक चला और फिर वन्द हो गया। स २०१६ मे गुरुदेव ने ठा २ ने उज्जैन मे चातुर्मास किया और दो सत-भातृद्वय श्री सुरेन्द्रमुनिजी म और श्री रूपेन्द्रमुनिजी म को मन्त्री मुनिजी म की सेवा मे इन्दौर रखे। मन्त्रीमुनिजी म के देहान्त के वाद, आपने स २०१८, १९, २० और २०२१ के चातुर्मास क्रमश कोटा, जयपुर, दिल्ली और बूँदी मे व्यतीत किये। गुरुदेव ने उन-उन स्थानो के श्रावको को यथा योग्य ज्ञानदान दिया।

स २०२२ मे आपका स्वास्थ्य ठीक न रहने से मालवा और डूँगर प्रदेश मे ही विचरण कर रहे हैं।

प्रवर्तक पद—स २०२० का दिल्ली का चातुर्मास समाप्त करके गुरुदेव ने मध्य-प्रदेश की ओर विहार किया। उस समय मे अजमेर मे पुन साधु-सम्मेलन हो रहा था। आपको भी उसमे पधारने के लिए आग्रह हुआ था। पर आपको कुछ कारणो से सम्मेलन मे जाने की रुचि नही हुई। अत आप सम्मेलन में उपस्थित नही हुए। उस साधु-सम्मेलन मे श्रमण सघ के द्वितीय पट्टधर आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म चुने गये और प्रर्वतक पद की प्रणाली प्रारम्भ की गई। मालव-केसरीजी म की प्रेरणा से आपको प्रवर्तक के रूप में चुना गया। यद्यपि आपने इस पदको स्वीकार करने मे आनाकानी की, फिर भी विवश होकर इस पद से सम्बन्धित अपने गणका कुछ कार्य सम्हाल रहे है।

साहित्य-रचना—आपको लघुवय से ही पद्य-रचना का शौक था। आप तुकबदियाँ किया करते थे और छोटे-बडे भजन बनाया करते थे। फिर आपने कई पद्य-पुस्तको की रचना की। आप प्राय प्राचीनताकी पुटवाली बोलचाल की हिन्दी भाषा मे रचना करते हैं। आपके द्वारा रचित 'जैन रामायण' प्रसिद्ध ग्रन्थ है। भजन-प्रदीप, भजन-भास्कर, सङ्गीत-सुधाकर, सूर्यस्तवन-सग्रह आदि भजनो के सग्रह हरिकेश बलमुनि-चरित्र, सप्त चरित्र, चरित्र-चन्द्रिका, जैन चरित भजनावली, मृगावती-चरित्र, गुणसुन्दरी चरित्र, मुनिपति चरित्र, भावना-प्रबोध और जैन रामायण प्रकाशित हो चुके हैं। रत्नपाल-चरित्र, मानतु ग-मानवती, धर्मपाल चरित्र, कनकश्री चरित्र, पुण्यलता चरित्र, सुखानन्द-मनोरमा, सती कलावती, शीलवती (बडी), शीलवती (छोटी), नल-दमयन्ती, चन्दा-चरित्र, चम्पकमाला-चरित्र और अन्य भी छोटी-बडी रचनाएँ अप्रकाशित हैं। नूतन निर्माण भी चलता रहता है। 'जैन महाभारत' की रचना अभी पूर्ण नही हुई। आपके द्वारा सम्पादित 'सस्कृत श्लोक-सग्रह' दो भागो मे प्रकाशित हो चुका है। आपके द्वारा रचित 'दृष्टान्त-शतक' मे छोटे-छोटे दृष्टान्त कवित्तो मे बाँधे गये हैं। एक और 'दृष्टान्त शतक' अपूर्ण है।

अन्य विशेषताएँ—आप सघ-ऐक्य को अच्छा समझते हैं। परन्तु आपको सघ-ऐक्य का दिखावा पसन्द नही है। आप सम्यक्

क्रियाओ के पालन को विशेष बहुमान देते हैं, परन्तु क्रिया के पाखण्ड को नही। न आपमे प्रदर्शन की रुचि है और न अपने मतानुयायिओ को बढाने की ही। जयपुर मे एक भाई आपसे सम्यक्त्व ग्रहण करने आये। आपने कहा—'भाई! इधर विचरने वाले सन्तो से ही सम्यक्त्व ग्रहण करो। मैं चातुर्मास उठने के बाद इधर से चला जाऊँगा। फिर इस प्रदेश मे आया या नही—क्या पता ?'

आपको पाण्डित्य का प्रदर्शन अच्छा नही लगता है। यदि आपके सामने कोई पाण्डित्य बघारता है तो आप एक-दो ऐसे अटपटे प्रश्न पूछ लेते है, कि—वह व्यक्ति निरुत्तर हो जाता है। 'श्रावको मे ज्ञान का प्रसार हो'—आप इस दृष्टि से प्रश्नात्मक शैली मे उनसे विविध चर्चाएँ करते हैं और उनमे तत्त्व-विचार की शक्ति जागृत हो-ऐसी प्रेरणा देते हैं।

आप अपनी परम्पराओ का दृढता से पालन करने के पक्ष मे हैं। आप इस विषय मे किसी से उलझना ठीक नही समझते हैं। परन्तु कोई वृथा आक्षेप करता हो तो उसे समयानुसार योग्य उत्तर देने मे भी नही चूकते है। यदि कोई परम्पराओ के बारे मे समझना चाहे तो उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं। आप दो प्रतिक्रमण की परम्परा को शास्त्रानुमोदित मानते हैं। फिर भी साधु-सम्मेलन के नियमानुसार एक ही प्रतिक्रमण करते हैं।

आपको पुराने हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज का बडा शौक है। यहाँ तक कि—यह शौक पुरानेपन की मोहदशा जैसी स्थिति मे पहुँच गया है। पुराने पन्नो के लिए प्रिय से प्रियजन के प्रति भी कुछ समय के लिए अप्रीतिकर रुख अपना लेते हैं। आप पुराने पन्नो और फटे-टूटे ग्रन्थो को, वे चाहे हस्तलिखित हो या मुद्रित, सुरक्षित करने का बडा ध्यान रखते हैं।

आप किसी को भी अन्तिम आराधना मे भी सहयोग देने के लिए प्राय सदैव तत्पर रहते हैं। आपने श्री बडे मेनकुँवरजी म, श्री फूलकुँवरजी म, श्री सुन्दरजी म, श्री टीबूजी म, तपस्विनी श्री सुन्दरकुँवरजी म,

श्री गेदकुवरजी म. श्री विमलकुंवरजी म आदि कई साध्वियो की और श्रावक-श्राविकाओ की अन्तिम आराधनामे सहयोग दिया।

आप कान-आँख क्यो नहीं चढा देते ? —अपने से विरोधी मतवाले की बात भी आप शान्ति से सुनते हैं। यदि उनकी बात नही जँचती है तो युक्तिपूर्वक उत्तर भी देते है। एक बार गगापुर मे दिगम्बर-श्रद्धावाले भाई आये। चर्चा करने लगे। उन्होने कई भाँति की चर्चाएँ की। वे भाई यकायक बोले—'महाराज ! आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हो यह अच्छा नही है।' इसके बाद चर्चा विविध रूप से चलने लगी। उनकी युक्तियो का गुरुदेव शान्तिपूर्वक उत्तर देते रहे। दूसरे दिन भी इसी विषय पर चर्चा चली। तब गुरुदेव ने उन भाई से प्रश्न किया—'आप भगवान् को त्यागी समझते है या भोगी ?' भाई ने उत्तर दिया—'भगवान् भोगी नही हैं, भगवान् वीतराग हैं।'

गुरुदेव—'तो भला आप भगवान् के सामने लौग, चावल या अन्य कोई चीजे क्यो चढाते हो।'

वे भाई बोले—'महाराजजी ! इसमे तो बड़ा गहरा रहस्य है। हम भगवान् के भोगोपभोग के लिए उन पदार्थों को थोड़े ही चढाते हैं। हम उन पदार्थों को चढाकर यह भावना भाते है, कि—हे भगवन् ! हम इन पदार्थो का सेवन करते हुए ससार मे परिभ्रमण करते रहे। अब हम इन पदार्थों को समर्पित करके, यह चाहते है, कि—इनकी आसक्ति से मुक्त हो जाएँ। हमे इनसे छुडाओ हे वीतराग भगवन् !'

गुरुदेव—'अच्छा, तो उन पदार्थों को चढाने के बाद उनका सेवन आप नही करते हैं, कि करते हैं ?'

भाई—'नही, उन चढाए हुए पदार्थों को नही खाते हैं।'

गुरुदेव—'चाँवल आदि चढाने के बाद, चाँवल आदि पदार्थों का क्या बिलकुल सेवन नही करते हो ?'

भाई—'उन चढाये हुए चाँवलो को ही नही खाते हैं, अन्य चाँवल आदि पदार्थों को तो खाते हैं।'

गुरुदेव—'कैसी विचित्र बात है, कि चढाये जाने वाले थोडे से चांवल आदि ने ही आपको ससार मे रुलाया-अन्यो ने नही और जो ससार मे रुलाने वाले हैं, उन्हे भगवान् को चढाकर ऐसी भावना करना इस सिद्धान्त को भी आप कितना मान्य करते हैं ? इन पदार्थों ने तो क्या ससार मे रुलाया हैं ? ससार मे रुलाने वाली ये इन्द्रियाँ है तो क्याइन्द्रियो को भी काटकर भगवान् के चढा दोगे और फिर भावना भाओगे ? स्त्री-पुत्रादि के निमित्त से जीव ससार मे बहुत परिभ्रमण करता है, तो इन्हे भी चढा दो न भगवान् को ?'

वे भाई अपने तर्क की नि सारता देख कर कुछ क्षण के लिए अवाक् रह गये और फिर हँस पडे तथा गुरुदेव की कही हुई बात को ही पुन पुन' दुहराने लगे।

आपे से बाहर मत होना –स २०१८ की बात है। आवर से रायपुर की ओर विहार किया। बीच मे पीडावा ग्राम आया। वहाँ दिगम्बर जैन भाइयो के घर काफी सख्या मे है। उनके एक मन्दिर मे ही हम ठहरे थे। स्थानकवासी जैन के घर बहुत थोडे हैं। हमे दोपहर मे विहार करना था। पर भाइयो के आग्रह से दोपहर मे व्याख्यान दिया गया और रात्रि को वही ठहर गये। व्याख्यान मे दिगम्बर जैन बन्धु काफी सख्या मे आये थे। वे रात्रि मे भी आये। धर्म चर्चा होने लगी। उनमे अपने आपको पण्डित मानने वाले एक भाई भी थे। वे चर्चा मे प्रमुख बने हुए थे। गुरुदेव ने चर्चा प्रारम्भ होते समय फरमाया—'भाई ! धर्म-चर्चा करना अच्छी बात हैं। परन्तु देखो, धर्म–सवाद मे मतभेद वाली बातें मत लाना। क्योकि उन बातो के पक्ष-विपक्ष मे हमारे और आपके आचार्यों ने बहुत कुछ लिखा है। परन्तु इससे किसी भी मत का अभाव नही हुआ। अत ऐसी चर्चाओ से विशेप लाभ नही है। उल्टा एक दूसरे के प्रति कटुता का भाव उत्पन्न होता है।'

अन्य भाइयो ने भी कहा—'हाँ, महाराज आप ठीक कहते है।,

कुछ समय तक चर्चा ठीक रास्ते पर चली। परन्तु बाद मे उस पण्डित भाई ने मतभेद वाला प्रश्न उपस्थित कर ही दिया और अपने

समर्थन-हेतु तर्क देने प्रारम्भ किये। तब गुरुदेव ने कहा—'देखिये, आप अपनी चर्चा की शर्त से हट रहे हैं। यदि आप तर्क दे रहे हैं तो मैं भी अपनी श्रद्धा के अनुसार उत्तर दूंगा। फिर आप गुस्से मत होना। यदि आपमें-सहन शक्ति हो तो आगे बढ़िए। नहीं तो चर्चा को यहीं समाप्त कर देना ठीक है।'

पण्डितजी बोले—'इसमें गुस्से होने की कोई बात नहीं। मैं तो अपनी जानकारी के लिए प्रश्न कर रहा हूं।'

अब स्त्री-मुक्ति आदि के विषय में चर्चा होने लगी। पण्डितजी तर्क देते जा रहे थे और उनके तर्कों की धज्जियाँ उड़ती जा रही थीं। उनके अनुयायी बन्धु महाराज श्री के तर्कों से प्रभावित होते जा रहे थे। पण्डितजी के स्वर में कर्कशता आ गई और थोड़ी देर में तो आपे से बाहर हो गये। गुरुदेव ने पण्डितजी से कहा—'देखो भाई! मैंने कहा था, वही बात आ गई न! आप आपे से बाहर हो रहे हैं। अपनी मर्यादा छोड़ रहे हैं। अब चर्चा करने में कोई मजा नहीं।'

आपको मोक्ष में न जाना हो तो आपकी इच्छाः—

सं २०२१, वही पीडावा गाँव और वही दिगम्बर जैन मन्दिर। दोपहर का समय था। दिगम्बर मतानुयायिनी बहिनें आई। वे विविध चर्चाएँ करने लगी। गुरुदेव उन्हें शान्ति से उत्तर देते रहे। एक बहिन ने प्रश्न किया—'आप स्त्री-पर्याय से मोक्ष मानते हैं, यह कैसे हो सकता है।'

गुरुदेव ने कहा—'क्यों नहीं हो सकता है स्त्री को मोक्ष? उसमें कौनसी योग्यता का अभाव है?'

बहिन—'स्त्री की पर्याय तुच्छ है .उसे मोक्ष कैसे हो सकता है।'

गुरुदेव को यहाँ की पहले की बात ध्यान में थी। अत अप्रिय प्रसङ्ग टालने के लिए आपने फरमाया—'यह तो जैसी अपनी-अपनी मान्यता।' बहिन ने बात को कुरेदते हुए कहा—'मान्यता-अमान्यता से क्या मतलब? सत्य तो सत्य ही रहेगा। सत्य से मान्यता का क्या

सम्बन्ध ?'

गुरुदेव—'सत्य के वास्तविक द्रष्टा तो केवली ही होते हैं। छद्मस्थ तो उनके वचन के अनुसार मानता है, अतः उसकी तो वह बात मान्यता ही है।'

बहिन—'तो फिर आप यह बतलाइये, कि—केवली के वचन क्या है ?'

गुरुदेव—'यह निर्णय कौन दे सकता है ? अपनी-अपनी परम्परा को सब जैन-सम्प्रदाएँ केवली के द्वारा कथित ही मानती हैं।'

बहिन—'पर सत्य क्या है, यह निर्णय तो करना चाहिए न ? सत्य का निर्णय नही तो साधना कैसे होगी ?'

गुरुदेव—'सत्य का निर्णय अवश्य करना चाहिए। परन्तु छद्मस्थजीव सब बातो का सही निर्णय नही कर सकता है और जो यत्किञ्चित् तत्त्वनिर्णय करता हैं, वह भी मताग्रह से ऊपर उठे बिना नही हो सकता है।'

बहिन—'मैं तो जानकारी के लिए प्रश्न कर रही हूँ।'

कुछ देर तर्क-प्रतितर्क चलते रहे। गुरुदेव ने चर्चा का अन्त लाने के लिए कहा—'देखो, हमारे आचार्य बडे दयालु थे। मालूम पडता है, आपके आचार्य इतने दयालु नही थे।' बहिनें यह बात सुनकर चौंकी। वे बोली—'क्यो ? आप ऐसा क्यो कह रहे है ?'

गुरुदेव ने हँसकर कहा—'हमारे आचार्य बडे दयालु थे। वे चाहते थे, कि-किसी का भी अधिकार छीना न जाए। अत उन्होने आपको भी मोक्ष-प्राप्ति का अधिकार दिया है। यदि आपको यह बात पसद न हो और आप मोक्ष मे जाना न चाहती हो तो आपकी इच्छा! इस विषय मे हमारी ओर से कोई जबर्दस्ती नही है।'

गुरुदेव ने ये बातें ऐसी मुद्रा मे कही, कि वे बहिन हँस पडी।

व्याख्यान कौन सुनते हैं – गुरुदेव के विषय मे थाँदला वाले लालचन्दजी कांकरिया के मुँह से कभी सुना था, कि—'महाराज किसी बात पर क्रुद्ध होकर या आपेसे बाहर होकर कुछ नही कहेगे। पर धीरे से ऐसी बात कहेगे, कि –जिसके विषय मे वह बात कही गई होगी बाहर से उस पर खास असर नही दिखाई देगा, पर वह अन्दर ही अन्दर जलकर खाक हो जाएगा और पास वाले को कुछ पता भी नही लगेगा।' मुझे भी ऐसा कई बार अनुभव हुआ है।

गुरुदेव एक गाँव मे चातुर्मास के लिए पधारे। विनती के समय किसी का भी विरोधी रुख मालूम नही हुआ था। पर बाद मे भीतर ही भीतर आपस मे विरोध होने लगा। एक समय एक विरोधी भाई ने न जाने किस बात पर कह दिया, कि–'तुम व्याख्यान सुननेवाले सब ढोर हो।' लोग आवेश मे आगये। और गुरुदेव के पास आकर शिकायत करने लगे। गुरुदेव ने कहा—'कहा होगा। इसमे अपना क्या जाता है?' पर इस बात से उन्हे शान्ति नही हुई। वे बोले—'पर इसमे आपका भी अपमान है?' कहने वाले महाराज को उत्तेजित करना चाहते थे। पर आपने ठण्डे स्वर मे कहा–'माने तो अपमान! नही तो काहे का अपमान! बोलने वालो का अपना मुँह है। उनकी इच्छा हो सो बोल सकते हैं। हम किस-किस का मुँह पकडने जाएँगे।'

दूसरे दिन प्रवचन के मध्य मे अकस्मात् गुरुदेव ने प्रसगवशात् प्रश्न पूछा—'कहो भाइयो! प्रवचन किसे सुनाया जाता है मनुष्य को या ढोर को?' सभा मे से उतर आया–'मनुष्य को।' गुरुदेव ने प्रवचन को मोड देते हुए कहा—'नही, ढोर को भी सुनाया जाता है?' लोग अवाक् आपकी ओर देख रहे थे। आप फरमा रहे थे—'जिसके क्या पूँछ सीग होते हैं वही ढोर होते हैं अन्य नही? ढोर जैसी वृत्तियो वाले मनुष्य भी तो ढोर हैं। उन मानव-पशुओ को भी व्याख्यान सुनाया जाता है, जिससे वे ढोर से मानव बने और देव बने अर्थात् जीवन-सुधार करे। यदि सुनकर भी न सुधरेंगे तो क्या रहेगें? ढोर के ढोर ही न! बोलो, आपको क्या बनना है?'

जिस भाव–भगिमा से गुरुदेव प्रवचन सुना रहे थे, उससे लोगो मे प्रमोद भाव व्याप्त हो रहा था और जिस व्यक्ति के विषय मे शिकायत की गई थी, वह भी मुस्करा रहा था। पर कुछ लज्जा का अनुभव कर रहा था और उसका मुख एकदम लाल वर्ण का हो गया था। मानो उसके शरीर मे सिहरन दौड गई हो।

परमत-सहिष्णुताः—यद्यपि गुरुदेव अपनी सैद्धान्तिक मान्यता मे दृढ रहते हैं, फिर भी परमत–सहिष्णु रहते हैं। शुजालपुर मे एक मूर्ति पूजक सम्प्रदाय के अनुयायी वकील भी आया करते थे। वे किसी अन्य गाँव के थे। आपसे बडे प्रभावित थे। वही एक दिगम्बर जैन वृद्ध भी गुरुदेव के पास आया करते थे। कभी–कभी प्रवचनो मे भी आया करते थे वे। वे गुरुदेव से बाते किया करते थे। वे अधिकाश बातो मे अपने दिगम्बर होने की दुहाई दिया करते थे। गुरुदेव अपना कार्य करते रहते थे और वे भाई बाते करते रहते थे। गुरुदेव कभी मुस्करा देते तो कभी उनकी बातका, उत्तर देने योग्य होती तो उत्तर दे देते।

एक दिन वे बातें कर रहे थे और उसमे अपने दिगम्बर होने की दुहाई देते जा रहे थे। मुझे उनके इस रवैये से आवेश आ गया। मैंने उन्हे एक–दो कठोर बाते कह दी। गुरुदेव ने मुझे सकेत किया। मैं चुप रह गया। वृद्ध के जाने के बाद गुरुदेव ने कहा– 'तुमसे इतना भी सहन नही होता है। बेचारे वृद्ध है। वे बोलते है तो अपना क्या बिगडता है? उनका जी ऐसा कहकर सुख पाता है तो पाने दो। सुन लेने से हम छोटे थोडे ही हो जाते है।" मुझे यह बात सुनकर खीझ आई। पर बाद मे इस बात का आशय समझ मे आ गया।

कुछ विशेषगुण—आपने शिष्य-लालसा पर भी जय पाई है। आप अपनी कसौटी पर खरे उतरे बिना किसी को अपने शिष्य के रूपमे स्वीकार नही करते है। दीक्षार्थियो को यो तो आप प्रथम दृष्टि मे ही प्राय भांप लेते है–कि वह साधुत्व का आकाक्षी वास्तव मे है या नही। जो साधुत्व के अयोग्य लगता है, उसे आप तत्काल इन्कार कर देते है। और योग्य लगता है,उसकी भी कुछ काल तक परीक्षा करतेहै तथा उसके

भाव पुष्ट बनें, ऐसाप्रयत्न करते है। आपकी दृष्टि मे-साधक भले धुरन्धर विद्वान् हो या न हो, पर उसे सङ्घ-शोपक नही होना चाहिए। आप इस बात का बडा ध्यान रखते है, कि—हम सघ को साधु दे, और कुछ नही। मेरे सामने ऐसे कुछ दृश्य उभर रहे है, जब गुरुदेव ने अयोग्य दीक्षार्थी को एक समय के लिए भी दीक्षा के बहाने अपने पास नही रहने दिया और हम साधुओ ने उनसे मोह किया तो उसका कटु फल भोगा।

धनवान हो या दीन हो, प्राय श्रावको पर आपकी समान अमीदृष्टि रहती है। परन्तु कभी-कभी अपनी प्रशसा सुनने के अभिलाषी लक्ष्मीनन्दनो के प्रति और विद्वानो के प्रति आपके हृदय मे उपेक्षा भर आती है। आप किसी का दिल दुखाना नही चाहते हैं तो किसी की ठकुर सुहाती करना भी आपको नही सुहाता हैं। अत आपके व्यवहार मे कइयो को रुखेपन की गध आती है।

यो आपमे मानव-स्वभाव की दुर्बलता भी है। फिर भी आप एक साधक है और साध्य को दृष्टि के समक्ष रखने का प्रयत्न करते है।

प्रिय वक्ता श्री विनयमुनिजी महाराज *

झुवरलालजी चोरडिया की धर्मपत्नी मैनाबाई की कुक्षि से तीन पुत्रियाँ और दो पुत्रो का जन्म हुआ। उनमे बडी पुत्री का नाम सुन्दरबाई था और पुत्रो का नाम नगीनचन्दजी और बाबूलालजी था। माता बचपन मे ही चल बसी थी। बडी बहिन सुन्दरबाई ने ही अपने छोटे भाई-बहिनो को ममतामयी माँ का वात्सल्य दिया। अचानक

---

* खेद है, कि प्रियवक्ता प श्री विनयचन्दजी म हम से म २०२१ मार्गशीर्ष शु २ को सदा के लिये बिछुड गये। आपको स्वप्न मे अपने देहान्त का आभास हो गया था। अत आपने मालव केसरीजी म. और प्रवर्तक गुरुदेव से लगभग १० दिन पूर्व ही पत्र द्वारा स्वप्न के निर्देश के साथ ही क्षमा याचना कर ली थी। पत्रो की नकल इस प्रकरण के अन्त मे देखें। आपकी पिछली प्रकाशित पुस्तक है–'मे शु जोयु'।

झु बरलालजी भी बीमार हो गये और उनका कुछ ही दिन मे देहान्त हो गया। उनके देहान्त के कुछ दिन बाद सुन्दरबाई ने वैराग्यभाव से प्रेरित होकर, प्रवर्तिनी श्री टीबूजी म की शिष्या श्री गुलाबकु वरजी म के पास प्रव्रज्या अगीकार कर ली। बडे भाई ने भी अपनी बहिन का अनुसरण किया। उन्होने भी प्र वक्ता श्री सौभाग्यमलजी महाराज के शिष्य के रूप मे दीक्षा ग्रहण करली। बाबूलालजी को उनके काका कस्तूरचन्दजी ने गोद ले लिया था। अत: वे उनके पास ही रहते थे। उनका आनन्दी जीवन था। बढिया कपडे पहनना। साफ सुथरे रहना और उच्च स्तर का रहन-सहन रखना। यही उनका जीवन-मन्त्र था।

एक बार बाबूलालजी को बुखार आया। चिकित्साका कुछ भी प्रभाव नही हुआ। इक्कीस दिन हो गये। बुखार उतर नही रहा था। बाबूलालजी आकुल-व्याकुल हो रहे थे। एक दिन रात्रि मे सहसा विचार आया, कि—यदि मै इस बिमारी से शीघ्र मुक्त हो जाऊँ तो दीक्षा ले लूँ। इस भावना का प्रभाव या सातवेदनीय का उदय या असात-वेदनीय के समाप्ति का काल, जो कुछ भी समझिए, दूसरे दिन ही बुखार उतर गया। कुछ दिन बाद दुर्बलता भी दूर हो गई।

बाबूलालजी को अपनी प्रतिज्ञा याद थी। उन्हे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने की चिन्ता होने लगी। दीक्षा की आज्ञा प्राप्त होना सम्भव नही लगता था। बाबूलालजी को यह कार्य गुपचुप ही पूरा होने योग्य लगा। अत वे तैयारी मे लगे। अवसर पाकर काकाजी की तिजोरी से कुछ रुपये निकाल लिये। क्योकि आपसे वहाँ परहेज तो कुछ था नही अत इस कार्य मे आपको कुछ कठिनाई भी नही हुई। बाबूलालजी ने उन रुपयो मे साधु के योग्य वस्त्र खरीदे और उन्हे सिला कर तैयार करवा लिये। गुपचुप केसर घोटकर उन कपडो पर छीटे डाल लिय। घरके लोगो के सामायिक करने के उपकरणो मे से पूँजनियाँ निकाल कर, उनसे रजोहरण तैयार कर लिया। यह सब काय इतना चुपके-से हुआ, कि घरवालो को जरा भी पता न लगा। पुस्तको के बस्ते मे दीक्षा की सामग्री भर ली और पढने जाने के बहाने घरसे निकल गये। मित्र को मनाकर साथ लिया। स्टेशन गये। क्यो कि उस समय प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी

म. आदि संतों का चातुर्मास लीमडी (पचमहाल) मे था। वाबूलालजी के भ्रातामुनि भी वही थे। उन्हे वही पहुँचना था। पर वे उज्जैन स्टेशन पर पहुँचे, तव तक ट्रेन वहाँ से रवाना हो चुकी थी। अव करना क्या ? यह समस्या पैदा हो गई। मित्र को घर पर रवाना किया और वाबूलालजी दिन भर इधर-उधर घूमते रहे। इस प्रकार स्कूल का समय पूरा किया।

इधर स्कूल मे अध्यापक ने वाबूलालजी को बुलाने के लिए, घर पर एक लडके को भेजा। तव काकाजी का माथा ठनका। उन्हे विचार हुआ—'कितना शैतान लडका है ? घर से पढने का वहाना करके जाता है और दिन भर न जाने कहाँ घूमता रहता है।' शामको स्कूल की छुट्टी के समय वावूलालजी घर आये। काकाजी ने पूछा—'कहाँ गया था आज !' वावूलालजी—'पढने !' काकाजी—'क्या पढा आज ?' वावूलालजी ने झूठमूठ पढे हुए पाठ भी वता दिये। काकाजी ने उस समय उन्हे कुछ नही कहा। साथ विठाकर भोजन किया। फिर काकाजी वावूलालजी को लेकर अध्यापक के पास पहुँचे और उन्होने सारी घटना उन्हे कह सुनाई। काकाजी उन्हे अध्यापक को सौंपकर घर आ गये। अध्यापक ने वावूलालजी को उनकी शरारत के लिए दण्ड दिया। वेत से खूव पिटाई की। परन्तु उस पिटाई से वावूलालजी का निश्चय और दृढ हो गया। पिटाई से हुई उनकी दुरवस्था देखकर, दादी ने काका से उपालभ देते हुए कहा—'क्या ऐसा मारा जाता है बच्चो को। कहाँ दो-चार बच्चे है ?' दादी ने उन्हे पुचकारा। काकाजी भी वहुत पछताये।

दूसरे दिन पढने के वहाने रोज की अपेक्षा जल्दी घर से निकल गये। काकाजी समझे, कि—कल की मार का प्रभाव है। उस दिन वे अपने मित्र के साथ लीमडी की ओर रवाना हो गये। दाहोद पहुँचे। वहाँ से लीमडी पहुँचने के लिए वस मे वैठे। गांव थोडी दूर रहा और कुछ वहाना वनाकर, वही वस से उतर गये। उतरते समय अपने मित्र से कहा—'तुम गांव मे जाओ और गुरुदेव से कहना, कि—'वावू आ रहा है।' वावूलालजी ने वहीं साधुवेश पहन लिया और नये मुनि वनकर गांव मे प्रवेश किया। लोग उन्हे देख रहे थे। वे आश्चर्य के साथ विचार कर रहे थे, कि—चातुर्मास मे ये नये महाराज कौन आ रहे है और कहाँ

मे आ रहे है ? मुनिवेश मे बाबूलालजी स्थानक मे पहुँचे । साधु भी आश्चर्य-चकित थे । उन्होने जाकर महाराजश्री को वन्दना की । लोग नये मुनि को देखने के लिए उमड रहे थे । महाराजश्री ने बाबूलालजी से कहा—'बाबू ! तूने यह क्या किया ? बात क्या है ?' आपने कहा—'मुझे दीक्षा लेना है । बस, दीक्षा दे दीजिए । इसीलिए सभी तैयारी करके आया हू ।' महाराज श्री ने आपसे कहा—'बिना आज्ञा के हम दीक्षा कैसे दे सकते है ? क्या तुम घर से पूछ कर आये हो ?' बाबूलालजी मौन थे । तब महाराज श्री ने कहा—'उज्जैन कस्तूरचन्दजी को समाचार दिलाने होगे !' बाबूलालजी अनुनय करने लगे—'नही, गुरुदेव वहाँ समाचार मत दिलाइए ।' इतने मे उज्जैन से जवाबी तार आगया । बाबूलालजी के इनकार करने पर भी उज्जैन प्रत्युत्तर दिया गया । समाचर पाते ही उनका परिवार लीमडी आ गया । काकाजी ने आते ही उनके सिर पर जोर से चप्पत जमादी । बाबूलालजी चौके और परिवार को देखकर, दौडते हुए ऊपर चले गये ।

प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी म श्री किशनलालजी म आदि के पास सारा परिवार पहुँचा । सब महाराज श्री के सामने बैठ गये । सेठ कस्तूरचन्दजी आवेश मे बोले—'महाराज ! यह लडका यहाँ कैसे आ गया ?' श्री किशनलालजी म ने शान्ति से उत्तर दिया - 'यह तो आप इसे ही पूछिए । न तो इसको हमने बुलाया है और न हमने इसे ऐसा करने की प्रेरणा ही दी है । आपको विश्वास हो या न हो, पर यह मुनिवेश पहनकर यहाँ आया, इसके पूर्व हमे इस विषय मे कुछ भी पता नही था ।'

उनके परिवार मे से किसी ने कहा—'हमे यह विश्वास है, कि-गुरुदेव ऐसा नही कर सकते हैं । पर हम इसे वापिस ले जाना चाहते है ।' महाराज श्री ने कहा—'यह अपनी इच्छा से आया है और यदि इसकी इच्छा जाने की हो तो हम इसको रोकेगे नही ।'

परिवार के मुखिया बोले—'इसकी इच्छा-विच्छा तो ठीक है । यह जोश जोश मे भले अभी दीक्षा लेले । पर इसके स्वभाव से आप

परिचित नही हैं। यह क्या साधुपना पालेगा ? कुछ गडवडी हुई तो हम तो मुँह दिखाने के ही नही रहेगे।' फिर व्यौरे वार इनके स्वभाव और शौकिनी की चर्चा चलने लगी।

महाराज श्री ने कहा—'हमने अभी तो इसे दीक्षा नही दी है और कुछ दिन साथ रहने पर यदि यह योग्य लगेगा, तो हम दीक्षा देगे।'

इनके अन्य काका के लडके चाँदमलजी वोले—'नही, महाराज! अभी तो इसे हम ले जाएँगे।'

कस्तूरचन्दजी ने वावूलालजी से कहा—'वोल साथ चलता है, कि—नही।' वावूलालजी ने दृढता से कहा—'नही, मैं नही आऊँगा।' काकाजी ने उन्हे जोर से तमाचा जड दिया। तव उन्होने और हठ से कहा—'भले आप मुझे मार लो। पर मैं घर नही जाऊँगा।' इस रसा कस्सी को देख कर, आपके वडे भ्राता नगीनचन्दजी म. वोल पडे—'आप इसके पारिवारिक जन है तो मैं क्या इसके कुछ नही लगता हूँ ? मैंने अपनी दीक्षा के पूर्व ही इसे दीक्षा की आज्ञा दे दी है।' स्थानीय सघ के मुख्य श्रावक भी वहाँ वैठे हुए थे। उन्हे यह मारपीट अच्छी नही लगी। वे वोले—'साहव! ये भले ही साधु नही हुए हैं। पर हैं साधुवेश मे ही। यदि आप इन्हे ऐसी स्थिति मे मारते-पीटते हैं, तो यह ठीक नही है। अजैन लोग तो यही समझेगे, कि-ये लोग साधु को पीटते हैं। यदि आप इन्हे ले जाना चाहते हैं तो समझा वुझाकर ले जाइए।'

महाराज श्री भी इस झमेले से परेशान हो गये थे। आपने रात मे वावूलालजी से कहा—'भाई! कई दीक्षाएँ दी। पर ऐसी परेशानी का सामना नही करना पडा। यदि तुम्हे जाना हो तो जा सकते हो।' वावूलालजी का एक ही उत्तर था 'मुझे नही जाना है।' दूसरे दिन भी पारिवारिक जन के द्वारा वहुत प्रयत्न करने पर भी 'नही' 'हाँ' मे नहीं वदली सो नही वदली।

ऐसी स्थिति देखकर, सेठ कस्तूरचन्दजी ने कहा—'आप इसे उज्जैन पधारकर ही दीक्षा दें।' वावूलालजी वीच मे ही वोल उठे 'छोटी

दीक्षा के लिए आप वचन मे मत बन्धिए। अभी तो चातुर्मास की समाप्ति मे डेढ-दो महिने शेष है। मुझे विलम्ब पसन्द नही है। हाँ! बडी दीक्षा उज्जैन मे हो सकती है।' आखिर मे कस्तूरचन्दजी इसके लिए भी राजी हो गये। उन्होने इस विषय मे महाराज श्री से वचन भी ले लिया। परन्तु काकाजी की एकदम इतनी नम्रता देखकर, बाबूलालजी को और ही आशका हुई। उन्होने अपनी आशका गुरुदेव को कह सुनाई। पर महाराजश्री ने कहा—'जो होगा, सो आगे देखा जाएगा।'

स १९८९ आश्विन सु १० को आपकी छोटी दीक्षा हुई। आप श्री किशनलालजी म के शिष्य हुए। आपका नाम श्री विनयमुनिजी या विनयचन्दजी म रखा गया। चातुर्मास उठने के बाद लगभग दो माह मे महाराज श्री उज्जैन पधारे। नवदीक्षित मुनिजी की आशका सत्य सिद्ध हुई। उनके परिवार की, उन्हे दीक्षा देने की इच्छा थी ही नही। उन्होने महाराजश्री को उज्जैन किसी और आशय से बुलाया था। परन्तु श्री विनयमुनिजी म की दृढता के कारण वे अपने इरादे मे सफल न हो सके। चार दिन वहाँ रहकर महाराज श्री ने देवास की ओर विहार कर दिया। वही आपकी बडी दीक्षा सम्पन्न हुई।

दीक्षा के बाद आपने यथा योग्य अध्ययन किया। आज आप प्रियवक्ता श्री विनयचन्दजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध है। आपने दीक्षा के बाद विस्तृत प्रदेश मे विचरण किया। आपके प्रवचनो के सग्रह नव जिल्दो मे प्रकाशित हुए है। (१) जीवन-साधना (२) जीवन-सौरभ (३) जीवन-लक्ष्य (४) जीवन-वैभव (५) जीवन-प्रेरणा (६) समाज-दर्शन (७) धर्म-दर्शन (८) हम कैसे जिएँ और (९) सुख के स्रोत-ये प्रवचन-सग्रह के नाम है। काव्य-सजीवनी, दोहा-पीयूष सग्रह, कवित्त सग्रह, सूक्ति-सरोज आदि आपके द्वारा सग्रहित ग्रन्थ हैं।

आपको लोगो की वृथा चर्चाएँ पसद नही हैं और न लोगो की बातो मे पडने मे ही खास दिलचस्पी है। आप प्राय अध्ययन-रत रहते है और कुछ न कुछ नोध करते रहते है।

एक वार रामपुर मे आपसे एक डाक्टर ने कहा—'आपने साधु वनकर ससार को क्या दिया ?' आपने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'साधु वनने वाले व्यक्ति समाज का वहुत भला करते है, पर वह दिखाई नही देता है। कल्पना कीजिए, कि—दस पेडे है, और खाने वाले भी दस वच्चे है। एक-एक पेडा सवके हिस्से मे आएगा पर पाँच वच्चो ने पेडे खाने से इन्कार कर दिया तो खाने वाले बच्चो के हिस्से मे दुगुने पेडे आएँगे न। वस यही वात हम पर घटा लीजिए। हमने अपना हिस्सा आप जैसे लोगो के लिए छोड दिया है। हम साधु न होते तो कुछ न कुछ सम्पत्ति एकत्रित करते ही। वह हजार भी हो सकती थी या लाख भी और वह सम्पत्ति आती कहाँ से ? समाज की झोली से ही न।' डॉक्टर यह उत्तर सुनकर, हँस पडे और वोले—'आपका कहना ठीक है।'

आपके दो शिष्य है—श्री शान्तिमुनिजी म और श्री प्रमोदमुनिजी म 'मधु'। 'परिचय-रेखा' नामसे आपकी जीवनी का पूर्व हिस्सा और 'विहार-यात्रा के ससमरण' नाम से साधु-जीवन के कुछ घटना-प्रसग प्रकाशित हो चुके है।

प्रि. वक्ता श्री विनयचन्दजी म. के अन्तिम पत्रो की

प्रतिलिपि

ता २५-११-७२ दाहणु गाम—सुखराजजी की वाडी

मालव केसरीजी महाराष्ट्र विभूपण

सविधी वदना

आपकी ओर से एक तार और श्री जीवन मुनि म की ओर से कार्ड पत्र मिला।

इस वात की तो मैं अच्छी तरह से जानता था कि दाहणु गाम का हवा पानी मेरे स्वास्थ्य के अनुकूल नही रहेगा। किन्तु वातावरण ऐसा तैयार हो गया था, कि यदि मैं चातुर्मास के लिए इन्कार कर दू, तो २०

वर्ष आगे भी स्थानकवासी साधु का चातुर्मास नही हो सकता। अतः चातुर्मास के लिए हा मे उत्तर देना ही पडा।

पर्युषण पर्व तक स्वास्थ्य अच्छा रहा। फिर हाँपनी चलने लगी। वहाँ के डॉक्टर को बताया तो उसने निर्णय दिया की तुम्हारा हार्ट बढ रहा है और वडे डाक्टर की सलाह बिना हम आपकी चिकित्सा नही कर सकते। लोगो को बहुत असन्तोष हुआ। सभी मुनियो के लिये भी चिन्ता का विषय बना। मुम्बई से डाक्टर आया। कार्डियो ग्राम लिया। कार्डियो ग्राम तो ठीक ही आया। डॉ ने निर्णय दिया की खून का सचार चाहिए जिस ढग से नही हो रहा है इस कारण हापनी चलती है। एक सप्ताह की चिकित्सा से हापनी चलना अब वन्द हो गया है।

किन्तु जिसे एक वार हार्ट अटेक आगया है उसकी जिन्दगी का क्या भरोसा। उसका फैसला होने मे देर नही लगती। हा अटक वालो का यह पुण्य का उदय है, कि-उसे रिबा रिबा कर मरना नही पडता। तीन मिनिट, तीन घन्टे या तीन दिन मे टिकिट मिल जाती है।

किन्तु अव ऐसा प्रतीत होता है कि आयुष्य की पू जी वहुत सी खाली हो चुकी है। मरने से डरने पर भी वह आये विना रह नही सकती। किन्तु आप एसा आशीर्वाद दे कि समाधी भाव से मरू। वेदना मुक्त रहूँ।

मुझे दीपावली के पूर्व दो स्वप्न आये थे एक का फल-तो मिल ही गया है। दूसरे स्वप्न मे यह ध्वनि की-'अव आयुष्य कम है" यह प्रेरणा सब मे अच्छी मिली है। अत आपसे, प सागर मुनि म से श्री जीवन मुनि म महेन्द्र मुनि म से श्री कमल मुनि एव रतनमुनि म प्रदीप मुनि म ठा ७ मे मेरी ओर से किसी भी रूप मे अपराध हुआ हो तो मै आप से सरलता से क्षमायाचना करता हू। वहाँ विराजित सभी साध्वी जी म से भी मेरी ओर से हुए अपराधो की क्षमा चाहता हू। मेरे बाद प्रमोदमुनि का पूरा-पूरा ध्यान रखना। यह बहुत ही भोला है। स्वभाव मन्द है। मेरी सेवा भी खूब करता है। अभी तो मुनि श्री जागृत नही है। जागृत होने पर पत्र दे दूगा। इस पत्र को पढकर

चिन्ता न करे। अभी चिन्ता जैसा कोई प्रश्न नही है। मैं सभी प्रकार से प्रसन्न हू।

—विनयमुनि

डाक्टरो की सलाह है, कि-इस भेजवाली हवा से निकल कर आप सुखी हवा मे चले जाइए। अत मैने इगतपुरी जाने का निर्णय लिया है। इगतपुरी पहुँचते मुझे करीव एक मास लग जायेगा। श्रावको का सहयोग वहुत ही सुन्दर है।

आप श्री को पत्र देना हो, तो दाहणु ग्राम के पते पर ही देते रहे

क्षणिक आ देह मानव नो, भरोशो जिन्दगी नो शो।
अविनय अपराध मे कीधा, क्षमा दाता क्षमा करजो॥

—विनय मुनि

प्रवर्तक श्री को भी पत्र देने का विचार कर रहा हू। कल यहाँ ठहर कर परसो मे पारसमलजी की वाडी मे ठहरूगा। इधर अपने लोगो की इतनी वाडिया है, कि १५ मील का रास्ता तय करने मे मुझे करीव १० दिन लग जाएँगें।

एक मन्दिर मार्गी भाई ने चातुर्मास की सफलता के उपलक्ष मे १११११) रु. साहित्य क्षेत्र मे देने की जाहिरात की है।

प्रवर्तनी जी श्री सज्जनकुवरजी म का स्वास्थ्य कैसा है। सभी साध्वीजी म को मेरी ओर से सुख साता पूछे।

—शेष आनन्द

(२)

ता २७-११-७२ दाहणु—पारसमलजी की वाडी

श्रद्धेय अर्चनीय चरण प्रवर्तक श्री

सविधी वदना

मेरा स्वास्थ्य पहिले जैसा नही है और रह भी कैसे सकता? क्योकि अव मैं ५७ वर्ष की उम्र मे आ गया हू। आयुष्य की पूजी वहुत सी खर्च हो चुकी है।

स्वास्थ्य पर उम्र का प्रभाव पडे विना रह भी नही सकता।

दीपावली के दो दिन पूर्व मुझे दो स्वप्न आए थे। एक स्वप्न का शुभ फल तो मिल ही चुका है।

दूसरे स्वप्न मे यह ध्वनी गुनाई दी कि "अब आयुष्य कम है"।

अतः मेरी ओर से आपके शरीर एव मन को पीडा पहुँची हो तो मैं आपसे अपने अपराधों की क्षमा चाहता हू।

श्री रूपेन्द्रमुनि म, श्री सुरेन्द्रमुनि म. एव प श्री उमेपचन्द्रजी मुनि म से भी क्षमा चाहता हूँ।

मेरे निकट के जो साथी हैं, उन सभी से मैने क्षमा याचना करली है, मालव केसरी जी से भी।

क्षणिक आ देह मानव नो, भरोमो जिन्दगो नो शो।
अविनय अपराध मे कीधा, क्षमा दाता क्षमा करजो॥

—विनय मुनि

मेरे वाद मे प्रमोदमुनि पर आप सभी की कृपा दृष्टि रहे। यह भोला है और मन्द कषायी है। इसे मेरी याद न आए यही चाहता हूँ।
... .. जब मुझे छोडा तब इसने (प्रमोद) ने मेरी अ गुली पकड़ी थी।

गण मे विद्यमान अन्य मुनि

(१) श्री सागरमुनिजी म —जन्म गाँव करडावद (पेटलावद के समीप) दीक्षा–स १९८७ आपाढ विदि ७, वदनावर। प्र व श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य।

(२) श्री सुरेन्द्रमुनिजी म —जन्म स्थान आगर। जन्म स १९८२ दीक्षा–स. १९९६ कार्तिक सु. १२, हैदराबाद। प्रवर्तक श्री सूर्यमुनिजी म के शिष्य।

(३) श्री हुकममुनिजी म —जन्म स्थान राजगढ। दीक्षा–स २००१ माघ सु ५, खाचरोद। प्र व श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य।

(४) श्री मगनमुनिजी म —जन्म स्थान बिडवाल। दीक्षा–स २००२, वैशाख वि १०, बदनावर। प्र व श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य।

(५) श्री रूपेन्द्रमुनिजी म —जन्म स्थान आगर (मध्य-प्रदेश) दीक्षा–स २००३, वैशाख सु ११, कतवारा। कविवर्य प्र श्री

सूर्यमुनिजी म. के शिष्य ।

(६) श्री जीवनमुनिजी म —निवास स्थान जोधपुर (राजस्थान)
दीक्षा स आश्विन सु १३, स १९९६ गुरु पूज्य श्री हस्तीमलजी म सा (अकेले विचरने के कारण दीक्षा-छेद के वाद स २००७ दीक्षा, स ज्ये शु १३)
सम्प्रति मालव-केसरीजी म. की नेश्राय मे विचरते हैं ।

(७) श्री उमेशमुनिजी म —जन्म स्थान थाँदला (मध्य-प्रदेश)
दीक्षा-स २०११, चैत्र सु. १३ थाँदला । प्रवर्तक प श्री सूर्यमुनिजी म के शिष्य ।

(८) श्री शातिमुनिजी म.—जन्म स्थान नागदा ग्राम (धार जिला)
दीक्षा-स २०१८, प्रथम ज्येष्ठ वि १२, उज्जैन । प्रियवक्ता प श्री विनयमुनिजी म के शिष्य ।

(९) श्री महेन्द्रमुनिजी म.—जन्म स्थान धार (मध्य-प्रदेश)
दीक्षा-स २०१८, फागुन सुदी २, लीमडी । प्रसिद्ध वक्ता प. श्री सौभाग्यमलजी म. के शिष्य ।

(१०) श्री कमलमुनिजी म —गोडल (सौराष्ट्र)
स २०२५, मृगशिर सु १० । दीक्षा स्थान इगतपुरी ।प श्री जीवन-मुनिजी म के शिष्य ।

(११) श्री प्रमोदमुनिजी म 'मधु'—जन्मस्थान-नाशिक
दीक्षा-स. २०२५, माघ शुक्ला पञ्चमी । दीक्षा स्थान घोटी, प्रिय वक्ता प श्री विनयचन्द्रजी म के शिष्य ।

(१२) श्री अनूपमुनिजी म —
दीक्षा-स २०२६ । दीक्षा स्थान ध धुका ।
श्री हुकुममुनिजी म के शिष्य ।

(१३) श्री प्रदीपमुनिजी म —जन्म स्थान फागणा, [धूलिया] ।
दीक्षा-स २०२८, आषाढ सु ५, ढिडोरी [नाशिक]
श्री मालव केसरी प श्री सौभाग्यमलजी म के शिष्य

(१४) श्री विजयमुनिजी म.—जन्म स्थान रतलाम।
दीक्षा–स. २०३१, चैत्र शु २, फागणा
श्री सागरमुनिजी म के शिष्य।

(१)

प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी महाराज और उनकी सतियाँ

श्री राजकुँवरजी म प्रवर्तिनी पण्डिता श्री मेनकुँवरजी म की तीसरी शिष्या है। आप 'बडनगर वाले महाराज' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म स्थान कोद (धार) है। आपकी दीक्षा स १९५८ मे धारा नगरी मे हुई। आपके दीक्षा गुरु पूज्य श्री नन्दलालजी म थे। आपके सङ्ग आपके श्वसुर भी दीक्षित हुए थे। इस समय आप विशेष वयोवृद्धा है। इन्दौर मे आप स्थिरवास रूप से स्थित हैं। आप भद्र प्रकृति की साध्वी हैं। आपकी तीन शिष्याएँ हुई। (१) श्री दाखाजी म, (२) श्री प्यारीजी म और (३) श्री आनन्दकुँवरजी म। आपकी तीनो शिष्याओ का देहान्त हो चुका है।

आपकी आज्ञा मे निम्न लिखित साध्वियाँ विचरती है—

(१) श्री केशरकुँवरजी म [कोटा वाला] दीक्षा स १९७३।
श्री मेनकुँवरजी म की शिष्या।

(२) श्री चतरकुँवरजी म [थाँदला वाला] दीक्षा स १९७८।
श्री मेनकुँवरजी म की शिष्या। सेवा भावी।

(३) श्री सोहनकुँवरजी म [सैलाना वाला],
दीक्षा स १९८२ फागुन वि २।
श्री मेनकुँवरजी म की शिष्या।

(४) श्री सुगनकुँवरजी म [सीतामहू वाला], दीक्षा १९८५।
श्री सूरजकुँवरजी म की शिष्या।

(५) श्री मानकुँवरजी म. [खाचरोद वाला]
श्री फूलकुँवरजी म की शिष्या।

(६) श्री मोहनकुँवरजी म [थाँदला वाला], दीक्षा स १९९६।
श्री प्याराजी म की शिष्या।

(८) श्री सज्जनकुँवरजी म [इन्दौर वाला]
दीक्षा स २००० अगहन विदी १२।
श्री सोहनकुँवरजी म की शिष्या।

(९) श्री वल्लभकुँवरजी म [बरमावल वाला] दीक्षा २००३।
श्री सूरजकुँवरजी म. की शिष्या।

(१०) श्री चाँदकुँवरजी म [आगर] दीक्षा स २००३ वै गु ११।
श्री चतरकुँवरजी म. की शिष्या।

(११) श्री कमलाकुँवरजी म [आगर] दीक्षा स २००३ वै गु ११।
श्री गेंदकुँवरजी म. की शिष्या।

(१२) श्री रोशनकुँवरजी म. [रभापुरवाला], दीक्षा स २०१६ फा
श्री सूरजकुँवरजी म. की शिष्या।

(१३) श्री कचनकुँवरजी म [थाँदला वाला], दीक्षा २०२१ वै गु ११।
श्री मोहनकुँवरजी म. की शिष्या।

(१४) श्री ताराकुँवरजी म, [खामखेडा] दीक्षा स २०२८ चैत सु. १३
श्री चाँदकुँवरजी म की शिष्या।

(२)

बा ब्र प पडिता श्री चाँदकुँवरजी महाराज और उनकी आज्ञानुवर्तिनी साध्वियाँ

बा ब्र पण्डिता श्री चाँदकुँवरजी म का जन्मस्थान छत्री बरमावल है। आपके पिता का नाम गगारामजी पीपाडा और माता का नाम घीसीबाई था। रतलाम-निवासी रामलालजी बाफना की माता श्री

मैंनाबाई ने लगभग छह वर्ष की आयु तक आपका लालन-पालन किया। विदुषी प्रवर्तिनी श्री महताबकुँवरजी म. ने आपको अल्प आयु मे ही दीक्षा प्रदान की। आपकी दीक्षा सवत् १९६६, फागुन विदी ५ को रतलाम मे गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे हुई। दीक्षा के पूर्व आपका विद्याध्ययन नही हुआ था। दीक्षा के बाद ही आपने विधिवत् विद्याध्ययन किया। पच्चीस शास्त्रो का आपने अभ्यास किया। हिन्दी, गुजराती, और उर्दू भाषा का आपको अच्छा ज्ञान है और सस्कृत-प्राकृत भाषा की भी जानकारी है। आपकी प्रवचन-शैली भी सुन्दर, आकर्षक एव परिमार्जित रही है। हजारो के जन समुदाय मे निर्भयता के साथ पटुता से प्रवचन देती आई है। आपका विचरण-क्षेत्र मालवा, मारवाड, मेवाड, महाराष्ट्र, गुजरात, देहली आदि रहा है।

आपकी तीन शिष्याएँ अभीतक हुई हैं—

(१) श्री मदनकुँवरजी म., (२) विदुषी श्री शान्तिकुँवरजी म और (३) श्री गुमानकुँवरजी म, श्री शातिकुवरजी म विशेष प्रतिभाशालिनी सती है। आपकाकण्ठ मधुर है। आपकी प्रवचन-शैली मधुर एव आर्कषक है। अपने प्रवचनो के माध्यम से आप जन समुदाय मे आध्यात्मिकता भरने का प्रयत्न करती है। श्री चाँदकुवँरजी म. की अन्य दो शिष्याओ का देहान्त हो चुका है।

आपकी आज्ञा मे विचरने वाली साध्वियाँ—

(१) श्री बडे वल्लभकुँवरजी म [जोधपुर], स १९७७ फा शु १० दीक्षा
श्री महताबकु वरजी म की शिष्या।

(२) श्री छोटे वल्लभकुँवरजी म. [जोधपुर] दीक्षा स १९७८ अगहन विदी ५।
श्री महताबकु वरजी म, की शिष्या।

(३) श्री सौभाग्यकु वरजी म [राणावास], दीक्षा स १९९२ चैत शु १०
श्री उम्मेदकु वरजी म की शिष्या।

(४) श्री मनोहरकु वरजी म [शिवपुरीवाला] दीक्षा स १९९३ फा सु ११
श्री बडे वल्लभकु वरजी म. की शिष्या।

(५) श्री मोहनकुवरजी म [लश्कर वाला], दीक्षा स १९९५ जेठ सु १२
श्री वडे वल्लभकुवरजी म की शिष्या ।

(६) श्री शान्तिकुवरजी म [इन्दौर], दीक्षा स २००२ मृगसर सु २।
श्री चाँदकुवरजी म की शिष्या ।

(७) श्री मदनकुँवरजी म । दीक्षा स २००४ पौष वि ८।
श्री सौभाग्यकुँवरजी म. की शिष्या ।

(८) श्री चन्दनकुँवरजी म [जोधपुर], दीक्षा स २००६ मृग. सु १५।
सम्प्रति श्री वडे वल्लभकुँवरजी की नेश्राय मे ।

(९) श्री मगनकुँवरजी म [सादडी], दीक्षा स २०१३ मृग वि. १२।
श्री मदनकुवरजी म की शिष्या ।

(१०) श्री लज्जाकुवरजी म [निवरी], दीक्षा स २०१७ कार्तिक सु ८ गु.
श्री शान्तिकुवरजी म की शिष्या ।

(११) श्री रमणीककुवरजी म [इन्दौर], दीक्षा स २०१८ फागुन सु० २।
श्री शान्तिकुवरजी म की शिष्या ।

(१२) श्री चन्दनवालाजी म. [वदनावर] दीक्षा स २०२८ वै सु. ९ शुक्र
श्री शान्तिकुवरजी म की शिष्या ।

(१३) श्री हेमप्रभाजी म. [अहमदावाद], दी स २०२९ खवासा मे ।
श्री मदनकुंवरजी म. की शिष्या ।

(३)

प्रवर्तिनी पं. श्री सज्जनकुँवरजी महाराज और उनकी आज्ञानुवर्तिनी साध्वियाँ

पडिता श्री सज्जनकुवरजी म. का जन्म स्थान जावरा हैं। आपका जन्म राँका परिवार मे हुआ। आपने अल्पायु मे ही प्रव्रज्या

प्रवर्तिनी पं. श्री गुलाबकुँवरजी महाराज और उनकी आज्ञानुवर्तिनी साध्वियाँ

श्री गुलाबकु वरजी महाराज पचेड वाला महाराज के नाम से प्रसिद्ध हैं। रतलाम से कुछ दूर 'पचेड़' नामका ग्राम हैं। आप वहाँ की निवासिनी रही हैं। पिता रखवचन्दजी। माता कस्तूरबाई। आपके लग्न पलसोडा निवासी घासीलालजी सुराणा के साथ हुए थे। युवावय में ही पति का देहान्त हो गया। तब आपने अपनी माता के सङ्ग प्रवर्तिनी श्री टीवूजी महाराज के समीप प्रव्रज्या अङ्गीकार की। आप भद्र प्रकृति की साध्वी है। आप रुग्णावस्था के कारण अभी धूलिया मे विराजित हैं। श्री राजकुँवरजी म के बाद आपको प्रवर्तनी पद प्राप्त हुआ।

आपकी तीन शिष्याए हुई। श्री सुन्दरजी म, श्री नानूजी म, श्री चाँदकुँवरजी म। श्री सुन्दरजी म. और श्री नानूजी म. का देहान्त हो गया है। आपकी सेवा मे श्री चाँदकु वरजी म. आदि हैं। आपकी प्रवचन-शैली सरल और मधुर है।

आपकी आज्ञानुवर्तिनी साध्वियाँ—

(स्वर्गीय प्रवर्तिनी श्री राजकुँवरजी म. की दो शिष्याए हैं—श्री गुलावकु वरजी म और श्री केसरकुँवरजी म.।)

(१) श्री गुलावकुँवरजी महाराज [थाँदला वाला] आपका जन्म स्थान सैलाना के समीपस्थ ग्राम शिवगढ है और आपका विवाह थाँदला के प्रख्यात शाहजी कुटुम्ब मे श्री खुमाणसिहजी के साथ हुआ था। पति का देहान्त हो जाने के वाद आपके हृदय मे वैराग्य भावना जागृत हुई। आपने श्री टीवूजी महाराज की शिष्या के पास प्रव्रज्या स्वीकार की। आप प्रसिद्ध श्रावक श्रीमान् रतनलालजी डोसी की वहिन हैं। आप भद्र परिणाम वाली

साध्वी हैं। आपकी एक शिष्या है—श्री सज्जनकुंवरजी महाराज [येवलावाला]। आप रुग्णावस्था के कारण कुछ वर्षों से रतलाम मे ही स्थिरवास विराज रही है।

(२) श्री केसरकुंवरजी महाराज [जावरा वाला] आप श्री गजकुंवरजी म की द्वितीय शिष्या हैं। आपने अपना भरा-पूरा परिवार छोड़कर, पति की विद्यमानता मे ही प्रव्रज्या अंगीकार की। आप बड़ी सेवा भावी हैं। आप व्याख्यान के माध्यम से जनता मे धर्मप्रेरणा भी देती हैं। आपकी तीन शिष्याएं प्रशिष्याए हैं।

(३) श्री वल्लभकुंवरजी म [थांदला] दीक्षा स १९८५।
खाचरोद वाले श्री गुलाबकुंवरजी म की शिष्या।

(४) श्री दिलसुखकुंवरजी म [जालना वाले] दीक्षा स १९९२ अग कृ ५
श्री केसरकुंवरजी म की शिष्या।

(५) श्री सज्जनकुंवरजी म [येवलावाले] थांदला वाले श्री गुलाबकुंवरजी म की शिष्या। दीक्षा स १९९३ अगहन कृ ५।

(६) श्री चाँदकुंवरजी म [सिन्दूर्नी], पचेडवाले श्री गुलाबकुंवरजी म की शिष्या। दीक्षा स १९९४ मृगसर सु १०।

(७) श्री गुलाबकुंवरजी महाराज [रतलाम वाले], श्री केसरकुंवरजी म की शिष्या। दीक्षा-स २०१० अगहन सु १०।

(८) श्री शांतिकुंवरजी म [नन्दुरवार], श्री चाँदकुंवरजी म की शिष्या दीक्षा-स २०१८ मृगसर वि ५। निमाड मे।

(९) श्री कुसुमकुंवरजी म [खानदेश], श्री चाँदकुंवरजी म की शिष्या दीक्षा-स २०१९ मृगसर सु वाडीवाडा मे।

(१०) श्री सुमन.कुंवरजी म [सिंदूर्नी], श्री चाँदकुंवरजी म. की शिष्या। दीक्षा-स २०२९ फागुण सु १३ धूलिया मे।

(११) श्री प्रमोदकुंवरजी म [लिमडी] श्री केसरकुंवरजी म की शिष्या। दीक्षा-स. २०२९ रतलाम मे।

सप्तम अध्याय

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की मालवा की परम्पराओं का पारस्परिक-सम्बन्ध

एक वृक्ष: अनेक शाखाएँ.—

एक बीज से अकुर उत्पन्न होता है। वह अ कुर समय बीतने पर वृक्षके रूप मे वदल जाता है। उसकी अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ हो जाती हैं। वह वृक्ष शाखाओ-प्रशाखाओ से सुशोभित होता है। शाखाए और प्रशाखाए हवाके द्वारा झकझोर किये जाने पर परस्पर उलझ जाती हैं और फिर सुलझ भी जाती हैं। पर कभी-कभी इस प्रकार उलझने से शाखाए टूट भी जाती हैं। ऐसा ही है मानव के वशो का इतिहास। एक ही मानव-वश मे अनेक कुल-उपकुल हो जाते है। ऐसी ही वात है-धर्म-सम्प्रदायो के सम्वन्ध मे भी। एक महापुरुप के जीवनकाल मे उसके कई अनुयायी वनते हैं। फिर वे अनुयायी कई सम्प्रदायो-उप सम्प्रदायो में बँट जाते हैं। समय की दूरी उनमे भी दूरी पैदा कर देती है। वे एक धर्म के अनुयायी होकर भी आपस मे उलझ जाते हैं। उनके सम्वन्धो में दरारे पैदा हो जाती हैं और उन्हे कभी भान आता है तो पारस्परिक सम्बन्धो को सुलझाते हैं-दरारे पाटने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार धर्म-सम्प्रदायो के इतिहास मे पारस्परिक सहयोग-असहयोग, जोड-तोड, सुधार आदि पर भी विचार करना योग्य है। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के अनुयायी-वर्ग के अनेक सम्प्रदाय-उपसम्प्रदाय हुए और हैं, उन सबके पारस्परिक सम्वन्ध के विषय मे लेखा-जोखा प्रस्तुत करना इस विषय से सम्वन्ध नही रखता। किन्तु मालवा की शाखाओ के पारस्परिक सम्वन्धो के विपय मे ज्ञात इतिवृत्त प्रस्तुत करना प्रासगिक ही है।

मालवा-परम्पराओं का अन्य परम्पराओं से सम्बन्ध

पूज्य श्री धर्मदासजी म की मालव-परम्पराओ के सन्तो ने अन्य परम्पराओ के साथ उचित सम्बन्ध बनाये रखा। ऋषि-सम्प्रदाय के सन्तो के साथ में अच्छा प्रेम-सम्वन्ध था। उन्होने आचार्य श्री की अन्य देशस्थ परम्पराओ से भी उचित सम्वन्ध वनाये रखने मे ही अपने सम्प्रदाय का गौरव समझा। वे अन्य सम्प्रदाय के सन्तो को ज्ञान देने मे या उनसे ज्ञान प्राप्त करने मे पीछे नही रहते थे। इस विषय में एकाध उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा।

पूज्य श्री धर्मदासजी म के शिष्य पूज्य श्री मूलचन्दजी म का शिष्य-परिवार अतीत काल से ही गुजरात, काठियावाड में ही विचरण करता रहा है। श्री इच्छाजी म पूज्य श्री मूलचन्दजी म के शिष्य थे। आपकी दीक्षा सवत् १७८२ मे हुई थी। आप जब आचार्य पद पर स्थित थे, तब आपका पदार्पण मालवा मे भी हुआ था। रतलाम शाखा के आचार्य पू श्री मयाचन्दजी महराज का आपसे उज्जैन मे प्रेम-मिलन हुआ। उस समय पूज्य श्री मयाचन्दजी म. ने उनके समीप मे रहते हुए, रामायण (रामरास) की प्रतिलिपि की। उस प्रतिलिपि की पुष्पिका मे, आपने उस स्नेह-मिलन की स्मृति को चिरजीवी बनाने के लिए, गौरवपूर्ण शब्दो मे इस प्रकार लिखा—

'स १८३१, चेत सुदी ८ दीत, लि ऋषि मयाचन्द, पूज्य श्री ५ इच्छाजी प्रसादात्, ग्राम उजेण मे।'

उज्जैन-शाखा के आचार्य पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज के सन्तो ने और पूज्य श्री इच्छाजी म के प्रमुख सन्तो ने मिलकर परस्पर आचार-मर्यादा का निर्णय भी किया था, जिसकी प्रतिलिपि मे श्री मूलचन्दजी म (रतलाम शाखा के एक प्रमुख सत) ने इस विषय मे इस प्रकार उल्लेख किया है—

'सम्मत् १८४३ वर्षे पोष सुदी ११ ने दीने, महापुर्षजी श्री पुज साहबजी श्री ७ रामचन्दजी, पुजजी साहब श्री मूलचन्दजी सामी ने सीघाडे पुज श्री इच्छाजी सामीने सभलावी आचार-मर्जा (दा) लखीय छे।'

(इसका सवत् उल्लेख जरा विचारणीय है, क्यो कि गुजरात-पट्टावली [पट्टावली प्रबन्ध सग्रह पृ २०९] मे श्री इच्छाजी स्वामी का देहान्त सवत् १८३३ बताया है।)

मालवा की शाखाओ का पारस्परिक सम्बन्ध

यद्यपि पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के विभिन्न शिष्यो से मालवा की शाखाएँ प्रारम्भ हुई थी, फिर भी उनमे परस्पर प्राय सभोग-सम्बन्ध बराबर चलता रहा। उनमे प्राय. ऐक्य था। वे एक-दूसरे

के पूज्य पुरुषो का आदर करते थे। समय-समय पर परस्पर मिलन भी होता था और ज्ञान का आदान-प्रदान भी होता था। इसके कुछ प्रमाण भी प्राप्त होते हैं।

रतलाम-शाखा के आचार्य श्री मयाचन्दजी म सीतामहू पधारे। उस समय वहाँ पूज्य श्री जसराजजी म. (पूज्य श्री धर्मदासजी म के लघु शिष्य) सम्भवत विराजमान होगे। पूज्य श्री मयाचन्दजी महाराज ने प्रश्नव्याकरण सूत्र की प्रतिलिपि की। उसकी पुष्पिका मे आपने पूज्य श्री जसराजजी म का स्मरण इस प्रकार किया है—

'स. १८२३, महासुद ५ लि. मयाचन्द ग्राम सीतामहो तपस्वी जसराजजी प्रसाद।'

स. १८७३ मे सीतामहू-शाखा के सन्तो का पदार्पण उज्जैन हुआ। वहाँ नयापुरा मे उज्जैन-शाखा के सन्तो के साथ मिलन हुआ। परस्पर धर्म-प्रीति गाढी हुई। सीतामहू-शाखा के सन्त पूज्य श्री मोतीचन्दजी म. ने इस प्रेम-मिलन की स्मृति मे भजन बनाया, जिसमे पूज्य श्री माणक-चन्दजी म., श्री देवाजी म. और श्री चिमनाजी म के गुणगान करने के बाद गाया कि—

'सामीजी श्री सोभाचन्दजी तुम प्रसाद नवेपुरे आया'

उस समय श्री शोभाचन्दजी म. सीतामहू-शाखा के आचार्य थे। इस मिलन के बाद दोनो शाखा के सतो मे स्नेह-वात्सल्य की विशेष वृद्धि हुई, जिसका प्रभाव तत्पश्चात् हुई ग्रन्थो की प्रतिलिपियो की पुष्पिकाओ मे देखा जा सकता है।

एक शाखा के सन्त दूसरे शाखा के सन्तो की योग्य समय मे सेवा-भक्ति भी करते थे। कुछ समय पहले तक अर्थात् पूज्य श्री नन्दलाल जी म. के समय तक यह स्थिति चलती रही। स्वय पूज्य श्री नन्दलालजी म ने शाजापुर शाखा के पू श्री गेंदालालजी म. की सेवा मे पहुँच कर, उनकी यथा योग्य वैयावृत्य की थी तथा वे श्री पन्नालालजी म की सेवा मे

भी पधारे थे और उनकी रुग्णावस्था मे इन्हे उठाकर रतलाम लाये थे। वहाँ पू. श्री ने उनकी समुचित सेवा की। जब उज्जैन-शाखा के प्रमुख सन्त पू श्री चम्पालालजी महाराज कारणवशात् अकेले पड गये, तब पू श्री नन्दलालजी म उनके लिए मारवाड से उग्र विहार करके, मालवा मे पधारे। इस प्रकार परस्पर प्रीति का भाव प्राय चलता रहा।

मर्यादा-पट्टक और संगठन के प्रयत्न

सघके विघटन मे आचार-शैथिल्य और मर्यादा का भग प्रमुख कारण बनते थे। अत इन दोनो कारणो को निःशेष करने के लिए समय-समय पर मालवा के सन्तो का परस्पर मिलन होता था और मर्यादाओ का निर्णय होता था। सं. १८६९ मे पूज्य श्री दलाजी म. और श्री चिमनाजी म. ने आचार शुद्धि के लिए मर्यादा बांधी। जिसका उल्लेख श्री मूलचन्दजी म. ने इस प्रकार किया है—

'सवत् १८६९ वर्षे वेसाख सुद ७, पुजजी श्री ७ श्री दलाजी चमनाजी मरजाद बांधी'

इसके बाद इकतीस वर्ष के पश्चात् रतलाम में उज्जैन-शाखा और रतलाम-शाखा के सन्तो द्वारा पुनः मर्यादा बांधने का उल्लेख प्राप्त होता है। स. १९०१ मे दोनो शाखा के ग्यारह सन्तो का रतलाम मे मिलन हुआ था। उस समय कई विषयो पर परस्पर वार्तालाप हुआ। फिर मर्यादा के बोलो का निर्णय हुआ।

मर्यादा-पट्टक का आद्य भाग—

'श्री वीतरागदेवजी ने नमस्कार करी नइ टोला नी मरजादा कीधी छे, रतलाम मध्ये, सामीजी श्री अमरजी, सामीजी श्री केसुजी, कासीरामजी, मोकजी (मोखमसिंहजी), तपसी जीवराजजी, सतीदासजी, इन्द्रजीतजी, तपसी जीवराजजी, तुलसीरामजी, रामरतन, जवरचन्द, रामचन्द एव ठाणा ११'

अन्तिम भाग—

'समत १९ से १ साले, मीती वेसाख वदी ११, थावरवार दसखत कासीरामजीना छे, दसखत केसवजी का छे, ऊपरलो लख्यो सही छे'

(इस मर्यादा-पट्टक मे श्री अमरजी म का नाम है। परन्तु उस समय तक पूज्यश्री अमरजी म का अस्तित्व विचारणीय है। इस पट्टक मे भी पहला नाम छोडकर गिनने से ही ग्यारह ठाने होते है और हस्ताक्षर मे भी उज्जैन शाखा के आचार्य श्री काशीरामजी म के और रतलाम शाखा के पूज्य श्री केशवजी म के हस्ताक्षर है, अमरजी म. के नही। श्रीजीवराजजी म का नाम दो बार आया है तो इनमे से एक रतलाम-शाखा के और एक उज्जैन-शाखा के हो सकते है।)

इसके लगभग ७० वर्ष बाद पुन ऐसे प्रयत्न का उल्लेख प्राप्त होता है। स. १९७० मे ब्यावर मे रतलाम-शाखा के पूज्य श्री नन्दलालजी म का सम्बन्ध मारवाड मे विचरने वाले शाजापुर शाखा के सत पूज्य श्री केवलचन्दजी म, श्री रतनचन्दजी म. आदि सन्तो के साथ स्थापित हुआ, जो बीच मे कुछ काल छोड कर स १९९६ तक चलता रहा। इस मर्यादा-पट्टक मे ९१ कलमे हैं। इस पट्टक का आद्य भाग इस प्रकार है—

'समत १९७० मिती माहा बुद १ के रोज श्री १००८ श्री पनालालजी म और श्री पुज १००८ नन्दलालजी म, श्री ताराचन्दजी म श्री केवलचन्दजी म के सभोग हुवो ओर कलमा को ठेराव अणी मुजब'

अन्तिम भाग मे सन्तो के हस्ताक्षर हैं। इस मर्यादा-पट्टक पर स १९७८ मे पूज्य श्री माधवमुनिजी म और उनके परिवार के सतो के हस्ताक्षर भी किये हुए है।

सम्भव है, इनके सिवाय ऐसे और भी प्रयत्न हुए होगे। परन्तु इस विषय मे इतने ही उल्लेख प्राप्त हुए है। इन मर्यादाओ के साथ सगठन का भाव जुडा हुआ था। इन मर्यादाओ के पालन से सतो का सगठन ठीक बना रहता था। परन्तु फिर भी सम्प्रदाय का सगठन शिथिल हो जाया करता था। विशेष प्रयत्नो के होते रहने पर भी बिखराव की स्थिति पैदा हो जाती थी। पर प्रमुख सतो को सगठन की आवश्यकता प्रतीत होती थी। अत पुन वैसे प्रयत्न होते थे। पूज्य श्री नन्दलालजी म के समयतक मालवा की शाखाओ मे जो बिखराव आ गया था, वह पूज्य श्री के आचार्यत्व काल मे बहुत कुछ हट गया था और आपके द्वारा पूज्य श्री माधवमुनिजी म. को अपना उत्तराधिकारी

चुनने पर तो मालव-शाखाओ के समस्त सन्त एक सूत्र मे आबद्ध हो गये थे। पर खेद है, कि—यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी।

वरिष्ठो की निर्णायक समिति

पूज्य श्री धर्मदासजी म. की सम्प्रदाय की मालवा की शाखाओं के सत अपने-अपने पूज्य पुरुषो की आज्ञा मे विचरण करते थे। अपनी समस्याएं उनके समक्ष रखते थे और उन्ही से उचित समाधान प्राप्त करते थे। अपने दूषणो आदि का प्रायश्चित्त भी उन्ही से लेते थे। परन्तु कभी-कभी विभिन्न शाखा के सन्तो मे परस्पर किन्ही प्रश्नो को लेकर उलझने उत्पन्न हो जाती थी। ऐसी स्थिति मे पहले तो दीक्षा-पर्याय मे वृद्धि मुनि की बात मान्य की जाती थी। परन्तु फिर उस नियम की अवहेलना होने लगी। जिससे वैमनस्य की स्थिति अधिक तीव्र रूप ले लेती थी। अत ऐसी स्थिति का निर्माण न हो—इस हेतु से विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस विचार के फलस्वरूप स. १८६९ मे तत्कालीन वरिष्ठ सतो की समिति के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समिति के पाँच सदस्यो का नामोल्लेख है और अन्य विचार-विमर्श करने योग्य सन्तो के लिए 'आदि' शब्द के द्वारा, उस समिति मे स्थान सुरक्षित कर दिया। पाँच सदस्यो मे दो सदस्य (श्री चिमनाजी म और श्री नरोत्तमजी म) उज्जैन-शाखा के वरिष्ठ सन्त थे, दो सदस्य (श्री दानाजी म और तपस्वी श्री परसरामजी म) रतलाम-शाखा के और एक सदस्य (श्री सोभागचन्दजी म) सम्भवत सीतामहू शाखा के वरिष्ठ सन्त थे। इस विषय मे इस प्रकार उल्लेख प्राप्त हुआ है—

'पुजजी श्री चमनाजी, नरोत्तमजी, सोभागचन्दजी, दानाजी, तपसी परसरामजी आद देई ने, कोइ आँटो पडे तो एत (ला) रा विना पुछा सुलजे नही ते वासते पुछने काम करवो।' –प्रति ऋषि मूलचन्दजी म.

इस उल्लेख से हम यह अनुमान कर सकते है, कि—शाखाओ के पाँचो वरिष्ठ थोडे-थोडे समय के अन्तर से परस्पर मिलते रहे होगे और सम्प्रदाय की समस्याओ को सुलझाते रहे होगे। पर इसके बाद इस प्रकार की व्यवस्था कबतक चलती रही और ऐसे प्रयत्न फिर भी हुए या नही इस विषय मे स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नही होता है।

दोषियों का निग्रह

साधको की साधना मे विशेप प्रगति के लिए गुरुजन का अनुग्रह अवश्य चाहिए, इसमे दो मत है नही। परन्तु अनुग्रह के समान ही साधको की साधना मे निर्विघ्नता के लिए और सघ की सुरक्षा के लिए, दोपीजनो के निग्रह की भी आवश्यकता रहती है। सघ से वहिर्भूत व्यक्तियो द्वारा विघ्न उत्पन्न किये जाने पर साधक उन विघ्नो पर यथाशक्ति जय प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। पर सघ के सदस्यो के द्वारा ही जब इस प्रकार के विघ्न उत्पन्न किये जाते हो या दूषित व्यक्ति का अन्य साधको के द्वारा पक्ष लिया जाता हो तो विचित्र स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसे समय मे आचार्य या स्थविर सन्त को निग्रह का अवलम्बन लेना पडता है।

मालव-शाखा के सन्तो मे भी ऐसी स्थितियाँ आती थी। कभी कभी साधु एक-दूसरे की निंदा करते थे। साम्भोगिक नियमो का उल्लघन करते थे और दोषी साधु का पक्ष लेते थे। ऐसी स्थिति मे उन साधुओ से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया जाता था। फिर उनसे, वैसा नही करने की प्रतिज्ञा करने पर ही, सभोग-सम्बन्ध (साधुओ के सम्मिलित आहार करने, एक स्थान मे उतरने, परस्पर वदना-नमस्कार करने आदि क्रियाओ को सभोग कहा गया है, वह व्यवहार) स्थापित किया जाता था। हालोदवाली आर्या गुमानीजी ने एक मर्यादा पट्टक की प्रतिलिपि (स १९१३, आषाढ विदि १०) मे इस प्रकार उल्लेख किया है—

'श्री जिनाय नम'। सामीजी केसुजी, कासीरामजी, मूलचन्दजी, रामचन्दजी सभोग सामल कीदो। जदी एतला वोल रो बन्दोबस्त कीदो। एतला बोल पाले तीणसु सभोग सामल करणो। मूलचन्दजी सु तो एतलो करार कीदो, दलीचन्दजी सु, केसुजी सामी और सभोगी सादा की मुरजी विना सामल उतरणो नही। वदना आहार-पाणी करनो नही ओर आपस मे सादुजी की नीद्या करणी (नही)। केहणो (वे) तो केशवजी तथा मोटा सादाने कहणो ओर गरस्तके पासे नद्या करणी नही। द मूलचन्दजी का।'

श्री मूलचन्दजी म. तपस्वी परसरामजी म. (रतलाम-शाखा के प्रसिद्ध सत) के शिष्य थे और दलीचन्दजी म., भी उन्ही के शिष्य थे। किसी कारण से उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया था। श्री मूलचन्दजी म

के साथ पुन सम्बन्ध स्थापित करने की घटना का, उपर्युक्त उद्धरण मे उल्लेख है।

आर्याओ के साथ वात्सल्य-व्यवहार

मालव-शाखा मे साध्वियो का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मालव-शाखाओ के सन्तो का व्यवहार भी साध्वियो के प्रति वात्सल्य मे परिपूर्ण था। वे उनकी ज्ञान-चेतना के विकास मे भी सहयोग देते थे। साध्वियो के लिए वे ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ करके देते थे। पूज्य श्री मयाचन्दजी म., श्री मूलचन्दजी म. आदि सन्तो ने साध्वियो के लिए ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ करके दी, यह बात तत्तत् ग्रन्थो की प्रतिलिपियो की पुष्पिकाओ से विदित होती है।

उज्जैन-शाखा के आचार्य श्री माणकचन्दजी म ने अमुक आर्याओ के साथ वात्सल्य पूर्ण व्यवहार करने के विपय मे, सन्तो मे विशेप आज्ञा प्रसारित की थी। यो तो उनके दोपो का निराकरण करने के लिए कभी-कभी गुरजन को कठोर भी बनना पडता था।

आर्याओ का साधुओ के प्रति व्यवहार

साध्वियो का साधुओ के प्रति पूज्य भाव से युक्त व्यवहार रहता था। वे अपने ज्ञानदाता का उपकार मानती थी। पूज्यजनो को सत्कार-सन्मान देती थी। प्रवर्तनियाँ अपनी समस्याओ का उनसे समाधान प्राप्त करती थी। कभी-कभी साधुओ के द्वारा दोप-सेवन होने पर साध्वियाँ उनके प्रति अपना आदर-पूर्ण व्यवहार बद कर देती थी। परन्तु ऐसा पूज्यजनो की आज्ञा प्राप्त होने पर ही होता था। कई साध्वियो को जनता के द्वारा साधुओ से भी अधिक सन्मान प्राप्त होता था। परन्तु वे विदुषी साध्वियाँ साधुओ के प्रति जरा भी अवहेलना का व्यवहार नही करती थी। कभी-कभी साध्वियाँ साधुओ को सैद्धान्तिक ज्ञान भी प्रदान करती थी और उन्हे चरित्र मे दृढ बनाने के लिए कठोर रुख अपनाती थी।

इस अध्याय मे प्राप्त प्राचीन उल्लेखो के आधार से मालवा की शाखाओ के साधु-साध्वियो के पारस्परिक व्यवहार का यत्किञ्चित् वर्णन किया गया है।

अष्टम अध्याय

श्रीमद् धर्मदासजी महाराज की

मालवा-शाखाओं का

अनुयायी

श्रावक-श्राविका-वर्ग

मालव-शाखा के सन्तों से प्रभावित प्रदेश

पूज्य श्री धर्मदासजी म की परम्परा के मालव-शाखा के सन्तो से विशाल-प्रदेश प्रभावित था। प्राय समस्त मालव-प्रदेश मे मालवी शाखाओ का प्रभाव तो था ही, पर अन्य प्रदेशो पर भी उनका प्रभाव था। पूरा निमाड प्रदेश, बाँसवाडा, डूँगरपुर राज्य, प्रतापगढ, गुजरात का सीमात प्रदेश, मेवाड का कुछ प्रदेश, मारवाड, भरतपुर-करौली और उसके आसपास का प्रदेश, आगरा और उसके आसपास के क्षेत्र आदि प्रदेश मालव-शाखा के सन्तो एव सतियो से प्रभावित क्षेत्र थे। इस प्रदेश के सिवाय दक्षिण के कई प्रदेशो पर मालव-शाखाके सन्तो का प्रभाव रहा है। रतलाम-शाखा के सन्त तो 'दक्खणवाला' अर्थात् दक्षिणी शाखा के रूप मे प्रसिद्ध रहे है। उज्जैन-शाखा के कई सन्तो ने आजीवन दक्षिण के प्रदेशो मे विहार करके वहाँ कई उपकार के कार्य किये है। यो मालव-शाखा के सतो का विहार क्षेत्र तो बहुत विस्तृत रहा है। अत. जिन-जिन प्रदेशो मे उन सन्तो ने विहार किया होगा, वे-वे प्रदेश उनसे प्रभावित हुऐ ही होगे। परन्तु यहा प्रभावित क्षेत्र से 'उनके अनुयायी वर्ग के अस्तित्त्व वाले क्षेत्र' का निर्देश करने का आशय है। अर्थात् मालव-शाखा के सन्तो का अनुयायी वर्ग या उपासक वर्ग बहुत ही विशाल था।

उपासकों का संगठन

जिस प्रकार पिछले कुछ वर्षो से कुछ सम्प्रदायो मे उपासक वर्ग को अपने 'ट्रेडमार्क' से अङ्कित करके, अपने अनुयायी के रूप मे सगठित करने की वृत्ति पनपी है, पहले उस प्रकार की वृत्ति सन्तो मे अधिक मात्रा मे नही थी। पूज्य श्री धर्मदासजी म ने अपने उपासक वर्ग को कही भी इस रूप से सगठित किया हो, ऐसा उल्लेख प्राप्त नही होता है। उनकी परम्परा के मालव शाखा के सन्तो ने भी ऐसा कोई विशिष्ट प्रयत्न नही किया। उन्होने अपने सन्तो के सगठन के प्रयत्न अवश्य किये है। परन्तु श्रावको को अपने बन्धन मे रखने का प्रयत्न नही किया। यदि उन्होने वैसा प्रयत्न किया होता तो उनके अनुयायी श्रावको-उपास के क्षेत्रो मे अन्य सम्प्रदायो के पाँव ही नही टीक पाते। भूतकाल में श्री धर्मदासजी म की सम्प्रदाय के सन्तो मे ऐसी वृत्तिनही रही, परन्तु

वर्तमान मे भी ऐसी वृत्ति बहुत कम मात्रा मे है और न उन्होंने श्रावकों को 'गुरु एकओर सेवा अनेक की', ऐसा पाठ ही सिखाया। अत: वैसे साम्प्रदायिक दृढ सगठन भूतकाल मे नही रहे और न अभी भी है।

श्रावक-सघो के अधिकार मे उस काल मे न सार्वजनिक स्थान होते थे और न कोई विशेष चल-अचल सम्पत्ति ही होती थी। किसी उपासक के गृह मे या अन्य कोई स्थान पर सत ठहरते थे। वही गृहस्थ उपासक भी धर्मक्रियाएँ करते थे। कभी-कभी कोई गृहस्थ उदारमन से अपना कोई घर धर्मक्रिया करने के हेतु समर्पित कर देते थे। उस घर की सार-सभाल या तो उस घर का स्वामी ही करता था या फिर कोई उपासको का मुखिया करता था।

जो सम्पन्न और उदार मनवाले गृहस्थ होते थे, वे अपने साधर्मी बन्धुओ की यथाशक्ति सार-सम्हाल करते थे। यो कोई उल्लेखनीय सगठन नही था। फिर भी धर्मप्रीति के सूत्र मे साधु-श्रावक आबद्ध थे।

सुश्रावक माधवसिहजी

पूज्य श्री धर्मदासजी म के समकालीन और उनके अनुयायी श्रावको का नामोल्लेख या परिचय कही भी प्राप्त नही हुआ। रतलाम-शाखा की 'मालवा-पट्टावली' मे माधवसिहजी पोरवाड और सरसेठ अफीणियाजी के द्वारा श्रीमद् धर्मदासजी म को आचार्य पद प्रदान करने का उल्लेख है। परन्तु यह उल्लेख भ्रान्त है। क्योकि माधवसिहजी पूज्य श्री माणकचन्दजी म (उज्जैन-शाखा के तृतीय आचार्य) के समकालीन थे। जैसा कि–गगराड के निवासी श्रावक कुँवरजी ने लिखा है—

'धन सेठ माधोसिहजी, दरसण करे दिन-रात'

—पूज्य माणकचन्दजी म का चौढालिया

सीतामहू-शाखा के पूज्य श्री मोतीचन्दजी म ने भी आपको पूज्य श्री माणकचन्दजी म के समकालीन लिखा है—

ऐसे पूज श्री माणकचन्दजी उनका वाजे जस-डका ।
उनका उपदेस सुणीने, मिट जाए सघलो सका ५
जाके आगे विराजत सु दर, सेठ माधोसिंघ गुणवंता ।
श्रावक माहे हुवा मोटका, साधु वहु सुख पावता ६

सेठ माधवसिंहजी के विषय मे इस नामोल्लेख के सिवाय विशेष जानकारी प्राप्त नही होती है। परन्तु पट्टावलियो मे भी इनके नाम का उल्लेख मिलता है। इसलिए हमे यह अनुमान होता है, कि-ये प्रमुख श्रावक रहे होगे और इन्होने सम्प्रदाय के विकास मे विशेष हिस्सा लिया होगा।

नीव के पत्थर

कई श्रावको ने प्रसिद्धि की कामना के बिना ही, धर्म-प्रेम से प्रेरित होकर, अपनी चल-अचल सम्पत्ति का धर्म-हेतु उपयोग किया। श्राविकाएँ भी पीछे नही रही। कइयो ने उचित मात्रा मे स्वधर्मी-वात्सल्य को भी जीवन के व्यवहार मे उतारा। वे सब अज्ञात एव अप्रसिद्ध श्रावक-श्राविकाएँ सम्प्रदाय के लिए वहुत-कुछ कार्य कर गये है।

वजेसिंगजी भडसाली (स १८७७ के लगभग) थाँदला के एक श्रावक थे। साधु इनके मकान मे ठहरते थे। इनका धर्म प्रेम विशिष्ट था। साधुओ ने ग्रन्थो की पुष्पिकाओ मे इनका नामोल्लेख किया है। इसी प्रकार हरकचन्दजी मोगरा (ताल-निवासी) का भी नामोल्लेख प्राप्त होता है। पुराने समय मे रतलाम-निवासी मुणत-परिवार के किसी महानुभाव ने गलीवाला स्थानक और लगभग सीत्तर वर्ष पूर्व श्री मानकुँवर बाई सुराना (ऊँकारलालजी सुराना की धर्म पत्नी) ने नोलाईपुरा स्थित स्थानक (धर्मदास जैन मित्र मण्डल) और श्री सौभागमलजी ललवानी ने लाल स्थानक सघ को समर्पित किया था।

ऐसे कई श्रावक-श्राविकाएँ उज्जैन, रतलाम, खाचरौद, धार, वदनावर, वखतगढ, कोद, नागदा, इन्दौर, जावरा, सीतामहू, प्रतापगढ,

कुशलगढ, लीमडी (पचमहाल), थाँदला, पेटलावद, सैलाना, शाजापुर, राजगढ आदि क्षेत्रो मे हो गये है। जिन्होने तन, मन और धन से धर्म की सेवा की।

दृढधर्मी श्रावक-श्राविकाएं

रतलाम आदि शाखाओ के सन्तो ने कई जैनेतर कुटुम्बो को भी जैनधर्म के अनुयायी वनाये थे। जिनमे लाढ, नीमा, मोड, मराठे, सुनार कुटुम्व प्रमुख थे। उनमे से कुछ कुटुम्व तो कई पीढियो तक जैन वने रहे और फिर वाद मे साधुओ का सम्पर्क नही रहने के कारण तथा उनके अपने समाज के दबाव के कारण पुन अजैन बन गये। कइयो को अपनी धर्मश्रद्धा को वनाये रखने मे नाना प्रकार के कष्टो को सहन करना पडा। इन्दौर मे कई नीमा वन्धु जैनधर्मानुयायी थे। पर उनमे से कई कुटुम्बो ने जातीय कष्टो से पीडित होकर, जैनधर्म का परित्याग कर दिया। एक मात्र श्रीकिसनजी और श्री रिखवदासजी इन भ्रातृ युगल की, कष्ट सहन करते हुए भी धर्म मे दृढ आस्था रही और आखिर मे आपको और आपके परिवार को अपनी जाति का परित्याग करके, जैन जाति मे सम्मिलित होना पडा।

सीतामहू मे हेमचन्द नारायणजी भी दृढधर्मी श्रावक थे। ये सम्पन्न थे। इनका वर्चस्व बहुत अधिक था। अत इन्हे धर्मश्रद्धा के कारण विशेष कष्ट नही उठाना पडा होगा। परन्तु फिर भी पूरी जाति भिन्न धर्म की श्रद्धालु हो, तो कुछ न कुछ तो सकटो का सामना करना ही पडता है। आपके वशज भी बहुत लम्बे समय तक जैन धर्मानुयायी रहे। अभी भी आपके वशधर मे जैनधर्म के सस्कार विद्यमान हैं।

इस प्रकार कई ज्ञात-अज्ञात उपासको ने नाना कष्टो को झेलते हुए भी अपनी धर्मश्रद्धा को अक्षुण्ण रखा। राजगढ (धार) के सघ को भी इस दृष्टि से विस्मृत नही किया जा सकता है और गौतमपुरा के बन्धुओ के पूर्वजो को भी। आपको जैन धर्म की इतर सम्प्रदाय से कष्टो का सामना करना पडा। पर आप अपनी श्रद्धा मे अडिग रहे। यो तो

प्राय जैनधर्म की इतर सम्प्रदाय की ओर से, पूज्य श्री के अनुयायी कई गाँवो के श्रावकवर्ग को कष्टो का सामना करना पड़ा ।

बूँदी (राजस्थान) मे प्रवर्तिनी श्री मेनकुँवरजी म. के प्रति श्रद्धालु एक श्रावक थे । वे श्रावक कोटावाले सेठजी के यहाँ नौकरी करते थे । वे सेठ के आदेश से मन्दिर की व्यवस्था आदि की देखभाल भी करते थे । कोई मन्दिरमार्गी सन्त आ जाते तो उनकी यथोचित सेवा भी करते थे । परन्तु अपनी श्रद्धा मे दृढ थे । अत मन्दिर मे सेवा-पूजा करने के लिए नही जाते थे । इस कारण मन्दिरमार्गी बन्धु उनसे असन्तुष्ट रहते थे । उन्होने सेठजी से शिकायत की । सेठजी ने वात टालदी । पर शिकायत होती ही रही । शिकायत करने वाले भाई की उपस्थिति में, एक वार सेठजी ने उन श्रावकजी को मन्दिरमे चलने का कहा । श्रावकजी वात भाँप गये । वे सेठ के साथ हो लिए । सेठजी ने मन्दिर मे मस्तक पर तिलक लगाने के लिए कहा । श्रावकजी ने कुर्ता-वडी ऊँचा करके, पेट की ओर इशारा करते हुए कहा—'यहाँ तिलक निकाल दीजिए ।' सेठजी ने साश्चर्य पूछा 'यहाँ क्यो ?' श्रावकजी वोले—'नौकरी मैं पेट के लिए करता हूँ, अत पेट पर ही तिलक निकलना चाहिए । क्योकि मिर तो मैं गुरुजी को भेट कर चुका हूँ ।' सेठजी हँस पडे और शिकायत करने वाले से वोले—'भाई ! धर्म तो अपनी-अपनी श्रद्धाके अनुसार ही होता है ।' शिकायत करने वाले मुँह लटकाकर रह गये । फिर सेठजी ने कभी भी इस विषय मे आपसे कुछ नही कहा ।

ज्ञानसम्पन्न श्रावक-श्राविकाएँ

पूज्य श्री के अनुयायी श्रावक-सघो मे कई उपासक विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न हो गये है । उन्होने अत्यधिक परिश्रम करके, विनयपूर्वक अपने गुरुजन से सैद्धान्तिक ज्ञान का उपार्जन किया और फिर उदारता के साथ अन्य उपासक-उपासिकाओ को तथा सन्त-सतियो को ज्ञान-दान दिया । रतलाम मे कोठारी सूरजमलजी अच्छे शास्त्रज्ञ श्रावक हो गये है । उनके विषय मे श्री प्रेमचन्दजी म ने इस प्रकार लिखा है—

> कोठारी सूरजमल रतलाम मे रे, भिन भिन जाने अंग उपंगरे ।
> तीरथ चारो की सेवा करी रे, ज्ञान दान दियो एक रग रे ।

इसी प्रकार रतलाम-निवासी भाई सा समर्थमलजी मुणत, खाचरोद निवासी जीतमलजी सेठिया आदि कई श्रावक ज्ञान के धनी हो गये हैं। कई श्राविकाएँ भी थोकडो के माध्यम से सैद्धान्तिक ज्ञान की विशिष्ट आराधिकाएँ वनी थी। और श्रावक कुँवरजी (गगराड), अजवोजी (वखतगढ) आदि कई श्रावको ने गुरुगुण गीतिकाएँ आदि रचनाएँ वनाकर, साहित्य एव इतिहासक कार्य भी किया है।

धर्म प्रेरक श्रावक-श्राविकाएँ

सतो का सर्वत्र सदैव स्थित रहना सम्भव नही हो सकता है। ऐसी स्थिति मे धर्म-उत्साह मद हो जाता है। यद्यपि कई उपासको मे धर्म-स्फुरणा स्वत होती है। परन्तु ऐसे उपासक वहुत ही अल्प होते हैं। अधिकाश उपासक-वर्ग को धर्माराधना के लिए कोई न कोई प्रेरक की अपेक्षा रहती है। अत कोई विशिष्ट धर्मप्रेमी श्रावक धर्मवुद्धि से इस कर्त्तव्य को वजाते हैं। कभी-कभी उन्हे धर्म-प्रेरणा प्रदान करते हुए, किसी-किसी से अपशव्द भी सुनने पडते हैं। परन्तु फिर भी वे धर्म-दलाली करने मे अपना उत्साह मद नही होने देते है। ऐसे श्रावको से धर्मसघ गतिमान रहता है। यद्यपि सामान्य दृष्टि से सघ मे उनका विशेष सहयोग प्रतीत नही होता है, तदपि विचार करने पर ऐसे उपासक सघ के बहुत बडे उपकारी प्रतीत होगे। अतीतकाल मे भी प्राय प्रत्येक गाँव के सघो मे ऐसे एकाधिक व्यक्ति हो गये है और वर्तमान मे भी मिल जाएगे। ऐसे व्यक्यिो की ओर से दी जानेवाली धर्म-प्रेरणा के तरीके विभिन्न होते है। यदि उन व्यक्तियो के विषय मे खोज करके लिखा जाए, तो बहुत रोचक सामग्री उपलब्ध हो सकती है और आगे के लिए ऐसे धर्म-प्रेरको को तैयार करने के लिए विशेष शिक्षा-सूत्र हाथ लग सकते है। परन्तु यह कार्य अत्यधिक श्रम-साध्य है और अतीत के ऐसे उपासको की तो जीवन गाथा के अवशेष भी नि शेष हो गये है। कुछ उपासको के विषय मे थोडी-बहुत अनुश्रुतिया मात्र शेष रह गई हैं और वे भी तत् तत् जानकार व्यक्तियो की मृत्यु के साथ समाप्त होती जा रही हैं। मैंने सुना है, थाँदला के कुछ उपासको के विषय मे। वहाँ सेठ श्री वेणीचन्दजी पोरवाड एक सम्पन्न सुखी और प्रतिष्ठित

सद्‌गृहस्थ थे। वे गाँव की चारो दिशाओ मे शौच, स्नान आदि के बहाने जाते थे और तत्-तत् दिशाके निवासी सद्‌गृहस्थो को मधुर शब्दो मे धर्म की आराधना के लिए प्रेरणा देते थे। वे उनके हृदय मे यह बात बिठाने का प्रयत्न करते थे, कि—यह मनुष्य जन्म बडे पुण्य के फलस्वरूप पाया है। धर्म-आराधना करने मे ही इसकी सार्थकता है। लोग भी उनकी मधुर वाणी सुनकर, मन्त्रमुग्ध-से आकर्षित हो जाते थे।

कई उपासक बच्चो मे धर्म-सस्कार डालने के लिए विविध प्रयत्न करते थे। उन्हे दयाव्रत करवाते थे और उन्हे प्रेमपूर्वक सारे दिन धर्मक्रिया मे लगाये रखते थे। कथा-कहानियाँ सुनाते। तथा और भी उपायो से धार्मिक सस्कारो को बनाने के प्रयत्न करते थे। रतलाम-निवासी श्री छोगमलजी उमेदमलजी छाजेड की इस विषय मे बहुत प्रसिद्धि रही है। आपका व्रतीजनके प्रति सेवाभाव भी प्रशसनीय था।

रतलाम-निवासी नानालालजी चोरडिया ज्ञानाराधना और जीवदया के कार्यो मे काफी प्रेरणा देते थे। उन्होने प्रेरणा देकर कई व्यक्तियो को जीवदया से सम्बन्धित विविध कार्यो मे लगाया। इस प्रकार कई प्रेरक उपासक-उपासिकाएँ हो गये हैं।

दानी श्रावक-श्राविकाएं

उपासको मे सम्पन्न और विपन्न सभी प्रकार के व्यक्ति होते है। परन्तु अपनी-अपनी शक्ति अनुसार उदारमना सभी व्यक्ति सघ मे आये हुए कार्यो मे सहयोग देते है। अधिकाश सघो के पास कोई स्थायी निधि नही होती है और भूतकाल मे तो स्थायी निधिका प्राय. अभाव ही था। अत: जो भी सघ के कार्य होते, वे सब उपासको की उदारता से ही सम्पन्न होते थे।

सघ के कार्यो के सिवाय विपन्न साधर्मी बन्धुओ एव भगिनियो को बिल्कुल गुप्त रूप से सहायता देने वाले भी कई सज्जन हो गये है। परन्तु उनका नाम भी जान पाना बहुत ही कठिन है तो फिर उनके जीवन-वृत्त की प्राप्ति तो दुष्कर ही है।

व्रत-नियम ग्रहण करते आये है और साथ ही साथ तपश्चरण भी। प्राय चातुर्मास लगते ही गांवो एव नगरो मे भूतकाल से तपश्चर्या की झडी लगती आई है। एकान्तर उपवास, बेले, तेले, पचोले, अट्ठाई, मासक्षपण और इससे अधिक तपश्चर्या भाई-बहन करते रहे है। उपासिकाएँ भाइयो से तपश्चरण मे आगे रहती आई है। धर्मचक्र, कर्मचूर आदि विविध तप करनेवाली अनेको उपासिकाएँ हुई है। जीवन भर तक ब्रह्मचर्यव्रत, चार स्कन्ध (ब्रह्मचर्य, हरिके त्याग, कच्चे पानी के त्याग और रात्रि भोजन के त्याग) को ग्रहण करने वाले, एकान्तर उपवासादि तप करने वाले कई श्रावक-श्राविकाओ का समूह अतीत मे भी हुआ है और वर्तमान काल मे भी है।

इस प्रकार पूज्य श्री के अनुयायियो मे अनेक प्रकार के गुणो के धारक उपासक-उपासिकाएँ थे। यहाँ तक कि—वे स्वय दीक्षित होते थे, अपनी सन्तानो को भी त्यागमार्ग पर चलने के लिए आज्ञा प्रदान करते थे और अन्य दीक्षित होने वाले स्त्री-पुरुषो को सहयोग देते थे। धारनिवासी श्री पन्नालालजी गोपालजी फर्म के स्वामी श्री मोतीलालजी और गेंदालालजी पोरवाड, इन बन्धुद्वय ने लगभग चालीस स्त्री-पुरुषो की दीक्षा मे अपने द्रव्य का व्यय किया था। और भी कई उदार महानुभाव हुए है। पर उन सबके नामो का उल्लेख करना सम्भव नही है। इस अध्याय मे जो कुछ नाम आये हैं, वे मात्र उदाहरण के रूप मे आये है। मुझे पूरे नाम नही मिल सके हैं और न इस विषय मे खोज ही की जा सकी है। सघके सभी सद्भावनिधि श्रावक अभिनन्दनीय है।

उपसंहार

इन उपर्युक्त पङ्क्तियो मे स्थानकवासी जैनो के एक महापुरुष और उनसे सम्बन्धित एक प्रदेश की उनकी शिष्य-परम्परा और उनके अनुयायियो का कुछ परिचय दिया गया है। मालवा-परम्परा के सन्तो मे से उज्जैन-शाखा से सम्बन्धित बहुश्रुत प श्री समर्थमलजी म और उनके परिवार के सतो (पूज्य श्री ज्ञानचन्द्रजी म की सम्प्रदाय) की और रतलाम-शाखा की परम्परा सम्प्रति अक्षुण्ण रूप से चल रही है।

स २००९ मे सादडी (मारवाड) मे अनके सम्प्रदायो के विलीनीकरण के साथ 'वर्धमान श्रमण सघ' की स्थापना हुई, जिसमे रतलाम-शाखा के सन्त और श्री ज्ञानचन्दजी म की सम्प्रदाय के कुछ सन्त सम्मिलित हुए। पर वाद मे कुछ कारणो से ज्ञानचन्दजी म. के सन्त 'श्रमण सघ' से पृथक् हो गये और रतलाम-शाखा के सन्त इस सघ मे ही सम्मिलित हैं। 'श्रमण सघ' के प्रथम आचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी म हुए और सम्प्रति द्वितीय आचार्य हैं—पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म।

जिस समय 'श्रमण सघ' रूप सगठन हुआ, लगता है, उस समय सगठन के विषय मे भावुकता अधिक थी। अत. आदर्श के आवेश मे व्यावहारिकता विस्मतृ हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि—सन्तो के व गावो और नगरो मे श्रावक सघो के साम्प्रदायिक सगठन ढीले पड गये और नये सगठन व्यवस्थित रूप से उभर न सके। अत. बिखराव प्रारम्भ हो गया। लोगो के मन मे अभी भी सगठन के विषय मे स्पष्ट रूपरेखा नही है। वे अपने-अपने गण की सार सम्हाल भी नही कर पाते है। सगठन की ओट मे साम्प्रदायिक शोषण भी चलता रहता है। इन कारणो और इनके सिवाय अन्य कारणो से भी आज इस गण के अनुयायी विश्रृखल हैं। पारस्परिक वात्सल्य कम होता जा रहा है। सैद्धान्तिक ज्ञान घट रहा है। चारित्र की चमक मद होती जा रही है। सघ नेतृत्त्व-विहीन से होते जा रहे हैं। यो साधनो की कमी नही है। परन्तु हमारी उन्नति कैसे हो ? यह एक प्रश्न है ! इतिहास के माध्यम से हमे इस प्रश्न का समाधान खोजना चाहिए।

नवम अध्याय

सम्प्रदायों का उद्भव
उनकी अवनति के कारण
और उत्थान के उपाय

अनेक जातियो के प्राणी अपनी आवश्यकता, अहिम्रवृत्ति आदि कारणो से सहज रूप मे ही समूहबद्ध रहने की प्रकृतिवाले होते है। मानव भी अपनी कर्मभौमिक विशेपता के कारण समूह रूप मे रहने वाला प्राणी है। परन्तु मानव अत्यधिक मननशील है। उसकी दृष्टि मे जो पूर्ण होता है, वह अकेला अद्वितीय ही होता है। अत वह एकाकी रूप मे पूर्ण होना चाहता है। इसी हेतु वह पर को त्याग कर आत्मगुणो को विकसित करने का प्रयत्न करता है। किन्तु अपने अल्प विकास और आत्मशक्ति की न्यूनता के कारण उसे साधना के क्षेत्र मे अपने से अधिक विकसित अनुभवियो के अनुभव से लाभान्वित होने के लिए और अल्प विकसित साधक को अवलम्बन देने के कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए, समान विचार और आचार वाले साधको के समूह मे निवास करना पडता है। यद्यपि साधक मुक्ति-पर से छुटकर एकत्व-की प्राप्ति के लिए सयोगो से विप्रमुक्त अनगार[1] बनना है, तदपि साधना की सुरक्षा के लिए सघनगर[2] मे निवास करना पडता है और अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सघरथ मे[3] आसीन होना पडता है।

चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर देव के उपदेशो से प्रेरित होकर हजारो साधक साधनाक्षेत्र मे गतिशील हुए। भगवान् ने साधको के लिए परस्पर सहयोग की आवश्यकता देखी। अत उन्होने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओ के पारस्परिक व्यवहार के पावन सूत्र को, उनकी आचार-प्रणाली मे दर्शनाचार के चार बाह्य आचारो उपबृहण, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना[4]-मे इस प्रकार विस्तृत किया, कि—साधक आत्मदृष्टि से साधना करते हुए, सहज मे ही मणिमाला के समान सघ रूप मे सुगठित हो गये। जिसे चतुर्विध श्रमणसघ[5] या तीर्थ[6] कहा जाता है।

तीर्थ मे दो प्रमुख वर्ग है-साधु सघ और उपासक (श्रावक)-सघ। साधु सघ कुलो और गणो के रूप मे स्थित था।

---

[1]उत्तर ज्झयणइ, अ० १।१ [2]नदीसुत्त ४ [3]नदीसुत्त ६
[4]उत्तर० २८। [5]भगवई [6]भगवई

अनुशासन ऊपर से थोपा हुआ नही, किन्तु साधक की आत्म-भावना से नि सृत होता है।

बाहरी सगठन जितना अधिक जकडा हुआ और जितना अधिक एक ही व्यक्ति मे केन्द्रित होता है, उतनी ही अधिक जड यान्त्रिकता की अभिवृद्धि होती है ओर अनुशासन-प्रक्रिया जटिल एव शिथिल हो जाती है। व्यक्ति सचेतन सत्ता है, जड कलपुजी नही है, जो जहाँ का तहाँ जमा रह सकेगा। व्यक्ति को सघ की सामूहिकता की अपेक्षा अपनी वैयक्तिक सत्ता अधिक सत्य लगती है। अत वह अपने व्यक्तित्त्व का विसर्जन नही कर सकता है। जिसके परिणाम-स्वरूप विशाल सगठन मे भीतर ही भीतर गुटबन्दिया पनपने लगती है और उन गुटो के मूल मे प्राय अप्रशस्त वृत्तिया ही रहती है। उन अप्रशस्त भावो के कारण साधना तेजोविहीन हो जाती है या अनुशास्ता की शासन-सत्ता प्रभावहीन हो जाती है। दूसरी बात, अत्यधिक सगठित सस्था के अनुशास्ता के किञ्चिन्मात्र दोष से सारा सगठन दूषण से ओतप्रोत हो जाता है। कुछ ऐसे ही कारणो से भगवान् ने धर्म सघ की सत्ता को न तो अत्यधिक केन्द्रित ही किया और न विकेन्द्रित ही। अत भगवान् ने सघ-व्यवस्था को ऐसा रूप दिया, कि—जिसमें साधक अपने आपको उसका एक महत्त्वपूर्ण अग समझे और उसके विशाल अक्षयवटीय आश्रय तले अपने व्यक्तित्त्व को सुरक्षित और विकासमान अनुभव करे।

गणो के मूल मे वाचना-भेद ही था। उस काल मे आचार भेद या मतभेद नही था। अत गणभेद के मूल मे वे हो ही नही सकते थे। कुलभेद के मूल मे गुरु-परम्परा का भेद था। जिसे जिसके द्वारा या जिसके निमित्त से प्रतिबोध प्राप्त होता था, उसे उसीका शिष्य, बना दिया जाता था। क्योकि विशाल सघ मे व्यवस्था की दृष्टि से किसी न किसी प्रकार के वर्ग-विभाजन की आवश्यतका रहती ही है। अत जिसके द्वारा प्रतिबोध प्राप्त हुआ है, उसके प्रतिकृतज्ञता बनी रहे और उस उपकारी व्यक्तियो के द्वारा साधना मे दिशा-निर्देश मिलता रहे, इस उदात्त दृष्टि से सम्भवत कुलो की योजना हुई होगी और ऐसा होने मे आरोपित भाव-मूलक नई व्यवस्था की आवश्यकता समाप्त हो जानी थी। यदि साधक अपने ध्येय

बहुत अधिक स्वच्छन्दता थी। कभी-कभी कुल के कुल अजैन हो जाते थे। फिर भी नये जैनो की वृद्धि और उनकी विपुलता के कारण श्रमणो को उपासको का अभाव प्रतीत नही होता था। उस काल मे उपासको के सुदृढ सगठन सभवत नही थे। उपासको और उपासिकाओ को चतुर्विध सघ मे स्थान अवश्य प्राप्त था। परन्तु श्रमणो मे वनवास या किसी भी कारण से उपासको को सगठित करने की विशेष दृष्टि नही थी। हा ! उनके उपदेशो के प्रभाव से उपासक-वर्ग के प्रभावशाली पुरुष उपासको को सरक्षण, वात्सल्य, स्थैर्य, धैर्य आदि प्रदान करते थे। इसलिए उपासक सगठित न होते हुए भी सगठित जैसे थे। मौर्यवश के शासन-काल तक राजवशो मे जैनधर्म का बहुत अधिक प्रभाव था। परन्तु मौर्यवश के बाद के शासक वश के कारण निर्ग्रन्थ श्रमणो और उपासको को घोर कष्ट सहने पडे। अधिकाश श्रमणो को पूर्वदेशो से पश्चिम और दक्षिण के देशो मे गमन करना पडा। काल और शासन की मार से सघ को विश्रृखल होता हुआ देख कर, श्रमणो की दृष्टि उपासको के सगठन की ओर गई।

उपासको के सगठन मे से जातिवाद खडा हुआ और जातियो का सम्बन्ध प्रतिबोधित गच्छो के साथ जुडने लगा। जो जाति जिस गच्छ से प्रतिबोधित होती, उस जाति और उस गच्छ मे परस्पर ममत्व हो जाता। वे जातिया ब्राह्मण-जातिवाद के प्रभाव से भी अछूती नही थी और अन्य गच्छ से प्रतिबोधित जातियो के साथ बेटी-व्यवहार का सम्बन्ध भी अनुचित समझती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे अलग-अलग जातियो के अलग-अलग गच्छ हो गये। गच्छ जिस वात्सल्य-सूत्र से सग्रथित हो सघ रूप मे परिणत होते थे, वह भी ईर्ष्या-द्वेष के कारण छिन्न-भिन्न हो गया। अन्य कारणो के साथ ही साथ जाति-प्रतिबद्धता के कारण साधुओ के आचार-व्यवहार मे विकार उत्पन्न होने लगे। जातियो मे भी कट्टरता आ गई। जातिया उच्चता-नीचता के वृथाभिमान से ग्रस्त होने लगी। अत जातियो पर गच्छो का आधिपत्य ढीला होने लगा।

राज्याश्रय के अभाव, शासन के दबाव, दुष्काल, गच्छो के लोप आदि कारणो से जैनो की सख्या कम होने लगी। साधु अपने-अपने गच्छो

धूमिल हो जाने का या अपने अनुयायियों के पलट जाने का खतरा है। सैद्धान्तिक मतभेद न होते हुए भी साम्प्रदायिक और वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षाओ और आचारगत शैथिल्य के कारण स्थानकवासी जैनो मे अनैक्य व्याप्त है।

सम्प्रदाय के ह्रास के कारण

इस इतिहास का विपय-क्षेत्र वहुत ही सीमित है। एक सम्प्रदाय-विशेष ही इसका प्रमुख वर्णित विपय है। परन्तु प्रसगवशात् गौण रूप से विषय-क्षेत्र विस्तृत हुआ है। किसी सम्प्रदाय के इतिहस मे अधिकतर उसमे उसके शुक्लपक्ष और गौरव का रूप ही वर्णित होता है, परन्तु उसके दूसरे पक्षका वर्णन प्राय नहिवत् होता है और यही उसकी अपूर्णता है। वस्तुत जव उसी सम्प्रदाय का अनुयायी ही इतिहास का आलेखन करता है तो उसे सम्प्रदाय के गौरव की वाते ही महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है और वह विवश भी होता है, क्योकि वे ही वाते सग्रह मे प्राप्त होती है तथा उसे उन्ही का आलेखन करने का अधिकार मिलता है। वह सम्प्रदाय की हीनता, ह्रास, अगौरव आदि के कारणो का सग्रह नही कर पाता है और सग्रह कर भी कैसे सकेगा? उन वातो का प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त होना भी सभव नही है। अत सम्प्रदाय का ह्रास किन कारणो से होता है ओर सम्प्रदाय की हीनता किससे होती है, इस विषय मे कुछ कुछ बुनयादी वातो का वर्णन यहा किया जा रहा है।

प्रत्येक सम्प्रदाय के ह्रासके कारण दो ओर मे उत्पन्न होते है—(१) अन्य की ओर से और (२) अपने और अपने परिवार की ओर से। इन्हे क्रमश अतैर्थिक और तैर्थिक कारण कहा जा सकता है। इनके भी कई भेद-उपभेद होते है।

अतैर्थिक कारण

अतैर्थिक कारणो मे प्रमुख कारण चार है—(१) शासन, (२) शिक्षा-पद्धति, (३) विज्ञान का अतिरेक और दुरुपयोग और (४) सामाजिक विषम-स्थिति।

वन जाता है। एक ही जाति मे गाढे जाति-वन्धन के कारण दरारें पड जाती है। मनुष्य जातीय नशे के उन्माद मे अपनी साधर्मी-वत्सलता को तिलाञ्जली दे देते है ओर साधर्मो वन्धुओ को छिटका देते है। जहा तीव्र जातीय नियन्त्रण निर्दयता का कारण वनता है, वहा जातीय-वन्धन का विल्कुल अभाव भी मनुष्यो मे जाति-प्रेम, सस्कार-गोरव आदि उदात्त भावो को नष्ट कर देता है और मनुष्य अपने को जाति के वन्धन से मुक्त वताने के लिए स्वय तो धर्म का त्याग कर ही देता है, पर अपने कुटुम्व को भी वलात् इसी ओर प्रेरित करता है और जाति-वन्धुओ और स्वधर्मी-वन्धुओ की दीनता या पीडा पर अट्टहास के साथ व्यग कर,के उन्हे मर्मान्तिक पीडा पहुँचाता है, कि—जिससे वे भी उसके पक्ष का अनुसरण करे। इस प्रकार तीव्र जाति-वन्धन ओर जातीय-उच्छृखलता दोनो धर्म के लिए हानिप्रद है।

समय-समय पर होने वाले राजनैतिक आदोलन भी धर्म-सम्प्रदायो को ठेस पहुँचाते हैं। क्योकि वे अपने स्वार्थ के लिए सामाजिक विषमता को उत्पन्न करते है या उसको पुष्ट करते है।

तैर्थिक कारण

धर्म के अनुयायी वर्ग-विशेष को तीर्थ कहते है। धर्म के दो वर्ग है—स्वमान्य धर्म और अन्य के द्वारा मान्य धर्म। स्वमान्य धर्म आर्हत् धर्म है, वह स्वतीर्थ है और आर्हत् धर्म के सिवाय इतर धर्म अन्यधर्म है –वे अन्यतीर्थ है। अत इनकी ओर से सम्प्रदाय के ह्रास के उत्पन्न होने वाले कारणो को क्रमश (१) **स्वतैर्थिक कारण** और (२) **अन्य तैर्थिक कारण** कहते है।

अन्य तीर्थ मे वैदिक धर्म सम्प्रदाये, वौद्धधर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाईधर्म आदि अन्य तीर्थ है। अतीत मे श्रमण-व्राह्मण सम्प्रदायो मे प्राचीन उल्लेख के अनुसार 'अहि-नकुल'–सी स्थिति थी। जिससे जैन सम्प्रदायो को वहुत हानि उठानी पडी। अव इतनी अधिक उग्रता नही रही है। परन्तु पूर्वाग्रह अवश्य वना हुआ है। विद्वान् महानुभाव भी इस पूर्वाग्रह से मुक्त नही हो पाते है। अत ऐतिहासिक दृष्टि से भी सही न्याय प्राप्त

नही हो सकता है। छोटी-छोटी वातो मे विग्रह उत्पन्न हो जाता है। जिससे सम्प्रदाय के अनुयायीओं को हानि पहुँचती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इतर धर्म-सम्प्रदायो के द्वारा हानि के निमित्त वनते रहते है।

स्वतैर्थिक कारण

जो भगवान् जिनेश्वर देव को आराध्य मानते है और जो उनकी वाणी मे श्रद्धा करके, अपनी-अपनी समझ और शक्त्यनुसार वीतराग-धर्म की आराधना करते है, वे सव स्वतैर्थिक है। इनमे दो प्रकार है-स्वयूथिक और परयूथिक।

जैन धर्म मे सिद्धान्त और आचार के वैभिन्न्य के अनुसार प्रमुख चार यूथ हैं—(१) दिगवर, (२) श्वेताम्वर मूर्तिपूजक, (३) स्थानकवासी और (४) तेरापथ। गौण रूप से सौनगढ पथ आदि भी उपयूथ हैं। स्थाकवासी के लिए अन्य यूथ परयूथ है। ये परयूथ वाले स्थानकवासियो के लिए दो प्रकार से ह्रास के कारण वनते है—(१) सैद्धान्तिक प्रचार से और (२) पारस्परिक सम्वन्धो से।

जब परयूथ वाले साधू-साध्वी के सम्पर्क मे, सिद्धान्त से अनभिज्ञ स्थानकवासी श्रावक-श्राविकाएँ आते है, तव वे उनकी श्रद्धा को परिवर्तित करने मे निमित्त वनते है। कभी-कभी स्थानकवासी साधु-साध्वी भी किन्ही प्रलोभनो मे आकर पथ-परिवर्तन कर लेते है। इसप्रकार या अन्य रीति से परयूथिक सिद्धान्त-प्रचार और सिद्धान्त-प्रचार के वहाने वृथा निन्दा करके, स्थानकवासी उपासको मे हीनता पैदा करके, उन्हे अपने मत के परित्याग के लिए प्रेरित करते है।

स्थानकवासी उपासको के अन्य यूथवालो के साथ दो प्रकार के सम्वन्ध जुडते हैं (१) रागात्मक रूप से और (२) आर्थिक रूप से। मैत्री, विवाह आदि रागात्मक सम्बन्ध है और नौकरी, आढत, व्यापार आदि आर्थिक सवन्ध है। कई स्थानकवासी कुटुम्व दिगम्बर, मूर्तिपूजक आदि अन्य यूथवालो की कन्या आदि के साथ लग्न होने के कारण अपनी आस्था से विचलित होकर, उनकी श्रद्धा वाले हो जाते हैं और माताएँ

सन्तानो को अपने पीहर के मत की ओर खीच ले जाती है। इस प्रकार सेठ के कारण से नौकर या मुनीम और मुनीम के कारण से सेठ अपना यूथ त्याग देते है।

पर-साम्प्रदायिक कारण

स्वयूथ मे स्वसम्प्रदाय (पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय या अपने-अपने सम्प्रदाय) और पर सम्प्रदाय (श्री धर्मदासजी महाराज की मालवा की सम्प्रदाय के सिवाय मालवा की और अन्य क्षेत्र की इतर सम्प्रदाये या अपनी सम्प्रदाय से इतर) ऐसे दो समूह है। अत स्वयूथिक ह्रास के कारण भी दोनो ओर से उत्पन्न होते हैं। पर साम्प्रदायिक कारणो मे उपर्युक्त कई कारणो का समावेश होता है और अन्य कारणो को दो भागो मे विभाजित कर सकते है—(१) धर्मदृष्टि से और (२) धर्मेतर दृष्टि से होने वाले कारण। धर्म दृष्टि से उपस्थित होने वाले कारण इस प्रकार है—

चमत्कार—पर सम्प्रदाय वाले अपने अपने सम्प्रदाय और सम्प्रदाय के प्रमुख साधुओ के विपय मे चमत्कार की वाते फैलाकर पर सम्प्रदाय के लोगो को अपने सम्प्रदाय के अनुयायी वनने की प्रेरणा करते हैं। जैसे—'इस सम्प्रदाय के अनुयायी वनने से धनवान वन जाते हैं' 'हमारे आचार्य श्री का हाथ मस्तक पर फिर जाने से या उनके नाम की माला गिनने से सुखी वन जाते है।' या 'इन महाराज मे ऐसी शक्ति है, कि—इनके दर्शन करने से रोग-शोक सव मिट जाते है' या एक वहिन दूसरी अपनी सम्वन्धिनी वहिन को प्रेरित करती है—'तू वीमार थी, तव मैंने आचार्य श्री के दर्शन कराने की मनौती मानी थी। अव उनकी कृपा से तू अच्छी हो गई है। अत उनके दर्शन करने के लिए चले' आदि।

क्रियावाद—चारित्र-सम्वन्धी उत्कृष्ट आचार का पालन अपने आत्महित के लिए किया जाता है परन्तु जव उग्र क्रिया का प्रदर्शन किया जाता है, तव उसका उद्देश्य आत्महित से भिन्न हो जाता है। आज साधुओ की नये जैनवनाने की शक्ति वहुत ही अल्प हो गई है। वे जैनो मे से ही अपने अनुयायी वनाना चाहते है। इस हेतु की सिद्धि के लिए

है, साधना के ध्येय तथा साधना के स्वरूप को नही बनाते है और एक-दूसरे के प्रति वात्सल्य-विहीन पक्षपात से परिपूर्ण व्यवहार करते है तो सम्प्रदाय मे हानि होती है।

छोटे साधुओ की उद्धतता–विनय युक्त चर्या से आत्मशान्ति रहती है और मन की व्यवस्था भली भाँति बनी रहती है। किन्तु छोटे साधु बडे साधु की बराबरी करना चाहते है योग्य शिक्षा प्राप्त किये बिना ही आगे बढने का प्रयास करते है, परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करते है आत्मख्याति के लिए अत्यधिक लालायित रहते है आचार-दृढता की नही, मात्र प्रवचन-पटुता की ही वाञ्छा करते है आत्म-साधना के ध्येय को विस्मृत करके, मात्र लोकैषणा मे ही रत हो जाते है, वैयावृत्य को बेगार, भृत्यता या हलका कार्य समझकर, उससे दूर ही दूर रहते है अनुशासन मे रहना दासता समझते है, बडो पर दोषारोपण करते है, अपने दूषण को न देखकर, बडो के दोष निकालते है–इत्यादि उद्धतता के कारण सम्प्रदाय के गौरव मे हीनता आती है और उसकी अवनति होती है।

अशुद्ध व्यवहार–साधुओ का शुद्ध व्यवहार ही साधना का प्राण है। अशुद्ध व्यवहार साधना को भग्न कर डालता है। किन्तु कई साधु साधना-मार्ग से भटक जाते है। मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, निमित्त आदि पापश्रुत मे अत्यधिक रुचि रखते है, सत्सूत्रो और सद्ग्रन्थो का स्वाध्याय मे मन नही लगाते है, भौतिक लालसाओ मे विद्याओ का दुरुपयोग करते है, पद-लिप्सा मे उलझ जाते है, परस्पर कलह करते है, एक-दूसरे की निंदा करते है, भक्तो को अपना बनाने के लिए परस्पर द्वन्द्व करते है, यश-कीर्ति के लिए भूखे बाज बन जाते है, अपनी वाहवाही के लिए विचित्र क्रिया-कलाप करते है। बाहर और भीतर की करनी मे रात-दिन का अन्तर रखते है, मायाचार रचते है–इत्यादि व्यवहार मे सम्प्रदाय का उत्थान कैसे हो सकता है।

प्रभावशाली साधुओ का विचित्र व्यवहार–सम्प्रदाय के प्रभावशाली साधु सम्प्रदाय के गौरव मे चार चाँद लगाते है। परन्तु जो प्रभावशाली साधु आचार की उपेक्षा करते है, दोषियो का निग्रह न करके, उन्हे

अनुग्रह से मण्डित करते है, अपने प्रभाव को दोषियो की सुरक्षा के लिए ढाल और निर्दोष की कीर्ति को क्षति पहुँचाने के लिए तीक्ष्ण शस्त्र वनाते है, परिग्रह का सञ्चय करते है, आरम्भ के कार्यो मे प्रेरणा देते है, योग्य साधुओ की साधना के उत्साह को भग करते है, अन्य साधुओ को प्रभावशाली वनने देना नही चाहते है, गृहस्थो को मात्र अपने ही राग मे वाधते है, साधुओ के साथ स्वय भेद से भरा हुआ व्यवहार करते है, गृहस्थो के ऐसे अनुचित व्यवहार का अनुमोदन करते है और भी ऐसा ही मलिन व्यवहार करते है तो सम्प्रदाय के प्रतीत होने वाले स्वर्णयुग मे ही उसके पतन के वीज पड़ जाते है।

अयोग्य दीक्षाएँ-जिनशासन की परमपावनी भागवती दीक्षा किन्ही विरले पुण्यात्मा को ही प्राप्त होती है। जिसके हृदय मे भव के ताप को शान्त करने वाले वैराग्य का उदय होता है, उसकी भागवती जैन दीक्षा मोक्षमार्ग मे तीव्र गति कर देती है और वह परमार्थ का आराधक जन-जनका प्रेरणा-स्रोत वन जाता है। किन्तु जव ऐसी स्वार्थ-घातिनी और आत्मार्थ-परमार्थ-साधिका दीक्षा के पीछे भी कोई भौतिक प्रलोभन लग जाते है या दीक्षा-दाता के हृदय मे आत्म-साधना मे सहयोग देने की कर्त्तव्य-भावना के सिवाय इतर भावनाएँ घर कर जाती है या परिस्थिति-वश दीक्षा ली-दी जाती है या कई वार दीक्षा से पतितो को भी दी जाती है तव अयोग्य व्यक्ति भी उस भारको वहन करने लग जाते है। वैराग्य का अश मात्र भी हृदय मे न हो तो चारित्र का स्तर ऊँचा कैसे उठ सकता है। माया के छद्म मे चारित्र का ओज दव जाता है। अत स्थिति ऐसी वन जाती है, कि—सम्प्रदाय मे सच्चे साधको के आने का द्वार ही रूंध जाता है। गृहस्थ साधुओ के पास धर्म-श्रद्धा लेकर आता हो और उनके पास से श्रद्धा छोडकर जाता हो तो कैसी दु खद स्थिति कही जाएगी ? ऊपर से पालिश से चमचमाती हुई और भीतर से नके घुद्वारा खाई हुई लकडी के समान चारित्र की स्थिति हो तो साधना रत्नत्रय की आराधना न रहकर, ससार-साधना या मात्र आजीविका-उपार्जन का निमित्त वनकर रह जाती है। यदि वैराग्य पूर्ण वातावरण हो और ज्ञानगर्भित वैराग्य मे वासित आत्माओं का उत्तम साथ प्राप्त हो तो दु खगर्भित और मोहगर्भित वैराग्य मे प्रेरित

आत्मा भी सम्यग्श्रद्धा से युक्त होकर, सम्यग् चारित्र से मणि
जाता है।

लौकिक विद्याओ का आकर्षण-आज साधु-साध्वी लौकिक
के पीछे दौड लगा रहे है। उन्हे विश्व विद्यालयों की 'डिग्रिय
उपाधियाँ प्राप्त करने की उत्कट इच्छा जाग रही है। वे सत्संस्क
जगाने मे असमर्थ और आत्म-आराधना के भावको धूमिल करने मे
निमित्त रूप विद्या का अर्जन करने के लिए अपने साध्वाचार व
अवहेलना करते है और उन डिग्रियों को पाकर फूले न समाते ह
गर्वोन्नत होकर रत्नाधिक साधु-साध्वी की अवमानना करते है, गु
के प्रति अविनीत और उद्धत व्यवहार करते है और समाज या स
बहुत कुछ लेकर भी उसके प्रति कृतघ्न जैसा व्यवहार करते
अपने-आपको महान् असाम्प्रदायिक नव दृष्टा और नव सृष्टा प्रदर्
करके, सघ समाज और सम्प्रद ाय की जडे काटते है।

आत्मानुसन्धान का अभाव-छद्मस्थ, अल्पवीर्य और प्रमत्त स
आत्म-लक्ष्य से प्राय भटक जाया करता है। इसीलिए भगवान् ने दैवसि
रात्रिक आदि प्रतिक्रमण का विधान किया है, कि-जिससे साधक अप
लक्ष्य मे भटकी हुई आराधना की सम्यग् आलोचना करके, लक्ष्य वे
अनुसन्धान-पूर्वक तद्गत त्रुटियो को सुधार ले। पर प्रतिक्रमण प्रमादवशात्
यथानियम नही चलता है या प्रतिक्रमण चलता रहता है और उपयोग
इधर-उधर प्रधावित होता रहता है। अत आत्म-आराधना के अनुसन्धान
के अभाव के कारण चारित्र का स्तर निम्न-निम्नतर होता जाता है।

मध्यकाल मे सम्प्रदाय के साधु कुछ-कुछ वर्षों के अन्तर से इकट्ठे
होते थे और अपने आचार मे आगत शैथिल्य को, नियमो की पुनर्वाचना
या नियमावली के निर्माण के द्वारा दूर करने का प्रयत्न करते थे। पर
आज वैसे प्रयत्नो का भी अभाव है। यदि वैसे प्रयत्न होते भी है तो उनके
प्रति निष्ठा का अभाव है।

श्रावको के प्रति साधुओं का व्यवहार

श्रावको के प्रति साधुओ के उचित व्यवहार से भी सम्प्रदाय की
उन्नति होती है। साधु-साध्वी को उपासको के आत्महित का चिन्तक रहना

चाहिए। परन्तु जो साधु-साध्वीवर्ग उपासको के आत्महित के प्रति असावधान हो, उनके प्रति वात्सल्य का व्यवहार न करता हो, उनसे केवल अपना स्वार्थ ही साधता रहता हो, उन्हे कटु वचनो से वीधता रहता हो, उनसे जरा-जरा सी वात के लिए कलह करता हो, उनपर विविध आदेश छोडता रहता हो, उन्हे परेशान करता रहता हो तो श्रावक धर्म के अनुयायी कैसे रह सकेगे ?

अन्ध विश्वासो का पोषण साधारण जनके ससर्ग से उपासको मे अनेक प्रकार के अन्धविश्वास उत्पन्न हो जाते है। साधु-साध्वियो को चाहिए, कि—उपासक-वर्ग की अन्ध श्रद्धा का उन्मूलन करे और उन्हे सम्यग् श्रद्धा मे स्थापित करे। किन्तु साधु-साध्वी-समुदाय श्रावक-श्राविकाओ को अन्ध श्रद्धा से ऊपर नही उठाते हैं, उनकी अन्ध श्रद्धा को पुष्ट करते है, उन्हे मिथ्या चमत्कार की बाते सुना-सुनाकर, उनके आत्मवल को क्षीण करते जाते है और उनके अन्ध विश्वासो का अनुचित लाभ उठाते रहते है तो वे धर्म मे स्थिर कैसे रह सकते है ? जव सच्चे जैनत्व का उपदेश ही नही दिया जाता हो, तव आदर्श जैनो के अस्तित्त्व की आशा एक दुराशा मात्र है।

आडंबर की प्रेरणा और आडबर-प्रियता-जव साधु-साध्वी त्याग मे उल्लास और आनन्द का अनुभव करते है, तव उन्हे न तो लोगो को जमा करने की वृत्ति ही रहती है और न उत्सव ही प्रिय होता है। परन्तु जव त्याग का रस मन्द पड जाता है, तव त्यागी भी उत्सवप्रिय हो जाते हैं। अत साधु उपासको का धन व्यर्थ ही व्यय करवाते है। वे तप-उत्सव आदि के नाम पर क्षण-स्थायी प्रभाव वाले आडम्वरो की प्रेरणा देते हैं। यदि श्रावक धन व्यय नही करते है या अल्प व्यय करते हैं, तो वे उन पर नाराज होते है। लोग भी प्राय आडम्वर-प्रिय होते हैं। साधु-साध्वी उनकी रुचिका परिमार्जन नही करते हैं। वास्तविक धर्म-प्रभावना का स्वरूप उनके मनो-मस्तिष्क मे नही जमाते हैं। साहित्य-प्रकाशन के नाम पर साधु कई विचित्र कार्य करते हैं। यदि श्रावक-श्राविकाओ की वास्तविक प्रभावना की रुचि ही मर जाती है तो वे धर्म या सम्प्रदाय के प्रभाव की वृद्धि ही कैसे कर सकते है ?

अव्यवस्थित विहार-शास्त्रो मे साधुओ के विहार के लिए 'पुव्वाणुपुव्विचरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जमाणे'-अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम को स्पर्शते हुए-विशेषण आता है। इस विशेषण से साधुओ के विहार की क्रमबद्धता का उल्लेख हुआ है। परन्तु आजकल साधुओ का विहार बहुत ही अव्यवस्थित होता है। विहार चारित्र-चर्या के अग रूप मे या धर्म-प्रेरणा देने के लिए बहुत ही कम होता है। साधु बडे-बडे क्षेत्रो मे ही रहते-विचरते है और छोटे क्षेत्रो को, उपासको का आग्रह होने पर भी, कुछ विशेष कारण न होने पर भी नही स्पर्शते हैं। सम्प्रदाय के क्षेत्रो की भी पूरी तरह सार-सभाल नही की जाती है और कई क्षेत्रो के उपासक तो बेचारे साधुओ के दर्शन के लिए तरसते ही रह जाते है।

त्रुटिपूर्ण चातुर्मास-पद्धति-श्रावक वर्षावास मे सतसग की लम्बी अवधि मे साधुओ से कुछ पा सकते है। परन्तु अब साधुओ के वर्षावास लघुभूत नही रहे। कई ग्राम तो चातुर्मास से वचित ही रह जाते हैं। चातुर्मास की विनती की प्रथा भी विचित्र हो रही है। विनती की स्वीकृति के लिए, कई ग्रामो के सघो के एकत्रित होने पर, धन और समय का वृथा अपव्यय होता है और मनोमालिन्य जैसी स्थिति भी हो जाती है। चातुर्मास का (दर्शनार्थियो आदि के कारण) व्यय भार अत्यधिक होता जा रहा है। यद्यपि इसमे अकेले साधुओ का दोष नही है, तदपि साधु के इसमे निमित्त बनने के कारण उन्हे श्रावको की अरुचि का भाजन बनना पडता है। परन्तु इसका उचित मार्ग देर-सवेर श्रावको को ही सोचना होगा। नही तो लज्जावश चातुर्मास के लाभ से वचित होना होगा और इसके सिवाय गुरुजन की आशातना करना पडती है सो अलग।

अतात्त्विक प्रवचन-पद्धति, उत्सव-प्रियता, स्वाध्याय मे प्रमाद, ज्ञानरुचि की मदता आदि कारणो से चातुर्मास मे रत्नत्रय की आराधना मे, त्यागी और गृहस्थवर्ग दोनो के लिए अन्तराय उत्पन्न होते हैं।

श्रावकों का साधुओं के प्रति उपेक्षा-पूर्ण व्यवहार

सम्प्रदाय की उन्नति मे श्रावको का भी अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। साधुओ पर श्रावको के प्रति वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करने का

लगते है और वे जो साधु उन्हे भौतिकता की मृग-मरीचिका दिखा सकते है, उसीके अनुयायी बनने लगते है। जिससे सम्प्रदाय मे कई विषम स्थितिया पैदा होती है।

श्रावको की बहिर्मुखता-जब मनुष्यो मे अतरग मे पैठने की शक्ति नही रहती है, तब वह बहिर्मुख वृत्तिवाला हो जाता है। बहिर्मुख उपासक विवेक दृष्टि से शून्य हो जाता है। तब वह या तो आडम्बर-प्रेमी बन जाता है, या फिर बाह्य-क्रियाओ–सयम के रूप मे प्रदर्शित दिखावटी क्रियाओ का आग्रही बन जाता है। फिर जो सन्त आडम्बर और क्रियाकाण्ड के दिखावे से दूर रहते है, उन साधु-साध्वियो की वह उपेक्षा करता है, अभद्र व्यवहार करता है, उनकी निंदा करता है, उनकी उचित भक्ति नही करता है और उनके पास दीक्षित होने के इच्छुक की इच्छा को भग्न करता है तो सम्प्रदाय की हानि होती ही है और उन साधुओ का भी सम्प्रदाय के प्रति विमनस्क होना स्वाभाविक ही होता है।

सम्प्रदाय के महापुरुषो के प्रति गौरव की कमी–अपने सम्प्रदाय के महपुरुषो के गुणो का स्मरण न किया जाता हो, उनके जीवन से प्रेरणा लेने की वृत्ति न हो, उनके प्रति गौरव का भाव न हो, उनके जीवन-चरित से अज्ञात रहते हो और उनके त्यागमय जीवन का अनुसरण नही करते हो, तो सम्प्रदाय की यश पताका कैसे फहरा सकती है ?

श्रावको का पारस्परिक व्यवहार–यदि श्रावको का पारस्परिक व्यवहार उलझन भरा हो तो भी सम्प्रदाय मे ह्रास के निमित्त खडे होते हैं।

गृहस्थ उपासको मे घरेलू, आर्थिक, सामाजिक, जातीय या राजनैनिक कारणो से परस्पर मन-मुटाव हो जाया करता है। वे अपने अज्ञान के कारण उस मन-मुटाव को धार्मिक क्षेत्र मे भी घसीट लाते है और कलह का वातावरण बना डालते है। एक-दूसरे पर दोषो का आरोप-प्रत्यारोप करते है। अत धर्म-साधना मे विरसता आ जाती है और धर्मस्थान सूने रहने लगते है।

धार्मिक सस्थाएँ सम्प्रदाय की उन्नति के लिए स्थापित की जाती है। परन्तु धार्मिक सस्थाओ, उनकी व्यवस्था आदि को निमित्त बनाकर कलह पूर्ण स्थिति बना दी जाती है। उन सस्थाओ का मोह, पदलिप्सा आदि भी अशान्ति के हेतु बनते है। यदि धार्मिक सस्थाओ की चल-अचल सम्पत्ति के प्रति उपेक्षा या उसे हडपने की वृति रहती हो या दो भाई के बीच की गाय के समान उनका उपयोग लेने मात्र की ही वृत्ति हो या मात्र सत्ता जमाने की भावना रहती हो तो सम्प्रदाय मे साधनो के अभाव की स्थिति पैदा हो जाती है।

श्रावको मे पारस्परिक वात्सल्य की कमी भी विचारणीय बात है। साधन सम्पन्न व्यक्ति सम्प्रदाय के दीन-दु:खीजनो के प्रति वात्सल्य प्रकट नही करते है, उन्हे किसी प्रकार का सहयोग नही देते है, उनकी सार सभाल नही करते हैं, उन्हे शाति प्रदान नही करते हैं, उन्हे तडपते हुए देखकर भी करुणा से विगलित नही होते हैं, उन्हे दर-दर भटकने देते है और उन्हे पराया हो जाने देते है तो वे अपना कर्तव्य चूकते है और अपनी साधन-सम्पन्नता और सामर्थ्य को निष्फल बनाते है।

श्रावकों की आत्मस्थिति

तत्त्व-जिज्ञासा का अभाव—आज उपासको मे सैद्धान्तिक ज्ञान नहिवत् है। उन्हे धार्मिक ज्ञान उपार्जन करने की कोई खास रुचि नही है। इधर-उधर के कुछ लेखो को पढकर, स्वच्छद विचारधारा वाले हो जाते है। अत पल्लवग्राही पाण्डित्य से अभिमानी बनकर, सद्गुरु-चरणो की उपासना का परित्याग कर देते है। श्रमण की उपासना मे उन्हे 'बोर' होना लगता है। वे जहाँ जोर-शोर से प्रचारित प्रवचन हो रहा हो, वहा सहस्राधिक सख्या मे एकत्रित हो जाएगे, परन्तु शान्ति से सद्गुरु की चरणोपासना करके, तत्त्व की शोध नही कर सकेगे।

श्रमणपासको के आधुनिक वशज धर्मोपासना को ढोग, दिखावा, या बाह्य आडम्बर समझते है। परन्तु स्वय धर्म के नाम पर वृथा व्यय-प्रधान राग-रग से भरपूर 'प्रोग्रामो' की सृष्टि करके, अपने को कृतकृत्य मानते है और उसमे धर्म का प्रचार या उत्थान होना मानते है।

को अन्य पर डालते हुए कहने लग जाते हैं—'यह मेरे अकेले का काम थोडे ही है। यह तो पूरे सघ का काम है।'

उपासको की आसक्ति–उपासक वर्ग ससार की आसक्ति मे लीन है। वे वैराग्य की बडी-बडी बाते करते है, साधुओ की आलोचना करते है, परन्तु आप स्वय अश मात्र भी त्याग नही अपनाते हैं। स्वय गृह-त्याग कर मुनि बनना तो बहुत दूर की बात है। पर जो त्याग मार्ग ग्रहण कर रहा हो उसके परिणाम को गिरा देते है। कई श्रावक मुनियो को उनके त्याग के लिए भूरिश धन्यवाद तो देते है। पर अपने आपके या अपने कुटुम्ब के किसी सदस्य अथवा सदस्या के गृहत्याग की बात आती है तो मोह की विचित्र लीला होने लगती है।

इस प्रकार की हीन स्थिति में सम्प्रदाय की वृद्धि और उन्नति कैसे हो सकती है और सम्प्रदाय का अनुयायी वर्ग सुखी, समृद्ध और शीलसम्पन्न कैसे हो सकता है ?

गण का उत्थान कैसे हो

गण (श्रमण सघस्थित सम्प्रदाय) की अवनति के कारणो पर विचार करने से ही उसकी उन्नति के उपाय समझ मे आ सकते है। परन्तु भावो की स्पष्टता और विशदता के लिए, इस विषय पर अलग से विचार करना योग्य है। गण-उत्थान के कार्यो को दो भागो मे बाटा जा सकता है—(१) साधुओ के कर्त्तव्य और (२) श्रावको के कर्त्तव्य। पहले विभाग मे दो उपविभाग है—(१) साधुओ के आत्म साधना सम्बन्धी कर्त्तव्य और (२) साधुओ का जनता के प्रति कर्त्तव्य और दूसरे विभाग के भी दो उपविभाग है—(३) श्रावको का अपना और अपने परिवार आदि के प्रति कर्त्तव्य और (४) धर्म-प्रचार सम्बन्धी कर्त्तव्य। अब इन पर क्रमश विचार किया जाता है।

साधुओ के आत्म-साधना सम्बन्धी कर्त्तव्य-गण के उत्थान मे साधुओ का वस्तुत बहुत बडा उत्तरदायित्व है। साधु के उपदेश से भी उसके चारित्र का प्रभाव बहुत अधिक होता है। अत साधु को आत्मनिष्ठ चारित्र से सम्पन्न होना चाहिए। चारित्र-सम्पन्न साधु संघ ही सक्रिय रूप

धर्मसंस्कार-दान का अभाव-गृही लोग अपनी सन्तानो को स्वय ही फेशन करना सिखाते है। आधुनिक उच्च शिक्षा दिलाने के लिए अत्यन्त चिन्तित रहते है और उसके लिए अपनी शक्ति से भी अधिक व्यय करके उनके जीवन-स्तर को सभ्य, तथाकथित सुसस्कृत और उच्च बनाने का असफल प्रयत्न करते हैं, जिससे उन्हे अपनी वृद्धावस्था मे कडवे फल भोगने पडते है। परन्तु जो धर्म-शिक्षा और धर्म-सस्कार उनके और उनकी सतानो के लिए शान्ति और सुख के उत्पादक है, उन्हे सतानो को देने के लिए शताश मे भी चिन्ता और प्रयत्न नही करते हैं।

उद्धतता-अधिकाश आधुनिक नवयुवको मे शिक्षा के अमुक स्तर तक पहुँचते ही न जाने कैसी अहङ्कारी वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। अत वे अपने मन से ही, तत्त्व की गवेषणा करने के लिए नही, केवल अपने प्रमाद और अज्ञान को उचित ठहराने के लिए, प्राय धर्म-विरोधी तर्क-वितर्क करते रहते है। आधुनिक बनने की तीव्र धुन मे धर्माराधना का परित्याग कर देते है। वैषयिक वृत्तियो के आकर्षण मे तल्लीन होकर धर्म को ढोग समझने लग जाते है और धर्म-शास्त्र का अध्ययन और धर्माचरण करना बाबा आदम के जमाने की निरर्थक जर्जर रूढि समझते है।

धन के दुरुपयोग मे उत्साह और सदुपयोग मे अनुत्साह-श्रावक-श्राविकाओ को विवेक-चक्षुष्मान होना चाहिए। उन्हे अपने धनके सदुपयोग मे आनन्द और दुरुपयोग मे शोक होना चाहिए। परन्तु आज इससे विपरीत स्थिति अनुभव मे आती है। श्रावक विवाह आदि के अवसरो पर, अपनी ऐश्वर्यमत्ता का प्रदर्शन करने के लिए-मिथ्या गौरव का सेहरा अपने सिर पर बाधने के लिए, अपनी अपार धनराशि व्यय करते है। व्यसन, फेशन, बाहरी दिखावे आदि मे अपने धन का व्यय करना-सदुपयोग मानते है। परन्तु वे ही उपासक धर्म के लिए थोडा सा भी धन व्यय करके, अपने-आपको उदार और दानी मानने लग जाते हैं और मानो उन्होने बहुत अधिक, पर्याप्त या अपनी शक्ति से अधिक व्यय कर डाला हो-ऐसा जताते हैं। कभी-कभी वे 'धर्मकार्य मे व्यय अपने आत्महित के लिए किया जाता है'—यह बात भूलकर, अपने कर्त्तव्य

को अन्य पर डालते हुए कहने लग जाते हैं—'यह मेरे अकेले का काम थोडे ही है। यह तो पूरे सघ का काम है।'

उपासको की आसक्ति–उपासक वर्ग ससार की आसक्ति मे लीन है। वे वैराग्य की वडी-वडी वाते करते है, साधुओ की आलोचना करते है, परन्तु आप स्वय अश मात्र भी त्याग नही अपनाते हैं। स्वय गृह-त्याग कर मुनि वनना तो वहुत दूर की वात है। पर जो त्याग मार्ग ग्रहण कर रहा हो उसके परिणाम को गिरा देते हैं। कई श्रावक मुनियो को उनके त्याग के लिए भूरिश धन्यवाद तो देते है। पर अपने आपके या अपने कुटुम्व के किसी सदस्य अथवा सदस्या के गृहत्याग की वात आती है तो मोह की विचित्र लीला होने लगती है।

इस प्रकार की हीन स्थिति में सम्प्रदाय की वृद्धि और उन्नति कैसे हो सकती है और सम्प्रदाय का अनुयायी वर्ग सुखी, समृद्ध और शीलसम्पन्न कैसे हो सकता है?

गण का उत्थान कैसे हो

गण (श्रमण सघस्थित सम्प्रदाय) की अवनति के कारणो पर विचार करने से ही उसकी उन्नति के उपाय समझ मे आ सकते है। परन्तु भावो की स्पष्टता और विशदता के लिए, इस विषय पर अलग से विचार करना योग्य है। गण-उत्थान के कार्यो को दो भागो मे वाटा जा सकता है—(१) साधुओ के कर्त्तव्य और (२) श्रावको के कर्त्तव्य। पहले विभाग मे दो उपविभाग है—(१) साधुओ के आत्म साधना सम्वन्धी कर्त्तव्य और (२) साधुओ का जनता के प्रति कर्त्तव्य और दूसरे विभाग के भी दो उपविभाग है—(३) श्रावको का अपना और अपने परिवार आदि के प्रति कर्त्तव्य और (४) धर्म-प्रचार सम्वन्धी कर्त्तव्य। अव इन पर क्रमश विचार किया जाता है।

साधुओ के आत्म-साधना सम्वन्धी कर्त्तव्य-गणके उत्थान मे साधुओ का वस्तुत वहुत वडा उत्तरदायित्व है। साधु के उपदेश से भी उसके चारित्र का प्रभाव वहुत अधिक होता है। अत साधु को आत्मनिष्ठ चारित्र से सम्पन्न होना चाहिए। चारित्र-सम्पन्न साधु भले ही सक्रिय रूप

से किसी का उपकार न करता हो, तो वह किसी का अपकार तो करता ही नही है और एक वहुत वडा मौन उपकार यह कर जाता है, कि—अपने आदर्श चारित्र से लोगो मे धर्म का प्रेम जाग्रत कर देता है तथा प्रेरणा-स्रोत वन जाता है।

'साधु' शब्द का अर्थ है—आत्म-साधना करने वाला। अत साधु को दूसरे के उपकार करने की वृथा आकुलता को छोडकर, पहले अपने आचार की शुद्धि की ओर ही ध्यान देना चाहिए। क्योकि आचार ही प्रथम धर्म है। शास्त्रोक्त आचार के पालन करने की वृत्ति होना चाहिए और यथाशक्य वैसा प्रयत्न भी होना चाहिए। अपने महाव्रतो मे लक्ष्य रखकर, समिति-गुप्ति-पूर्वक ही व्यवहार रखना चाहिए। आचार-पालन मे निष्कपट भाव रखे और जो आचार नही पल रहा हो, उसे श्रद्धा पूर्वक सरलता से समझकर, आचरण मे उतारने का प्रयत्न करता रहे।

साधुको आचार शुद्धि के साथ-साथ साधना का अभ्यास करना चाहिए। शुद्धाचार का ध्यान और साधना की वृत्ति हो तो साधु स्व-पर का वहुत वडा कल्याण कर सकता है। साधना के प्रमुख अग तीन है—(१) स्वाध्याय, (२) भावना और (३) ध्यान। प्रतिदिन नियमित रूप मे शास्त्रो के पठन-पाठन रूप और स्थानकवासी सतो की महान् देन अर्थागम कल्प थोकडो को सीखकर उनकी अनुप्रेक्षासहित पुनरावृत्ति करने रूप स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। भावना के दो रूप है—(१) शास्त्र, ग्रन्थादि मे कथित मैत्र्यादि चार भावनाएँ, अनित्यादि द्वादश अनुप्रेक्षाएँ, तीन मनोरथ आदि का अभ्यास और (२) अपने वैकारिक भावो के शमन के लिए और गुणो की प्राप्ति और पुष्टि के लिए स्वय योजित कीहुई भावनाएँ। इनका नियमित अभ्यास उत्तम फल-प्रदाता है। ध्यान के भी दो रूप हैं—(१) कायोत्सर्ग सहित और (२) कायोत्सर्ग रहित। कायोत्सर्ग सहित ध्यान मे लोगस्स, णमोकार मंत्र आदि का चिन्तन किया जाता है। साधुओ के लिए शास्त्र मे 'अभिक्खणं काउस्सग्गकारी' विशेषण आया है। दूसरे कायोत्सर्ग रहित ध्यान मे धर्म ध्यान के भेद-प्रभेद को समझकर ध्यान करना चाहिए। नित्य प्रति यत्किञ्चित साधनाके सिवाय प्रतिवर्ष कुछ काल के लिए एकान्त मे जाकर तप पूर्वक साधना करना चाहिए।

साधुओ को दृढता के साथ त्रिरत्न की आराधना करना चाहिए और अन्य को भी इसी का उपदेश देना चाहिए। साधुओ को परीक्षाओ के झञ्झट मे न पडकर ज्ञानाभ्यास मे लीन रहना चाहिए। अधिक अध्ययन की इच्छा वाले साधु-साध्वियो को भी स्व-पर सिद्धान्त के सारभूत प्रमाणिक ग्रन्थो का अध्ययन और आधुनिक विचार-पद्धति मे परिचित होने के लिए वर्तमान कालीन प्रख्यात चिन्तको के ग्रन्थो का अध्ययन करे। परन्तु वीतराग दर्शन की श्रद्धा दृढ और निर्मल रखना चाहिए तथा चारित्र भी जिन-आज्ञा के अनुसार पालन करना चाहिए। यदि क्षेत्र, कालादिक की प्रतिकूलता से दोप लगते हो तो दोपो को दोप मानकर उनमे परे होने की वृत्ति रखना चाहिए।

किसी को दीक्षा देने मे शिष्य-लोभ को छोडकर, साधना मे सहयोग देने की ही वृत्ति रखना चाहिए। उसकी योग्यता भी अवश्य देखना चाहिए और दीक्षा देने के वाद उसे स्वच्छन्द न छोडकर, साधना के विपय मे योग्य निर्देश भी देते रहना गुरुजनो का कर्त्तव्य है।

वडे साधुओ के प्रति छोटे साधुओ का विनय-भक्ति से परिपूर्ण व्यवहार हो, उनकी आज्ञा-पालन की अप्रमत्त प्रवृत्ति हो, छोटे साधुओ के प्रति वडे साधुओ का वात्सल्य से अनुरञ्जित और हितचिन्ता से युक्त व्यवहार हो और समस्त साधु-साध्वियो का मर्यादा से युक्त प्रेम भरा व्यवहार हो और आत्म-साधना मे सहयोग हो तो सम्प्रदाय के धवल यश की चन्द्रिका क्यो न छिटकेगी ?

साधुओ का जनता के प्रति कर्त्तव्य-साधुओ का जनता के साथ सम्पर्क विहार, आहार, दर्शन और उपदेश के निमित्त से होता है। इस जन-सम्पर्क मे साधुको अपनी साधनावृत्ति को वरावर वनाए रखकर, जनता का आत्महित करना चाहिए। अपने यश के लिए या अन्य किसी स्वार्थ-साधना के लिए जन-सम्पर्क करना अनुचित है।

भगवान् ने शक्तिमान साधुओ का एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे परिभ्रमण करना, उनकी साधना को निर्मल रखने के लिए, आवश्यक वतलाया है। भगवान् ने साधुओ के नव कल्प-विहार का विधान किया

सच्चा श्रावक अपने पास के अर्थ का सदुपयोग करके पहले मनोरथ को क्रिया मे उतारता है। वह अपनी वार्षिक आय मे से अमुक भाग धर्मकार्य, साधर्मी की सहायता, सघके कार्य, अनुकम्पा के कार्य आदि मे व्यय करता है। उसे आडम्बर प्रिय नही होता है। धर्म के नाम पर वृथा आरम्भ से परिपूर्ण आडम्बर, जिनका प्रभाव क्षणस्थायी होता है, न करके, उचित व्यय सहित धर्महित और जनहित के ठोस कार्य प्रसन्नता से करता है। वह सघ की स्थायी चल-अचल सम्पत्ति की उचित देखभाल करता है, सुरक्षा करता है और उनके लिए योग्य मात्रा मे अर्थव्यय भी करता है। वह धर्मकार्यों को अपनी शक्त्यनुसार प्राथमिकता देता है। श्रावको को अपने घर मे सामूहिक स्वाध्याय की प्रणाली अपनाना बहुत ही उत्तम है।

आदर्श श्रावक पिछली वय मे निवृत्तिमय जीवन व्यतीत करता है। पचास वर्ष की आयु के बाद श्रावकों को, हो सके तो गृहकार्यों से निवृत्ति ले लेना चाहिए और अपनी शक्तियो को आत्महित और सघहित के कार्यो मे लगाना चाहिए। यदि वे निवृत्ति न ले सके तो अपनी आर्थिक शक्ति, अध्यापन शक्ति, लेखन शक्ति, वैद्यकीय योग्यता आदि जो भी अपनी जनहित-कारिणी विशेषता हो, उसे धर्म या सघ की ओर मोड देना, उसके लिए हितकर है।

धर्म प्रचार सम्बन्धी कर्त्तव्य-धर्म प्रचार का उत्तरदायित्त्व प्रत्येक जिनधर्मानुयायिओ पर है। उन्हे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार धर्म-प्रचार मे अवश्य भाग लेना चाहिए। धर्म-प्रचार के दो क्षेत्र है—सघ और सघेतर जन समुदाय। सघसे इतर जन समुदाय मे उनके समझ मे आने योग्य साहित्य के वितरण, मैत्री-व्यवहार आदि के द्वारा धर्म-प्रेरणा देना और सघ मे रहे हुए जनो को, यदि वे धर्म मे शिथिल हो रहे हो, तो उन्ही उचित उपायो से धर्म मे स्थिर करना और जो धर्म मे स्थिर हो उनमे धर्मशिक्षा का प्रचार करना। सघ मे धर्मशिक्षा के प्रचार के प्रमुख चार साधन है—(१) पाठशाला, (२) स्वाध्यायि-मण्डल, (३) शिक्षण शिविर और (४) बालमण्डल।

जैन पाठशालाएँ—पहले आबाल-वृद्ध गुरुचरणो की उपासना के द्वारा ही धर्मज्ञान को विनय सहित उपार्जन करते थे। परन्तु आज जैन

साधुओ की कमी आदि कारणो से ऐसा सम्भव नही है। अत जैन-पाठशाला एक ऐसा साधन है, जिससे बचपन मे ही धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जैन पाठशालाओ के सम्बन्ध मे मालवा के स्थानकवासी जैन श्रावको मे बहुत ही लापरवाही है। वे या तो पाठशाला के नाम पर लम्बे और अति व्ययवाले (छात्रावास, विद्यालय आदि) कार्यो को उठा लेते है, जिसका कि निर्वाह करना उनकी शक्ति के बाहर होता है। या फिर वे अपने अति सयानेपन के कारण पाठशाला की शिक्षण-पद्धति को ही अस्त-व्यस्त कर डालते है। वे अपने बालको और बालिकाओ को व्यावहारिक शिक्षा दिलाने के लिए विविध उपाय और बहुत धन खर्च करते है। परन्तु वे उन्हे धार्मिक शिक्षा दिलाने के लिए या धर्म शिक्षा से विमुख बच्चो के लिए कुछ उपाय नही कर पाते है। इसके लिए उन्हे थोडा-सा भी अर्थ व्यय भारी पडता है। कभी सन्तो की अत्यधिक प्रेरणासे पाठशालाएँ प्रारम्भ की जाती है। परन्तु सन्तो के पीठ फेरते ही वे पाठशालाएँ बद हो जाती है। गुजरात मे जैन पाठशालाएँ व्यवस्थित रूप से कैसे चल पाती है, इस विषय मे मालवी बन्धुओ को उनसे बहुत कुछ सीखने जैसा है। सम्प्रदाय के मुखियाओ को प्रत्येक ग्राम मे पाठशाला का सुचारु रूप से सञ्चालन के लिए योग्य कार्य करना चाहिए।

स्वाध्यायि मण्डल–बडो मे धर्म प्रचार का साधन स्वाध्यायि-मण्डल है। श्रावक और श्राविका नियमित स्वाध्याय करने के लिए स्वाध्यायि-मण्डल की स्थापना कर सकते है। अपने स्थानीय धर्म स्थान मे योग्य धर्मग्रन्थालय हो तो स्वाध्याय मे गति आ सकती है। स्वाध्यायि-मण्डल के सदस्यो को नियमित रूप से कुछ न कुछ सामूहिक स्वाध्याय करते रहना चाहिए। पर्वतिथियो या योग्य समय मे सामूहिक धर्म-चर्चा आदि प्रसगो की योजना होती रहे तो बहुत ही अच्छा रहता है।

शिक्षण-शिबर–विद्यार्थियो मे धर्मशिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए, अभी-अभी शिक्षण शिविर की नई प्रणाली प्रारम्भ हुई है। इसके माध्यम से ज्ञान और धर्म की आराधना की शिक्षा दी जाती है और क्रियात्मक रूप से धर्म-साधना भी कराई जाती है। शिक्षण-शिविरो का काल प्राय ग्रीष्मावकाश रहता है।

बाल मण्डल–बच्चो मे बचपन से ही धर्म-सस्कार पडे, धर्मक्रिया मे रुचि जागृत हो, सघ के कार्यो मे उत्साह पैदा हो, पारस्परिक सहयोग की वृत्ति जागे, धर्म ग्रन्थो को पढने मे रुचि उत्पन्न हो आदि कार्यो के हेतु बालमण्डलो की स्थापना की जाती है। यदि बडे (सघ के वृद्ध और युवक सदस्य) बाल-मण्डलो के प्रति ध्यान दे तो सहज मे ही सघ के लिए बहुत लाभ का कार्य कर सकते है। और भी उन्नति के उचित उपाय विचक्षण बुद्धिमान खोज सकते हैं। हम अवनति के कारणो को छोडे और उन्नति के उपायो को अपनाएँ-इसीमे इतिहास पढ़ने की सार्थकता है।

उपसंहार

सम्प्रदाय और धर्म परस्पर विरोधी नही है। अधिकाश सम्प्रदाएँ धर्म के प्रचार और उत्थान के लिए ही उत्पन्न हुई है। इसी दृष्टि से इस अध्याय मे सम्प्रदाय के पतन और उत्थान के कारणो के विषय मे विचार किया है और प्रसगवशात् जातीय पतन-उत्थान के कारणो का भी यत्किञ्चित् उल्लेख हुआ है। क्योकि ओसवाल आदि जातियो का उद्भव अमुक गच्छो से ही हुआ है और वह भी धर्म-आराधना के प्रेरणा से ही। अत सम्प्रदायो के पतन या उत्थान के कारण धर्म मे पतन और उत्थान से जुडे हुए हैं। यह बात ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो जाती है। अत, इन विचारो मे एक यही मगल-कामना है, कि—साधु, साध्वियाँ, उपासक और उपासिकाएँ, पतन के कारणो से दूर होकर, उत्थान के कारणो से दूर होकर, उत्थान के कारणो का सेवन करके, सम्यग् ज्ञान, दर्शन, और चारित्र से सम्पन्न बने और सम्यक् आराधना से आत्मशुद्धि के साथ-साथ धर्म की उज्ज्वल यश पताका जन-गगनाङ्गण मे फहराएँ।

परिशिष्ट

आर्य महागिरी के बाद आर्य सुहस्ति दसवें युग-प्रधान हुए। वी नि २४५ युगप्रधान पद। वी नि २९१ मे देहान्त[14]

आर्य सुहस्ति के समय मे आर्य महागिरि के दो शिष्यो (१) आर्य उत्तर और आर्य बलिस्सह से 'उत्तर बलिस्सह' नाम का गण प्रारम्भ हुआ जिसकी (१) कोसबिआ, (२) सुत्तिवत्तिया, (३) कोडविणी और (४) चदनागरी-ये चार शाखाए हुई और क्षुल्लक स्थविर रोहगुप्त से तेरासिय-मत चला।[15]

आपके समय मे अवन्ति की निवासिनी भद्रा के पुत्र 'ऐवन्तिक सुकुमाल' ने नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुनकर, आपके पास दीक्षा ली और कथारवन मे ध्यान करते हुए, सियालनी के उपसर्ग से मृत्यु पाकर नलिनीगुल्म मे देवत्व पाया[16]

मौर्यवंशी कुणाल के पुत्र और उज्जयिनी के स्वामी सम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति से प्रतिबोध प्राप्त हुआ। वह जैन बना। उसने जैन धर्म के प्रचार के लिए जिन-मूर्तियो का खूब प्रसार किया।[17] वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दि के अन्त मे जिनप्रतिमा धर्म के अवलम्बन के रूप मे गृहीत हुई और तीसरी शताब्दि के अन्त मे प्रसार पाई।[18]

(१)

संक्षिप्त पट्टावली

भरतक्षेत्र के इस अवसर्पिणी के 'सुषम सुषम' नामक प्रथम आरक, 'सुषम' नामक द्वितीय आरक और 'सुषमदुषम' नामक तृतीय आरक का अधिकांश काल व्यतीत हो जाने के बाद भोग-भूमि के काल मे अव्यवस्था उत्पन्न होने लगी। काल के परिवर्तन के कारण कई समस्याएँ उत्पन्न होने लगी। उन समस्याओ का समाधान खोजने वाले और उस काल (भोगभूमि और कर्मभूमि के सन्धिकाल) के अनुकूल बनने की शिक्षा देनेवाले चतुर पुरुष 'कुलकर' कहलाये। अन्तिम कुलकर 'नाभिराय' या 'नाभिदेव' की पत्नी 'मरुदेवा' के गर्भ से प्रथम तीर्थङ्कर 'ऋषभदेव' प्रभु का जन्म हुआ। उन्होने अवसर-प्राप्त कर्त्तव्य के अनुसार कर्मभूमि से सम्बन्धित व्यवहार, कला आदि की शिक्षा देकर मानव-समूह को व्यवस्थित रूप दिया और श्रमरूपी कल्पवृक्ष का उपयोग सिखलाया। फिर अपनी पिछली वय मे लोकोत्तर कल्पवृक्ष धर्म का दान दिया और तीसरे आरे के तीन वर्ष और कुछ मास शेष रहने पर, भगवान् ऋषभदेवजी निर्वाण को प्राप्त हुए। आधे चौथे आरे जितने कालतक भगवान् ऋषभदेव प्रभु का धर्मशासन प्रवर्तमान रहा। शेष आधे चौथे आरे मे तेईस तीर्थङ्कर हुए और बाईस तीर्थङ्करो का धर्मशासन प्रवृत्त रहा। बीच मे कुछ काल तक तीर्थ का विच्छेद भी हो गया। अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर देव का धर्मशासन (तीर्थ) इस पञ्चमकाल मे चल रहा है।

भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण के लगभग २५० वर्ष बाद भगवान् महावीर को निर्वाण-लाभ हुआ। भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे और नव गण थे। भगवान् के निर्वाण के पूर्व ही नौ गणधर अपना-अपना गण पञ्चम गणधर आर्य सुधर्म स्वामी को सौंप कर निर्वाण को प्राप्त हो गये थे। भगवान् के निर्वाण के समय दो गणधर-आर्य इन्द्रभूतिजी गौतम और आर्य सुधर्मस्वामी विद्यमान थे। भगवान् के निर्वाण के

पश्चात् तत्काल ही गौतमप्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अतः भगवान् महावीर के निर्देशानुसार आर्य सुधर्मस्वामी चरम तीर्थङ्कर की परम्परा मे प्रथम आचार्य अर्थात् युगप्रधान-पुरुष हुए।

चौथे आरे के तीन वर्ष और साढे आठ मास शेष रहने पर, कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि पूर्ण होते-होते भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए और बाद मे प्रात काल मे इद्रभूतिजी को केवल ज्ञान-प्राप्ति हुई। उसी दिन आर्य सुधर्म गणधर को युगप्रधान पद दिया गया।

वीरनिर्वाण के पहले वर्ष मे ५२६ पुरुष-स्त्रियो के सग आर्य जम्बू राजगृह मे दीक्षित हुए।

वीर निर्वाण के पहले या दूसरे वर्ष आर्य जम्बू को राजगृह मे द्वादशाङ्गी की वाचना प्राप्त हुई।

वीर निर्वाण के बारह वर्ष बाद आर्य इन्द्रभूति केवली[1] (गौतम स्वामी) को निर्वाण और सुधर्मस्वामी को केवलज्ञान।

वी नि के वीस वर्ष बाद आर्य जम्बू को युगप्रधान[2] पद देने के बाद आर्य सुधर्मस्वामी को[3] निर्वाण-प्राप्ति राजगृह मे। उसी वर्ष आर्य जम्बू को केवलज्ञान की प्राप्ति।

---

[1] जन्म ग्राम- गुब्बर'। पिता वसुभूति। माता पृथ्वी। ५० वर्ष की आयु मे दीक्षा ३० वप सामान्य साधुत्व। १२ वर्ष केवली पर्याय। सर्वायु ९२ वर्ष।

[2] कुछ पट्टावलियो मे वी नि १२ मे आर्य जम्बू को और वी नि २० मे आर्य प्रभव को युग प्रधानपद की प्राप्ति लिखी है। वह 'केवली आचार्य नहीं हो सकते है'—इस बात को दृष्टि मे रखते हुए लिखा गया है। पर आचार्य को केवल ज्ञान होने के बाद उनके प्रमुख शिष्य भावी युगप्रधान के रूप मे सघ-व्यवस्था सम्हालते है और उन्हे युगप्रधानपद बाद मे ही प्राप्त होता है।

[3] आर्यसुधर्म-जन्मस्थान-कोल्लाग सन्निवेश। पिता-विप्र धम्मिल, गोत्र अग्निवेशायण। माता भद्दिला, ५० वप की आयु मे दीक्षा, ४२ वर्ष साम ‍चारित्र पर्याय, ८ वप केवल पर्याय, सर्वायु १०० वर्ष।

वी नि के ६४ वर्ष बाद जम्बू स्वामी[4] का मथुरा में निर्वाण, दश या बारह बोलो का विच्छेद और आर्य प्रभवस्वामी को युगप्रधानपद की प्राप्ति।

वी नि ६५ वे वर्ष आर्य प्रभव स्वामी ने राजगृह-निवासी ब्राह्मण 'सिज्जभव' को प्रव्रज्या प्रदान की।

वी नि ७५ वर्ष बाद आर्य सिज्जभव को युगप्रधान पद प्रदान करके आर्य प्रभव स्वामी[5] स्वर्गस्थ हुए।

आर्य सिज्जभव चतुर्थ युगप्रधान और द्वितीय श्रुतकेवली आचार्य थे। इन्होने अपने शासनकाल मे अपने पुत्र 'मनक' को दीक्षित करके, उनके निमित्त 'दसवेयालिय' सूत्र की रचना की।

वी नि ९८ सिज्जभव स्वामी स्वर्गस्थ हुए[6]।

पञ्चम युगप्रधान आर्य यशोभद्र हुए (तृतीय श्रुतकेवली)

वी नि १४८ आर्य यशोभद्र स्वर्गस्थ हुए।[7]

यशोभद्र स्वामी ने दो उत्तराधिकारी नियुक्त किये—

(१) आर्य सभूति और (२) आर्य भद्रबाहु। ये क्रमश चतुर्थ और पञ्चम श्रुतकेवली हुए।

---

[4] आर्य जम्बू–राजगृह निवासी। पिता ऋषभदत्त। गोत्र काश्यप। माता धारिणी। १६ वर्ष गृह पर्याय। ९९ करोड सोनैया, विपुल ऋद्धि त्याग कर दीक्षित। २० वर्ष सामान्य चारित्र पर्याय। ४४ वर्ष केवलपर्याय। सर्वायु ८० वर्ष।

[5] आर्य प्रभव (तृतीय युग प्रधान)-विन्ध्य श्रेणि मे स्थित जयपुर नगर के निवासी। गोत्र कात्यायन। पिता विन्ध्यराज जयसेन। ३० वर्ष गृहवास (चोर-पत्नी के प्रतिपात बने)। ६४ वर्ष सामान्य प्रव्रज्या काल।
११ वर्ष युगप्रधान काल। सर्वायु १०५ वर्ष।

[6] आर्य सिज्जभव–राजगृह नगर। वात्स्यायन गोत्र। २८ वर्ष की आयु मे दीक्षित। ११ वर्ष सामान्य प्रव्रज्या। २३ वर्ष युग प्रधान। सर्वायु ६२ वर्ष।

[7] आर्य यशोभद्र–गोत्र तुगियायन। २२ वर्ष की आयु मे दीक्षित। १४ वर्ष चारित्र पर्याय। ५० वर्ष युगप्रधान पर्याय। सर्वायु ८६ वर्ष।

वी नि १५६ आर्य सभूति[8] स्वर्गस्थ हुए और आर्यभद्रबाहु का[9] युग प्रधानकाल प्रारम्भ हुआ।

भद्रबाहुस्वामी के समय मे नदवश को मगध के शासन से हटाकर चन्द्रगुप्तमौर्य ने मौर्यवश का शासन स्थापित किया। चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्नो का अर्थ भद्रबाहु स्वामी ने बताया-ऐसी अनुश्रुति है।

वी नि १७० भद्रबाहुस्वामी स्वर्गस्थ हुए और
स्थूलिभद्रस्वामी युगप्रधान हुए।

नदवशी राजा के मत्री सकडाल (ब्राह्मण) के स्थूलिभद्रजी पुत्र थे और वे कोशावेश्या पर अनुरक्त थे। वे वेश्या के यही रहते थे। अपने पिता की हत्या का वृत्तान्त जानकर, उन्हे वैराग्य आ गया और वे आर्य सभूति के पास प्रव्रजित हो गये। उनकी यक्षा आदि सात बहिनो ने भी चारित्र ग्रहण किया और अन्त मे छोटे भाई 'श्रीयक' ने भी यही मार्ग अगीकार किया। भद्रबाहुस्वामी के स्वर्गस्थ होने से पूर्व भयङ्कर दुष्काल पडा। वाद मे दुष्काल मे विस्मृत श्रुत को व्यवस्थित करने के लिए पाटलीपुत्र मे श्रुतवाचना हुई। ग्यारह अग व्यवस्थित रूप से स्मरण मे आ गये। पर दृष्टिवाद स्मरण मे न आया। अत पॉचसौ मुनि 'दृष्टिवाद' का अध्ययन करने के लिए भद्रवाहुस्वामी के पास गये। मात्र स्थूलिभद्रजी सरहस्य दश पूर्वो का अध्ययन कर सके और सूत्रत चार पूर्वो का। भद्रवाहु स्वामी के देहान्त के साथ ही चार पूर्वो का रहस्य लुप्त हो गया। भद्रवाहु स्वामी अन्तिम श्रुतकेवली थे।

वी नि १७० के पश्चात् आर्य भद्रवाहुस्वामी के शिष्य काश्यप गोत्रीय थेर गोदास से 'गोदासगण' प्रारम्भ हुआ, जो तामलित्तिया, '

---

[8] आर्य सभूति-माढर गोत्र। ४२ वर्ष गृहपर्याय। ४० वर्ष साधु पर्याय ८ वर्ष युग प्रधान-पर्याय। सर्वायु ९० वर्ष।

[9] आर्य भद्रवाहु-प्राचीन गोत्र। ४५ वर्ष गृह पर्याय। ९ वर्ष साधु पर्याय। ८ वर्ष सयुक्त युगप्रधानत्व काल। १४ वर्ष युगप्रधान पर्याय। सर्वायु ७६ वर्ष। पञ्चम श्रुतकेवली आचार्य।

कोडीवरिसिया, पोडवद्धणिया और दासीखव्वडिया नामकी चार शाखाओ मे विभाजित हो गया।[10]

आर्य भद्रवाहु स्वामी के वाद आर्य स्थूलिभद्रजी ने कुशलता मे संघ का नेतृत्व किया। आपने ४५ वर्ष तक युगप्रधान पदको सुशोभित किया।

आपकी जीवन-लीला से सम्वधित वर्षक्रम—वी नि. ११६ वर्ष वीतने पर जन्म।

वी नि १४६ दीक्षा।[11] वी. नि. १७० युगप्रधान-पद-प्राप्ति। वी नि २१५ स्वर्गगमन।[12]

स्थूलिभद्र स्वामी के देहान्त के वाद ४ पूर्वों (११, १२, १३ और १४ वे) का तथा प्रथम सस्थान और प्रथम सहनन का विच्छेद हो गया-ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

स्थूलिभद्र स्वामी के वाद उनके शिष्य महागिरी नववे युगप्रधान हुए। आप वी नि १७५ मे तीस वर्ष की आयु मे दीक्षित हुए।

वी नि २१५ युगप्रधान। वी नि २४५ स्वर्गगमन।[13]

---

[10]कल्पसूत्र—थेरावली।

[11]जैनधर्मनो प्राचीन सक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ७० पर वी नि १५० यह स्थूलिभद्रजी की दीक्षा सवत् के विषय मे दूसरा मत दिया है।

[12]स्थूलिभद्रजी—जन्म स्थान—पाटलीपुत्र। पिता—शकडाल मन्त्री। ३० वर्ष तक गृह पर्याय। २४ वर्ष तक चारित्रपर्याय अर्थात् सामान्य साधुत्वकाल। ४५ वर्ष तक आचार्य रूप मे रहे। सर्वायु ९९ वर्ष। चारित्र पर्याय का कुल काल ६९ वर्ष। अनशन से वी नि २१९ स्वर्गगमन। आपके दो प्रधान शिष्य हुए—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति—यह कल्पसूत्र की थेरावली मे उल्लेख है। परन्तु यह वात विचारणीय है।

[13]आर्य महागिरी—एलापत्य गोत्र। ३० वर्ष गृहवास। ४० वर्ष साधुपर्याय ३० वर्ष आचार्यपद। सर्वायु १०० वर्ष। आपके प्रसिद्ध शिष्य हुए।

वी नि १५६ आर्य सभूति[8] स्वर्गस्थ हुए और आर्यभद्रबाहु का[9] युग प्रधानकाल प्रारम्भ हुआ।

भद्रबाहुस्वामी के समय मे नदवश को मगध के शासन से हटाकर चन्द्रगुप्तमौर्य ने मौर्यवश का शासन स्थापित किया। चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्नो का अर्थ भद्रबाहु स्वामी ने बताया-ऐसी अनुश्रुति है।

वी नि १७० भद्रबाहुस्वामी स्वर्गस्थ हुए और
स्थूलिभद्रस्वामी युगप्रधान हुए।

नदवशी राजा के मत्री सकडाल (ब्राह्मण) के स्थूलिभद्रजी पुत्र थे और वे कोशावेश्या पर अनुरक्त थे। वे वेश्या के यही रहते थे। अपने पिता की हत्या का वृत्तान्त जानकर, उन्हे वैराग्य आ गया और वे आर्य सभूति के पास प्रव्रजित हो गये। उनकी यक्षा आदि सात बहिनो ने भी चारित्र ग्रहण किया और अन्त मे छोटे भाई 'श्रीयक' ने भी यही मार्ग अगीकार किया। भद्रबाहुस्वामी के स्वर्गस्थ होने से पूर्व भयङ्कर दुष्काल पडा। बाद मे दुष्काल मे विस्मृत श्रुत को व्यवस्थित करने के लिए पाटलीपुत्र मे श्रुतवाचना हुई। ग्यारह अग व्यवस्थित रूप से स्मरण मे आ गये। पर दृष्टिवाद स्मरण मे न आया। अत पाँचसौ मुनि 'दृष्टिवाद' का अध्ययन करने के लिए भद्रबाहुस्वामी के पास गये। मात्र स्थूलिभद्रजी सरहस्य दश पूर्वो का अध्ययन कर सके और सूत्रत चार पूर्वो का। भद्रबाहु स्वामी के देहान्त के साथ ही चार पूर्वो का रहस्य लुप्त हो गया। भद्रबाहु स्वामी अन्तिम श्रुतकेवली थे।

वी नि १७० के पश्चात् आर्य भद्रबाहुस्वामी के शिष्य काश्यप गोत्रीय थेर गोदास से 'गोदासगण' प्रारम्भ हुआ, जो तामलित्तिया,

---

[8] आर्य सभूति-माढर गोत्र। ४२ वर्ष गृहपर्याय। ४० वर्ष साधु पर्याय ८ वर्ष युग प्रधान-पर्याय। सर्वायु ९० वर्ष।

[9] आर्य भद्रबाहु-प्राचीन गोत्र। ४५ वर्ष गृह पर्याय। १ वर्ष साधु पर्याय। ८ वर्ष सयुक्त युगप्रधानत्व काल। १४ वर्ष युगप्रधान पर्याय। सर्वायु ७६ वर्ष। पञ्चम श्रुतकेवली आचार्य।

कोडीवरिसिया, पोडवद्धणिया और दासीखव्वडिया नामकी चार शाखाओ मे विभाजित हो गया।[10]

आर्य भद्रवाहु स्वामी के वाद आर्य स्थूलिभद्रजी ने कुशलता से सघ का नेतृत्व किया। आपने ४५ वर्ष तक युगप्रधान पदको सुशोभित किया।

आपकी जीवन-लीला से सम्वधित वर्पक्रम—वी नि. ११६ वर्प वीतने पर जन्म।

वी नि १४६ दीक्षा।[11] वी नि १७० युगप्रधान-पद-प्राप्ति। वी नि २१५ स्वर्गगमन।[12]

स्थूलिभद्र स्वामी के देहान्त के वाद ४ पूर्वो (११, १२, १३ और १४ वे) का तथा प्रथम सस्थान और प्रथम सहनन का विच्छेद हो गया-ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

स्थूलिभद्र स्वामी के वाद उनके शिष्य महागिरी नववे युगप्रधान हुए। आप वी नि १७५ मे तीस वर्प की आयु मे दीक्षित हुए।

वी नि २१५ युगप्रधान। वी नि २४५ स्वर्गगमन।[13]

---

[10]कल्पसूत्र—थेरावली।

[11]जैनधर्मनो प्राचीन सक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ७० पर वी नि १५० यह स्थूलिभद्रजी की दीक्षा सवत् के विषय मे दूसरा मत दिया है।

[12]स्थूलिभद्रजी—जन्म स्थान—पाटलीपुत्र। पिता—शकडाल मन्त्री। ३० वर्ष तक गृह पर्याय। २४ वर्ष तक चारित्रपर्याय अर्थात् सामान्य साधुत्वकाल। ४५ वर्ष तक आचार्य रूप मे रहे। सर्वायु ९९ वर्ष। चारित्र पर्याय का कुल काल ६९ वर्ष। अन्यमत से वी नि २१९ स्वर्गगमन। आपके दो प्रधान शिष्य थे—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति—यह कल्पसूत्र की थेरावली मे उल्लेख है। परन्तु यह वात विचारणीय है।

[13]आर्य महागिरी—एलापत्य गोत्र। ३० वर्ष गृहवास। ४० वर्ष सामान्य व्रत ३० वर्ष युगप्रधानपद। सर्वायु १०० वर्ष। आठवें प्रसिद्ध स्थविर हुए।

आर्य महागिरी के बाद आर्य सुहस्ति दसवे युग-प्रधान हुए। वी नि २४५ युगप्रधान पद। वी नि २९१ मे देहान्त[14]

आर्य सुहस्ति के समय मे आर्य महागिरि के दो शिष्यो (१) आर्य उत्तर और आर्य बलिस्सह से 'उत्तर बलिस्सह' नाम का गण प्रारम्भ हुआ जिसकी (१) कोसबिआ, (२) सुत्तिवत्तिया, (३) कोडविणी और (४) चदनागरी-ये चार शाखाए हुई और क्षुल्लक स्थविर रोहगुप्त से तेरासिय-मत चला।[15]

आपके समय मे अवन्ति की निवासिनी भद्रा के पुत्र 'ऐवन्तिक सुकुमाल' ने नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुनकर, आपके पास दीक्षा ली और कथारवन मे ध्यान करते हुए, सियालनी के उपसर्ग से मृत्यु पाकर नलिनीगुल्म मे देवत्व पाया[16]

मौर्यवशी कुणाल के पुत्र और उज्जयिनी के स्वामी सम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति से प्रतिबोध प्राप्त हुआ। वह जैन बना। उसने जैन धर्म के प्रचार के लिए जिन-मूर्तियो का खूब प्रसार किया।[17] वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दि के अन्त मे जिनप्रतिमा धर्म के अवलम्बन के रूप मे गृहीत हुई और तीसरी शताब्दि के अन्त मे प्रसार पाई।[18]

आर्य सुहस्ति के बारह गणधर शिष्य थे। इनमे से सात शिष्यो की छह गण-परम्पराएँ चली। (१) स्थविर आर्य रोहण काश्यप से चार शाखाओ और सात कुलो वाला 'उद्देहगण', (२) स्थविर श्री गुप्त हारित से चार शाखाओ और सात कुलो वाला 'चारगण', (३) स्थविर भद्रयश

---

[14]आर्य सुहस्ति-वाशिष्ठ गोत्र। ३० वर्ष गृहवास। २४ वर्ष साधु पर्याय। ४६ वर्ष आचार्यपद। सर्वायु १०० वर्ष। आपके बारह शिष्य बारह गण के धारक थे।

[15]कल्पसूत्र थेरावली।

[16]जैनधर्मनो सक्षिप्त प्राचीन इतिहास।

भारद्वाजसे चार शाखाओं और तीन कुलों वाला 'उडुवालिय' गण, (४) स्थविर कामर्द्धि कोडाल से चार शाखाओ और चार कुलोवाला 'वेसवाडिअ' गण, (५) काकदी से निकलकर दीक्षित स्थविर ऋपिगुप्त वाशिष्ठ से चार शाखाओ और तीन कुलोवाला 'मानवगण' और (६) काकदिक स्थविर सुस्थित और सुप्रतिवद्ध वग्घावच्च से चार शाखाओ और चार कुलो वाला 'कोटियगण' चला ।[19]

आर्य सुहस्ति ने आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिवद्ध को युगप्रधान पद प्रदान किया। इन दोनो का युगप्रधानकाल ४८ वर्ष रहा। (यह विचारणीय है)

वी नि ३३९ के लगभग आर्य सुप्रतिवद्ध का देहान्त हुआ ।[20]

आर्य सुहस्ति के वाद विभिन्न गणो के उदय के कारण विभिन्न 'थेरावलिया' प्राप्त होती हैं। इनके वाद क्रमश. निम्नलिखित आचार्य हुए ।

(१३) आर्य इन्द्रदिन्न, (१४) आर्य दिन्नसूरि, (१५) आर्य सिहगिरि, (१६) आर्य वज्रस्वामी (१७) वज्रसेन सूरि ।[21]

सुप्रतिवद्धाचार्य के समय मे निगोद के श्रेष्ठ व्याख्याता और प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता कालिकाचार्य प्रथम (श्यामाचार्य) हुए ।[22]

आर्य इन्द्रदिन्न का वी नि ४२१ मे स्वर्गवास।

वी नि ४५७ स्कदिलाचार्य ने मथुरा मे दूसरी वार सूत्रो की वाचना की ।[23] आर्य दिन्नसूरि के समय मे उज्जैनी के शासक 'गर्दभ' का, अपनी वहिन साध्वी सरस्वती के निमित्त से पराभव करने वाले आर्य कालक हुए। शको का चार वर्ष तक उज्जयिनी पर राज्य रहा। वी नि ४७० मे विक्रमादित्य राजा ने शको को हराकर, विक्रम सवत्

---

[19] कल्पसूत्र थेरावली ।

[20] जैनधर्मनो प्राचीन सक्षिप्त इतिहास ।

[21] पट्टावली-प्रवन्ध सग्रह (पट्टावली प्रवन्ध) और कल्पसूत्र थेरावली ।

[22] जै प्रा स इतिहास ।

[23] जै प्राचीन सक्षिप्त इतिहास पृ. ९१ ।

आर्य महागिरी के बाद आर्य सुहस्ति दसवें युग-प्रधान हुए। वी नि २४५ युगप्रधान पद। वी नि २९१ मे देहान्त[14]

आर्य सुहस्ति के समय मे आर्य महागिरि के दो शिष्यो (१) आर्य उत्तर और आर्य बलिस्सह से 'उत्तर बलिस्सह' नाम का गण प्रारम्भ हुआ जिसकी (१) कोसबिआ, (२) सुत्तिवत्तिया, (३) कोडविणी और (४) चदनागरी-ये चार शाखाए हुई और क्षुल्लक स्थविर रोहगुप्त से तेरासिय-मत चला।[15]

आपके समय मे अवन्ति की निवासिनी भद्रा के पुत्र 'ऐवन्तिक सुकुमाल' ने नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुनकर, आपके पास दीक्षा ली और कथारवन मे ध्यान करते हुए, सियालनी के उपसर्ग से मृत्यु पाकर नलिनीगुल्म मे देवत्व पाया[16]

मौर्यवशी कुणाल के पुत्र और उज्जयिनी के स्वामी सम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति से प्रतिवोध प्राप्त हुआ। वह जैन बना। उसने जैन धर्म के प्रचार के लिए जिन-मूर्तियो का खूब प्रसार किया।[17] वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दि के अन्त मे जिनप्रतिमा धर्म के अवलम्बन के रूप मे गृहीत हुई और तीसरी शताब्दि के अन्त मे प्रसार पाई।[18]

आर्य सुहस्ति के वारह गणधर शिष्य थे। इनमे से सात शिष्यो की छह गण-परम्पराएँ चली (१) स्थविर आर्य रोहण काश्यप से चार शाखाओ और सात कुलो वाला 'उद्देहगण', (२) स्थविर श्री गुप्त हारित से चार शाखाओ और सात कुलो वाला 'चारगण', (३) स्थविर भद्रयश

---

[14]आर्य सुहस्ति-वाशिष्ठ गोत्र। ३० वर्ष गृहवास। २४ वर्ष साधु पर्याय। ४६ वर्ष आचार्यपद। सर्वायु १०० वर्ष। आपके वारह शिष्य वारह गण के धारक थे।

[15]कल्पसूत्र थेरावली।

[16]जैनधर्मनो संक्षिप्त प्राचीन इतिहास।

[17] " " " "

[18]मालवा—पट्टावली

भारद्वाजसे चार शाखाओ और तीन कुलों वाला 'उडुवालिय' गण, (४) स्थविर कामर्द्धि कोडाल से चार शाखाओ और चार कुलोवाला 'वेसवाडिअ' गण, (५) काकदी से निकलकर दीक्षित स्थविर ऋषिगुप्त वाशिष्ठ से चार शाखाओ और तीन कुलोवाला 'मानवगण' और (६) काकदिक स्थविर सुस्थित और सुप्रतिवद्ध वग्घावच्च से चार शाखाओ और चार कुलो वाला 'कोटियगण' चला ।[19]

आर्य सुहस्ति ने आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिवद्ध को युगप्रधान पद प्रदान किया। इन दोनो का युगप्रधानकाल ४८ वर्ष रहा। (यह विचारणीय है)

वी नि ३३९ के लगभग आर्य सुप्रतिवद्ध का देहान्त हुआ ।[20]

आर्य सुहस्ति के वाद विभिन्न गणो के उदय के कारण विभिन्न 'थेरावलिया' प्राप्त होती हैं। इनके वाद क्रमश निम्नलिखित आचार्य हुए ।

(१३) आर्य इन्द्रदिन्न, (१४) आर्य दिन्नसूरि, (१५) आर्य सिंहगिरि, (१६) आर्य वज्रस्वामी (१७) वज्रसेन सूरि ।[21]

सुप्रतिवद्धाचार्य के समय मे निगोद के श्रेष्ठ व्याख्याता और प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता कालिकाचार्य प्रथम (श्यामाचार्य) हुए ।[22]

आर्य इन्द्रदिन्न का वी नि ४२१ मे स्वर्गवास।

वी नि ४५७ स्कंदिलाचार्य ने मथुरा मे दूसरी वार सूत्रो की वाचना की।[23] आर्य दिन्नसूरि के समय में उज्जैनी के शासक 'गद्दभ' का, अपनी वहिन साध्वी सरस्वती के निमित्त से पराभव करने वाले आर्य कालक हुए। शको का चार वर्ष तक उज्जयिनी पर राज्य रहा। वी नि ४७० में विक्रमादित्य राजा ने शको को हराकर, विक्रम संवत्

---

[19] कल्पसूत्र थेरावली।

[20] जैनधर्मनो प्राचीन संक्षिप्त इतिहास।

[21] पट्टावली-प्रबन्ध संग्रह (पट्टावली प्रबन्ध) और कल्पसूत्र थेरावली।

[22] जै. प्रा. स. इतिहास।

[23] जै. प्राचीन संक्षिप्त इतिहास पृ ९१।

आर्य महागिरी के बाद आर्य सुहस्ति दसवें युग-प्रधान हुए। वी नि २४५ युगप्रधान पद। वी नि २९१ मे देहान्त[14]

आर्य सुहस्ति के समय मे आर्य महागिरि के दो शिष्यो (१) आर्य उत्तर और आर्य बलिस्सह से 'उत्तर बलिस्सह' नाम का गण प्रारम्भ हुआ जिसकी (१) कोसबिआ, (२) सुत्तिवत्तिया, (३) कोडविणी और (४) चदनागरी-ये चार शाखाए हुई और क्षुल्लक स्थविर रोहगुप्त से तेरासिय-मत चला।[15]

आपके समय मे अवन्ति की निवासिनी भद्रा के पुत्र 'ऐवन्तिक सुकुमाल' ने नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुनकर, आपके पास दीक्षा ली और कथारवन मे ध्यान करते हुए, सियालनी के उपसर्ग से मृत्यु पाकर नलिनीगुल्म मे देवत्व पाया[16]

मौर्यवशी कुणाल के पुत्र और उज्जयिनी के स्वामी सम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति से प्रतिवोध प्राप्त हुआ। वह जैन बना। उसने जैन धर्म के प्रचार के लिए जिन-मूर्तियो का खूब प्रसार किया।[17] वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दि के अन्त में जिनप्रतिमा धर्म के अवलम्बन के रूप मे गृहीत हुई और तीसरी शताब्दि के अन्त मे प्रसार पाई।[18]

आर्य सुहस्ति के वारह गणधर शिष्य थे। इनमे से सात शिष्यो की छह गण-परम्पराएँ चली। (१) स्थविर आर्य रोहण काश्यप से चार शाखाओ और सात कुलो वाला 'उद्देहगण', (२) स्थविर श्री गुप्त हारित से चार शाखाओ और सात कुलो वाला 'चारगण', (३) स्थविर भद्रयश

---

[14]आर्य सुहस्ति-वाशिष्ठ गोत्र। ३० वष गृहवास। २४ वर्ष साधु पर्याय। ४६ वष आचार्यपद। सर्वायु १०० वर्ष। आपके वारह शिष्य वारह गण के धारक थे।

[15]कल्पसूत्र थेरावली।

[16]जैनधर्मनो संक्षिप्त प्राचीन इतिहास।

[17] " " " "

[18]मालवा—पट्टावली

भारद्वाजसे चार शाखाओं और तीन कुलों वाला 'उडुवालिय' गण, (४) स्थविर कामर्द्धि कोडाल से चार शाखाओ और चार कुलोवाला 'वेसवाडिअ' गण, (५) काकदी से निकलकर दीक्षित स्थविर ऋषिगुप्त वाशिष्ठ से चार शाखाओ और तीन कुलोवाला 'मानवगण' और (६) काकदिक स्थविर सुस्थित और सुप्रतिवद्ध वग्घावच्च से चार शाखाओ और चार कुलो वाला 'कोटियगण' चला।[19]

आर्य सुहस्ति ने आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिवद्ध को युगप्रधान पद प्रदान किया। इन दोनो का युगप्रधानकाल ४८ वर्ष रहा। (यह विचारणीय है)

वी नि. ३३९ के लगभग आर्य सुप्रतिवद्ध का देहान्त हुआ।[20]

आर्य सुहस्ति के वाद विभिन्न गणो के उदय के कारण विभिन्न 'थेरावलिया' प्राप्त होती है। इनके वाद क्रमश निम्नलिखित आचार्य हुए।

(१३) आर्य इन्द्रदिन्न, (१४) आर्य दिन्नसूरि, (१५) आर्य सिहगिरि, (१६) आर्य वज्रस्वामी (१७) वज्रसेन सूरि।[21]

सुप्रतिवद्धाचार्य के समय मे निगोद के श्रेष्ठ व्याख्याता और प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता कालिकाचार्य प्रथम (श्यामाचार्य) हुए।[22]

आर्य इन्द्रदिन्न का वी नि ४२१ मे स्वर्गवास।

वी नि ८५७ स्कदिलाचार्य ने मथुरा मे दूसरी वार सूत्रो की वाचना की।[23] आर्य दिन्नसूरि के समय मे उज्जैनी के शासक 'गर्दभ' का, अपनी वहिन साध्वी सरस्वती के निमित्त से पराभव करने वाले आर्य कालक हुए। शको का चार वर्ष तक उज्जयिनी पर राज्य रहा। वी नि ४७० में विक्रमादित्य राजा ने शको को हराकर, विक्रम सवत्

---

[19] कल्पसूत्र थेरावली।

[20] जैनधर्मको प्राचीन संक्षिप्त इतिहास।

[21] पट्टावली-प्रबन्ध संग्रह (पट्टावली प्रबन्ध) और कल्पसूत्र थेरावली।

[22] जै. प्रा. स. इतिहास।

[23] जै. प्राचीन संक्षिप्त इतिहास पृ. ९१।

प्रारम्भ किया।[24] वी नि. ४७६, आर्य दिन्नसूरि का देहान्त हुआ। फिर आर्य सिंहगिरि आचार्य हुए। आर्य सिंहगिरि के चार शिष्य हुए-स्थविर धनगिरि, स्थविर आर्यवज्र, स्थविर आर्य समित और स्थविर अरिहदिन्न।[25]

अवन्ति के[26] धन्यश्रेष्ठि के पुत्र धनगिरि ने वैराग्यवासित हृदय वाले होते हुए भी पिता का वचन रखने के लिए सुनन्दा नाम की श्रेष्ठिपुत्री के साथ पाणिग्रहण किया और 'सुनन्दा' के गर्भवती होते ही वह अपने साले 'समित' के साथ, आर्यदिन्नसूरि से दीक्षित होकर, आर्य सिहगिरि के शिष्य वन गए।

सुनन्दा को पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम वज्र रखा गया। उसे 'दीक्षा' शव्द वार-वार सुनने से जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह निरन्तर रोने लगा। सुनन्दा घवडा गई। उसे रात-दिन उजागरे आदि के कष्ट के कारण शिशु पर अरुचि पैदा हो गई। तभी धनगिरि मुनि आदि का अपने गुरु के सग वहा पदार्पण हुआ। धनगिरि मुनि और समित मुनि गोचरी के लिए भ्रमण करते हुए सुनदा के यहाँ पहुँच गये। सुनदा ने उन्हे देखते ही कहा-'ले जाओ अपने वेटे को। मैं तो इससे तग आ गई।' अपने गुरु के सकेत को स्मरण करके, धनगिरि शिशु को ग्रहण करने के लिए तैयार हो गये। परन्तु सुनदा से वोले-'हमे बालक को दे देने के वाद, तुम्हे वह फिर नही मिलेगा।' सुनदा ने अरुचि से कहा-'भले न मिले।' मुनिने झोली फैला दी। वालक झोली मे आते ही चुप हो गया। श्रावक सघ के प्रमुख के पास शिशु वृद्धि पाने लगा। 'सुनदा' ने वालक को पाने के लिए राजा से शिकायत की। परन्तु वालक ने सुनदा के प्रयत्नो को विफल कर दिया। आठ वर्ष की आयु मे वे दीक्षित हुए। आपने दश पूर्वो का अध्ययन किया। आप महान् आचार्य हुए। स्मृति-दोष के निमित्त से अपना अन्तिम काल समीप जानकर, अनशन

---

[24] विक्रम राजा और उसके सवत्-प्रवर्तन के विषय मे ऐतिहासिको मे काफी मतभेद है।

किया। वी नि ५८४ मे आपका देहान्त हुआ ।[27]

आर्य वज्रस्वामी मे वयरी शाखा और आर्य समित से 'बभदीविया' शाखा का प्रवर्तन हुआ ।[28]

आर्य वज्रस्वामी के तीन शिष्य थे—स्थविर वज्रसेन, स्थविर पद्म और स्थविर रथ। इन तीनो से क्रमश नाइली, पउमा, और जयन्ति नामकी शाखाए निकली ।[29]

आर्य वज्रसेन को वी नि ५८४ मे युगप्रधान पद प्राप्त हुआ। वी नि ६२० मे आपका देहान्त हुआ ।[30]

आर्य वज्रसेन स्वामी के समय मे भयङ्कर दुष्काल पडा। किसी श्रेष्ठि के यहा अन्न के अन्दर विष मिलाने से रोकने पर, उस श्रेष्ठि के चार पुत्र शिष्य रूप मे प्राप्त हुए। उन चारो से (१) नागेन्द्र (२) चन्द्र (३) विद्याधर और (४) निर्वृत्ति-इन चार शाखाओ की प्रवृत्ति हुई। उस दुष्काल मे शुद्ध आहार की प्राप्ति के अभाव मे ७८४ साधुओ ने अनशन करके देह त्याग दिया।[31] आर्य वज्र के वाद दसवे पूर्व का विच्छेद हो गया।

वी नि ६०९, आर्य कृष्ण के शिष्य शिवभूति ने एकान्त दिगम्वरत्व का प्रतिपादन किया। अत उस समय से दिगम्बर मत का प्रादुर्भाव हुआ।

---

[27]वज्रस्वामी—गौतम गोत्र। धनगिरि पिता। सुनदा माता। ८ वर्ष की आयु मे दीक्षा। ४४ वष साधुपद और ३६ वर्ष आचार्यपद। सर्वायु ८८ वर्ष। जै प्रामणिक इतिहास मे १०८ वर्ष तक आचार्यपद और ११६ वर्ष की आयु बतलाई है।

[28]और [29]कल्पसूत्र, थेरावली।

[30]वज्रसेन स्वामी—कौशिक गोत्र। ३२ वर्ष या ९ वर्ष गृहवास। ५० या १६ वर्ष साधुपद। ३६ या ९३ वर्ष आचार्यपद। सर्वायु ११८ वर्ष। इससे भिन्न रूप मे १२८ वर्ष की आयु और ३ वर्ष आचार्यकाल का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

[31]मालवा और मरुधर पट्टावली।

मालवा-पट्टावली मे आर्य सुस्थित और आर्य सिहगिरि के नाम नही है। अत वज्रसेनाचार्य तक पन्द्रह युगप्रधान की गिनती हुई है। इसके आगे आचार्यो की नामावली इस प्रकार दी गई है—(१६) आर्य रोह (आर्य रथ) (१७) पसुगिरी (पुष्यगिरी), (१८) फल्गुमित्र स्वामी (१९) धरणीधर (धनगिरी) स्वामी, (२०) शिवभूतिस्वामी, (२१) आर्य भद्र स्वामी, (२२) आर्य नक्षत्र स्वामी, (२३) आर्य रक्षितस्वामी (आर्य रक्ष), (२४) आर्य नागस्वामी, (२५) जेहिल विष्णुस्वामी और (२६) आर्य सडिल।[32]

आर्य विष्णु और आर्य सडिल्ल के बीच के स्थविरो के नाम-(२७) आर्य कालक, (२८) आर्य सपलित और आर्य भद्र, (२९) आर्यवृद्ध, (३०) आर्य सघपालित, (३१) आर्य हस्ति, (३२) आर्य धर्म (३३) आर्य सिंह और (३४) आर्य धर्म। इनके वाद आर्य सडिल्ल का नाम है।

सत्ताईसवे युगप्रधान के रूप मे देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण का नाम आता है।[33] वी नि ९८० के लगभग आपने शास्त्रो को लिपिबद्ध करवाया। वस्तुत कई शास्त्र लिपिवद्ध तो पहले ही हो चुके थे। किन्तु आपने माथुरी और नागार्जुनीया वाचनाओ का अन्तर नोध करते हुए, समस्त शास्त्रो को लिपिवद्ध करके, सर्वमान्य सूत्रपाठो को ग्रन्थारूढ किया। आपके वाद पूर्वो का ज्ञान विच्छिन्न हो गया। वी नि १००० वर्ष के वाद साध्वाचार मे शिथिलता घर कर गई। पुराने गच्छ लुप्त होते जा रहे थे और

---

[32]यह नामावली कल्पसूत्रान्तर्गत थेरावली की जयन्ती शाखा से मिलती है। परन्तु यहाँ जेहिल और विष्णु इन दोनो स्थविरो का एक ही नाम माना है और आर्य शाण्डिल्य के पहले के नाम छोड दिये गये हैं। पट्टावली प्रवन्ध के युगप्रधानो मे १८ वे आर्य रोह और १९ वें आर्य नागेन्द्र तक नामावली जयन्तीशाखा के समान ही है। वस्तुत आर्य नाग के शिष्य जेहिल और जेहिल के शिष्य आर्य विष्णु थे। इनके वाद आठ स्थविरो के नाम और हैं और फिर आर्य सडिल्ल का नाम है। यह देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की गुर्वावली है और नन्दिसूत्र मे विभिन्न शाखाओं के युगप्रधानो की नामावली है।

[33]आर्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण 'जयन्तीशाखा' के स्थविर थे।

नये-नये गच्छ अस्तित्व मे आ रहे थे। अत आचार्यों के नामो की विभिन्न परम्पराएँ लिपिबद्ध हुई। उनमे से कई परम्पराएँ लुप्त हो गई है तो कई विशृ खल हो गई है।

मालवा—पट्टावली मे आये हुए विशेष उल्लेख—

वीर नि ९९२, विद्या, मत्र, लब्धिका विच्छेद।

वी नि ९९३, कालाकाचार्य ने चौथ की सवत्सरी की।

वी नि १००८, पौषधशाला बनाने की प्रथा चली।

वी नि १००९, पूर्वज्ञान का विच्छेद हुआ।

वी नि १०५५, हरिभद्राचार्य ने १४४४ वौद्धो को दग्ध किया (वस्तुत दग्ध करने का सकल्प किया) और १४४४ ग्रन्थो की रचना की।[34]

वी नि १२००, स्वाति आचार्य ने पूर्णिमा से चतुर्दशी को 'पक्खी' की।

वी नि १२७०, शत्रु जय तीर्थ का निर्माण हुआ।

वी नि १३००, बप्पभट्टि आचार्य ने 'आम' राजा को जैन वनाया।

वी नि १३८९, शीलाकाचार्य ने आचाराग सूत्र की वृत्ति रची।

वी नि १४६४, उद्योतन सूरि और देव सूरि से 'वडगच्छ' चला।

वी नि १६०५, नवाङ्गी टीकाकार अभयदेव सूरि हुए।

वी नि १६९५, हेमचन्द्राचार्य हुए।

वी नि १६२९, चन्द्रप्रभसूरि ने 'पूनमिया' गच्छ प्रारम्भ किया।

वी नि १६५४, आचलियागच्छ निकला।[35]

वी नि १६७०, खरतरगच्छ निकला। जिसमे बाद मे दस शाखाएँ हो गई।[36]

वी नि १७२०, आगमिया गच्छ निकला।

वी नि १७५५, चित्रवाल गच्छ के जगच्चन्द्र सूरि से तपगच्छ चला। जिसकी १३ शाखाए हो गई।

वी नि १७५८, वस्तुपाल-तेजपाल ने आबू पर मदिर बनवाये।

वी नि २०४२, पार्श्वचन्द्र गच्छ निकला।

---

[34]हरिभद्राचार्य के समय के विषय मे मतभेद है।

[35]और [36]इन गच्छो के प्रारम्भ के क्रमश वी नि १६८२ या वी. नि १६७४ सवत् का भी उल्लेख मिलता है।

श्रीमान् लोकाशाह का जन्म विक्रम स १४८२ मे हुआ।[37] आपका जन्म अरहटवाडा के निवासी हेमाशाह (ओसवाल) की पत्नी गगावाई की कुक्षि से हुआ था। वि स १४९७ मे सिरोही निवासी ओधवजी की पुत्री सुदर्शना के साथ लग्न हुए। फिर लोकाशाह व्यापार के लिए अहमदावाद आये। वि स १५०१ मे अहमदाबाद मे महम्मदशाह ने आपको खजाची वनाया। शासन मे होती हुई खटपट से आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ। किसी-किसी के मत से लोकशाह ने दीक्षा ग्रहण की। वि स १५०९, श्रावण सुदी ११' शुक्रवार को लोकाशाह ने यति सुमति-विजयजी के पास दीक्षा अगीकार की। उनका गुरुप्रदत्त नाम लक्ष्मी-विजयजी था। पर उन्होने स १५३१ (वी नि २००१) या वि स १५२५ या १५२८ से अपनी श्रद्धा का प्रति-पादन करना प्रारम्भ किया, तव से वे पुन लोका के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हे शुद्ध श्रद्धा के प्रति-पादन मे अनेक व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त हुआ। कई कारणो से ऐसा लगता है, कि—लोकाशाहने दीक्षा ली होगी। ऐसा सम्भव है, कि—तत्कालीन यतिवेश, उपकरण आदि स्वीकार न किये हो।[38]

लोंकाशाह के अनुयायी लोकागच्छी कहलाये। लोकागच्छ की अनेक शाखाए —प्रशाखाए हुई। जिनमे से तीन शाखाए मुख्य थी—(१) गुजराती, (२) नागौरी और (३) उत्तराधी। इनकी भी कई उपशाखाए हुई।

गुजराती लोकागच्छ मे प्रथम आचार्य हुए ऋषि भाणजी। ऋषि भाणजी पोरवाड थे। वि स १५३१ मे प्रभूत ऋद्धि को त्याग कर ४५ व्यक्तियो के सग दीक्षित हुए। द्वितीय पट्टधर भिदाजी हुए। आप

---

[37] लोकाशाह के जीवन चरित्र के विषय मे काफी मतभेद है। यह वर्णन जैनधर्म के प्राचीन संक्षिप्त इतिहास से दिया गया है।

[38] [illegible], दण्ड, तत्कालीन यतिवेश आदि को अस्वीकार करने के कारण विरोधीजन उन्हे गृहस्थ ही कहते थे। सभव है, ऐसे किसी कारण से लोकागच्छीय पट्टावलियो मे भी उन्हे आद्याचार्य के रूप मे न माना गया हो। पर [illegible] पट्टावली मे उनके तीन मास सयम पर्याय का उल्लेख है।

गच्छ से निकलकर क्रियोद्धार[39] किया।[40] इनकी परम्परा की पाँच शाखाएँ हुई — (१) पू श्री नानकरामजी म की सम्प्रदाय (वर्तमान मे श्री छोटमलजी म आदि श्री पन्नालालजी म के सत और श्री हगामीलालजी म आदि), (२) पू स्वामीदासजी म की सम्प्रदाय (विद्यमान सत—श्री कन्हैयालालजी म 'कमल' आदि) (३) पू अमरसिंहजी म की सम्प्रदाय (विद्यमान सत—श्री पुष्करमुनिजी म आदि), (४) पू शीतलदासजी म की सम्प्रदाय (विद्यमान सत—उपप्रर्वक श्री मोहन मुनिजी म आदि) और (५) पू नाथुरामजी म की सम्प्रदाय (विद्यमान सत श्री पुप्फभिक्खु आदि) ।

गुजराती लोकागच्छ की वडी पक्ष के आचार्य केशवजी (स १६९९ से १७२१ तक आचार्यत्वकाल) के समय मे हरजीऋषि, जीवराजजीऋपि, गिरधरजीऋपि आदि छह महापुरुपो ने उस गच्छ से निकलकर क्रियोद्धार किया।[41] हरजीऋपि की परम्परा मे कोटा सम्प्रदाय हुई। हरजीऋषि आदि ने पू लवजीऋपि, सोमजीऋपि आदि की आज्ञा शिरोधार्य की थी—ऐसा उल्लेख कुछ पट्टावलियो मे है और कोटा सम्प्रदाय के आचार्य पू श्री छगनलालजी म ने भी अपनी परम्परा का सम्वन्ध पू. लवजीऋषि म आदि से वतलाया है।

कोटा सम्प्रदाय के पू श्री लालचन्दजी म के शिष्य पू. श्री हुक्मीचन्दजी म ने उनसे अलग होकर विचरण किया या क्रियोद्धार किया। पू श्री हुक्मीचन्दजी म के वाद पू श्री शिवलालजी म , श्री उदयसागरज़ी म और श्री चौथमलजी म आचार्य हुए। पाचवे आचार्य श्री श्रीलालजी म के

---

[39]इनके प्रथम क्रियोद्धारक होने मे मतभेद है। केशवजी के समय मे निकले हुए छह महापुरुषो मे भी एक जीवाजीऋषि थे।

[40]शायद इन्ही जगाजी यति (जगाधरजी) के शिष्य श्री जीवराजऋषि को श्री [illegible]दजी म 'रजत' ने पू धर्मदासजी म के गुरु बताये है।

[41]जै ध प्रा संक्षिप्त इतिहास मे हरजीऋषि आदि के क्रियोद्धार का समय स १६८[illegible] बताया है, पर वह विचारणीय है। क्योकि वह केशवजीऋषि के [illegible] से मेल नही खाता है।

समय मे यह परम्परा दो शाखाओं मे विभक्त हो गई। श्रीलालजी म की परम्परा मे उनके वाद क्रमश श्री जवाहरलालजी म और श्री गणेश-लालजी म आचार्य हुए। पू श्री गणेशलालजी म के वाद श्री नाना-लालजी म (श्रमणसघ से अलग होने के वाद) विद्यमान आचार्य है। दूसरी शाखा श्री मन्नालालजी म की है। पू श्री मन्नालालजी म. के वाद धैर्यवान् श्री खूबचन्द्रजी म और श्री सहस्रमलजी म. आचार्य हुए। अभी आपकी परम्परा के सत श्रमणसघ मे सम्मिलित है। विद्यमान गणस्थिविर श्री कस्तूरचन्द्रजी म है। जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म इस शाखा के प्रसिद्ध सत हुए हैं।

लोकागच्छ की वडी पक्ष के आचार्य केशवजी के समय के लगभग या उनसे पूर्व उस शाखा मे वज्रागजी नाम के एक यति थे। उनके शिष्य थे श्री लवजीऋषि। श्री लवजीऋषि सूरत—निवासी वीरजी वोरा (लोकागच्छ के अग्रणी और वैभव सम्पन्न श्रावक) के दौहित्र थे। इन्होने गच्छ से निकलकर क्रियोद्धार किया और आपकी परम्परा ऋषि सम्प्रदाय, खम्भात सम्प्रदाय और पजाव सम्प्रदाय के नाम से तीन शाखाओ के रूप में प्रसिद्ध हुई।

ऋषि सम्प्रदाय के पू श्री लवजीऋषिजी म, श्री सोमजीऋषिजी म., पू श्री कहानजीऋषिजी म. आदि आचार्य हुए। इस सम्प्रदाय के पू श्री तिलोकऋषिजी म, पू श्री अमीऋषिजी, श्री दौलतऋषिजी म., पू. श्री अमोलकऋषिजी म, श्री रत्नऋषिजी म आदि प्रसिद्ध संत हो गये हैं। वर्तमान मे इस गण के अग्रणी पू श्री आनन्दऋषिजी म. हैं, जो कि श्रमण सघ के द्वितीय पट्टधर हैं।

खम्भात सम्प्रदाय के श्री लवजीऋषि,
कहानजीऋषि, श्री ताराचन्दजी ऋषि, श्री मंग
पट्टधर हुए। इस सम्प्रदाय के पूज्य श्री कान्ति
गुजरात-काठियावाड मे विचर रहे हैं।

पजाव सम्प्रदाय के पू श्री लवजीऋषि,
श्री हरिदासजी म, श्री वृ दावनजी म आदि आचा

पू श्री अमरसिहजी म , पू श्री सोहनलालजी म•, पू श्री काशीरामजीम , पू श्री आत्मारामजी म आदि कई तेजस्वी सत हुए है। पू. श्री आत्मारामजी म श्रमणसघ के प्रथम आचार्य थे। अभी भी इस शाखा के कई यशस्वी सत पजाव मे विचर रहे है।

लोकागच्छ की नानीपक्ष के तेहरवे पट्टधर श्री शिवजीऋषि (स १६६० मे दीक्षा ओर स १६७७ मे आचार्यपद) के शिष्य श्री धर्मसिहजीऋषि थे। शिवजीऋषि को शाहजहाँ वादशाह की ओर से पट्टा-पालखी आदि वक्षीस मे प्राप्त हुई थी। इस निमित्त से गच्छ मे शिथिलता का प्रवेश हुआ। उसका धर्मसिहजीऋषि ने विरोध किया। अत मे दो वर्ष बाद सं १६८५ मे श्री धर्मसिंहजीऋषि ने गच्छ का परित्याग कर दिया।[42] उन्होंने आचारशुद्धि पर विशेष वल दिया और विपुल साहित्य की रचना की। २७ शास्त्रो के टव्वे (गुजराती टीका), सूत्रो के यत्र, व्यवहार-सूत्र की हु डी, सूत्रसमाधि नी हु डी, द्रौपदी नी चर्चा आदि की रचना की।

इनकी परम्परा 'दरियापुरी' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इस परम्परा मे अभीतक चौवीस आचार्य हो गये हैं। इस शाखा मे श्री हर्षचन्दजी म आदि कई महान् सत हुए है। खेद की वात है, कि—स्थानकवासी जैनो की यह एक मात्र सगठित सम्प्रदाय विद्यमान गणमुख्य पू श्री शान्तिलालजी म को निमित्त वनाकर अभी-अभी दो भागो मे विभक्त हो गई है।

सवत् १७०० ने स १७०३ के बीच अमदावाद के समीप सरखेज गाम मे जीवणजी पटेल की धर्मपत्नी की कुक्षि से एक वालक का जन्म हुआ था। जिसने अपनी जाति के 'भावसार' और अपने 'धर्मदास' नाम को सार्थक किया। श्री धर्मदासजी ने यौवन की दहलीज मे चरण रखते ही, चारित्रमार्ग को ग्रहण किया और युगप्रधान आचार्य के रूपमे प्रसिद्ध हुए। धार मे अनशन से विचलित शिष्य के स्थानपर, आप अनशन करके स्वर्गस्थ हुए (स १७५९ मे स १७७३ के बीच)। आपके निन्यानवे शिष्यो के बाईस सघाडो से बाईस सम्प्रदायो की प्रसिद्धि हुई। उनमे से

---

42 श्री धर्मसिंहजी म के क्रियोद्धार के सवत् के विषय मे भी मतभेद है।

(१) पूज्य श्री धनाजी म , (२) श्री मूलचन्दजी म , (३) श्री रामचन्द्रजी म (४) श्री हरिदासजी म (५) छोटे पृथ्वराजजी म और (६) श्री मनोहरजी म की परम्पराए अभी विद्यमान है ।

श्री धनाजी म पहले 'पोतियाबद' श्रावक थे । पूज्य श्री धर्मदासजी म के सत्सग से चारित्रमार्ग के पथिक हुए । आपके प्रमुख तीन शिष्यो (१) पू श्री रघुनाथजी म , (२) पूज्य श्री जयमलजी म और (३) पूज्य श्री कुशलजी म से शिष्य-कुलो की परम्पराए चली । जो पाच सम्प्रदाय और एक पथ के रूप मे प्रसिद्ध हुए । पूज्य श्री रघुनाथ (रुगनाथ) जी म., की सम्प्रदाय, श्री जयमलजी म की सम्प्रदाय, श्री रतनचन्दजी म की सम्प्रदाय, श्री चौथमलजी म की सम्प्रदाय और श्री महाचन्दजी म की सम्प्रदाय और तेरापथ । पू श्री रघुनाथजी म के शिष्य श्री भीखमजी से दया-दान के विषय मे श्रद्धा की भिन्नता के कारण स १८१५ मे या स १८१६ मे तेरापथ की प्रवृत्ति हुई ।

पू श्री मूलचन्दजी म की परम्परा मे कई सघाडे हुए । सम्प्रति गोडल सघाडा लीवडी सघाडा, बरवाला सघाडा, सायला सघाडा, कच्छ मोटी पक्ष और नानी पक्ष के साधु-साध्वी काठियावाड, गुजरात और कच्छ मे प्राय विचरण करते है ।

पूज्य श्री रामचन्द्रजी म की परम्परा मालवा मे पूज्य श्री धर्मदासजी म. की सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध रही है और मालवा मे यह परम्परा उज्जैन-शाखा के नाम मे पहचानी जाती थी । आपकी परम्परा तीन कुलो मे विभाजित हो गई । छट्ठे आचार्य पू श्री नरोत्तमजी म के समय तक यह परम्परा सगठित रही । पूज्य श्री नरोत्तमजी म के तीन शिष्यो—(१) श्री मेघराजजी म , (२) श्री काशीरामजी म. और (३) श्री गगारामजी म से तीन शाखाए हो गई । पूर्व की दो शाखाओ के एक-एक सत सम्प्रति स्थिरवास विराजमान हैं—आवर मे श्री मूलमुनिजी म और कराही कस्बा मे श्री धनचन्द्रजी म *। श्री गगारामजी म की परम्परा सम्प्रति पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी म की सम्प्रदाय के रूप मे प्रसिद्ध हैं ।

---

* श्री धनचन्द्रजी म का अब देहान्त हो चुका है ।

म के श्री केवलमुनिजी म त श्री केसरीमलजी म. त. श्री रूपचन्दजी म आदि २०-२१ शिष्य और श्री विनयमुनिजी म. के शिष्य श्री शान्तिमुनिजी म. और श्री प्रमोदमुनिजी म 'मधु' ।

और (१४) प्र. श्री सूर्यमुनिजी म. के शिष्य श्री मोहनमुनिजो म, श्री माणकमुनिजी म, श्री सुरेन्द्रमुनिजी म, श्री रूपेन्द्रमुनिजी म और इन पङ्क्तियो का लेखक —(उमेश मुनि)

उपर्युक्त शिष्य-परम्परा रूप क्रम है। परन्तु आचार्यों और गणमुख्यो का क्रम इससे भिन्न है। वह इस प्रकार है—

(१) पूज्य श्री धर्मदासजी म, (२) पूज्य श्री उदयचन्द्रजी म, (३) पू. श्री मयाचन्दजी म, (४) पू. श्री अमरजी म, (५) पूज्य श्री केशवजी म, (६) पू. श्री मोखमसिहजी म, (७) पू श्री नन्दलालजी म, (८) पू. श्री माधवमुनिजी म, (९) पू. श्री चम्पालालजी म, (१०) प्रवर्तक श्री ताराचन्दजी म, (११) प्रवर्तक श्री किशनलालजी म (१२) श्रीप्रवर्तक सूर्यमुनिजी म. ।

गण के विद्यमान साधु

(१) मा के प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमलजी म, (२) प्रवर्तक प श्री सूर्यमुनिजी म, (३) श्री सागरमुनिजी म, (४) श्री सुरेन्द्रमुनिजी म, (५) श्री हुकुममुनिजी म, (६) श्री मगनमुनिजी म, (७) श्री रूपेन्द्रमुनिजी म, (८) श्री जीवनमुनिजी म, (९) श्री उमेशमुनिजी म, (१०) श्री शान्तिमुनिजी म, (११) श्री महेन्द्रमुनिजी म., (१२) श्री कमलमुनिजी म, (१३) श्री प्रमोदमुनिजी म 'मधु', (१४) श्री अनूपमुनि जी म, (१५) श्री प्रदीपमुनिजी म, (१६ श्री विजयमुनिजी म, (१७) श्री प्रकाशमुनिजी म, (१८) श्री चेतनमुनिजी म ।

इस गणमे सम्प्रति ५४ साध्विया विचरण कर रही है।

प्र श्री मेनकुँवरजो म की साध्वियां:-(१) प्र श्री राजकुँवरजी म (२) श्री केसरकुँवरजी म. (३) श्री चतरकुँवरजी म (४) श्री सोहनकुँवरजी

परिशिष्ट २

पू श्री धर्मदासजी म की मालवा-शाखाओ को शिष्यावल्नियां—

(प्रथम वंश)

द्वितीय शाखा (उज्जैन-शाखा)

---
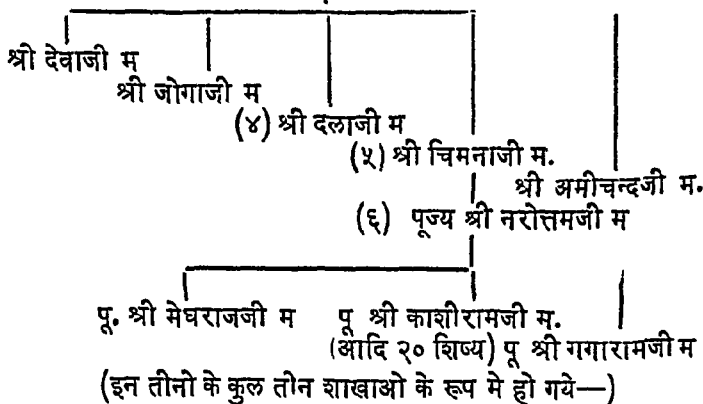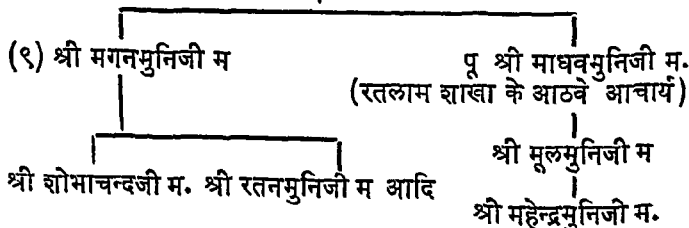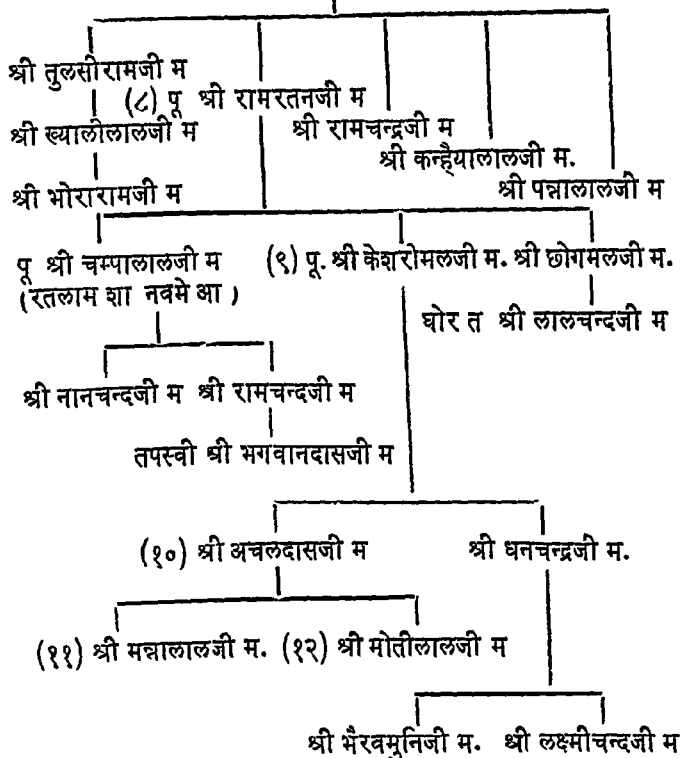
* **पूज्य श्री काशीरामजी महाराज**—लगभग बीस वर्ष की आयु मे स १८७४ या ७५ मे पूज्य श्री नरोत्तमजी म के पास मे दीक्षित हुए। ६० वर्ष तक चारित्र पर्याय मे रहे। स १९३४, आसोज सुदी २ सोमवार को चौथे प्रहर मे स्वमुख से सथारा किया। सथारा ग्यारह प्रहर तक चला। मगलवार को रात मे तीसरे प्रहर मे कालधर्म को प्राप्त हुए। आप उज्जैन मे दिवगत हुए।

(द्वितीय वंश)

सीतामहू शाखा—
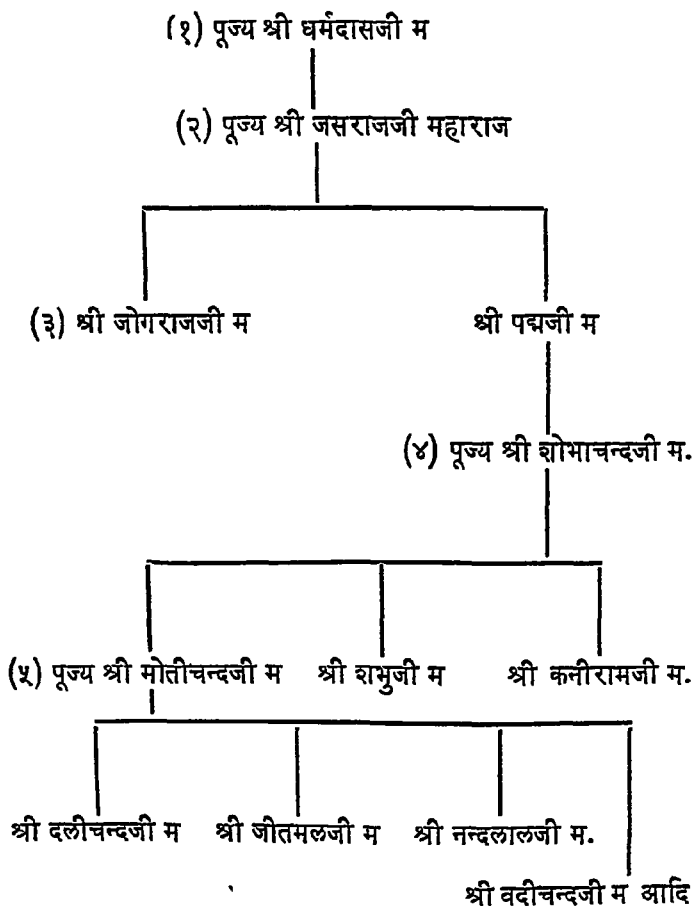
(इस वश के और भी सत रहे होगे। पर इतने ही संतो के नाम प्राप्त हुए है। इस वश के अन्तिम सावु श्री छोटेलालजी म. थे। इस वश की कोई उपशाखा भी थी या नही—इस वात का पता नही चला।)

(तृतीय वंश)

रतलाम शाखा—

(१) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज

पूज्य श्री हरिदासजी महाराज

श्री नानाजी महाराज

श्री [illegible]कजी ([illegible]मराजजी) महाराज

(२) पूज्य श्री उदाजी (उदैराजजी या उदयचन्द्रजी) म

श्री माणकचन्दजी म. — श्री नृगाजी म — श्री [illegible]रामजी म

(३) पूज्य श्री मयानन्दजी महाराज (आपके कई शिष्य हुए)

श्री भगाजी म
श्री नेमजी म
श्री मोतीचन्दजी म
श्री चिमनाजी म
श्री सोभानन्दजी म
श्री दानाजी म
श्री भीपमजी म

(४) पूज्य श्री अमरजी महाराज

श्री सोमचन्दजी म — श्री माणकचन्दजी म.

श्री त परसरामजी म — श्री अजबोजी म आदि

(५) पूज्य श्री केशवजी महाराज

(६) पूज्य श्री मोखमसिहजी महाराज

श्री इन्द्रजीतजी महाराज

घोर त श्री शिवलालजी म
श्री हिन्दुमलजी म
(१०) प्रवर्तक पू श्री ताराचन्दजी म आदि

श्री नाथाजी म
श्री लखमीचन्दजी म
श्री मेघराजी म

श्री जीतमलजी म

श्री हीरालालजी म. — श्री कन्हैयालालजी म

(८ वे आचार्य पूज्य श्री माधवमुनिजी महाराज और
९ वे आचार्य पूज्य श्री चम्पालालजी महाराज थे)

(तृतीय वंश)

रतलाम शाखा–

(१) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज

पूज्य श्री ह[illegible]दासजी महाराज

श्री नागजी महाराज

श्री [illegible]मजी ([illegible]मराजजी) महाराज

(२) पूज्य श्री उदाजी (उदैराजजी या उदयचन्द्रजी) म

- श्री माणकचन्दजी म.
- श्री गुलाबजी म
- श्री किशनोरामजी म

(३) पूज्य श्री मयाचन्द्रजी महाराज (आपके कई शिष्य हुए)

- श्री भगाजी म
- श्री नेमजी म
- श्री मोतीचन्दजी म
- श्री चिमनाजी म
- श्री सोभाचन्दजी म
- श्री दानाजी म
- श्री भीपमजी म

(४) पूज्य श्री अमरजी महाराज

- श्री सोमचन्दजी म
- श्री माणकचदजी म.

श्री त परसरामजी म

श्री अजबोजी म आदि

(५) पूज्य श्री केशवजी महाराज

(६) पूज्य श्री मोखमसिहजी महाराज

श्री इन्द्रजीतजी महाराज

- घोर त श्री शिवलालजी म
- श्री हिन्दुमलजी म
- (१०) प्रवर्तक पू श्री ताराचन्दजी म आदि

- श्री नाथाजी म
- श्री लखमीचन्दजी म
- श्री मेघराजी म

श्री जीतमलजी म

- श्री हीरालालजी म.
- श्री कन्हैयालालजी म

(८ वे आचार्य पूज्य श्री माधवमुनिजी महाराज और
९ वे आचार्य पूज्य श्री चम्पालालजी महाराज थे)

उपशाखा—१

- (३) पूज्य श्री मयाचन्दजी महाराज
  - (४) पूज्य श्री दानाजी महाराज
    - श्री वदीचन्दजी म
      - श्री रूपचन्दजी म.
    - श्री भारमलजी म
      - श्री किसनलालजी
      - श्री रामचन्द्रजी म.
        - श्री मयाचन्दजी म
          - श्री घासीरामजी म
          - श्री भेरुलालजी म
          - त. श्री स्वरूपचन्दजी म
          - श्री मिरेमलजी म

उपशाखा—२

(पूज्य श्री परशरामजी महाराज के समय मे कुछ मतभेद हो जाने के कारण कुछ समय तक यह सत-परिवार अलग रहा। फिर समाधान हो जाने के बाद पुन सब सत सम्मिलित हो गये। दोनो उपशाखाओ मे अब कोई सत विद्यमान नही है।)

परिशिष्ट 3

गुरु-यशोगीतिकाएं

(१) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज [अ]

—कव्वाली—

श्री पूज्य धर्म गुरुवर, श्री धर्मदास स्वामी।
जिनधर्म के उद्धारक, भव्यो के भद्रकामी ॥ टेर ॥

जिन्हे बालकाल मे ही, शुभ ख्याल दिलमे आया।
सम्पत् विपत्ति लखके, छिटकाय छिनमे वामी ॥ १ ॥

दे वोध सात जनको, लीना अचल सुसयम।
विचरण अथाग कीना, उपकार मे न खामी ॥ २ ॥

नित्याणु शिष्य हो गये, सद्‌वोध पाय जिनसे।
जड-चेतनादि लक्षण, समझे सुबोध पामी ॥ ३ ॥

वावीस गच्छ के वे, हैं पूज्य मूल नायक।
जिनकी सतान अव तो, झझट तजो नकामी ॥ ४ ॥

सज सप फूट तजके, श्री पूज्य पथ दिपाओ।
तज प्राण धर्म ऊपर, जिनने सुकीर्ति पामी ॥ ५ ॥

श्री पूज्य ! सघ ऊपर, सद्‌दृष्टि कीजे अवतो।
'मुनि सूर्य' जाप प्रतिदिन, जपता अमल सुनामी ॥ ६ ॥

[आ]

धन्य गुरू धर्मदासजी प्रतापी पूज्य गुरूदेव।
गुजरात सरखेज गामना पिताजी जीवण पूरो प्रेम ॥
माता डाईवाई जाणिए, जन्म सवत सतरसो एक।
त्याग सतरसो सोलमा अश्वसुदी अगीयार विवेक ॥१॥

स्वय सतर जण साथे दीक्षा, अमदावाद शाही वाग।
पद आचार्य आपीयु उज्जैन सघ आनन्द उल्लास ॥
तेतालीस वर्ष दीक्षा तणा, आयु वरस ओगणसाठ।
सथारो दिन सातनो धारा नगरी नाथ निर्वाण ॥२॥

भगवतीजी माही कह्या रे लाल, एहवा दीठा साध रे सु० ।
समता धर मन वालियो रेलाल, जारा नामथी जावे व्याधरे सु० ॥८॥

पाप जावे मुख-देखता रे लाल, नाम थकी निस्तार रे सु० ।
वछित सीझे वांदताँ रे लाल, धन मोटा अणगार रे सु० ॥९॥

पँचावन वर्ष सजम पालियो रे लाल, ऊपर अधिका मास रे सु० ।
रत्नत्रय आराधता रे लाल, मनमें हुई यह आस रे सु० ॥१०॥

मन वचन काया करी रे लाल, अनशन करवा त्यार रे सु० ।
साधूने वलि साधवी रे लाल, वरजे वारवार रे सु० ॥११॥

श्रावक ने वलि श्राविका रे लाल, अर्ज करे सिर नाय रे सु० ।
श्री पूज्य एक माने नही रे लाल, दीनो कलश चढाय रे सु० ॥१२॥

भादवा सुदी नवमी दिने रे लाल, सथारा ऊपर मन्न रे सु० ।
चारि तीरथ भेला हुआ रे लाल, पचख्यो इग्यारस दिन्न रे सु० ॥१३॥

पाच पाडव तणी परे रे लाल, वेदना नाठी दूर रे सु० ।
मनमे वैराग्य अति घणो रे लाल, सिंह तणी पर शूर रे सु० ॥१४॥

गुणी जनो ना गुण साभले रे लाल, तेहनो जनम प्रमाण रे सु० ।
कर जोडी विनती करू रे लाल, देओ तप का दान रे सु० ॥१५॥

'रिख भगवानजी' इम कहे रे लाल, हू चरणा रो दासरे सु० ।
महर करो मुझ ऊपरे रे लाल, पूरो मन की आशरे सु० ॥१६॥

सवत् अठारे पचास मे रे लाल, सहर अवती के माय रे सु० ।
आसो विदि दिन वीजने रे लाल, हुआ इद्रपुरी ना राय रे सु० ॥१७॥

(३) श्री रतन तपस्वीजी महाराज

रतनजी तपसी ने वदिये रे लाल । वदत नव निधि थाय हो सुघड०
पूज्य श्री मूलचन्द का रे लाल । ते विनीत शिष्य कहाय हो सुघड०
रतनजी तपसी ने वदिये रे लाल ॥१॥

आठ वरस मे तप कियो रे लाल, तेहनो एह विचार हो सु० ।
गुणतीस थोक मोटा किया रे लाल, छोटानो नहि पार हो सु० ॥२॥

प्रथम थोक कियो तीसनो रे लाल, बीजो पैंतालिस जान हो सु० ।
थोक एकावन तीसरो रे लाल, चौथे बत्तीस प्रमाण हो सु० ॥३॥

पेंतीस नो थोक पाचमो रे लाल, छट्ठो तप एकतीस हो सु० ।
सातवो वलि एकतीसनो रे लाल, आठमो एकतालीस हो सु० ॥४॥

नवमो तप छियालीसनो रे लाल, दसमो थोक अट्ठावीस हो सु० ।
इग्यारमो सैंतीस नो रे लाल, बारमो थोक एकतीस हो सु० ॥५॥

तेरमो थोक एकतीस नो रे लाल, चवदमो डोढ मास हो सु० ।
पन्नरमो पैंतालीसनो रे लाल, सोलमो सैंतालीस मास हो सु० ॥६॥

सतरमो एक मास नो रे लाल, अठारमे तप छियालीस हो सु० ।
गुन्नीसमो सैंतालीस नो रे लाल, वीसमे तप किनो तीस हो मु० ॥७॥

एकवीस मे सेतालीसनो रे लाल, बावीस मे बावन जाण हो मु० ।
तेवीस मे तप मासनो रे लाल, चोवीसमो मास पिछान हो मु० ॥८॥

पच्चीस मे दो मासनो रे लाल, छावीस मे एकतीस धार हो मु० ।
सत्तावीस दोढ मास नो रे लाल, अट्ठावीस मे बावन सार हो मु० ॥९॥

उगणतीस वलि जाणिये रे लाल, कीधा बावन सार हो मु० ।
अवर गुणे करी आगला रे लाल, क्षमा तणा भडार हो मु० ॥१०॥

आठ वरस मे तप कियो रे लाल, पछे एकातर धार हो सु० ।
आडे आसन सूवो नही रे लाल, कारण नो आगार हो मु० ॥११॥

इत्यादिक तपस्या करी रे लाल, आतमने उजवाल हो सु० ।
मास लोही जिने सूकव्या रे लाल, दीसे नशा वलि जाल हो सु० ॥१२॥

पाँचवा आरा मे हुवा रे लाल, जाणे धन्नो अणगार हो सु० ।
(आलोई ने पडिकमी रे लाल, कीधो अनशन सार हो सु०)
पिच्चोतर दिनो मे सीझियो रे लाल, पाम्या सुर-अवतार हो सु० ॥१३॥

एहवा मुनिना गुण गावता रे लाल, पावे परम आनन्द हो सु० ।
कर जोडी ने वीनवू रे लाल, काटो कर्म नाँ फद हो सु० ॥१४॥

(सम्भवत ये तपस्वी मुनि उज्जैन शाखा के सत थे ।)

(४) श्री भगाजी तपस्वीजी महाराज

दो ढाला

ढाल १ (राग-क्षमावत जो भगवतनो ज्ञान)

खारियो गाव सुहामणोजी, तिहाँ लीधो अवतार।
माता सामा दीपताजी, गिरधर तात उदार॥
भगाजी धन थारो अवतार॥१॥

वैरागी मोटा हुवाजी, इसडो करियो विचार।
बेले-बेले पारणाजी, काढे देहनो सार भ०॥२॥

पछे पटलावद आवियाजी, मन मे अधिक वैराग।
परीषह सहता आकराजी, तपस्या ऊपर राग भ०॥३॥

उन्हाले तप अति तपे जी, वाजे लूनी रे झाल।
भगाजी ले आतापना जी, मनमे होय खुशाल भ०॥४॥

उन्हो पाणी पीवताजी, करता मस्तक लोच।
वैरागी बनडा बन्या जी, करे कर्मानो मोच भ०॥५॥

गाँव-नगर मे विचरताजी, करता उग्र विहार।
पूज्य मयाचन्द पधारियाजी, आगमना भडार भ०॥६॥

कर जोडी ने विनवेजी, साभलजो अणगार।
जन्म-मरण ना दुख सह्याजी, लेस्यू संजम भार भ०॥७॥

दीक्षा लीधी भावसू जी, जगसे होय उदास।
घर छोडी साधू थयाजी, एकान्तर उपवास भ०॥८॥

सजम पाल्यो दीपतोजी, वर्ष ओगणतीस जाण।
फिर तन-वेदना देखने जी, कीना यो पचखाण भ०॥९॥

दोहा—मुनिवर मनमे चिंतवे, धिग्-धिग् मोह विकार।
यह शरीर थारो नही, धर्यो अनती वार॥१॥

मोह उतार्यो देह सू, शुभ ध्याने मन आण।
अर्हत सिद्धकी साख से, कर लीना पचखाण॥२॥

ढाल २ (राग-...)

सार पधारो भाव से, गुरु सुगुन ... हो ।
अनशन मनमे जी धारियो, आदजीव ... हो क ॥१॥

एकम ने दिन आवियो, गुरु ... -आगे हो ।
दिन पहर थाने आवियो, मनसा ... गायो हो' क ॥२॥

वचन सुण्या गुरुजी तणा, तब ... मुनिराय हो ।
'इण भव आहार करूं नही, उनमें ... न लाय हो' क ॥३॥

बीज, तीज, सातम लगे, पूछे बारम्बारो हो ।
पण ते आहार वछे नही, मन वच काय विचार हो क ॥४॥

प्रकट कियो दिन रात मे, नर-नारियां वृद हो ।
पूज्य मयाचन्दजी प्रसाद से, वरत्या परम आनद हो क ॥५॥

दिन वीस सुरा ने काढिया, टलगया नही विचार हो ।
घर-घर हर्ष वधामणा, घर-घर मगलाचार हो क ॥६॥

नर-नारी हर्षे घणा, दर्शन लेवे आय हो ।
जब देखे तब जागता, जाणे देव विराज्या आय हो क ॥७॥

फागुण सुद पाचम दिने, मुनिवर उतर्या पार हो ।
सुरगति पहुँच्या साधुजी, वरत्या जय-जयकार हो क ॥८॥

नर-नारी मिलिया घणा, मनमे हर्ष उलास हो ।
उत्सव हर्ष कीधा घणा, पूरी मनकी आस हो क ॥९॥

सवत अठारे चोपने, फागुण सुदनी जोड हो ।
'जालम' गावे जुगत से, वदू वे कर जोड हो क ॥१०॥

(५) पूज्य श्री दानाजी स्वामीजी महाराज

(अ)

(राग—किन मारी पिचकारी रे !)

सूरत लागे प्यारी रे ! पूज्य दानाजी स्वामी ! सूरत की वलिहारी हो ॥टेर॥
पाच पचीसा सू वश कर बैठा, धीरजवत अति भारी हो पू ॥१॥
पूज्य मयाचन्दजी का परसाद से, ज्ञान पणो विसतारी हो पू ॥२॥

सूरतसिहजी के कुलमे अवतरिया, चेनादै माता थारी हो पू ॥३॥
दरसण करता दुख टल जावे, पाप करम सब छारी हो पू ॥४॥
जिनमारग ने जोर दिपायो, भवजीवा हितकारी हो पू ॥५॥
चवदे दिन को कियो सथारो, पाया सुर-अवतारी हो पू ॥६॥
रतनपुरी मे रग-रली कर, 'प्रेम' धरम सुखकारी हो पू ॥७॥

(आ)

दानाजी स्वामी ! तुम गुण का नही पार ।
विनतडी अवधार ॥ टेर ॥

दानाजी स्वामी अन्तर्जामी, मोह-ममता दी जार ॥ १ ॥
सूरतसिंह-सुत चैनादे-जाया, कर दिया खेवा-पार ॥ २ ॥
जिनमारग को जोर दिपायो, अणसन कर श्रेकार ॥ ३ ॥
आसोज विद अमावस सीझा, दिन चवदा सथार ॥ ४ ॥
'प्रेम' नजर कर निरखो स्वामी ! धन्य थारो अवतार ॥५॥

(इ) राग—लावणी

नगर का भाग्य उदय आया रे नगर०
रतनपुरी के बीच दानाजी स्वामी सथारा ठाया ॥टेर॥

श्रावक आए थानक मे सारा रे—श्रावक आये
कहै पूज्य दानाजी-'म्हे तो लेऊँ सथारा।'
बोलता ज्ञानी, महाराज ! बोलता ज्ञानी !
थी जैसी अमृत वाणी। जाने मारग शुद्ध पिछानी।
सब तजा अन्न और पाणी। बात यह सब जनने जानी।
सुनी सब मन अचरज पाया रे ! मुनी. रतन ॥ १ ॥

पिता जिन्हो के सूरतसिहजी माता चैनाबाई।
धन-धन जननी जाया तपसी रतन कुन्न माई॥
ज्ञान का पूरा, महाराज ! ज्ञान का पूरा।
रहे धर्म ध्यान मे शूरा। करे अष्ट कर्म-दल चूरा।
पूज्य मयाचन्दजी का चेला।
शरण एक जिनवर का ठाया रे! नगर० रतन० ॥ २ ॥

साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका, सब मिल के आया ।
धन-धन तपसी ! भाग्य हमारा, दर्शन तुम पाया ॥
ठगाक नहीं कीना महाराज ! ठगाक नहीं कीना ।
दिन तेरह सथारा लीना । काल गत पालखी लीना ।
तन-मन सजन मे भीना ।
जबर कोई तपसी आया रे ! जबर रतन ॥ ३ ॥

डोल का काम बन्या भारी रे ! डोल का काम बन्या भारी ।
रेसमखास अरु जरी बाना, सोन्या रूप न्यारी ॥
काम सोने का, महाराज ! काम सोने का ।
एक-एक से श्रावक अधिका । जिने ठाठ किया डोली का ।
डोल पे फूल उडे चांदी का ।
फेर चदण मे जलवाया रे ! फेर रतन ॥ ४ ॥

जगत मे खूब ही जस लीना रे ! जगत मे खूब ही जस लीना ।
इन पचम आरा माय श्रावक ने, खूब नाम कीना ।
ज्ञान का पूरा, महाराज ! ज्ञान का पूरा ।
है धर्म ध्यान मे शूरा । अरे ! दौलत मे भी पूरा !
रहे नही दान मे दूरा ।
द्रव्य सुकृत मे लगवाया रे ! द्रव्य रतन ॥ ५ ॥

सवत् अठारे सै अधिकाई रे ! सवत् अठारे सै अधिकाई ।
वर्ष अठ्योत्तर अमावस्या आसोज मास माई ॥
विनती गाई, महाराज ! विनती गाई ।
उस वखतगढ के माई । सब श्रावक के मन भाई ।
रहे रोम रोम हर्षाई ।
ध्यान जिनवर का मन ध्याया रे ! ध्यान रतन ॥ ६ ॥

दर्शन नित साधु का कीजे रे ! दर्शन नित साधु का कीजे ।
सामायिक पोसा पडिकमणा किया काज सीजे ॥
धर्म है भारी, महाराज ! धर्म है भारी ।
नवकार मत्र हितकारी । तुम सुनजो सब नर नारी ।

भवसागर देवे तारी ।
श्रावक यो 'अजवे' गुण गाया रे । श्रावक
रतनपुरी के बीच दानाजी स्वामी सथारा ठाया ॥ ७ ॥

(६) तपस्वीजी श्री चमनाजी महाराज

चमन पच्चीसी

देश ढूँढाड सुहामणो, रे लाल । ग्राम ममाणो सुखकार हो, सुखकारी रे ।
श्रावक 'चमनोजी' तिहाँ वसे, रे लाल । पाले श्रावक आचार, सुखकारी रे ।
श्रावक चमनोजी दीपता, रे लाल ॥ १ ॥

आया मालव देश मे, रे लाल । रहे गाम सारोला माय, सुखकारी रे ।
वीतराग आराधता, रे लाल । शुद्ध श्रद्धा मन लाय, सु ॥ २ ॥

पँच पर्वी तपस्या करे, रे लाल । सजम ऊपर राग, सु ।
गाव रतलाम मे आविया रे लाल । लेसू सजम विराग सु श्रा ॥३॥

श्रावक कहै सूसता रहो, रे लाल । पछे लेजो सजम धार, सु ।
चमनोजी थया उतावला, रे लाल । वेग लेसू दीक्षा सार, सु. श्रा ॥४॥

दीक्षा लीधी दीपती, रे लाल । पाचो पर्वी करे तप, सु ।
पछे एकान्तर आदर्यो, रे लाल । दिन-दिन चढती खप, सु ।
साध चमनोजी दीपता, रे लाल ॥ ५ ॥

छट-छट करता पारणा, रे लाल । थया केटलाक मास, सु ।
उपवास दस पचखिया, रे लाल । चढते भाव हुलास, सु सा ॥ ६ ॥

पारणानो दिन आवियो, रे लाल । ऐसो मन मे लाय, सु. ।
वार अनत खाता हुवा, रे लाल । फिर भी तृप्ति न आय, सु सा ॥ ७ ॥

छहुँ विगयने त्यागिया, रे लाल । उज्ज्वल भाव विसाल, सु ।
पारणे लेऊँ रोटो जवारनो, रे लाल । वलि मू गा नी दाल, सु ॥ ८ ॥

पारणो कर पदरह किया, रे लाल । दिन-दिन चढत वैराग, सु ।
उपवास पदरे पूरा थया, रे लाल । सोचे यो महाभाग, सु सा ॥ ९ ॥

गुरूभला मयाचदजी, रे लाल ! तेहना चेला सुजान, सु. ।
मात सुडीबाईना नदना, रे लाल ! चमनाजी तपसी वखान, सु ॥२३॥

तपसी चमनाजी वदिये, रे लाल ! पातक दूर पलाय, सु. ।
दारिद्र्य सब दूरा हुवे, रे लाल ! ध्यावो मन-वच-काय, सु सा ॥२४॥

चमन-पचीसी पूरी थई, रे लाल ! कियो थोडो विस्तार, सु ।
एह पच्चीसी साभली, रे लाल ! कीजो तपस्या सु प्यार, सु ।
साध चमनाजी दीपता रे लाल ॥२५॥

(७) तपस्वीजी श्री परसरामजी महाराज

(अ)

[राग—श्री विजयकँवर और०]

श्री परसरामजी तपसी हैं वड भागी ।
निजमुख से अनशन करके काया त्यागी ॥टेर॥

मरुधर देश के माय लियो अवतारो ।
जहाँ गाँव बुरणपुर, बसे वडो विसतारो ॥
'नगजी' परजापत के घर लीनो तुम जामो ।
थारी माता 'परभूबाई' भलो तस नामो ॥
तुम तज ससार-समुद्र धर्म-लव लागी—निज० १

तुम वर्ष छ्वीस के माय जोग आदरिया ।
किया पच विगय का त्याग एकातर धरिया ॥
तुम सूर्य-तापना लेकर काया शोषी ।
वलि लोभ जाल की तृष्णा सवही रोकी ॥
तुम तप-जप किया करूर, कुमति को दागी—निज० २

पूज्य मयाचदजी का शिष्य अमरजी मोटा ।
वे वडा भाई गुरुदेव ! लिया तुम ओटा ॥
लही सवत् अठारे दीक्षा एकावन सालो ।
फागुण विद आठम कियो नेऊ मे कालो ॥
अध पहर सथारो करके काया त्यागी—निज० ३

रतनपुरी के माय महोत्सव बहु मंडियो ।
हुओ जैन धर्म को जोर मिथ्यामत खंडियो ॥
तुम तार्या घणा भवजीव जगत नर-नारी ।
कर दया धर्म की जोत, हिंसा को टारी ॥
नमे 'प्रेम' सदा कर जोड़ धर्म अनुरागी—निज० ८

(आ) आरती

भाव तप-जप का उदय आया रे । भाव
परसरामजी तपसी ने सुख घणो पाया ॥टेर॥

धरी मन मेठी ममता रे । धरी मन मेठी ममता ।
पुद्गल पराया देख तजी है, काया की ममता ॥
पच इन्द्रियको नित दमता रे । पच इन्द्रिय नित दमता ।
अतर जिनका भाव सदा है, सुख सजम रमता ॥
छोड दी जगत तणी माया रे । छोड० परस० ॥१॥

हुवा है रस-कस का त्यागी रे । हुवा है रस-कस का त्यागी ।
लूखो-सूको करे पारणो, तपस्या का रागी ॥
दशा निर्लोभ तणी जागी रे । दशा निर्लोभ तणी जागी ।
समकित रस को चाख लियो जिनवर से लव लागी ॥
भेद जिनवाणी का पाया रे । भेद० परस० ॥२॥

आतापना-तपस्या मे धारी रे । आतापना-तपस्या मे धारी ।
वालपणा मे सयम लीनो, असल ब्रह्मचारी ॥
विपय-सुख-ममता को मारी रे । विपय-सुख-ममता को मारी ।
घणा जीवा ने तुम समझाया, भव-सागर तारी ॥
भोग का भोजन नही खाया रे । भोग० परस० ॥३॥

भाव से सथारो लीधोरे । भाव से सथारो लीधो ।
सरस शहर रतलाम बीच मे जन्म सफल कीधो ॥
द्रव्य तब खरच अधिक कीधो रे । द्रव्य तब खरच अधिक कीधो ।
श्रावक महोत्सव अधिक-अधिक कर, सुकृत रस पीधो ॥
मुनि-गुणि 'जिनदास' गाया रे । मुनि० परस० ॥४॥

(८) तपस्वीजी श्री सोमचंदजी महाराज

(दो ढाला)

दोहा—शासन नायक समरिये, महावीर जिन जान।
साधु धर्म जाणे जिके, ते पहुँता निर्वाण ॥१॥

गाँव-नगर-पुर विचरता, मोतीचन्दजी स्वाम।
राजगढ के परगणे, आया उमरिये ग्राम ॥२॥

तिहा वसे एक वाणियो, श्रावक भाव करत।
गाथापतिनो दीकरो, मुनिने दियो तुरत ॥३॥

सोमचन्द नामे भलो, मुनि अपनो कर लीध।
शुभ वेला शुभ मुहूर्त्ते, मुनिवर दीक्षा दीघ ॥४॥

पूज्य समीपे विचरिया, घणा काल मुनिराय।
विनय-भक्ति साधी सही, कमी न राखी काय ॥५॥

(ढाल १-थारी महिमा घणी ओ मडोवरा—यह राग)

सोमचन्द मुनिराय हो, थारी महिमा हो घणी मालव देश मे ॥टेर॥

एक सहस शत आठ के, दीक्षा ग्रही गुणसाठ हो स्वामी।
त्रिविध-त्रिविध कर वोसरिया, पापकर्म इम नाठ हो, थारी० ॥१॥

पूरव सुकृत थाँ किया, सतगुरु मिलिया सेज हो स्वामी।
माग लियो मोतीचन्दजी, श्रावक त्त आणी जेज हो, थारी० ॥२॥

मात-पिता ना विजोगथी, सजमनो सयोग हो स्वामी।
गुरु मिलिया मोतीचन्दजी, मेट्या भव-भव-रोग हो, थारी० ॥३॥

समता-सागर झीलिया, कुमति कीनी दूर हो, स्वामी।
ममता मेटी मन तणी, साहसिक हुआ शूर हो, थारी० ॥४॥

पच महाव्रत परगडा, पाले निर-अतिचार हो, स्वामी।
समिति-गुपतिकर सोभता, गुण सत्तावीस धार हो, थारी० ॥५॥

आप तरता श्रावक तारता, श्रावक तरता आप हो स्वामी।
देवलोक दीसे खरो, लेस्यो शिवपुर प्रताप हो, थारी० ॥६॥

पोषा सामायिक नवर घणा रे । जणगिणती न पचखाण रे ।
कराया गांव-नगर घणा देश मे रे । भव जीवां रा हुआ भाग रे । दी० ।८।

चौथा आरा मे मुनि कई हुवा रे । जिन क[illegible] निरमाय रे ।
पाचमे आरे हद करणी करी रे । दीपने आगम नेहचो थाय रे । दी० ।९।

गिहनी परे एकल विचरिया रे । [illegible] मे [illegible] रे ।
लाढा गुणतीस वर्ष पालियोरे । अने चौमासो धारानगर कीन रे । दी० ।१०।

वेदना उपनी डील मे आणने रे । चौमासो पूरण निहा थाय रे ।
तो पिण विचरत मुनिवर आवियारे । जावरा सहर के माय रे । दी० ।११।

छानो सथारो तीन दिवसनो रे । स्वमुख किधो पचखाण रे ।
चार घडी आयू बाकी रया रे । सथारा री कही मुख वाण रे । दी० ।१२।

लोका तो आडवर कीधो घणो रे । जिन मारग मे हुवो उद्योत रे ।
फागुण विद बीज भोम छे रे । साल गुनीसे तेरे आयु होत रे । दी० ।१३।

एह पुरुषा ने नित-नित वदियेरे । जिनमारग मे चढायो सोभ रे ।
'प्रेम' कियो छे निज धर्म थी रे । टाली छे ममता लोभ रे । दी० ।१४।

कोठारी सूरजमल रतलाम मे रे । भिन-भिन जाणे अग-उपग रे ।
तीरथ चारो ही सेवा खरी रे । ज्ञानदान दियो एकरग रे । दी० ।१५।

(१०) श्री सूरजमलजी महाराज

(लावणी—श्री विजयकँवर)

श्री सूरजमल्ल-सा साधु जगत मे विरला ।
श्री तपसीजी का शिष्य विनयवत सरला ॥ टेर ॥

एक उत्तम नगरी रतनपुरी परसिद्धी ।
जाने त्याग दियो घरबार कि दीक्षा लीधी ॥
तुम तज दी ममता-मोह, तिसना तोडी ।
स्वामी परसरामजी पास रहे कर जोडी ॥
तुम रहे जगत मे जान भाव ऊपरला—श्री तपसी० १

थे शम-दम-सयम-वरी क्षमामे चूरा।
तुम आलस तजदी दूर ज्ञान का पूरा॥
मन धरियो निर्मल ध्यान ज्ञान मे लीना।
थाँ चित्त सतोप अपार अव्यातम भीना॥
तुम उघड्या अतर नैन जोतिका वरला–श्री तपसी २

तुम चित्त समुन्दर लहर, शील का दरिया।
नैना नही निरखी नार, फंद परहरिया॥
है वरती सामे ध्यान, कठिन तुम किरिया।
तुम मुख से सुन उपदेश, घणां जन तरिया॥
तुम ज्ञान तणी झड लगी, पाणी जु परला-श्री तपसी० ३

थाँ तपस्या कीधी खूब सवत्सर वारे।
तुम गाव थादला माय किया भव पारे॥
जहाँ वसे विवेकी लोग कीरत बहु कीधी।
तुम शोभा जगमे वधी, कीरत परसिद्धी॥
तुमे 'प्रेम' नमै कर जोड़, भाव भीतरला–श्री तपसी० ४

(११) आचार्य श्री मोखमसिंहजी महाराज

(अ)

(राग–वीर सुनो म्हारी विनती)

श्री पूज्य मोखमसिहजी, मुज हिवडे हो वसिया मुनिराज के।
नाम लिया सुख सपजे, श्रीसघ मे हो गुरुवर सिरताज के॥
श्री पूज्य मोखमसिहजी ! १

सवत् अठारह गुणसीत्तरे, गुरु जनमे हो प्रतापगढ माय के।
माघ मास दिन पूर्णिमा, शुभ नक्षत्र हो मघा मे प्रगटाय के॥ २

मात विरजावाई जेहनी, तस कूखे हो लीनो अवतार के।
पिता श्री नेमीचन्दजी, कुल उत्तम हो हैं जस पोरवाड के॥ ३

केशवजी गुरुवर भला, तस पासे हो सुणियो उपदेश के।
सवत् अठारह नेऊँ मे, जिन त्यागो हो जगनो सहु क्लेश के॥ ४

लोक सज्ञा के जेता

(आ)

उत्तम नर वे हुए जगत मे, पुण्यशील अभिराम ।

मोखम गुरु को कोटि प्रणाम ॥

मन को जीता, तन को जीता, तज कर पाप तमाम–मो० ॥ टेर ॥

करते कई नर कौतुक आले । नाम कमाने काम निराले ॥
जो ऋषि-मुनि पर कामन डाले । विरले उस मद का मद गाले ॥
ऐसे परम पूज्य गुरुवर की, गाथा है गुणधाम—मो० १

ऊँचा तन था, ऊँचा सयम । पक्की वय, मन पक्का कायम ।
उजला मुखडा, उजला जीवन । पदरज पावन छाया पावन ॥
मोखमसिह पूज्यवर प्यारे, अटल शान्ति-विश्राम—मो० २

स्थिर रतलाम मे आप विराजे । देह थकी पर सिंह सम गाजे ।
तारकादि मुनि सेवा साजे । जिन ध्वनि के नित मगल बाजे ॥
क्षेत्र-गच्छ-यश-मोह जयी वे, पूज्य चरण शिवकाम—मो० ३

हुई कृष्णमुनि को अभिलाषा। गुण गाने जीवन-जिज्ञासा।
वोले-'भन्ते ! आत्म-कहानी। कहिये माँ-पितु-परिचय वानी'॥
पूछा पूज्य ने-'कहो क्या है, आत्म कथा से काम ?'—मो० ४

'चाह हुई है गुणगीति वनाऊँ। जन-जन मे गुरु-प्रीति जगाऊँ'।
'क्या जिननाम वत्स ! है खूटे। रागी-राग के झगडे झूठे॥
प्रभुकी भक्ति मे झूम-झुमाओ, हरलो मनका घाम'—मो० ५

'उदय-पूज्य की पर गुण-गाथा। गाते लोग झुकाकर माथा'।
पूज्य प्रवर तव हँसकर वोले-'भले गुणी के गुण वे तोले॥
पर देखादेखी मत उलझो, होड करो मत श्याम !'—मो० ६

घटना है यह भव्य अनोखी। जिसमे वाते चोखी-चोखी।
व्यक्ति-राग-यश मे मत भूलो। होडाहोडी में मत झूलो॥
'अणु' इस युग के साधक को दे, यह सदेश ललाम—मो० ७

(१२) घोर तपस्वी श्री स्वरूपचन्दजी महाराज

(अ)

राग—लावणी—कहू धन धन छवि थारीजो

कहू-धन धन तपधारीजी, चौथा आराके मझारी।
धन धन्ना अणगारी, श्री मुख से उच्चारीजी॥

प्रकट सुनो नर-नारी, आरे पचमे भी जागी, स्वरूपचन्द तपधारीजी ॥टेर॥

मुनि गुण का दरिया, महाराज ! मुनि गुण का दरिया
क्षमा पूरण भरिया, पाले निर्मल किरिया, महाराज ! पाले०

(चलत)— पूज्य मोखमसिहजी की सम्प्रदाय के माही,
गुरू मयाचन्दजी भेट्या है सुखदाई।
ससार को झूठा जान, दिया छिटकाई,
सजम ले कीनी मौन यही अधिकाई॥

(दोहा)- तप कर आतम को दमी, वमी कषाय की नार ।
दश विधि साधू धर्म मे, मगन रहे अनगार ॥
आहार काज मुनि राखिया, षट् द्रव्य को परमाण ।
एक चादर तन ओढवा, जावजीव लग जान ॥
तपस्या की गिनती कहू, सुनजो चतुर सुजान ।
वर्ष दो तेले तप साध्या, फिर बेले-बेले जान ॥

एक से एकवीस ताईजी, करी लड एक नितराईजी ।
छूटी तपस्या कहू सारी, लीजो हिरदा मे धारी,
सुनता हर्ष अपारीजी, कहू-धन धन तपधारीजी० ॥१॥

तीस एकतीसने बत्ती, महा० तीन० तेंतीस चोतीसने पेंती ।
फिर कीधा सैंती, महाराज ! फिर कीधा सैंती ॥

(चलत)- चालीसे लेकर तप चुम्मालिस ताई,
फिर पैंतालिस दो दफे किया मुनिराई ।
एकावन दिन इक थोक दिया मुनि ठाई,
फिर बावन दिन का चौविहार किया मुनि राई ॥

(दोहा)- चढता ही परिणाम से, सूर-वीर ऋषिराय ।
आज्ञा ले श्री पूज्य की, दिया सथारा ठाय ॥
जैसे तरु से टूट के, पडे जमी पे डाल ।
ऐसी समता धारके, पोढ्या पौषधशाल ॥

साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, चार तीर्थ सुखकार ।
सेवा करता आपकी, सोहै ज्यो गुलजार ॥

कई गावोका भायाजी । दर्शन करने को आयाजी ।
सूरत मोहन गारी, सोहे चद ज्यो दीदारी,
जाऊँ जाकी वलिहारीजी, कहू धन ॥२॥

छबि वरणी नही जावे, महाराज ! छवि वरणी नही जावे ।
काया सुन कपावे, धन-धन मुनिका गुण गावे, महा धन ॥१॥

(चलत)-है तपमे पूरे, करे कर्म को चूरे,
मोह माया का फद किया सब दूरे।
तन भीतर व्यापी अतुल वेदना घोरे,
ठसको नहिं कीनो रया ध्यान मे शूरे ।।

(दोहा)-अषाढ सुदी नवमी दिने, रजनी के दरम्यान।
मोखम पूज्य बुलाय के, पाया देव-विमान ।।
चौवीस वर्षतक यो मुनि, पाल्यो सजम-भार।
रतनपुरी के मायने, वरत्या जय-जयकार ।।
जय जयवती सग लहै (?) सोरठ देश मझार।
तपसी की कीरत भणी, कीनो छद तैयार ।।
गुरु जवाहिरलालजी, सौहै शिष्य नन्दलाल।
चौथमल कहे धन मुनि, चरण नमूँ तिरकाल ।।

श्री तपसी-गुण गायाजी। बैठ सभा मे सुनायाजी।
साल छपन मझारी, अषाढ सुद चौदश भारी,
करी जोड़ हितकारीजी, कहू-धन धन तप धारीजी० ।।३।।

(आ)

(राग-खबर नही या०)

तपस्वी खूब कसी काया रे, तपस्वी खूब कसी काया।
स्वरूपचन्द महाराज ! आपने बावन दिन ठाया ।।टेर।।
वदनावर मे जन्म लियो है, रामचदजी तात।
धन-धन माता मानीबाई, ओसवश विख्यात ।।१।।
गुन्नीस्से छह मे जन्म आपका, जैनधर्म कुल माय।
साल तेतीस मे सजम लीनो, तजा जगत दुखदाय ।।२।।
छवीस वर्ष की हुई अवस्था, पाया परम वैराग।
मात-पिता से आज्ञा मागी, सजम से अनुराग ।।३।।
आज्ञा नही दी घर से निकल्या, आया धार माही।
अधिक उत्सव से सजम लीधो, चढती पुण्याई ।।४।।

गीतारथ गुरु मयाचन्दजी, सेव्या चितलाई ।
पुद्गल-गुणको नश्वर जानी, तपस्या तन ठाई ।।५।।
एक से लेकर तेवीस ताई, अनुक्रमे चढना ।
एकतीस से पैंतीस ताई, क्रमवही करना ।।६।।
एक थोक कियो पैंतीस को, चढता ही परिणाम ।
चालीस से पैतालिस ताई, तपस्या की अविराम ।।७।।
गाव बदनावर कियो चौमासो, ज्ञानी गुरु के पास ।
करी तपस्या एकावन की, पूरी मन की आस ।।८।।
गुरु-हुक्म ले आया रत्नपुरी, मोखमसिंह गुरु पास ।
तप-जप-संजम पाले अधिको, मन मे अति हुल्लास ।।९।।
तेले-तेले किया पारणा, वर्ष दोय ताई ।
वर्ष द्वादश किया पारणा, छठ-छठ तप ठाई ।।१०।।
पाच अठाई पद्रह-पद्रह, अधिक वार ठाया ।
पुद्गल की ममता नहीं मन मे, समता रस लाया ।।११।।
चादर एक चोल पट्टक दो, वारह मास राखे ।
पोप-माह की शीत सहे तन, ध्यान अचल ध्याके ।।१२।।
पट् द्रव्य का आगार मुनी के चार विगय का त्याग ।
जावजीव तक मौन धरी है, चित्त अधिक वैराग ।।१३।।
छठ पारणे इक दिन तपसी, सुख साता माई ।
काया चेतन भिन्न जानके, वावन तप ठाई ।।१४।।
दिन-दिन चढती चित्तकी धारा, धन्य धैर्य साही ।
चार आहार का त्यागन कीना, जावजीव ताई ।।१५।।
पाँच दिवस बीता से तपसी, छट्ठा दिन माई ।
अर्ज करे–'श्री पूज्य ! सथारा, करवा मन आई' ।।१६।।
समझाया अति पूज्य विविध से, माने एक नाही ।
'अवसर म्हारो आय गयो है, पाच दिना माही' ।।१७।।
पूज्य गुरु श्री सुनकर वोल्या–'करो जिम सुख थाई ।
शूर वीर हो आज्ञा लीनी, हर्प अधिक लाई ।।१८।।
जीव सर्व खमाय प्रेम से, समता सुध लाया ।
पूर्व दिशा मे बैठ पूज्य मुख, सथारा ठाया ।।१९।।

छट्ठा दिन की हुई यामनी, तीन वजे अनुमान।
निजमुख से चहुँ शरणाँ लेता, ध्यान सिद्ध भगवान् ॥२०॥
अन्त समय निज जान पूज्य को, बुलवाया निज पास।
'खमजो मुज अपराध'—कहत ही, लियो स्वर्ग मे वास ॥२१॥
संवत गुन्नीस्से साल छपन मे, पाया स्वर्ग विमान।
अषाढ सुद नवमी दिन तपसी, किया आतम-कल्याण ॥२२॥
पूज्य मोखमसिंह प्रसादे, तपसी गुण गाया।
ऐसी तपस्या उदय होय तो, सपति निधि पाया ॥२३॥

(इ)

राग–ख्याल

धन-धन तपसीजी, आछो दीपायो मारग जैन को।
गुरु स्वरूपचन्दजी, भलो रे ! बतायो मारग मोक्ष को ॥टेर॥
मालव देश के मायँ मनोहर, जन्म बदनावर माय।
धारा नगर मे संजम लीनो, पुण्य प्रबल प्रकटाय हो, ॥धन० १॥
रामलालजी पिता आपका, मानीबाई मात।
रतनकूँख धारणी जनमे, पुण्यवान साक्षात् हो, ॥धन० २॥
शुद्ध महाव्रत पंच पालता, पाले पंचाचार।
नीची दृष्टि गजगति चाले, करता उग्र विहार, हो धन० ॥३॥
रतनपुरी के महाभाग्य से, आप बिराजा आय।
पूज्य श्री गुरु मोखमसिंह के, चरणा शीस नमाय, हो धन० ॥४॥
बेले-बेले करे पारणा, रहे मौन के माय।
नर-नारी दर्शन को आवे, देवे मुख मलकाय, हो धन० ॥५॥
आयू अवसर देख तपस्वी, बावन दिन तप ठाय।
कार बाँध सथारो कीधो, बीच विराज्या जाय, हो धन० ॥६॥
सब मुनि सेवा करे हर्ष से, बैठा चरणाँ पास।
चारो तीरथ खडा भक्ति से, गावे गुण हुल्लास, हो धन० ॥७॥
गाँव-गाँव के श्रावक-श्राविका, आवे दर्शन काज।
उमँग सभी के दिलमे अति ही, धन्य तपस्वी राज, हो धन० ॥८॥

अषाढ सुदी नवमी दिन तपसी, सोमवार की रात।
तीन ऊपर बीस मिनट पर, त्याग्यो अस्थिर गात, हो धन० ॥९॥
चौथा आरा की आप वानगी, दी पचम मे दिखलाय।
तपसी के गुण गाता वरते, जय-जयकार सवाय, हो धन० ॥१०॥
संवत् गुन्नीस्से छपन माही, सांचरोद के माय।
श्रावण सुद पचमी दिन मे, 'जड़ावचन्द' गुण गाय, हो धन० ॥११॥

(१३) पूज्य श्री नन्दलालजी महाराज

(राग नेहन-गीतां रे !)

नित गुण गाओ रे ! नित गुण०
श्री नद सूरीश्वर-ध्यान लगाओ रे ॥टेर॥
मालव मजुल जनपद-पत्तन, साचरोद सुखकारी रे !
तात नगीनालाल आपके, अमृत महतारी रे ॥१॥

सवत् गुन्नीस्से साल गुन्नीस मे, शुभ वेला शुभ वारी रे।
जन्म लियो श्री पूज्य आपने, मङ्गलकारी रे ॥२॥

मुनि गिरधारीलाल गुरु से, बोधामृत सुन पाया रे।
करी सगाई त्याग हृदय वैराग्य समाया रे ॥३॥

गुन्नीसे चालीस साल मे, धारा नगरी माही रे।
सत्तप सयम धारन कीना, कीरति छाई रे ॥४॥

इकवीस वर्ष की उमर माहिने, गुरुभक्ति चित्त लाया रे।
शान्त-स्वभावी महागुणाकर, तत्त्वज्ञ कहाया रे ॥५॥

गाम-नगर-पुर-पाटण विचरत, भव्य जीव समझाया रे।
अन्तिम अस्थिर जान देह, अनशन व्रत ठाया रे ॥६॥

सवत् गुन्नीसे साल गुन्यासी, तन का मोह हटाया रे।
रत्नपुरी मे ध्यानलीन हो, गुरु स्वर्ग सिधाया रे ॥७॥

तस पाटोधर पण्डित-भूषण, 'माधवमुनि' महाराया रे।
'सूर्यमुनि' कहे दिन-दिन जिनका, तेज सवाया रे ॥८॥

(१४) पूज्य श्री माधवमुनिजी महाराज

(राग–धन-धन जग मे वह नर-नार)

भव-भव-पातिक दूर पलाय, पूज्य मुनिमाधव-गुण गाने से ।। टेर ।।

सुन्दर स्वच्छ सकल शुभ गात,
निरखत जाहि नशत उत्पात ।
लखि नर-वृन्द अति हुलसात,
जैसे रक रत्न पाने से–भव० ।।१।।

भ्रम-तस-तोम तुरत उडि जात,
पुनि वर ज्ञान-भान प्रकटात ।
नित हृदि शाति-सौख्य सरसात,
जाके वैन-ऐन[१] माने से–भव० ।।२।।

पूत वर 'वशीधर' के आप,
तरते भवदधि जस जप जाप ।
बाढत दिन-दिन उग्र प्रताप,
'माधव'-नाम-ध्यान ध्याने से–भव० ।।३।।

जननी रायकोर सानद,
सवत् सिद्धि[८]-पक्ष[२]-निधि[९]-चद[१] ।
दीनो जन्म सुभग सुखकद,
पूरण पुण्य उदय आने से ।।४।।

ललित जस जन्म स्थान ललाम,
था अछनेरा नामक ग्राम ।
सुखद कवि 'पुष्प' पूज्य शुभ नाम,
जपिये भविक भव्य वाने से–भव० ।।५।।

(पूज्य श्री माधवमुनिजी के प्रति श्रद्धाजलियो मे से—)

(छप्पय) कुमति-केलि को वाधक, साधक स्वर्गपुरी को ।
भय-विभ्रम-तम रोधक, बोधक, स्वपद सूरी को ।।

पडितजन-सिर-सेहरा, तस पाटे हो हुआ मुनि रामचद ।
सवालक्ष छोडाविया, पेशवानृप से हो जिन कैदी-वृ द ।।९।।
तस पाटोधर दीपता, सूरीश्वर हो हुआ मानकचन्द ।
तस कुल-कमल-कलानिधी, दल्लाजी हो मुनिवर सुखकद ।।१०।।
षट्त्रिंशत् गुणयुत हुआ, तस पाटे हो चिमनाजी सूरि ।
मौड वैश्य मालव विषै, जिन किये हो जिनधर्मी भूरि ।।११।।
पूज्य नरोत्तमजी हुआ, तस पाटे हो तपसी सरदार ।
द्वादश हायन लग जिने, नही निद्रा हो लई पॉव पसार ।।१२।।
अर्द्ध रात्रि वीत्या पछे, नित्य करता हो निज आतम ध्यान ।
उर्द्ध्वपाद आसन करी, थित रहता हो इक प्रहर प्रमान ।।१३।।
कविकुल-मुखमडन हुवा, तस पाटे हो मेघराज मुनीश ।
तस शीष चुन्नीलालजी, जस जगमे हो यश विसवा वीश ।।१४।।
तस पद-पकज मधुकरू, मुनि मगने हो मेघमुनि चरित्र ।
गायो परमानद से, जस सुनता हो होय श्रवण पवित्र ।।१५।।
[९]निधि-[३]गुण-[९]नद-[१]शशी भलो, सवत्सर हो शुभ कार्तिक मास ।
सित पचमी बुधवार को, गुरु कृपया हो थयो सफल प्रयास ।।१६।।

—श्री मगनमुनिजी महाराज

तपस्वी श्री परसरामजी महाराज

(सवैया)

सन्त महन्त वडे गुण-सागर[।] आगर है जिन धर्म उजारे ।
पञ्च महाव्रत निर्मल पालत-जानत आठ अरि हु प्रजारे ।।
सूत्र बत्तीस प्रमाण किये, सत-तेज-प्रताप तरे अरु तारे ।
पारस अग वडे पुरुषोत्तम मोरत दोय मे स्वर्ग सिधारे ।।१।।
अनसन महाव्रत लेय उजागर, चार कषाय किये जिन कारे ।
मन-महामद-मोहकु मारत, सम्प्रति आतम-काम सुधारे ।।
जोग-जुगति वताय जसो जस (।) तपसी निज आप तरे अरु तारे ।
पारस अग वडे पुरुषोत्तम मोरत दोय मे स्वर्ग सिधारे ।।२।।
सवत अठारह सो जानिये ऊपर नेऊ के साल मे अनसन धारे ।
फागुन आदि वसन्त महाऋतु, था शशिवार जु देह सुधारे ।।

केसर चदन चोहत कपूर अनेक सुगन्ध मे देन विहारे ।
महामुनिराय महाव्रत लेकर मोक्ष दीय मे स्वर्ग सिधारे ॥३॥
महाजन आय समान मॅगाय, मुनीश्वर काज विमान बनाये ।
सोवन अम्बर वस्त्र पटम्बर, लेकर गध-सुगन्ध चढाये ॥
मोतिय-लाल रु सोवन-पुष्प उछालत कौतिक ओच्छव वाये ।
आठम तिथि विदि शशिवार मुनीश्वर-अनि सुरवर्ग सिधाये ॥४॥
रतनागर (रतलाम) क्षेत्र-उजागर राजित नृप महावल्लभ के वारे ।
सेठ सुजान सुदे भगवान बडो पुण्यवान जो मान वधारे ॥
कहे कविराय गुणी-गुण गाय, बधाय सिरी सघ दान दिया रे ।
कीरति आदि अटल रहे, जब होत चहुँ दिश पचमे आरे ॥५॥

—सेवक टोलाजी कृत

(१९) मालव केसरी मुनि श्री सौभाग्यमल्ल-प्रशस्ति.

(शार्दूल-विक्री-डितवृत्तम् १, २, ३ तथा ४)

वीरो धर्मधुरन्धरो गुणनिधि. श्री धर्मदासो गृही ।
श्रुत्वा धर्मकथामृपीश्वर-मुखाद् वैराग्यभाव गत ॥
देशे गुर्जरनाम्नि पट्टनगरे ख्यातेऽमदावादके ।
ज्ञाताधर्मकथापुर सरमय जात स्वय दीक्षित ॥१॥

तच्छिष्या बहवश्च सूरिपदवी प्राप्ता स्वकीयैर्गुणै-
र्याताधर्मप्रचारकार्यनिरता आशासु सर्वासु ते ॥
तत्र स्थापितवन्त एव सुदृढ चारित्रशक्त्या स्वया ।
कीर्ति प्रापुरनश्वरा शुचितरा श्रामण्यसघे स्वकं ॥२॥

तेषा मुख्यतमो विशिष्टचरित ख्यातश्च सर्वत्र य ।
सघो विस्तृततामवाप जगति श्री धर्मदासस्य वै ॥
आचार्यप्रवरश्च तत्र विदित श्री नन्दलालोऽभवत् ।
तत्पट्टे विरराज माधवमुनि-र्विद्वत्सु सम्मानित ॥३॥

मुनेर्नन्दलालस्य शिष्य प्रसिद्धो, मुनि कृष्णलालोऽतिशान्तश्च दान्त ।
तदीयश्च शिष्योऽस्ति सौभाग्यमल्लोऽभवद्दीक्षितो य पुरे खाचरोदे ॥४॥

ख्यातो मालवकेसरीत्युपचया ज्ञातो महाराष्ट्रके।
मैसूरे तमिले तथान्ध्रविषये देशे तथा गुर्जरे॥
हाडोत्यां च मरुस्थले व्रजवने पंजाबदेशे च यो-
धर्मार्थे व्यहरन् मुनि. स जयतात् सौभाग्यमल्ल. सदा ॥९॥

—श्रीमान् नानालालजी रूनवाल, बी ए.
झाबुआ (म. प्र)

(१७) साध्वियों की गुण-गाथाएँ

(प्रभाव शालिनी साध्वी श्री वीराजी महाराज)

सिद्ध-गुरु के चरण नमि, मागूं मैं अरदास, स्वामीजी !
गुण गाऊँ गुणवतना, मनमे अधिक उल्लास, स्वामीजी !
कियोजी संथारो भाव सुं ॥१॥

कोणी सरदा माय सामला, कुण नगर मझार, स्वामीजी।
कुण आरजाजी शूरा हुवा, जिण पचख्या तीन आहार, स्वामीजी ॥२॥

सरदा श्री पूज धर्मदासजी नी, धारा नगर मझार, स्वामीजी।
आरजा वीराजी शूरा हुआ, पचख्या तीन आहार, स्वामीजी ॥३॥

माता राजीबाई उदर वस्या, कला चौधरी कुल अवतार, स्वामीजी।
वैन चौधरी भगोतीदासनी, जिण शुभ कीदा परिणाम, स्वा० ॥४॥

गुराणी नाथाजी जाणजो, गुरुबेन अजबजी वखाण, स्वामीजी।
सेवा-भगती बहुत करी, केता करूं वखाण, स्वामीजी ॥५॥

थिवर नी सेवा करता थका, टूटे करमनी कोड, स्वामीजी।
उत्कृष्टो रस भोगवै, बांधे तीर्थङ्कर गोत, स्वामीजी ॥६॥

सलेखना सथारो कर्यो, तप करवा ना परिणाम, स्वामीजी।
एक पक्खना एकातर करी, वेलो करियो ताम, स्वामीजी ॥७॥

पारणो करी तेलो कर्यो, चोलाना परिणाम, स्वामीजी।
मन वच काया दिढ करी, पचख्या तीन आहार, स्वामीजी ॥८॥

माह सुदी नवमी भली, वार भलो सुकरवार, स्वामी।
सरे वफोरे जाणजो, पचख्या तीनी आहार, स्वामी ॥९॥

साधु ने साधवी मल्या, श्रावक श्राविका जाण, स्वामीजी ।
चारी तीरथ ने देखता, पचख्या तीन अहार, स्वामीजी ॥१०॥

उमर वरस पिचोतरनी, ते तो निश्चै किम केवाय, स्वामीजी ।
दीक्षा वरस तिरतालीसनी, तप थी शुभ राख्या परिणाम, स्वामीजी ॥११॥

समत अठारह अट्ठावीस मे, शूरा हुआ अणगार, स्वामीजी ।
शूर खतरी जिम रण चड्या, हाथ मे खाडा धार, स्वामीजी ॥१२॥

फागण विदी नवमी भली, वार भलो सुकरवार, स्वामीजी ।
पोर पाछला दिवस नो, दिन पदरमो धार, स्वामीजी ॥१३॥

धन्य दिन धन्य वलि घडी, स्वामी धन थारो अवतार, स्वामीजी ।
छेला सास उसास थी, राख्यो शुभ परिणाम, स्वामीजी ॥१४॥

मन्दिर मे दीपक जिसो, देवल देह वखाण, स्वामीजी ।
ससिकला जिम सोभतो, तिम सथार सुजान, स्वामीजी ॥१५॥

नाम केसरबाई जाणजो धारा नगर मझार, स्वामीजी ।
सज्झाय जोडी सोभती, गुणमाफक विस्तार, स्वामीजी ॥१६॥

(१८) श्री मैंनकुवँरजी महाराज और उनकी सतियाँ

श्री मेनकुँवर-गुण गाया करो ।
पूरण भक्ति से शीस झुकाया करो ॥टेर॥

सब साध्वियो मे है शिरोमण, बालवय सयम लिया ।
है पडिता प्रवर्तनी अभ्यास आगम का किया ॥
ऐसी सतियो का ध्यान लगाया करो पू० । १ ।

शिष्या प्रथम भद्रिक परम फूलकुँवारी थी सती ।
है राजकुँवर सत् धैर्यमय विज्ञान मे निर्मल मती ॥
अमृतवाणी का झरना बहाया करो पू० । २ ।

दाखाकुवर सद्भक्ती से करती विनय निशदिन रहे ।
सूरज कुवारी परमार्थ-हित नि स्वार्थ हो वाणी कहे ॥
सती प्यारेकुवरजी को ध्याया करौ पू० । ३ ।

केसरकँवर चत्तरकँवर करती विनय सद्भाव से।
आनन्द मानकँवर अरु सोहन मुगन अतिचाव से॥
जिनकी वाणी मे चित्त रमाया करो पू०।४।

सज्जन तथा मोहन सु सज्जन, गेद वल्लभ है सती।
श्री चाद वा कमलाकुमारी, है सदा निर्मल मती॥
करके भक्ती सुजान वढाया करो पू०।५।

(१९) प्रवर्तिनी श्री महताबकुँवरजी के देहान्त पर गुरुदेव के उद्‌गार

महती विदुषी वर, भारती सुवक्त्र राजे,
हनत करम-दल, ज्ञान-गुण गाजती।
तारे भवि जीव सत्य जैन उपदेश देय,
वक्ता-गुण मृदुभाषी, अज्ञ-तम भाजती॥
कर्म वीरा वसुमती, सौम्यतादि भरे गुण,
वरिष्ट-गरिष्ट-वर्ण-रूप-तेज राजती।
रमा-सी विभा-सी खासी, आज तन त्यागकर,
जीवन सफल कर, स्वर्ग मे विराजती॥१॥

श्रीमती मेताव सती, तेरा अवसान सुन,
हुवो दु ख अमित अखिया नीर झारती।
मातहु को साथ लेय, वालवय व्रत धार्यो,
वाल ब्रह्मचारिणी हो मोह-मद मारती॥
राज-महाराजन को, दियो प्रतिवोध अति,
पीयूष समान वाणी मृदु सो उचारती।
स्वप्न के समान आज, महताव कर विश्व,
सुरपुर माहे गई, महताव भारती॥२॥

—स १९८५, चैत्र शु १०, अहमद नगर।

परिशिष्ट ४

ग्रन्थ-प्रदान-प्रतिलिपि

पूज्य श्री धर्मदासजी म के मालव-शाखा के सतो ने ग्रन्थो के भडार नही बनाये। उन्हे आवश्यकता होती तो वे ग्रन्थ, शास्त्रादि अपने पास रखते और आवश्यकता नही होती तो किसी भी सन्त आदि को उनकी आवश्यकतानुसार दे देते थे। रतलाम-शाखा के तपस्वी सत पूज्य श्री परसरामजी म ने कई सन्तो को शास्त्र, ग्रन्थ आदि प्रदान किये थे, जो कि उन्हे अपने कई गुरुभाइयो या अपने परिवार के अन्य सतो के देहान्त के बाद उपलब्ध हुए थे। उन्होने ग्रन्थो का सग्रह करके, उनपर किञ्चित् भी आधिपत्य नही रखा। ग्रन्थ प्रदान की यादी की प्रतिलिपि नीचे दी जा रही है—

'सामीजी श्री १०८ तपसी श्री फरसरामजी साल्तर की प्रता साधुजी ने दीनी जीरी विगत—स १८८८ जेठ वदी ६—

सामीजी सतोदासजी ने अतरी प्रतां दीनी—

(१) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, पा २७२।
(२) ज्ञाता, पा २१५।
(३) उपासग [दसा] पा ९१,
(४) अतगड पा ६४।
(५) आचाराग पा ११४।
(६) उत्तराध्ययन कथाकी पा १६४
(७) विपाक पा २११।
(८) उत्तराध्ययन पा २६२
(९) दसवैकालिक पा ९६।
(१०) कल्पसूत्र पा १७२।
(११) जम्बू पइन्नो पा ३२।
(१२) रत्नचूड मणीचूड चौपाई ७६
(१३) गोतमपुच्छा पा ७०।
(१४) ढाल सागर पा १२१।
(१५) महादण्डक पा २४।
(१६) अनुत्तरोववाई।
(१७) दसवैकालिक पाठ का पा ८६।

सामीजी रुगनाथजी ने प्रतां दीनी—

(१) भगवतीजी, (२) ठाणागजी, (३) सूयगडाग दोइ,
(४) अतगड, (५) ढाल सागर पा १७५, (६) जीवाभिगम पा ३२९
(७) जम्बूदीपपन्नत्ती, (८) निरयावलिका पा ७३, (९) उत्तराध्ययन पा २३०

(१०) दसवैकालिक, (११) सग्रहणी पा ६६, (१२) श्रीपालरास, (१३) गोतम पुच्छा की चोपी पा १६५।

सामीजी तुलसीदासजी—(१) राय प्रश्नीय पा २२९।
सामीजी वीरभाणजी—(१) उववाइय पा १६१, (२) अतगड पा ७५।
सामीजी रतनचन्दजी मारवाड़ी—(१) समवायाग सूत्र पा १२३
सामीजी केसुजी—(१) विपाक पा १२९।
आरज्याजी मानकुंवरजी—(१) दशाश्रुतस्कध पा ९६।
सामीजी परसरामजी कोटावारा—(१) नदी सूत्र पा ७६।
सामीजी गोविंदरामजी—उपासगदसा पा १२३।
सामीजी सुखलालजी—(१) अतगड पा ६५।
सामीजी अनोपचदजी—(१) सूयगडाग पहलो पा ११९।
आरज्याजी साणाजी—अनोपचन्दजी का टोला की (१) बृहत्कल्प पा ६०
सामीजी सीतारामजी—(१) उपासगदसा पा ७१।
सामीजी लालचन्दजी कोटावारा—(१) सूयगडाग पेलो पा ९२।
सामीजी नन्दरामजी—(१) जबूदीप प पा २४९, हा रुगनाथजी।
सामीजी गुणेशरामजी—(१) अनुत्तरोववाई पा. २३।
(२) अतगडजी पा ५२।
सामीजी उमेदरामजी—(१) सग्रहणी पा ३२।
(२) दडक पा ७, (३) बोलचाल पा २५।
आरज्याजी मोताजी—(१) प्रश्न व्याकरण पा. ५८।
(२) ढाल सागर पा १८३।
स्वामीजी मेघराजजी—(१) चोपाई चन्दकी पा १७४।
मेता मोतीने—(१) कर्मग्रन्थ पा ८३।
झुमरदासजी नायटा—(१) त्रिलोकसार।
सेवग गम्भीरचन्दजी—(१) क्षेत्रसमास पा १४, (२) अनुत्तरोववाई पा २९
वरदाजी सिआल—(१) नवतत्त्व पा ३६।
नाथाजी सगवी—(१) गुणठाणा पा. १६।

कालुजी बदीचन्दजी ने—(१) कलपसूत्र ।

कर्मचदजी रोडजी सामी-(१) महादडक पा ५६ ।

पदमाबाई —तवन को थोकडो, पा ४९ ।

मोतीजी झाडमता —वैराग्य शतक पा १६ ।

सामीजी दुलीचन्दजी—तुलसीदासजी रा टोला का (१) वैराग्यशतक पा १२

कर्मचन्दजी —(१) नवतत्त्व पा ९ ।

आरज्याजी रुखमाजी—परसरामजी कोटावारा का (१) दसवैकालिक पा ४९

सा अमरजी धनजी—(१) कल्पसूत्र पा. १२५ ।

सा बदीचदजी रूपचदजी—(१) चोपी मानतु ग-मानवती पा ५० ।

आरज्याजी मेवाजी —(१) रास धनजी को पा ५३ ।

आरज्याजी मनाजी —(१) उत्तराध्ययन पा २५३ ।

आरज्याजी मोताजी —(१) नोकार का रास पा ३४ ।
(२) गोतमपुच्छा पा ३५ ।

मूलचन्दजी दलाजी सामी ने सास्तर दीना, जीरी विगत—

(१) उत्तराध्ययन कथावारी, (२) उत्तराध्ययन विना कथा की,
(३) दसवैकालिक, (४) अनुयोग द्वार पा २०४ ।
(५) नदीसूत्र, (६) उववाई, (७) राय प्रश्नीय, (८) जीवाभिगम पा ६३९
(९) पन्नवणा पा ३४२, (१०) जम्बूदीप पनत्ती, (१५) निरयावली का ५ शास्त्र
(१६ आचाराग दोइ, (१७) ज्ञाता सूत्र पा ३०१, (१८) सूयगडाग दोइ,
(१९) उपासगदसा पा ४९, (२०) अनगड, (२१) अनुत्तरोववाई,
(२२) प्रश्न व्याकरण, (२३) निशीथ, (२४) बृहत्कल्प, (२५) व्यवहारसूत्र,
(२६) दशाश्रु त स्कध, (२७) आवश्यक, (२८) नवतत्त्व, (२९) जम्बू-चरित्र,
(३०) अजना की चोपी, (३१) भक्तामर, (३२) ढाल-सागर,
(३३) रामचरित्र, (३४) कल्पसूत्र, (३५) सग्रहणी, (१) क्षेत्र-समास ।

दलाजी ने न्यारी दीनी, जीरी विगत—

(१) उत्तराध्ययन, (२) दसवैकालिक, (३) नवतत्त्व ।

जुमले प्रता छोटी-मोटी करने अडतीस दीनी छे। सामीजी तपसी परसरामजी (ए) । ३ बीजा पान मे। ४१ जुमले।

सामीजी भेराजी सदाजी—(१) दशवैकालिक पा ४५, (२) चोपी रत्नचूड-मणीचूड पा. ४६, (३) समत्त-सत्तरि पा ५८।

पन्नालालजी को चेला लावलजी (?)–(१) उत्तराध्ययन पा १३० बालावोध।

शिवलालजी कोटावाला—(१) सूयगडाग पचपाटी पा ६६।

आरज्या वगतावरजी –(१) चद की चोपी पा ६१।

सामीजी कर्मचदजी रोडजी—कानजीमुनि का (१) उपदेशमाला पा. ७९।

सामीजी नरसीघदासजी— (१) रत्नचूड-मणीचूड की चोपी पा ४९। (२) शालिभद्र की चोपी पा. २९।

सामीजी मुकनाजी वगताजी—(१) ठाणाग दीनी।

सामीजी नन्दरामजी—(१) अनुयोग द्वार।

पडता ११५ (१२२) एक सो पन्नरा-अतरी परता तपसी परसरामजी साधा ने दीनी, रजाबदी सु । दसकत परसराम का छे।

लुणकरणजी सामी कोटा का—(१) दसवैकालिक पा ४९, (२) रामजस पा. ७३, (३) रत्नचूड-मणीचूड पा ४६, (४) प्रदेशी की चोपी।

डूगरसीजी का चेला मयाचदजी सामी—(१) शालिभद्र पा २, (२) मयण-रेहा पा ३, (३) अणुत्तरोववाई पा. ११, (४) दानकुलक पा ९, (५) चेलणा को चौढाल्यो, छुटक पाना।

लूणकरणजी की आरज्या ने—(१) दसवैकालिक पा ६७, (२) एलायची की चोपी, (२) चदणमलयागिरी की चोपी।

पूज्यजी चमनाजी ने—(१) उत्तराध्ययन-दरियापुरी पा २५३, (२) जबू पईन्नो, (३) भगवती को यंत्र, (४) द्रौपदी की चोपी।

नदरामजी प्रेमजी ने—(१) समवायाग पा २७२, (२) प्रश्न-व्याकरण पा ५९

दायलाजी के ताइ—(१) उत्तराध्ययन पा २१२, (२) भगवती यत्र पा १४

हुकमीचन्दजी ने—(१) भगवती पा ४०४।

गोविंदरामजी का चेला गजाननजी—उत्तराध्ययन पा २३१।

कारण-कार्य मे एकरूपता-स्थानकवासी परम्परा सावद्य क्रियाओ को, भले ही वे धर्म के हेतु ही क्यो न की जा रह' हो, सावद्य ही मानती है। हिंसा, मृषावाद आदि से युक्त क्रियाओं को निर्दोष मानने मे—'वैदिको हिंसा हिंसा न भवति'—इस जैनेतर सिद्धान्त का प्रभाव मानती है। वस्तुतः धर्म के कारण रूप कार्य निरवद्य-निष्पाप ही होने चाहिए। श्वे मू जैनो की मान्यता इससे भिन्न है।

अपवाद मार्ग-निर्दोष अपवादो का प्रायश्चित नही होता है, किन्तु सदोष अपवादो का प्रायश्चित्त होता है। यदि ऐसा नही हो, तो साधना-मार्ग अव्यवस्थित हो जाता है। श्वे मू जैनो का इससे कुछ भिन्न मत प्रतीत होता है।

तीर्थ और तीर्थंकर-स्थानक वासी जैन सम्प्रदाये तीर्थङ्करो के द्वारा तीर्थ को नमस्कार' करने की वात मान्य नही करती हैं।

जड तीर्थयात्रा आदि ऐसी अन्य बातो मे भी मतभेद है।

दिगम्बरों से भेद—

दिगबर मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि को मानते है। **आगम**-दिगबर श्वेताम्वरो के द्वारा मान्य किसी भी आगम को गणधर-कृत नही मानते है। उनके मतानुसार समस्त अगशास्त्रों का विच्छेद हो गया है। वे अपने आचार्यो के द्वारा निर्मित शास्त्रो को ही मान्य करते है।

सवस्त्र सयति दिगम्वर परम्परा मे साधुके नग्नत्व पर विशेप जोर दिया गया है। वे वस्त्र-सहित साधुओ को असाधु मानते हैं। स्थानकवासी परम्परा नग्न और वस्त्रधारी दोनो प्रकार के साधुओ को साधु मानती है। उसके मत से-स्थविरकल्पी साधु वस्त्रधारी ही होते है और नग्न साधु जिनकल्पी मे ही होते हैं। किन्तु जिनकल्प का अधुना विच्छेद हो गया है। इस कारण सम्प्रति निर्वस्त्र साधुओ का अभाव है।

स्त्री-मुक्ति-स्त्री-मुक्ति का प्रश्न भी सचेल साधुता से जुडा हुआ है। स्त्री साधिका नग्न रह नही सकती है। अत दिगम्वर मतानुसार स्त्री की मुक्ति नही हो सकती है। स्था जैनो को यह मान्य नही है।

साणजी—(१) अनुत्तरोववाई, पा. १७, (२) जम्बूसामी की चोपी पा. २० (३) देवकी की चोपी पा २०, (४) अठारा पाप को ढाला पा ११, (५) एलायची-पुत्र पा १४।

परिशिष्ट ५

स्थानकवासी सम्प्रदाय का अन्य जैन सम्प्रदायो से भेद

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन से भेद—

मूर्तिपूजा—स्थानकवासी जैन सम्प्रदाये जिनप्रतिमा की पूजाको शास्त्र-विरुद्ध और भगवान् महावीर के निर्वाण के वाद चली हुई परम्परा मानती है। श्वे मूर्तिपूजक जैनो की मान्यता इससे विपरीत है।

मुखवस्त्रिका- स्थानक सम्प्रदाये धर्मसाधाना के लिए, मुखवस्त्रिका को मुखपर वाधना, शास्त्रानुमोदित और आवश्यक परम्परा मानती है। परन्तु श्वे मू जैनो को यह वात मान्य नही है।

आगम-प्रमाण श्वे जैन पचागी (मूल आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, टीका और दीपिका) ४५ आगमो को पूर्ण रूप से प्रमाणभूत मानते है। स्था जैन सम्प्रदायो को यह वात मान्य नही है। वे अगशास्त्रो को विशेष रूप से प्रमाणभूत मानते है और यो वे सामान्यत बत्तीस आगमो को विशेष आदर की दृष्टि से देखते है, परन्तु वत्तीस के सिवाय अन्य आगमो, निर्युक्तियो, चूर्णियो, टीकाओ, भाष्यो, ग्रन्थो आदि की, मूलागमो से अविरोधी बातो को भी स्वीकार करते हैं। पर उन्हे पूर्णत प्रमाणभूत नही मानते हैं।

आगम-अभ्यास—स्थानकवासी जैन सम्प्रदाये शास्त्राभ्यास के लिए तपश्चरण करना आवश्यक मानते हुए भी, सम्प्रति प्रचलित उपधान और योगोद्वहन की क्रियाओ को आगम-सम्मत नही मानती है। जब कि श्वे मूर्तिपूजको मे ये क्रियाएँ अति मान्य है।

शास्त्राभ्यास के अधिकारी—स्था जैन सम्प्रदाये श्रावक-श्राविकाओ को शास्त्राभ्यास के अधिकारी मानती है। परन्तु श्वे मूर्तिपूजको को यह वात मान्य नही है।

कारण-कार्य मे एकरूपता-स्थानकवासी परम्परा सावद्य क्रियाओ को, भले ही वे धर्म के हेतु ही क्यो न की जा रह' हो, सावद्य ही मानती है। हिसा, मृषावाद आदि से युक्त क्रियाओं को निर्दोष मानने मे—'वैदिको हिसा हिसा न भवति'—इस जैनेतर सिद्धान्त का प्रभाव मानती है। वस्तुतः धर्म के कारण रूप कार्य निरवद्य-निष्पाप ही होने चाहिए। श्वे मू जैनो की मान्यता इससे भिन्न है।

अपवाद मार्ग-निर्दोष अपवादो का प्रायश्चित नही होता है, किन्तु सदोष अपवादो का प्रायश्चित्त होता है। यदि ऐसा नही हो, तो साधना-मार्ग अव्यवस्थित हो जाता है। श्वे मू जैनो का इससे कुछ भिन्न मत प्रतीत होता है।

तीर्थ और तीर्थंकर-स्थानक वासी जैन सम्प्रदाये तीर्थङ्करो के द्वारा तीर्थ को नमस्कार' करने की बात मान्य नही करती है।

जड तीर्थयात्रा आदि ऐसी अन्य बातो मे भी मतभेद है।

दिगम्बरों से भेद—

दिगबर मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि को मानते हैं। **आगम**-दिगबर श्वेताम्बरो के द्वारा मान्य किसी भी आगम को गणधर-कृत नही मानते है। उनके मतानुसार समस्त अगशास्त्रों का विच्छेद हो गया है। वे अपने आचार्यो के द्वारा निर्मित शास्त्रो को ही मान्य करते है।

सवस्त्र सयति दिगम्बर परम्परा मे साधुके नग्नत्व पर विशेष जोर दिया गया है। वे वस्त्र-सहित साधुओ को असाधु मानते है। स्थानकवासी परम्परा नग्न और वस्त्रधारी दोनो प्रकार के साधुओ को साधु मानती है। उसके मत से-स्थविरकल्पी साधु वस्त्रधारी ही होते है और नग्न साधु जिनकल्पी मे ही होते है। किन्तु जिनकल्प का अधुना विच्छेद हो गया है। इस कारण सम्प्रति निर्वस्त्र साधुओ का अभाव है।

स्त्री-मुक्ति-स्त्री-मुक्ति का प्रश्न भी सचेल साधुता से जुडा हुआ है। स्त्री साधिका नग्न रह नही सकती है। अत दिगम्बर मतानुसार स्त्री की मुक्ति नही हो सकती है। स्था जैनो को यह मान्य नही है।

भादवे मे सवत्सरी मनाने की परम्परा' मानती है। इतर सम्प्रदायो का मत इससे भिन्न है।

पूज्य श्री धर्मदासजी म की मालदा-गुजरात की सम्प्रदाये श्रावक के 'श्रमणसूत्र' (प्रतिक्रमण मे) करने के पक्ष मे है, अन्य प्रदेश की सम्प्रदाये नही।

मालवे की सम्प्रदाये चातुर्मासिक और सावत्सरिक दो प्रतिक्रमण तथा कायोत्सर्ग मे दैवसिक-रात्रिक प्रतिकमण मे चार लोगस्स पाक्षिक मे बारह चातुर्मासिक मे बीस और सावत्सरिक मे चालीस लोगस्स के चिन्तन करने की मान्यता रखती हैं। इस विषय मे सम्प्रति श्रमणसघ मे सम्मिलित सन्त श्रमणसघ के नियम का पालन करते हैं।

कच्छ की कुछ सम्प्रदाये आठ कोटि से सामायिक करने का मत रखती हैं।

मालवा की सम्प्रदाये व्रत मे उदयतिथि और प्रतिक्रमण मे अस्ततिथि को मान्यता देती रही थी। पर यह मान्यता पूरी तरह से निर्वाह नही हो सकी।

श्री धर्मदासजी म की सम्प्रदाय मे श्रावको को हरी लीलोतरी आदि के प्रत्याख्यान कराते समय ये तीन आगार विशेष रखे जाते है—

(१) रोग, (२) दुर्भिक्ष और (३) भिक्षा।

इनके सिवाय क्षेत्र-कालके अनुसार आचार-विधि मे परस्पर कुछ मतभेद है। फिर भी पूज्य श्री धर्मदासजी म की सम्प्रदायो मे छोटे-छोटे मतभेद ही हैं। सैद्धान्तिक मतभेद विशेष नहीं है।

परिशिष्ट ८

श्री धर्मदासजी महाराज की संभावित रचना

पूज्य श्री धर्मदासजी म ने कुछ साहित्य-सृष्टि की या नही—इस बात का कही उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। परन्तु सम्मूर्छिम मनुष्य के चौदह उत्पत्ति स्थानको के विषय मे मुनि धर्मदासजी म के नाम से एक रचना प्राप्त होती है। सभव है, वह पूज्य श्री की रचना हो। क्योकि

ाचार्य श्री धर्मदासजी महाराज के पूज्य श्री धर्मसिहजी म से मतभेद : बोलो मे से एक बोल इन चौदह स्थानो से सम्बन्धित है। अत इस ाषय मे पूज्य श्री ने कोई रचना की हो तो आश्चर्य नही है। वह चना नीचे दी जा रही है—

(ढाल—चोपइनी)

गोतम गणधर प्रणमी पाय। पामी सुगुरुने सुपसाय ॥
मनुष्य समूच्छिम उपजइ जेह। थानिक चउदह कहसु तेह ॥१॥
गरभज मनुष्य तणउ जे उच्चार। ते माहि जीव असख्य अपार।
नर पचेन्द्री समुछिम जोय। उपजइ पहलउ थानक सोय ॥२॥
मात्रा माहि इम बीजो जाणि। त्रीजो बलखा माहि वखाणि।
सलेपमा माहि चउथउ वली। वमन पाँचमो कहि केवली ॥३॥
पित्त परू लोही ने सुक्क। थानक नव ए जाणि अचूक।
पुद्गल सूका होवइ जेह। पाछा भीजइ दसमो तेह ॥४॥
मृत (क) कलेवर इग्यारमो। सयोग स्त्री-नर ए बारमो।
खाल नगर नी (ते) तेरमइ। सर्व असुचि नरनी चउदमइ ॥५॥
माणस ना ए चउदइ जिहाँ। मनुष्य समुछिम उपजइ तिहा।
अगुल असख भाग तसकाय। अन्तर्मुहूरत (छे) तस आय (यु) ॥६॥
ए भीना माहि जीव असख। मरइ उपजइ नही तस सख।
एहना यतन करि नही जेह। सबल पाप करि बूडइ तेह ॥७॥
भोमि भीनी छाइ होइ जिहा। मल-मात्रादि म लाखो (न्हाखो) तिहा।
मात्रा भरि-भरि नवि राखीइ। बलखा जिम-तिम नवि नाखीइ ॥८॥
लोही वमन ना राखि (खै) करो। तुरत यतन कीजो चित्त धरी।
अवावर नि जिहा बहु राय ([1])। परठवीजइ नही ए तेणि ठाय ॥९॥
मात्रा भीनी भोइ परिहरउ। **प्रह समि ते उपरि म म फिरौ।**
अजाणदा वण (?) म म करो। जिम अविचल सपत्ति सुख वरो ॥१०॥

'काले टाईप वाली' पक्तियो का शुद्ध पाठ इस प्रकार होना चाहिए—
(१) अवावर नइ जिहाँ बहु आय।
(२) प्रह समयि ते उपरि म म फिरौ।
(३) अजाणता-जाणता म म करौ।

(मल-मात्रा पडिया होय जिहा। मल-मात्रा म करो कोइ तिहा।)
मल-मात्रा पडिया जिहा होय। मल-मात्रा म करो तिहा (कोय)
कोट वाल (? खाल) सवे दुरि टालीइ। एणीपरि जीवदया पालीइ ॥११॥
सूग ते मिथ्यामति परिहरो। जिम एह माहि कदी नवि अवतरो।
तिरयच नि मलि उपजइ नही। मनूष नि मलि उपजइ सही ॥१२॥
पन्नवणा पद जोई सार। ए सज्झाय करी सुखकार।
उदयपूरि कहि मुनि धर्मदास। भणइ सुणइ तस लील-विलास ॥१३॥

परिशिष्ट ७

पूज्य श्री ज्ञानचंदजी म और उनके कतिपय सन्तो का परिचय

पूज्य श्री ज्ञानचदजी म का और उनकी परम्परा के सतो का हमे विशेष परिचय प्राप्त न हो सका था। परन्तु सन् १९७४ के ५ जनवरी के सम्यग्दर्शन (पाक्षिक) पत्र मे 'जिनवाणी' मासिक के अगस्त १९६० के अक से उद्धृत प श्री घेवरचदजी बाठिया 'वीरपुत्र' द्वारा लिखित पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी महाराज और उनकी 'शिष्य-परम्परा' शीर्षक लेख से इस परम्परा के कतिपय सन्तो का परिचय यहा दिया जा रहा है।

पूज्य श्री ज्ञानचदजी म —आप बडोद (सोधवाड मालवा) ग्राम के निवासी बीसा ओसवाल थे। आपने स १९१६ मे तपस्वी श्री जीवराजजी म के पास बडोद मे ही दीक्षा ग्रहण की थी। आप गुप्त तपस्वी सत थे। आप प्रत्येक वर्ष एक मासक्षपण करते थे। ऐसे कई वर्षो तक यह क्रम चला। आपकी ज्ञान आराधना भी विशिष्ट थी। आप अपने गुरुदेव की परम विनय के साथ सेवा भक्ति करते थे। आपने सथारा-सलेखना सहित स १९४७ मे देह त्याग किया।

आप स. १९३० के लगभग तक मालवा मे ही विचरते रहे और स. १९३१ के आस पास आप मारवाड मे पधारे। मालवा मे आपके पाच शिष्य हुए—(१) श्री गेदालालजी चौधरी (नलखेडा), (२) श्री मन्नालालजी ओसवाल (नलखेडा), (३) श्री जसीरामजी ओसवाल (हरसाणा),

(४) श्री दयालचन्दजी ओसवाल (हरसाणा) और (५) श्री चीमनीरामजी (मोजपुर) और तीन शिष्य मारवाड़ मे हुए, (६) श्री मस्तुजी वरडिया जोधपुर), (७) श्री लीखमचन्दजी (लखमीचन्दजी) सीघी (जोधपुर) और (८ श्री मगनमलजी नाहर (विलाडा)। इनके सिवाय आपके एक अन्य शिष्य श्री किशनलालजी म का नामोल्लेख भी प्राप्त होता है।

श्री पूर्णमलजी महाराज—आप आवर (सोघवाड) के निवासी ओसवाल थे। आपने स. १९५३ मे श्री गेदालालजी म के शिष्य श्री रखबचन्दजी म के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आपने अपनी युवावस्था मे तत्कालीन अनेक स्थविर और प्रसिद्ध सन्तो की सेवा की थी। आप पिछली वय मे 'वावाजी महाराज' के नाम से प्रसिद्ध रहे। आप अपने सामने किसीको खुले मुँह (विना उतरासन) नही वोलने देते थे। आप अपने दर्शनार्थ आनेवाले से प्राय ज्ञानचर्चा करना ही पसद करते थे। आपका देहान्त स २०१३, चैत्र शुक्ला १३ को जोधपुर मे हुआ। (चौथे अध्याय मे 'महावीर स्वामी से सता की पटावलि' या अन्य किसी उल्लेख के अनुसार आपको श्री गेदालालजी म का शिष्य वतलाया है।) आपको अपने शिष्य बनाने के त्याग थे। (परन्तु आपके समीपस्थ सतो द्वारा घोषित शिष्य रामेश्वरजी म एकल विहारी रूपमे विचर रहे हैं। ले०)

श्री इन्दरमलजी महाराज—आप रामपुरा निवासी बडे साथ ओसवाल थे। आप श्री गेदालालजी म के शिष्य श्री पन्नालालजी म. के शिष्य थे। आप आत्मार्थी सत थे। आपके कई शिष्य हुए। आपके एक आदर्श शिष्य श्री रतनलालजी म का परिचय पाचवे अध्याय मे दिया गया है। श्री मोतीलालजी महाराज आदि आपके शिष्य थे और श्री लालचन्दजी म , श्री मोहनलालजी म आदि आपके प्रशिष्य है। आपका स २०१२ मे सनवाड (मेवाड) मे देहान्त हो गया।

श्री चुन्नीलालजी महाराज—आप पू श्री ज्ञानचन्द्रजी म. के प्रशिष्य और श्री मगनलालजी म के शिष्य थे। आप सरल स्वभावी सन्त थे। एक वार आप दो सतो के साथ मारवाड मे विचरण कर रहे थे। जैतारण मे चातुर्मास व्यतीत करने की विनती मान चुके थे। अकस्मात् आपके दोनो साथी सतो का देहान्त हो गया। आप उस समय व्याख्यानी

सत नही थे । आप चिन्तित हुए । कहते हैं, कि-आपको दिव्य सहायता प्राप्त हुई । आप उस चातुर्मास मे प्रसिद्ध व्याख्यानी सतो की पंक्ति में आगये । इसके बाद आपके श्री केवलचन्दजी म , श्री रतनचन्दजी म. आदि नव शिष्य हुए ।

श्री केवलचन्दजी महाराज—आप सरल स्वभावी, सेवाभावी और तपस्वी सत थे । आप ससार अवस्था मे पूज्य श्री ज्ञानचन्द्रजी म के परम श्रद्धालु भक्त थे । फिर आपने श्री चुन्नीलालजी म के पास प्रव्रज्या अगीकार की । आप कई वर्षो तक चार विगय के त्यागी रहे । अन्त के तीन वर्षो मे घृत धारविगय का भी त्याग कर दिया । आपने अन्तिम समय मे किसी सकेत (लेखके अनुसार देव-सकेत और गुरुमुख-श्रुति के अनुसार पूज्य श्रीलालजी म के द्वारा कृत सकेत) के अनुसार स्वस्थ अवस्था मे ही सथारा ग्रहण कर लिया, जो छब्बीस प्रहर तक चला । शान्त, प्रसन्नमुद्रा और सावधान दशा मे आपका स्वर्गवास हुआ ।

श्री रतनचन्दजी महाराज—आपकी स १९५३ और स १९५९ के बीच के किसी वर्ष मे दीक्षा हुई थी । आप श्री चुन्नीलालजी म के शिष्य थे । आप खीचन (मारवाड़) मे २८ वर्षो तक स्थिरवास विराजे । आप निर्मल मतिवाले सन्त थे । आपके चार शिष्य हुए—(१) श्री मुलतानमलजी म. (प. श्री समर्थमलजी म के पिता), (२) श्री सरदारमलजी म. (३) तपस्वी श्री सिरेमलजी म. (पं. श्री समर्थमलजी म के काका) और (४) शान्तमूर्ति श्री भीमराजजी म. ।

श्री मुलतानमलजी म का स १९७३ मे पूज्य श्री श्रीलालजी म के सान्निध्य में बीकानेर चातुर्मास मे देहान्त हुआ । श्री सरदारमलजी म. भद्र प्रकृति वाले सन्त थे । आपका देहान्त खीचन मे हुआ । श्री रतनचन्दजी म. का ८६ वर्ष की आयु में सं २०११, ज्येष्ठ शुक्ला ९ को, तपस्वी श्री सिरेमलजी म. और श्री भीमराजजी म. का एक दिनके अन्तर से, स २०१६ माघशुक्ला ११ और १२ को खीचन मे स्वर्गवास हुआ ।

बहुश्रुत पं श्री समर्थमलजी महाराज, श्री मुलतानमलजी महाराज के शिष्य थे । आप बहुत ही प्रभावशाली सत थे । आपका बालोतरा

(मारवाड) मे स २०२९, मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को अनशन पूर्वक स्वर्गवास हो गया। आप श्री के उन्नीस शिष्य हुए।

श्री चम्पालालजी म तपस्वी सत है। अभी ज्ञानगच्छ के आचार्यकल्प सत है। आपके दो शिष्य है।

परि ि ष्ट ८

हस्तलिखित ग्रन्थो की पुष्पिकाएं (प्रशस्तियाँ)

पूज्य श्री धर्मदासजी म के शिष्य श्री देवीसिंहजी म.

(१) व्यवहार सूत्र—स १७९६, पूज्य धर्मदासजी म का शिष्य देवीसिंघ, नोरगावाद (ओरगाबाद) मध्ये।

(२) परमात्म-पुराण—लि देवीसिंघ, देवास मे, स १८०० फागण सुदी २।

(रतलाम-शाखा)

पूज्य श्री उदाजी महाराज

(३) लुद्ध नरा-पत्र ३—उदाजी, स १८२०, जेष्ठ विदी ११ रतलाम मे।

(४) इलाकुमार चोपइ, पत्र १२—स १८२३ वर्षे, वेसाष वद ३ दिने, लिषत रीष उदाजी, धारानगरी मध्ये।

श्री खुसालजी महाराज (श्री उदाजी महाराज के शिष्य)

(५) दशवैकालिक, टबा, पत्र ७८—सवत् १८११ ना मीगसर वद १२ लषत रष खुशाल, जालणापुर मधे चोमासो कीधो थो।

(६) दण्डक, पत्र ७—स १८१८, मृगसर विद १, लि रिषी खुसाल, सायपुरा मध्ये।

(७) रायप्रसेणी, पत्र १५८—अगन सुदी २, थावर, लि ऋषि खुसाल, चदाजी वाचनार्थं, नलपुरी (नलखेडा) मध्ये।

(८) हस-वच्छ चौपई—स १८२२ वर्षे, चेत सु० १०, ऋष खुसाल, उजेण मध्ये, पूज्यजी श्री रामचन्दजी, प्रसाद ऋष दलाजी महाराज।

(९) भृगु प्रोहित, पत्र ७—लि खुसाल, धार, स १८५३ फागण सुद ११ गुरु ।

पू श्री माणकचन्दजी महाराज (श्री पू. उदाजी म के शिष्य)

(१०) एलाकंवर चरित्र, पत्र ८—लिखित रिष माणकचन्द, जालणापुर ठाणा ३, रिष उदाजीस्वामी का शिष्य—माणकचन्द, रिष मोतीरामजी, महाविद ३, शुक्रवार, स १८४७ मे ।

पूज्य श्री मयाचन्दजी महाराज

(११) अजना रास—सवत् १८१५ ना वरषे, मिति काति की विध ८, वार मगलवार, लिषितग पूजजी श्री श्री खेमराजजी ना शिष उदेराजजी ना शिष खुसालजी शिष मयाचन्दऋषि, गाम इदोर मध्ये चोमासो ठाणे च्यार थी किधो ।

(१२) नवतत्त्व प्रकरण, पत्र १४—स. १८१७, जेष्ट विद ५, लि० ऋष मयाचन्द ग्राम खाचरोद मे ।

(१३) अनुत्तरोववाई अर्थ पत्र २४—सवत १८१९, चेत विद २, बुधवार, लिषत रिख मयाचन्द, गाम रतलाम मे ।

(१४) प्रत्येक वुद्ध चरित्र, पत्र ३२—स १८२१, काति विद ११, सूर्यवार, लि. मयाचन्द, गाँव खाचरोद मध्ये ।

(१५) प्रश्न व्याकरण अर्थ पत्र ५८—समत १८२३, महा सुद ५ मगल, लि मयाचन्द, सीतामहो, श्री तपस्वी जसराजजी प्रसादात् ।

(१६) अंजना चरित्र, पत्र ८ स १८२५, श्रावण सुद १ मगल, पूज्यजी साहिव श्री पूज्य धर्मदासजी, तस्य शिष्य श्री हरिदासजी, तस्य शिष्य श्री साराजी तस्य शिष्य श्री उदोजी, तस्य शिष्य खुसालजी, तस्य शिष्य रिषि मयाचन्द, मु रतलाम ।

(१७) स्मृतिश्लोक, पत्र १३—स १८२५, फागुण कृष्ण १४, सोमवार, लिपिकृत ऋषि मयाचन्द, ग्राम सागवाडा मध्ये ।

(१८) चार मगल, पत्र ५ – समत १८२८, फागण विद ८ गुरु, लिपत ऋपि मयाचन्द, गाम सारगपुर मे ।

(१९) रामायण—समत् १८३१, चेत सुदी ८ दीत. लि ऋषि मयाचन्द, पूज्यजी श्री इच्छाजी प्रसादात्, ग्राम उजेण मे।

(२०) तीर्थङ्कर, पत्र १—लि० रिष मयाचन्द, स १८३१, चोमासा गाम खाचरोद मे।

(२१) गुणस्थान द्वार, पत्र ७—स. १८३१ आसोज सुद ९, गुरुवार, लि ऋषि मयाचन्द, गाम खाचरोद मे, आर्याजी वगतुजी जोग्य।

(२२) रत्नपाल रास, पत्र २९—स. १८३१, पोष वदी ९, मगलवार, ग्राम सैलाना मे, लिषत—ऋषि मयाचन्द।

(२३) अनुयोग द्वार सूत्रार्थ, पत्र १४८—सवत् १८३५, अषाढ सुद ६, मगल, लि मयाचन्द, खाचरोद नगरे।

(२४) दसवैकालिक अर्थ—रिख मोतीचन्दजी म की दीक्षा, स १८३९ जेष्ट विद ३, वार बुध, गाम खाचरोद, दिक्षा रिष मयाचन्दजी ने दीधी।

(२५) गुणस्थान द्वार, पत्र ६—स १८४४ वेसाक सुद ३, गुरुवार, गाम थाँदला मे लि रिष मयाचन्द।

(२६) आवश्यक मूल, पत्र १७—स १८४५, जेठ विद १२, शनि, रतलाम-मालवा, सामीजी श्री ५ श्री मयाचन्दजी की पडत से रिख किसनाजी।

(२७) श्रमण सूत्र बोल, पत्र ७—स १८४९, मृगसर विद १, लि मयाचन्द।

श्री अनूपरिखजी

(२८) सिद्धजी के गुण का पाना १०—लिखित ऋषि अनूपजी, खरारी मध्ये स १८२३, भादवा सुद १, गुरु।

(२९) दण्डक पत्र १—लि अनूपरामजी खरारी मध्ये, स. १८२३ भादवा सुद १ गुरु।

(३०) दोहा पत्र १—स १८२५ जेष्ट सुद ७, सोम, लि० अनूपरिख, अवरगावाद।

श्री रायचन्दजी

(३१) नव तत्त्व, पत्र ९—स १८२३, चेतविद १ सोम, लि रायचन्द, पटलावद मे।

श्री भूधरजी रिख

(३२) चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्न, स्तवन, पत्र २—स. १८५०, श्रावण बिद ८, लि भूधरजी रिख, गाम मढ मध्ये।

पूज्य श्री मयाचन्दजी महाराज के शिष्य-प्रशिष्यादि

(३३) आवश्यक अर्थ, पत्र ३९—स १८३६, जेष्ट कृष्णा ३०, लि० रिख सोभाचन्द, पूज्य सा श्री १००८ स्वामी मयाचन्दजी प्रसाद से सहर अमदाबाद।

(३४) प्रदेशी चरित्र, पत्र १३—स १८४५, मृगसर सुद २ शनि, ग्राम रतलाम लि० अमरजी।

(३५) सिद्धान्त शतक—पूज्यजी मयाचन्दजी के शिष्य अमरजी, स १८५५ महाविद ११ गुरुवार, कुशलगढ मे।

(३६) रत्नचूड चौपाई पत्र ३९—पूज्य श्री ५ साहिब श्री धर्मदासजी, तस्य शिष्य पाटानुपाट पूज्य सा तपसीजी मयाचन्दजी, तस शिष्य पूज्यजी श्री ५ श्री मोतीचन्दजी, तस गुरुभाई भीषमजी, तस शिष्य सोमचन्दजी लिखित, स १८४६ (?) वर्ष काति ५ दिन, मु धार।

(३७) अजना चरित्र, पत्र २०—पूज्य श्री धर्मदासजी, शिष्य हरिदासजी, तस्य शिष्य पूज्य श्री साराजी, तस शिष्य खेमराजजी, तस शिष्य उदेराजजी, तस शिष्य खुसालजी, तस शिष्य मयाचन्दजी। श्री मयाचन्दजी का शिष्य-भगाजी, खेमजी, मोतीचन्दजी, अमरजी, सोभाचन्दजी। स १८५३, आसोज सुद १३, मेदपुर मध्ये, लि० सोभाचन्द।

(३८) अजना, पत्र १८—समत १८५३, महासुद ५, वार बृहस्पत, स्वामीजी श्री अमरजी रा उपकार से लि० शिष्य अजबोजी राजगढ मध्ये।

(३९) सभोग, पत्र ३—स १८५८ जेष्ट विद ११, शुक्र लि० सामीजी श्री पू मयाचन्दजी नो शिष्य ऋषि अमरजी, रतलाम मे।

(४०) जम्बू पयन्ना, पत्र ४२—स १८५९, मृगसर विद १०, शुक्र, स्वामीजी श्री श्री १००८ श्री मयाचन्दजी शिष्य अमरजी, ग्राम भगोर भीमपुरा मध्ये।

(४१) प्रदेशी चरित्र, पत्र २४—स १८५९, मि कार्तिक विद ३, पूज्य श्री उदाजी, तस शिष्य कुशालजी, तस शिष्य मयाचन्दजी, तस्य शिष्य दानाजी प्रसाद, लि भारमल ग्राम राजोद मध्ये।

(४२ नवतत्त्व, पत्र १२—लिखी मोतीचन्दजी स १८६२, श्रावण सुदी १, बडनगर मध्ये, स्वामीजी बदीचन्दजी पठनार्थम्।

(४३) पुण्यसेन चरित्र, पत्र १०—स्वामीजी १०८ श्री मोतीचन्दजी शिष्य लि सोमजी, गाम बडनगर, स १८६४, मृगसर विद १।

(४४) रामजस, पत्र ९०—स १८६५, श्रावण सुद ८, दीत स्वामीजी श्री ८ मयाचन्दजी शिष्य दानाजी शिष्य भारमलजी, तस्य शिष्य रिख रूपचन्द लि० नागदा मे।

(४५) रत्नपाल-चरित्र पत्र ३२—स १८६६, फागन सुदी १२ शनि, पूज्य साहिब मयाचन्दजी तस्य शिष्य दानाजी, मोतीजी, अमरजी, दानाजी का शिष्य वदीचन्दजी, वदीचन्दजी का शिष्य रूपचन्द चौपई लिखी बडनगर मे।

(४६) रत्नपाल पत्र, २७—स. १८६७, आसोज सुदी ३, पूज्यजी श्री श्री दानाजी के शिष्य भारमलजी, तस्य शिष्य रामचन्द, लि० बडनगर।

(४७) पाटावली, पत्र ७—रिख दानाजी प्रसाद लि० रामचन्द।

(४८) उववाई, पत्र १०६—स १८६७ लि० मोतीचन्द, श्रावण सुद ११, शनौ, खाचरोद।

(४९) आचाराग दूजा—सामी दानाजी का शिष्य भारमलजी, स १८६९, वैशाख विद ३, बुध, खाचरोद मे।

(५०) निह्नव-बावनी—सामीजी श्री दानाजी का चेला रिषी भारमल खाचरोद मे।

(५१) पुण्यरग चरित्र, पत्र ४०—सामीजी वदीचन्दजी शिष्य लि० रूपचन्दजी, स १८७२, वखतगढ ग्रामे, पुँवार आनन्दराव गी राज ।

(५२) प्रश्नोत्तर चौपाई, पत्र १२३—समत १८७२, पौष सुद ७, स्वामीजी १००८ श्री दानाजी स्वामी गुणवत शीलवत बाल ब्रह्मचारी, तस्य शिष्य वदीचन्दजी म तस्य शिष्य रूपचन्द बडनगर मे ।

(५३) जम्बू पयन्ना, पत्र ५५—सामीजी श्री ३ भारमलजी प्रसाद, लिषत किसन, स १८७२, कार्तिक विद १०, थादला मध्ये ।

(५४) अवती सुकमाल चरित्र, पत्र ३७—स्वामी १००७ श्री दानाजी स्वामी, श्री वदीचन्दजी स्वामी, स. १८७४, भादवा विद ५, लि० रूपचन्द बुदनावर मध्ये सुखसाता मे ।

(५५) गजसिह चौपाई, पत्र १३—स १८७७, आषाढ विद ७ दीत, स्वामीजी श्री श्री वदीचन्दजी प्रसाद ऋष रूपचन्द, थादला मध्ये, वजेसिह जी भडसाली की मेढी मध्ये ।

(५६) प्रजन चरित्र पत्र २०—समत १८७७, आसोज सुद १२ बुध, श्री ४ दानाजी शिष्य श्री वदीचन्दजी, शिष्य रूपचन्द थादला मे । वजेसिगजी नी मेडी मध्ये सुखे समाधे चौमासा किया ।

(५७) चन्दन मलयागिरी, पत्र, १४—स १८७७, काति विद ९ सोम, सामीजी श्री ४ वदीचन्दजी शिष्य रूपचन्द, थादला मे ।

(५८) षडावश्यक, पत्र १११—सामीजी श्री १०८ दानाजी शिष्य स्वामी वदीचन्दजी तस्य शिष्य रूपजी लिखित, स १८७७, फागन विद १५ गुरु, मु० सैलाना, राजा लक्ष्मणसिहजी राज्ये ।

(५९) वर्धमान बाँसठिया, पत्र ७—स १८८०, मि कार्तिक सुद ८ सोम, स्वामिजी १०८ श्री अमरजी के प्रतापथी केसवजी गाम खाचरोद मध्ये ।

(६०) धर्मदत्त चरित्र, पत्र ५५—स १८८१ कार्तिक मासे कृष्ण पक्षे ७ गुरूवार, पूज्यजी श्री श्री १०८ श्री मयाचन्दजी, तस्य शिष्य श्री अमरजी, तपसीजी श्री फरसरामजी के तपतेज सुनजर महर कृपाकर जिनसे ग्रन्थ सुखे समाधे रिष केसवजी, सहर कोटा का रामपुरा,

(३९) सभोग, पत्र ३—स १८५८ जेष्ट विद ११, शुक्र लि० सामीजी श्री पू मयाचन्दजी नो शिष्य ऋषि अमरजी, रतलाम मे।

(४०) जम्बू पयन्ना, पत्र ४२—स १८५९, मृगसर विद १०, शुक्र, स्वामीजी श्री श्री १००८ श्री मयाचन्दजी शिष्य अमरजी, ग्राम भगोर भीमपुरा मध्ये।

(४१) प्रदेशी चरित्र, पत्र २४—स १८५९, मि कार्तिक विद ३, पूज्य श्री उदाजी, तस शिष्य कुशालजी, तस शिष्य मयाचन्दजी, तस्य शिष्य दानाजी प्रसाद, लि भारमल ग्राम राजोद मध्ये।

(४२ नवतत्त्व, पत्र १२—लिखी मोतीचन्दजी स १८६२, श्रावण सुदी १, बडनगर मध्ये, स्वामीजी बदीचन्दजी पठनार्थम्।

(४३) पुण्यसेन चरित्र, पत्र १०—स्वामीजी १०८ श्री मोतीचन्दजी शिष्य लि सोमजी, गाम बडनगर, स १८६४, मृगसर विद १।

(४४) रामजस, पत्र ९०—स १८६५, श्रावण सुद ८, दीत स्वामीजी श्री ८ मयाचन्दजी शिष्य दानाजी शिष्य भारमलजी, तस्य शिष्य रिख रूपचन्द लि० नागदा मे।

(४५) रत्नपाल-चरित्र पत्र ३२—स १८६६, फागन सुदी १२ शनि, पूज्य साहिब मयाचन्दजी तस्य शिष्य दानाजी, मोतीजी, अमरजी, दानाजी का शिष्य वदीचन्दजी, वदीचन्दजी का शिष्य रूपचन्द चौपई लिखी बडनगर मे।

(४६) रत्नपाल पत्र, २७—स १८६७, आसोज सुदी ३, पूज्यजी श्री श्री दानाजी के शिष्य भारमलजी, तस्य शिष्य रामचन्द, लि० बडनगर।

(४७) पाटावली, पत्र ७—रिख दानाजी प्रसाद लि० रामचन्द।

(४८) उववाई, पत्र १०६—स १८६७ लि० मोतीचन्द, श्रावण सुद ११, शनौ, खाचरोद।

(४९) आचाराग दूजा—सामी दानाजी का शिष्य भारमलजी, स १८६९, वैशाख विद ३, बुध, खाचरोद मे।

(५०) निह्नव-बावनी—सामीजी श्री दानाजी का चेला रिषी भारमल खाचरोद मे।

(५१) पुण्यरग चरित्र, पत्र ४०—सामीजी वदीचन्दजी शिष्य लि० रूपचन्दजी, स १८७२, वखतगढ ग्रामे, पुँवार आनन्दराव जी राज।

(५२) प्रश्नोत्तर चौपाई, पत्र १२३—समत १८७२, पौष सुद ७, स्वामीजी १००८ श्री दानाजी स्वामी गुणवत शीलवत बाल ब्रह्मचारी, तस्य शिष्य वदीचन्दजी म तस्य शिष्य रूपचन्द वडनगर मे।

(५३) जम्बू पयन्ना, पत्र ५५—सामीजी श्री ३ भारमलजी प्रसाद, लिषत किसन, स १८७२, कार्तिक विद १०, थादला मध्ये।

(५४) अवती सुकमाल चरित्र, पत्र ३७—स्वामी १००७ श्री दानाजी स्वामी, श्री वदीचन्दजी स्वामी, स. १८७४, भादवा विद ५, लि० रूपचन्द बुदनावर मध्ये सुखसाता मे।

(५५) गजसिंह चौपाई, पत्र १३—स १८७७, आषाढ विद ७ दीत, स्वामीजी श्री श्री वदीचन्दजी प्रसाद ऋष रूपचन्द, थादला मध्ये, वजेसिह जी भडसाली की मेढी मध्ये।

(५६) प्रजन चरित्र पत्र २०—समत १८७७, आसोज सुद १२ बुध, श्री ४ दानाजी शिष्य श्री वदीचन्दजी, शिष्य रूपचन्द थादला मे। वजेसिंगजी नी मेडी मध्ये सुखे समाधे चौमासा किया।

(५७) चन्दन मलयागिरी, पत्र, १४—स १८७७, काति विद ९ सोम, सामीजी श्री ४ वदीचन्दजी शिष्य रूपचन्द, थादला मे।

(५८) षडावश्यक, पत्र १११—सामीजी श्री १०८ दानाजी शिष्य स्वामी वदीचन्दजी तस्य शिष्य रूपजी लिखित, स १८७७, फागन विद १५ गुरु, मु० सैलाना, राजा लक्ष्मणसिहजी राज्ये।

(५९) वर्धमान बाँसठिया, पत्र ७—स १८८०, मि कार्तिक सुद ८ सोम, स्वामिजी १०८ श्री अमरजी के प्रतापथी केसवजी गाम खाचरोद मध्ये।

(६०) धर्मदत्त चरित्र, पत्र ५५—स १८८१ कार्तिक मासे कृष्ण पक्षे ७ गुरूवार, पूज्यजी श्री श्री १०८ श्री मयाचन्दजी, तस्य शिष्य श्री अमरजी, तपसीजी श्री फरसरामजी के तपतेज सुनजर महर कृपाकर जिनसे ग्रन्थ सुखे समाधे रिप केसवजी, सहर कोटा का रामपुरा,

नवा कटला मे चौमासो कीधो, स्वामीजी श्री परसरामजी कोटा का, ज्या कने से उतारो कीधो ।

पूज्यी श्री परसरामजी (तपस्वी) के शिष्य-प्रशिष्यादि

(६१) अणुत्तरोववाई—स. १८४८, आसोज विद १३, दीत० मु देवास, ऋषि मूलचन्द ।

(६२) तिथिपत्र दोहा—लि तपसी श्री १०८ श्री परसरामजी म शिष्य मूलचन्दजी स १८५५ मि भादवा सुद ११, शुक्र, ग्राम खाचरोद देश मालवा मध्ये ।

(६३) प्रदेशी चरित्र, पत्र ३२—स १८७२, चेत सुद ७, लि० सामीजी श्री मयाचन्दजी, तस शिष्य विनयवत अमरजी वडा, तस शिष्य परसरामजी, तस शिष्य नन्दरामजी, तस शिप्य प्रेमचन्दजी खाचरोद मे ।

(६४) खेताणुवाई, पत्र २—स १८७३, जेठ विद १४, लि० पूज्य तपस्वीजी श्री १०८ परसरामजी शिष्य मूलचन्द, खाचरोद मध्ये ।

(६५) क्रोधादि चार स्तवन—तपस्वी परसरामजी प्रसाद, लि० नन्दराम, मालव देश थादला मे, स १८७४ चतुर्मास कृत ।

(६६) हनुमान, पत्र १—स्वामी नन्दरामजी शिष्य रुघनाथ, स १८७४, कुशलगढ मध्ये ।

(६७) बल अधिकार, पत्र १—स्वामीजी श्री परसरामजी, तस्य शिष्य नदरामजी लि० ऋषि प्रेम, स. १८७४, गाँव रुणिजो ।

(६८) उत्तराध्ययन कथा, पत्र ३४—सामीजी परसरामजी, तस्य शिष्य नन्दरामजी स १८७५, थादला मे ।

(६९) व्यवहारसूत्र पीठिका—तपस्वी मयाचन्दजी म के शिष्य अमरजी म शिष्य अमरजी शिष्य मूलचद स १८७६, रतलाम मे ।

(७०) सवैया, पत्र ३६—लि० मूलचद, गाम रतलाम, स १८७६, पोष सुद २, दीतवार ।

(७१) गौतम पृच्छा, पत्र २१— सकल पडित श्री १०८ श्री तीर्थोत्तम श्री तपसी श्री परसरामजी, तत् शिष्य नदरामजी, लि० रुगनाथ स १८७७, आसोज सुद, गाव जावरा मे ।

(७२) चोबिस ठाणा—तपस्वीजी श्री परसरामजी शिष्य मूलचन्द, स १८७७, वैसाक विद ५, सोमवार पाटण मध्ये ।

(७३) चद्रप्रज्ञप्ति, पत्र १२०—लि० मूलचद ऋषि, स. १८७८, महासुद ९ गुरु, ग्राम देवास मे, तपसी १०८ श्री परसरामजी शिष्य मूलचद ।

(७४) सिहासन-बत्तीसी, पत्र १८—स १८७८, आसोमास गाव स्थादला मध्ये, सामीजी श्री ५ परसरामजी तत् शिष्य नन्दरामजी तत् शिष्य रुगनाथजी लिखी ।

(७५) अमरकँवर-सुरसुन्दरी चरित्र, पत्र १६—स १८८०, वैशाख सु ११, स्थादला मे, सामीजी तपसीजी श्री परसरामजी शिष्य श्री नदरामजी, गुरुभ्राता रुगनाथजी ।

(७६) अवती सुखमाल, पत्र ३—स १८८० जेष्ट विद अमावस, दीतवार, थादला मे, लि० परसरामजी शिष्य नदराम ।

(७७) आलोचना, पत्र ४-लि मूलचन्द, स १८८१, पोष सुद ३ गुरु, जावरा मे ।

(७८) महानिसित्थ अ० ५, पत्र २९—तपसीजी श्री १०८ परसरामजी, तस शिष्य ऋष मूलचन्दलिखी, आसोज विद ३ बृहस्पतिवार, स १८८२, नगर थादला मध्ये ।

(७९) महानिसित्थ, कमलप्रभ, पत्र ९—लि० पूज्यजी साहब श्री श्री धर्मदासजी, तस शिष्य हरिदासजी, शिष्य सारोजी सामी, तस शिष्य खेमजी स्वामी, तस्य शिष्य उदाजी सामीजी, तस्य शिष्य कुशला [खुसाल] जी, तस्य शिष्य मयाचन्दजी स्वामी, तस्य शिष्य वडा अमरजी सामी, तस्य शि० तपसी श्री परसरामजी, तस्य शि० नन्दरामजी, तत् शि० रुगनाथ[जी], स १८८२, मृगसर विद ११, गाम खाचरोद मे ।

(८०) सवैया पत्र ११—लि० मूलचन्द ऋपि स १८७६, पोप सुद २, दीत गाम रतलाम मे ।

(८१) सवैया, पत्र २५—खाचरोद से आए बदनावर, स १८८३, रिष मूलचन्द ।

(८२) निह्नवहुंडी, पत्र २२—लि. तपसीजी श्री श्री १०८ श्री परसरामजी तस शिष्य रिष मूलचन्द, स १८८५, जेठ विद ७ मगलवार, खाचरोद मध्ये ।

(८३) मुनिपति-चरित्र, पत्र ८—सामीजी तपसी परसरामजी, तस्य शिष्य नन्दरामजी, स १८८५, भादवा विंद १३, दीतवार लि० प्रेमचन्द, गाँव खाचरोद मे।

(८४) गागेय अणगार के भागे—स १८८५, मि चेत सुद १२ गुरुवार लि० तपस्वी श्री १०८ परसरामजी शिष्य मूलचन्द, गाँव वासवाडा मध्ये।

(८५) कायास्थिति—स १८९०, मृगसर विद ११, शनिवार लि मूलचद, नगर धार मध्ये ।

(८६) सवैया पत्र ३१—उजैणी नगरी मध्ये, नवापुरा मे सा मनरूपजी की जगा मे, स १८९१, अगन विद १३ मूलचद १, दलीचद २, रुघनाथजी ३, लखमीचदजी ४, गोविन्दरामजी के नखासु लख्यो, दोलतरामजी का टोला का ठा ३— गोविंदरामजी १, भेरोजी २, रामलालजी ३ ।

(८७) चर्चा पत्र—स १८९२, मृगसर सुदी ४, सोमवार लि० मूलचद, दुलीचद, गाव झारडा मे ।

(८८) देवकी की चौपाई, पत्र ६१—गाव नागदा में लिखी स १८९५, चेतसुदी २, तपसी १०८ श्री (परसरामजी) तस शिष्य ऋषिमूलचद ठा. ८— मूलचन्द, दलीचन्द, सरूपचन्द, नन्दरामजी, चन्दाजी आरजाजी, उमाजी, नन्दूजी, जोताजी एव ८ ।

(८९) गुणकरड-गुणावली, पत्र १०-स १८९५, आसोज विद ५ लि. तपसीजी श्री १०८ श्री परसरामजी शिष्य मूलचन्दजी, बडनगर मे नौलाई ।

(९०) निसीथ—१८९५, कातिविद ६, मगल, लिषी मूलचन्द, बडनगर ।

(९१) व्यवहार, पत्र १६—स १८९५, काति सुद ७ बडनगर मे लिषी मूलचन्द मुनि ।

(९२) गुणकर-गुणावली, पत्र १३ - सामीजी श्री श्री १०८ श्री मयाचन्दजी, तस्य शिष्य अमरजी, तत्पट्टे तपसीजी श्री परसरामजी, तस्य शिष्य नन्दरामजी रुघनाथजी, खाचरोद मे।

(९३) निसित्थ सूत्र, पत्र, १८—तपसी परसरामजी, तस्य शिष्य ऋषि मूलचन्द, समत् १८९५, काति विद ६, मगलवार, वड़नगर मध्ये।

(९४) पोसा की ढाल—स १९०३, मिती फागण सुदि ३, बुधवार, लपी ऋप मूलचन्द। गाम देवद मधे, ठाणा ३-मूलचन्द, वगसीरजी, जीवाजी एव ३। वाई मोता का पाना सूं उतारी वागड्या प्रथीराजजी मेसरी की जायगा मे।

श्री द्वितीय मयाचन्दजी महाराज के शिष्य

(९५) पाच इन्द्रिय-सवाद—सामीजी श्री मयाचन्दजी शिष्य घासीरामजी, स १९२०, माघ सुदी ११, गुरू० धार मध्ये।

(९६) शुकनावली—सामीजी श्री ५ श्री मयाचन्दजी शिष्य भेरुलालजी स १९३९, कातिसुद ६ शुक्र मु० रतलाम।

(उज्जैन-शाखा)

(९७ दानादि चौढालिया, पत्र २—पू माणकचन्दजी तत् शिष्य चमनाजी स १८३५, मृग०सुद २, गाव रिंगणोद, देश मालवा।

(९८) उपदेशी पत्र १—स १८३४, जेष्ट ३, पूज्य श्री श्री ५ श्री मानकचन्दजी शिष्य रिख अमीचन्द, उज्जैन मध्ये।

(९९) चौवीसी, पत्र १—पूज्य श्री माणकचन्दजी शिप्य देवीचन्दजी का वनाया स्तवन इदौर मे स १८४७ म, लि० रामचद १८४७ मे मृगसर सुद ३०, नगर कानड मे।

(१००) चन्द चरित्र, पत्र ८८—स १८३४, वसत पचमी, श्री पूज्य माणकचन्दजी प्रसाद लि० चमनाजी, डूगरपुर मे।

(१०१) हरिवश चरित्र, पत्र २१७—स्वामी उत्तम पुरुप श्री चमनाजी, स्वामीजी श्री नरोत्तमजी, तस्य शिप्य भगवानजी, स १८६६, वैशाक वदि १४, नगर धार मे।

(१०२) स्तवन पत्र १—पूज्य तपस्वीजी श्री रतनचन्दजी, तत् शिष्य लिपिकृत हेमराज, उमाजी आर्याजी वाचनार्थं, स १८७६, सहर नलखेडा मध्ये ।

(सीतामऊ-शाखा)

(१०३) जम्बू पयन्ना, पत्र ५८—पूज्य श्री १००८ श्री धर्मदासजी म, तत शिष्य १००८ (श्री) तपसी श्री जसराजजी म, तस्य शिष्य श्री जोगराजजी, तस्य गुरुभाई पद्मजी लिखी, स १८३६ वैशाक २ रविवार, गाम मलहारगढ मध्ये ।

(१०४) रत्नचूड चौपाई, पत्र ५८—पूज्य साहब धर्मदासजी (शि) तपसी जसराजजी, तस (शिष्य) जोगराजजी, तस गुरुभाई पद्मजी, तस शिष्य ऋष सोभाचन्द मालव देशे, इन्दोर नगरे, स १८४९, अषाढ विद ५ दिने ।

(१०५) रत्नचूड चौपाई, पत्र ५०—पूज्य श्री साहब श्री धर्मदासजी, तस शिष्य पूज्यजी साहब तपसी जसराजजी म, तस्य शिष्य पूज्य साहब श्री जोगराजजी, तस गुरुभाई पूज्य श्री पद्मजी, तस शिष्य शोभाचन्द लिषी, स १८४६, आसोज सु ५, गगधार मध्ये ।

(१०६ चन्द्रलेहा चरित्र, पत्र २०—पूज्य श्री जोगराजजी, तस गुरुभाई पद्मराजजी, तस शिष्य सोभाचन्द, आसोज कृष्ण १४, बडनगर, सीध्या दोलतराव महाराज । पूज्य जोगराजजी कने रुष मोतीचन्द दीक्षा लीनी, स १८५९, जेष्ट सुद १३ ।

(१०७) सिद्धान्त-शतक, पत्र १९—स १८६८, चेत्र सुद ६ शुक्र, पूज्य साहब श्री धर्मआचारज गच्छनायक श्री धर्मदासजी, तस शिष्य पूज्य श्री तपसी जसराजजी, तत शिष्य जोगराजजी, तस गुरूभाई पूज्य श्री पदमराजजी, तस शिष्य पूज्य सोभाचन्दजी, तस शिष्य ऋ मोतीचन्द, सोरठ देश-धोराजी नगरे ।

(१०८) कुल ध्वज चौपाई, पत्र २०—पूज्यजी धर्मदासजी, तत शिष्य स्वामीजी जसराजजी-शिष्य जोगराजजी, तस गुरुभाई स्वामीजी पदमराजजी, तस शिष्य सोभाचन्दजी, तस शिष्य लि० मोतीचन्द समत १८७१, चेत सु ७ ।

(१०९) सजया, पत्र ७ – समत १८७८ वर्षे, फागुण विद ७, दीतवार, लि० पूज्यजी श्री जोगराजजी, तस गुरुभाई सामीजी श्री १०८ पद्मराजजी, तस शिष्य सामीजी सोभाचन्दजी, तस शिष्य रुष सभूजी, गाम देवास मध्ये ।

(११०) गुणकरड-गुणावली, पत्र २४ —पूज्य श्री जोगराजजी, तस गुरुभाई पदमराजजी, तस शि शोभाचन्दजी, तस शि मोतीचन्दजी, तस शि. लि दलीचद, गुवालेर गढ छावणी मे—दौलतरावजी की स १८८४ ।

(१११। रामजस, पत्र ६४ – पूज श्री ५ तपसी जसराजजी शिष्य जोगराजजी, तस गुरुभाई सामी श्री पदमराजजी, तत शिष्य शोभाचन्दजी, तत शि रिख शम्भूराम, समत १८८७, विद १ गुरु, जानकीपुर मध्ये।

(११२) गौतम-पृच्छा, पत्र ४६—स १८९२, मि कुँवार सुद १३, रविवार, पूज्य साहब श्री १०८ श्री सोभाचन्दजी, स्वामीजी श्री १०८ श्री शभूरामजी, लिषी कनीराम, खाचरोद मध्ये ।

(११३) गुणस्थान द्वार-द्वार ८४, पत्र १२—स्वामीजी पूज्यजी साहव श्री श्री १००८ श्री क्षमावत दयावत कीर्तिवत शीलवत सन्तोषवन्त वैराग्यवन्त ज्ञानदाता चारित्रदाता सम्यक्त्वदाता अनेक गुणाकर धर्म-सारथी धर्मप्रधान गच्छाधिपति श्री पू साहव श्री धर्मदासजी, सामीजी पूज्यजी साहव श्री ५ श्री रामचन्दजी, सामीजी पूज्यजी साहव श्री १०८ श्री माणकचन्दजी (?) पूज्यजी साहव, गुणना भण्डार रत्न-करण्ड समान तपस्वीजी जसराजजी, सामीजी पूज्य साहव जोगराजजी पूज्य पडित विचक्षण चातुर्यवन्त तस गुरुभाई पद्मराजजी, पूज्य साहव क्षमावन्त दयावन्त शीलवन्त सन्तोषवन्त वैराग्यवन्त सम्यक्त्ववन्त चारित्रवन्त वीर्यवन्त ज्ञानदाता चारित्र-दाता सोभाचन्दजी, तस्य शिष्य सामीजी पूज्य सा पण्डितराज श्री मोतीचन्दजी, तस्य शिष्य ऋष वदीचन्द लिखी सीतामहो मे, स १८९६, चेत सुध ७ वुधवार ।

(११४) दशवैकालिक मूल—स १८९६, पूज्य धर्मदासजी, त शिष्य रामचन्दजी, तस गुरुभाई जसराजजी, तस्य शिष्य जोगराजजी,

. तस्य गुरुभाई पद्मराजजी, शिष्य सोभाचन्दजी शभुरामजी कनिरामजी मु सैलाना मे लिखा।

(११५) नमिराय अर्थ—तपसी पूज्य जोगराजजी, तस गुरुभाई पद्मराजजी, तस्य शिष्य सोभाचन्दजी के शिष्य मोतीचन्दजी म., तस्य शिष्य जीतमल, स १८९६, वैशाख सुद १५, गगराड।

(११६) मदन-मजरी, पत्र ४०—स्वामीजी श्री १००८ श्री जय-विजय-आनन्दकारी गच्छपति पूज्य साहब श्री श्री धर्मदासजी म, तस्य शिष्य स्वामीजी श्री रामचन्दजी, तस्य गुरुभाई (?) सामीजी श्री पू श्री माणकचन्दजी, तस गुरुभाई (?) स्वामीजी श्री तपसीजी महाराज श्री जसराजजी, तस शिष्य पण्डित विचक्षण पूज्य श्री श्री पद्मराजजी, तस गुरुभाई सकल पण्डिल-शिरोमणि पूज्य श्री जोगराजजी, तस्य शिष्य (?) क्षमावन्त गुण-भण्डार प उपगारी श्री १००८ श्री सोभाचन्दजी, तस्य शिष्य पुरुषोत्तम निरमलबुद्ध महापण्डित, उपाध्याय पदवीना धारणहार, ३२ शास्त्र ना जाण, सरस्वती-स्वर, पर-उपकारी सभाजीत सभा-मोहन सभाशृ गार सामीजी पूज्य श्री मोतीचन्दजी म, लिखी जीतमल सीतामहू ग्राम मध्ये, स १८९६, आसोज सुदी ११।

(११७) आर्द्रकुमार चौपाई—श्री धर्मदासजी, तपसी जसराजजी, जोगराजजी तस गुरुभाई पद्मराजजी, तस शिष्य मोतीचन्दजी (?) तस शिष्य नन्दलाल, ग्राम ताल मध्ये, स १८९६, चेत वदि ७ मगलवार, श्रावकजी मोगरा हरकचन्दजी के उतारे उतर्या छे।

(११८) दशवैकालिक अर्थ—

दोहा—सवत अठार निनाणु में, कातिकमास उदार।
तिथि मावस बुधवार हैं, कृष्ण पक्ष सुविचार॥

पूज्य सामीजी साहब १०८ श्री सोभाचदजी स्वामी, गुरु महाराज पूज्य मोतीचदजी, तत शिष्य लि० नन्दलाल सीतामो मध्ये, दीवाली स. १८९९। (किसी अन्य के हाथ के लिखा हुआ) स १९०० पोष विद ३ शनि के दिन, घडी दिन रहे सीतामहो मे

स्वामी नन्दलालजी आयुष्य पूरो कियो। सवत् १८९९ आसोज सुदी ५ शनिवार के दिन, रात पाछली घरती धूजी थी।

(११९) ऋषभ चरित्र, पत्र १८—सामीजी श्री श्री पूज्य साहव गच्छनायक गच्छपति धर्मशिरोमणि श्री धर्मदासजी का शिष्य तपसीजी जसराजजी शिष्य पूज्य साहव जोगराजजी, तस गुरुभाई सामीजी श्री श्री १०८ श्री पद्मराजजी, तस्य शिष्य पू. श्री श्री सोभाचदजी, तस्य शिप्य स्वामीजी पूज्य मोतीचन्दजी, तस्य शिष्य ऋषि वदीचन्द लिखी समत १९०३, फागुण सुद ४, जावरा मध्ये।

(१२०) सत्य शील-प्रबध (हरिचन्द चौपई) की प्रशस्ति—

गणनायक धर्मदासजी रे, हुवा निनाणु सीष।
लघु चेला जसराजजी रे, तप कर गाली देह (रीस) ॥२९॥

तेहना सीष सुविनीतजी रे जोगराजजी पदमजी साम।
गुरुराज शोभाचन्दजी रे घणा सुधार्या काम ॥३०॥

समत अठार अठाणवे रे काती दीवाली आय।
ऋष मोती कहे आनद सु रे, ताल गाम के माय ॥३१॥

सरस घणा मनरग सु रे, आणद किया वखाण।
नर-नारी आणदिया रे, जोर चढ्या परमाण ॥३२॥

ढाल सतरमी मीठी घणी रे, हरचन्द चउपाइ जेह।
उघाडे मुख मती वाचजो रे, दया आणी मन एह ॥३३॥

(१२१) श्री रत्नकुमार नी सज्झाय, पत्र ३—लपी करत रप तारमल, ग्राम सीतामहो मध्ये। भगवानजी-पठनार्थ।

(प्रतापगढ़-शाखा)

(१२२) वैरिसिंह चरित्र, पत्र १९—पूज्य ज्ञान के सागर श्री उदेभाणजी श्री हीराचन्दजी तस्य शिष्य ओकारलालजी, स. १८२७ मि० श्रावण सुद ५, सोम. प्रतापगढ मे।

(१२३) श्राद्ध प्रतिक्रमण अर्थ, पत्र ४९—पूज्यजी श्री ६
तस्य शिष्य स्वामीजी श्री १०८ श्री कुश।
स्वामीजी १०८ श्री मयाचन्दजी, तस्य शिष्य
तस्य शिष्यणी सजाजी लिषी, स्वामी दानाजी प्र
चेत सुद ७ रविवार धार मे।

(१२४) गौतम-पृच्छा, पत्र ७०—सामीजी श्री तीजाजी की f
मयाजी राजाजी लिखी, सामीजी श्री दानाजी प्रस।
पोसविद ९ बडनगर मे।

(१२५) पूज्यजी स्वामी श्री देवीचन्द के प्रसाद से शिष्य
हाथ की सज्झाय आसोज सुदी २ शुक्रवार राजगढ

(१२६) सीखामण, पत्र १—स १८३४, गाँव बासवाडा लि.

(१२७) रुषमणी, पत्र ३४—आरज्याजी रामुजी वीराजी नी चेल
गोराजी, रतलाम मधे, समत १८४० मीगसर वदी
शुक्र छ।

(१२८) कयवन्ना सेठ चतुपदिका—सवत १८२१ वरषे, मास कार
दने, लिखत आरज्या कुसाले, प्रतापगढ मधे।

(१२९) स्तवन पत्र १—स १९३८, फागण विद ३, दीतवार, खाचर
दसकत गगाजी म की पोता चेली दोली का छे।

(१३०) अनत चोवीसी (साधु वदना)—समत् १९४१, काती १
वसपतवार पूरी कीधी, राजगड मधे लिषत श्री भुर।
माराजरी शीषणी झमकुजी लषी।

(१३१) नवतत्त्व, पत्र ५३—श्री माहासत्याजी माहाराज भुराजी, त
सीपणी झमकूजी लीखतु, गाम कोद मधे सपूर्ण, मीती फागण
वीदी १, बुधवार, समत १९४०, तस सीषणी (हे) तीजीजी
माहाराज के वाचवा सारू लीखी।

(१३२) चदण मलियागरी—स १९२२, वेसाख सुदी ६, सुकरवार समपुरण,
लीपत देवगुरू-परसादसु, आरज्याजी लाडुजी तस सिखणी
रमकुरी (?) (रामकुँवरजी)।

(१३३) मेघमुनि चोपी, पत्र ८—आरजाजी भुराजी री सीषणी झमकुजी ए लषी, पटलावद मे स १९४२ साल, मासुदी बीज, थावर वार दिन पुरी कीदी ।

(१३४) सीमधर स्वामी स्तवन—समत १९४१, मीती चेतसुदो १४ बुदवार, लीखत— आरज्याजी छगीजी, बुदनावर मधे ।

(अज्ञात परम्पराएं)

(१३५) रतनपाल चरित्र, पत्र ४५—पूज्य पदारथजी, पूज्य रायभाणजी, तस्य शिष्य पू खेमचन्दजी, तस्य शिष्य तपस्वी रतनचन्दजी, तस्य शिष्य पूज्य बालचन्दजी, तस्य शिस्य रिष प्रथीराज, स १८९७, फागण विद ऽऽ, मगलवार, गाम जारडा मेदपुर का ।

(१३६) बाराव्रत-चरित्र-प्रशस्ति (पत्र ५९)—

अधिकौ ओछो जे कह्यो, मिच्छा मि दुक्कड होज्यो मोय के ।
पुज वडा प्रथीराजजी, शम दम गुण करी गीरूआ सोय के ।।२५।।

दीपचन्दजी सीष्य निर्मला, तस सीस रोडीदासजी होय के ।
रामचन्दजी सीष्य भला, विद्या गुणे करी पडित जोय के ।।२६।।

षेतसीजी सोष्य अती भला, तास प्रसादे कहे ऋष लालचद के ।
एक सो षष्टमी ढालमे, नीत वरते हो सघ-प्रेम-आणन्द के ।।२७।।

सवत अठारे पचाणवे, भीडर सहर वसे सुभ वास के ।
वेसाष वदी दिन अष्टमी, सीध योग आया परम उल्लास के ।।२८।।

इति श्री बारा वृत चरीत्र ढाल सपुर्ण सवत १८९६ वरषे मति पोसवदी २, लिषतु वडी सादडी मध्ये लालचन्द ।। रामरतन पठनार्थं ।। सर्व ग्रन्थनी गाथा २८७१ छे ।।

परिशिष्ट:

जिणसासण-सिगार-सिरी-धम्मदासायरियस्स सपदायस्स

थेरावली

महावीर महापण्ण तित्थेस च अपिच्छमं।
वदित्ताऽणतचक्खु तु वोच्छ थेराण आवलिं ॥१॥

धीरा आयरियाऽणेगा जाया वीरस्स सासणे।
एगो भव्वो जससी य धम्मदासो खु तेसु ण ॥२॥

जिणसासण-सिगारो धम्मदासो महामुणी।
गीयत्थो य गुणागारो जयई जगवच्छलो ॥३॥

जेण कया सुई कित्ती धम्मस्स इसिणा जगे।
पाणाओ वि पिया जस्स पडिण्णा त नमामह ॥४॥

तस्स मुणि-पईवस्स बहुसीसा जसोधरा।
देसे-देसे पसिद्धा य आसि धम्म-धुरधरा ॥५॥

*[तस्सीसा णवणवई सघाडआ य आसिण।
बावीस तु गया ते हु देसे-देसे सयासया ॥६॥]

तस्सीसो हरिदासो वि तक्कुले उदओ मुणी।
रतलामे थिरीभूओ गुणव दक्खिणागओ ॥७॥

[लद्ध-गुरु-प्पसाओ उ, हरिदासो दमीसरो।
विस्सारिओ य अम्हेहिं अवराह खमेउ सो ॥८॥

हरिदासस्स सीसो ण सारोजी नामओ जई।
धण्णो धण्णो य भिक्खू सो, जो स-चराण तारओ ॥९॥

तस्सीसो खेमराओ य, दक्खिण-देस-तारओ।
धम्मस्स देसओ सुद्धो गुणग्गाही गुणगरो ॥१०॥

*[ ] कोष्ठक गत गाथाएं लेखक द्वारा थेरावली मे प्रक्षिप्त हैं।

तस्सीसुदयचंदो वि भव्वाण हिय-साहओ ।
मालवे धम्म-जुण्हागा जेण ससव्वि कारिआ ॥११॥

तस्स सीसो खुसालो य णाणगुणे रओ सया ।
मयाचन्दो इसी आसि तस्स चरण-सेवगो ॥१२॥]

तप्पट्टे य मयाचन्दो भव्वाण परमास्सओ ।
साहूण हिअयाणद-जणओ जयई मुणी ॥१३॥

तस्स पयारविंदेसु वहुजणा य रजिया ।
साहिओ जेहि आयट्ठो लद्ध‍ु तस्स अणुग्गह ॥१४॥

[तस्स सीसा भगाजी य मोतीचन्दो य खेमजी ।
दानाजी-पमुहा आसि थेरा तवोघणा गुणी ॥१५॥

तेसु घोर-तवस्सी य चिमनाजी सुनामओ ।
खिप्प लहीअ दिव्वड्ढी धण्णोव्व पचमारए ॥१६॥]

पुज्जो अमर-सूरिंदो तप्पट्टे गुण-सायरो ।
पसिद्धा तस्स सीसेसु दुवे सीसा महाजसा ॥१७॥

मुणी परसरामो य जियरसो तवोधणो ।
बीओ जईण मज्झे हि ससीव पुज्ज-केसवो ॥१८॥

पढमस्स वहू सीसा बुद्धा दत्ता तवस्सिणो ।
दीवचन्दो तवस्सिंदो मूलो पेमो य विस्सुआ ॥१९॥

[कटकाणीत्ति गोत्तेण, णिस्सिओ पटलावया ।
तवस्सी दीवचन्दो हु विसिट्ठ-लद्धि-धारओ ॥२०॥]

पुज्जो मोखमसिंघो उ सीसो वीयस्स खायओ ।
दीह-सजमजीवी य सीहसमो उ सो मुणो ॥२१॥

[तस्स य सासणे आसि णिस्सिओ वदनावरा ।
दानाजी-थेरकुले एगो मयाचन्दस्स सीसओ ॥२२॥

पत्त-तवसिरी-सोहो किच्चा सुदीहय तव ।
सरूवचन्द-जोइंदो मच्चूच्छवे वि उट्ठिओ ॥२३॥]

तस्सासी वहवो सीसा तेसु हिंदुमलो मुणी ।
तस्सीसो गिरधारी य उग्ग-आयारव इसी ॥२४॥

तस्सजयस्स सीसो हु णदलालो मुणीसरो ।
खतो दतो सया सतो पुज्जवरो जसोणिही ॥२५॥

सो तायस्स सुओ इक्को इट्ठो कतो तहा पिओ ।
चइत्ता इट्ठ-सजोगे जाओ मुणी गुणागरो ॥२६॥

धण्णो धण्णो य तव्वसो खाचरोदपुर तहा ।
जाओ जत्थ सिरी पुज्जो णदलालो जिइदिओ ॥२७॥

[गुरुभाया पुणो तस्स रतलामाउ निस्सिओ ।
मुणतत्ति य गोत्तेण विद्धीचन्दो मुणी लहू ॥२८॥

अप्पकाले हि जाओ सो बहुस्सुओ जणप्पिओ ।
त साहगाण आधार कालो नेइ बला मुणि ॥२९॥]

तप्पट्टस्स अलकारो जुगप्पहाण-माधवो ।
वाईसरो महाविण्णू महेसी सुय-पारगो ॥३०॥

[सीसो मूलमुणी तस्स थेरो ट्ठिओ य आवरे ।
एगते हि रओ चिच्चा उदासो लोइय जस ॥३१॥]

चपालालो य तप्पट्टे आसी पवयणे विऊ ।
ताराचदो महाथेरो जाओ पच्छा पवत्तगो ॥३२॥

[चपालालस्स दो सीसा तेसु रामस्स सीसओ ।
सो भगवानदासो ण, तवे णिच्च सुए रओ ॥३३॥]

खाया सीसा य णदस्स कण्हो वच्छो य सूरिओ ।
मती आसी तओ कण्हो मुणी धण्णो पियवओ ॥३४॥

कण्हस्स य दुवे सीसा सोभग्गो विणओ मुणी ।
मालव केसरी एगो पियवत्ता य बीइयो ॥३५॥

[सीसाणेगा पसिद्धा य सोहग्गस्स उ केइ वि ।
मुणी सती पमोओ य विणयस्स हि ण दुवे ॥३६॥]

मुणी य सूरियो थेरो कविवरो वियक्खणो ।
जयउ जिणसघम्मि पच्चुप्पण्णो पवत्तगो ॥३७॥

[तस्सीसा पच सजाता मोहणो माणगो मुणी ।
मुरिंदो तह रूविदो उमेसोऽणू य पचमो ॥३८॥]

जयउ जिणधम्मो य जयउ जिणसासण।
जयउ मुणि सोभग्गो, पवयण-वियक्खणो ॥३९॥

सूरिद धम्मदासस्स एसा थेर-परम्परा।
वण्णिया य उमेसेण सीसेण सूरियस्स हि ॥४०॥

लिहिया विक्कमीयेऽद्दे, निहि[9]-भुया[2]-ख[0]-चक्खुके[2]
पोसमासे सिये पक्खे कल्लाणपुर-सप्पुरे ॥४१॥

[जयइ भगव वीरो जयइ गोयमो पहू।
धम्मदासो मुणिदो य, जयइ सूरियो गुरू ॥४२॥]

सूचना—थेरावली की ३९ वी और ४० वी गाथाएँ झाबुआ-निवासी श्रीमान् नानालालजी रुनवाल बी ए द्वारा रचित हैं और ४१ वी गाथा भी उनके द्वारा सशोधित है।

श्री धर्मदासाचार्य पट पै, उदयचन्द मुनीश थे।
श्री मन्मथाचन्द्रार्यके पट, मुनि अमर सूरीश थे।
श्री पूज्य केशवराज मोखम, नद गणिवर वीर थे।
माधव तथा चम्पक मुनीश्वर भव्य तारक धीर थे।

—प्रवर्तक कवि श्री सूर्यमुनिजी म

॥ इति शुभ भूयात् ॥

मंगल मंगलानाम्

(रचयिता – श्री मानालाल जवरचन्दजी रूनवाल झाबुआ)

मगलमस्तु राष्ट्रस्य मगल जगतोऽपि ब्रै ।
मगल सर्वभूतानां श्रीसघस्यापि मंगलम् ॥ १ ॥
महामागल्यद नित्य मोक्षद सर्व-सौख्यदम् ।
धर्मतीर्थमिद शुद्ध जैनधर्माभिधानकम् ॥ २ ॥
ऋषभादि-चतुर्विंश - तीर्थकरै प्रवर्तितम् ।
कालार्धेऽस्मिन् सदा स्यात्तत् सर्वमगलकारकम् ॥ ३ ॥ युग्मम्
धर्मस्तु त्रिविध प्रोक्तस्तपोऽहिंसा-यमात्मक. ।
उत्कृष्ट मगलं सोऽस्ति स्वर्गापवर्गदायक. ॥ ४ ॥
सागार्येवमनागारी भेदौ द्वौ च प्रकीर्तितौ ।
तदधिकारिभेदेन मगलायतनैर्जिनै· ॥ ५ ॥
क्रिया ज्ञानेन सयुक्ता महामांगल्यदायिनी ।
अतो धर्मस्य भेदौ स्त. श्रुत-चारित्र-रूपिणौ ॥ ६ ॥
"धम्मो वत्थु-सहावोत्थि" वाक्यमेतत् सनातनम् ।
तस्मादात्मस्वभावो हि स्वात्मधर्म सनातन ॥ ७ ॥
दर्शन-ज्ञान-चारित्र सम्यक्शब्द-समायुतम् ।
स्वभाव आत्मनस्तेन तदेव धर्म उच्यते ॥ ८ ॥
एष सनातनो धर्मः सर्व-श्रेयस्कर. शिव. ।
मोक्षमार्ग इति ख्यात कुर्यात् सदैव मगलम् ॥ ९ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

सर्वे भूता विनयमनुगा मोक्षमार्गे प्रवृत्ता
धर्माचार जगति विदित तीर्थनाथै प्रयुक्तम् ॥
सेवन्ता वै विहितविधिना स्वात्मकल्याणकामा
विख्यातोऽय सकल-सुखदो मगल मगलानाम् ॥१०॥

"मगल मगलानाम्" पर श्रीमान् प उमेशमुनिजी महाराज ने सविस्तार टिप्पण लिखा है, तथा यह "सम्यग्दर्शन" सैलाना मे प्रकाशित हुआ है ।